श्री ग्रामगीता

(हिंदी)

वंदनीय राष्ट्रसंत श्री तुकडोजी महाराज विरचित

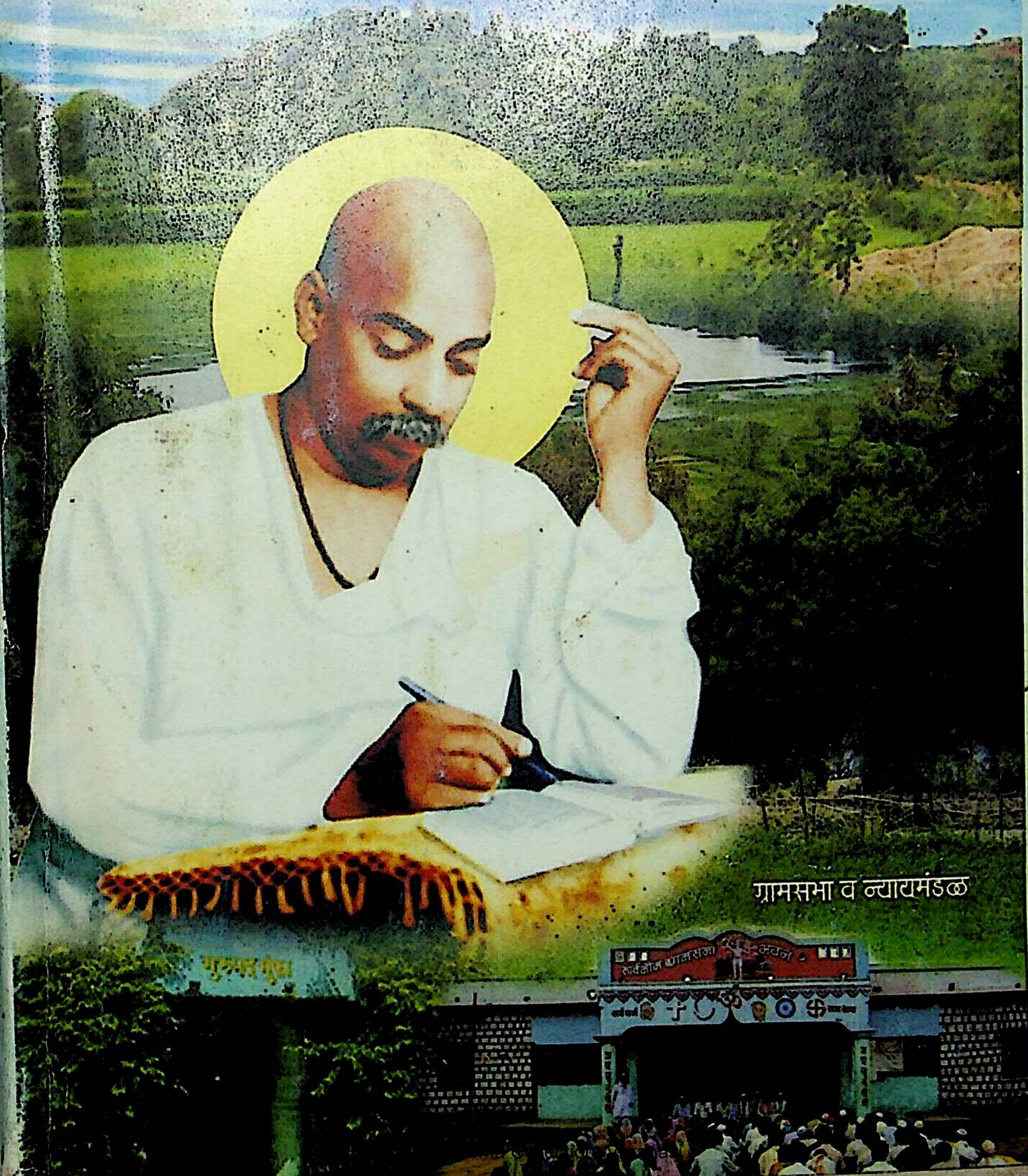

ग्रामसभा व न्यायमंडळ

स्वानंद सुखनिवासी

ग्रामस्वराज्यके जनक

कर्मयोगी संत
तुकारामदादा गीताचार्य
न्म : ९/१२/१९१४ गीताजयंती
ब्रम्हलीन : ८/६/२००६

आजकी तहस नहस
समाज व्यवस्था विषमता
के कारण लहुक्रांती की
ओर जा रही है ।
उसे सक्रीय अध्यात्मद्वारा
दलकर शांती, स्थितरता
एवं समानता की ओर
ले जाने वाले युगप्रर्वतक
ाष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज
के तत्वज्ञान को साकार
करने के लिये संपूर्ण
समर्पित होकर परिवार
छोड़कर जिंदगी के आखरी
ांस तक न रुके, ग्रामगीता
को सार्थ रुप देने वाले
त्यागी, तपस्वी, अनुभवी
कर्मयोग संत
तुकारामदादा गिताचार्य

वं. राष्ट्रसंत श्री तुकडोजी महाराज विरचित

श्री ग्रामगीता

विश्व पुष्टे ग्रामे अस्मिन्नातुराम् ।
ाँव - गाँव की समस्त जनता नीरोग, बलिस्ट एवं सुखी रहे ।
(ऋग्वेद १.११४)

* * *

• अनुवाद •
सुदाम सावरकर, साहित्यरत्न

• पुनरीक्षक •
डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा

* * *

● प्रकाशक ●
श्री गुरुदेव आत्मानुसंधान मंडळ,
भु-वैकुंठ आत्मानुसंधान टेकडी (अडयाळ),
ता. ब्रम्हपूरी, जि. चंद्रपूर
दुरध्वनी : ०७१७९- २०२९०८, मो. : ९८६०४८७६७९

सर्वाधिकार पुनरीक्षक द्वारा संरक्षित

प्रति : ३०००

सहयोग राशी : रु. ५०/-

● मुद्रक ●
आशा ऑफसेट व प्रकाशन
नवी शुक्रवारी सिमेंट रोड, महाल, नागपूर.
मो. : ९३७०६३५६५७

श्रीगुरुदेव आत्मानुसंधान भू-वैकुंठ

अडयाल टेकडी, ता. ब्रम्हपुरी, जिला : चंद्रपूर - ४४१२०६ (म.रा.)

श्री गुरुदेव आत्मानुशासन वंदनीय राष्ट्रसंत श्री तुकडोजी महाराज ने "ग्रामगीता" नामक ग्रंथ मराठी में सन १९५४ में लिखा था । यह ग्रामगीता ग्रंथ भारतीय संविधान का सक्रीय रुप है । सामान्य जनता को इस ग्रंथ को पढकर अपना गाँव पूरा स्वावलंबी, स्वयं शासित एवं स्वयंपूर्ण बनाने में सहयोग मिलता है । महाराष्ट्र में इस ग्रंथ के तत्वज्ञानपर अनेक गाँव और गाँव के लोग आदर्श बने है, और बन रहे है ।

इस मराठी ग्रंथ के उपलब्ध हिन्दी अनुवाद का मध्यप्रदेश के डॉ. ब्रह्मदेव शर्माजी ने अध्ययन किया। उन्होंने उसे मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री. दिग्विजय सिंह को बताया । उसे पढकर दिग्विजय सिंह बहुत प्रभावित हुए । उन्होने ग्रामगीता के मुताबिक मध्यप्रदेश में पूरी प्रशासन व्यवस्था करने का संकल्या लिया ।

डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा आदिवासी इलाकों के लिए स्वशासन बाबत कानून बनाने में सक्षम रहे हैं । मध्यप्रदेश में उसी कानून की भावना के अनुरुप कई अधिकार ग्रामसभा को दिये गये है । अब वे श्री ग्रामगीता के मुताबिक पूरे भारत में कार्य करने का प्रयास कर रहे हैं ।

ग्रामगीता के उपलब्ध हिन्दी रुप को अच्छी तरह समझने में गाँव के हिन्दी भाषा लोगों को कुछ कठिनाईयाँ आ रही थी । इसके लिये डॉ. ब्रह्मदेव शर्माजी ने ग्रामगीता के उस हिन्दी अनुवाद को पुनरीक्षित किया । अब इस ग्रंथ का लाभ पूरे भारत में हिन्दी भाषी समाजको होगा । सभी राज्यों के सभी गाँवो में ग्रामगीता पर आधारित ग्रामस्वराज्य स्थापित किया जाय यही उनकी भावना है । उस पर वे प्रयत्नशील है । मध्यप्रदेश सरकार ने प्रदेश की सभी ५०,००० ग्रामसभाओं को ग्रामगीता प्रदान करने का फैसला किया है जिसका स्वागत है । डॉ. ब्रह्मदेव शर्माजी को मेरा सतशहः धन्यवाद । आपके इस शुभ कार्य से सब भारतवासियों को ग्रामगीता का परिचय हो जायेगा जिससे समाज परिवर्तन का महान कार्य होगा ऐसा मुझे विश्वास है ।

– तुकाराम दादा गीताचार्य

• प्रस्तावना •

लगता है सब कुछ खतम होता जा रहा है........
विचारधाराओं के अवसांन का दौर.... सभ्यताओं के बीच आसन्न टकराव की संभावना. ..राष्ट्रराज्यों के खण्डहरों का बढ़ता आयाम.......

ऊँची बातें हैं ये सब और सुनी सुनाई, मगर.......आसपास भी तो वही माहौल घिरता नजर आ रहा है, टूटता समाज, टूटते परिवार, टूटता दाम्पत्य, रीतता मातृत्व, बिलखता वात्सल्य.. रिसते जा रहे हैं हर तरह के इंसानी रिश्ते.......तोड़ने का औजार बनती जा रही हैं आज तक की सभी व्यवस्थायें धर्म, जाति, राजनीति, शिक्षा और स्वयं विकास भी...

विग्रह, विग्रह.....और विग्रह

........और उसमें विलीन होता जा रहा है जीवन का सौंदर्य, सीता माता के धरती के समाने की तरह..... और खोज रहे हैं उसके स्मृति-अवशेष बची खुची धूल में--

विश्व-विजयी अजेय राम

* * * * *

दिग्भ्रमित और बेबस इंसान........अपने ही बनाये भस्मासुर के सामने !!

* * * * *

नहीं, इन्सान बेवस नहीं है........ईश का अंश इन्सान भला वेबस कैसा ?

गगन मण्डल में व्याप्त अनहद

और झंकृत हो उठता है कोई व्याकुल मानस......होनी का पूर्व संकेत..... मुखरित [illegible] गया वही दैवी संदेश हर तरह के भ्रम से उबरने के लिये 'ग्राम गीता' के रूप में---

भीमातट गूँजी गिरा, की लिपिबद्ध तथैव ।

आज की युगीन स्थिति में अर्जुन के समान महाप्रतापी होने पर भी किंकर्तव्य विमूढ़! गाँवों में बसने वाले स्वाभिमानी नागरिकों को उनकी विवशता से उबारने के लिये ही यह संदेश है। परंतु

गीता-बोध दिया अर्जुन को । ग्राम गीता सब ही ग्रामों को ।।

सवाल यह है कि **'सब ही ग्रामो'** के लिये ही यह संदेश क्यों ? क्या इसे पूरी मानवता के लिये ही संदेश माना जा सकता है? इसी सवाल में वह शाश्वत सत्य छिपा हुआ है जिसे नकारने से आज पूरा मानव समाज की दिग्भ्रमित है और विनाश के कगार पर पहुँच गया है।

निसर्ग के बीच मानव का गाँवली जीवन ही मानवीय व्यवस्था की बुनियाद है। उसी जीवन में लोग जीवन के सत्य को नित्य व्यवहारिक रूप में देखते है, अनुभव करते हैं, समझते हैं और जीते हैं । **'मानव है पूरक मानव का'** के बिना गाँव की जिन्दगी सोची ही नहीं

-जा सकती है। और पूरकों के बीच छोटे-बड़े का भाव कैसा ? सभी महान हैं, उसी अखंड ज्योति के अंश के रूप में ।

इसी गाँवली मानवीय व्यवस्था के शोषण और उत्पीड़न की बुनियादी पर बनी अनन्त परतों वाली पूरी ऊपरी नागरी व्यवस्था अपनी जड़ों से कट कर उलझन में फँस गई हैं । सच पूछा जाय जो वही उलझन उसकी जिन्दगी है । वहाँ इन्सान विज्ञान के खिलौनों की दुनिया में ही इतना रम गया है कि उसने क्या खोया क्या पाया इसका अहसास तक नहीं है। वह इंसान की गरिमा खोकर उस व्यवस्था-मशीन का एक पुर्जा न कर रह गया है। सच तो यह है कि मशीन, बाजार और औपचारिक व्यवस्था की उस दुनिया में मानवीय तत्व बचे रह ही नहीं सकते हैं । आज मानवीयता के सामने सबसे बड़ा खतरा यही है कि इंसान की शक्ल के वे संज्ञाहीन पुर्जे जीवन्त समाज और असली इंसान को देखते ही बौखला जाते हैं । आज वे पूरी दुनिया को अपने ही रूप में ढ़ालने के लिये आतुर हैं - जड़वत, संज्ञाहीन !

ग्रामगीता के रूप में मानवीय चेतना की इस दानवी यांत्रिक प्रवृत्ति को सीधी चुनौती है। राष्ट्रसंत तुकड़ोजी महाराज ने गाँव की जिन्दगी के हर पहलू का दो टूक विवेचन किया हैं। धर्म सत्य है तो उसमें भेद कैसा ? श्री गुरुदेव ही सर्व जगत में व्याप्त है। उसमें सभी धर्म और सभी पंथ एकरूप हो जाते हैं। मानवीय जीवन की बुनियाद उसका श्रम है। **'बिन श्रम होय उपज कहाँ से'** की साथ साथ सभी लोगों को भूमिकायें पूरक हैं । ऐसे में मेहनत की हकदारी में भेद कैसा? **'भिन्न भिन्न कामों का सारा, समानता से हो बटवारा ।'** इसी तरह आदमी औरत के रिश्तों में किसी तरह के भेदभाव या खटपट की गुजाइंश ही कहाँ है जब

'जीवन रथ के पहिये हैं दो । इक सम कर मजबूत बनाओ ।'

सर्वेगुणाः कांचनमाश्रयन्ते के नये रूप में **'धनिक चोरों'** पर उनका सीधा प्रहार है। उसे भी किसी तरह की लफ्फाजी से जायज करने की कोशिश न कर सीधा कह डाला कि **'यह समाज रचना की खामी । मानवनिर्मित भेद अन्यायी ।** इस खामी को दूर करने के लिये बाहर झाकने की जरूरत नहीं है -

लोकतंत्र का समय अभी है। जनता में ही शक्ति सभी हैं ।
जनता के निश्चय की ताकत । झुका सके साम्राज्य का मस्तक ।।

'भगवतगीता का यह सक्रिय रूप' लोगों को उद्वेलित करता रहा है। आदरणीय **तुकारामदादा गीताचार्य** जी इसका अलख जगाते रहे हैं । परंतु फिर भी उस अजस्र प्रवाह की राह में हमारे देश में अभी भी लागू अंग्रेजों के जमाने की समाज तोड़क व्यवस्था, शंकर भगवान के जटाजूट जैसी साबित हुई है। वहाँ पहुँच कर पवित्र जान्हवी भी खो गई थी । यह संयोग नहीं, उसी दैवी शक्ति का प्रताप है कि ११ दिसम्बर १९८९ को बस्तर के घने ज़ंगलों के बीच कोटरी नदी के तटपर संगम गाँव में **'हमारे गाँव में हमारे राज'** के लोक

संकल्प के रूप में गंगावतरण की एक क्षीण सी धारा अवतरित हुई उसके बाद धीरे धीरे ग्रामगीता के आदर्श गाँव के लिये देश के संविधान के तहत उस की औपचारिक व्यवस्था में स्थान बनता गया। इस व्यवस्था में ग्राम सभा के लिये सर्वोच्च स्थान मान्य होता गया। आज वह व्यवस्था आदिवासी इलाकों के अलावा मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, ओड़िशा और झारखण्ड के सामान्य इलाकों में स्थापित हो चुकी है। महाराष्ट्र पांचवा राज्य है जहाँ उसके बारे में सैद्धान्तिक सहमति हो चुकी है। लोक संकल्प की इस धारा को अब दुनिया की कोई ताकत नहीं रोक सकती है।

गंगावतरण हो कर रहेगा।

नये संदर्भ नें ग्रामगीता का संदेश गाँव गाँव में पहुँचना है। वैसे तो सुदाम सावरकर ने राष्ट्रसंत की वाणी को बड़ी ही सुन्दर और भावपूर्ण शैली में हिन्दी रूप दिया। परंतु कहीं कहीं मराठी-हिन्दी के मुहावरे और शब्दों की कुछ समस्याए दिखी। इसके साथ-साथ यह भी जरूरी समझा गया कि हिन्दी भाषी क्षेत्र के ठेठ गाँवों के लिये राष्ट्रसंत की भावना के अनुरूप और भी सीधी वोली हो तो बेहतर होगा। इसी को देखते हुए श्रीग्रामगीता के सुदाम जी के अनुवाद का पुनरीक्षित रूप प्रस्तुत है। इसके साथ साथ संविधानिक व्यवस्था के नये संदर्भ के विषय में एक परिशिष्ट भी जोड़ा है।

उम्मीद है कि यह प्रयास मानव की अनन्त संभावनाओं को, जो उपभोगवादी अपसंस्कृति की राख के भारी ढेर के नीचे दबती जा रही है। एक बार फिर से अपने पूर्ण तेज के साथ प्रस्फुटित होने में सहायक होगा। विश्वव्यापी जड़वत् संज्ञाहीनता पर मानवीय संवेदना की विजय होगी। उस संवेदना को संजोये गाँव गणराज्यों के रूप में धरती पर स्वर्ग की स्थापना होगी।

मकर संक्रांति २००२
नंगली रजापुर

ब्रह्मदेव शर्मा

वं. राष्ट्रसन्तजी के विहंग-दर्शन

प्रातः स्मरणीय सन्तजी का बाल्यनाम 'माणिकदेव' किंतु गुरुप्रदत्त नाम तुकड्यादास था। महाराष्ट्र राज्य के विदर्भ प्रदेश मे यावली क्षेत्र के एक अंकिचन एवं अनपढ़ ब्रह्मभट्ट कुल में दि. ३०/४/१९०१ को तुफान के साथ आप अवतीर्ण हुए। शैशव में ही ब्रह्मनिष्ठ समर्थ आडकोजी महाराज (बरखेड) श्री संत हरिबुवा (अकोट) एवं अलौकिक संत 'श्री गुलाबराय महाराज (माधान) के आशीष आपको मिले। भारती बुवा तथा सातली कोतलीकर बाबा आपमें बडी दिलचस्पी तथा भक्तिमती माता मंजुलादेवी खेत-मजदूरी का काम कर जैसे तैसे निर्वाह करते थे। पितृकुल वैष्णव वारकरी तथा मातृकुल दत्त संप्रदायी थे।

एकमेव पुत्र 'माणिकदेव' बचपन में नदी में रेत की पिंडी बनाकर वहाँ अथवा शिव मंदिर में ध्यान मग्न हुआ करता। बच्चों में न खेलकर एकतारी-खंजरी बनाता था और भजन संकीर्तन में मस्त हो जाता। पिताजी को यह सब पसंद नही था, अतः उन्होंने नौ साल की उम्र में ही 'तुकड्या' को घर से निकाल दिया। मातुल ग्राम बरखेड में श्री आकडोजी महाराज का सान्निध्य आपको मिला उनके महानिर्वाण के पश्चात् पंद्रह साल की आयु में ही आपने स्कूल की प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर श्री क्षेत्र रामटेक रामदिघी, गोंदुडा, ताडोबा आदि वनों में तपस की। एक अज्ञात योगी महात्मा से योग दीक्षा ली। फकीरों आदि की साधनाओ को भी जाँच लिया। गिरिजनों के सुधार का कार्य किया। किसी सकाम भक्त ने आपको जहर भी दिया, किन्तु 'अलमस्त पिलाया प्याला' भजन आप मस्ती में गाते रहे। उन्हीं दिनों में आपने 'आनंदामृत' ग्रंथ लिखा। आपकी पहली अनुभुतिपूर्ण हिंदी भजनावली चिमूर में १९२८ में प्रकाशित हुई। 'देवबाबा' के नाम से ही आप पुकारे जाते थे।

तभी से आपने भारत भ्रमण कर समाज का सूक्ष्म निरीक्षण आरंभ किया। प्रांपचिक-पारमार्थिक, आध्यात्मिक-वैज्ञानिक, देवभक्त-देशभक्त, विभिन्न पंथीय एवं धर्मीय लोग आदि सब को विरोधात्मक तथा असंगत भ्रान्ति दूर कर उन्हें एक छत्र के नीचे लाने व्यापक विशुद्ध धर्म का उपदेश दिया। यज्ञ-सप्ताह, पर्व-चातुर्मास्य, भजन आदि पुराने माध्यमों में नई जान डालकर आपने खुले हाथों ओजस्वी विचार समाज को दिये। आपके भजनों ने जनता में नई चेतना की लहर फैला दी। १९३० में सत्याग्रही शिविरों में आपके राष्ट्रीय भजन गूँजे। १९३५ में क्षेत्र सालबडी में संपन्न विशाल रुद्रयज्ञ ने आपका महान व्यक्तित्व भारत में चमका दिया। १९३६ में महात्मा गांधीजी ने आपको साग्रह एक मास अपनी कुटिया में रख भजनानंद लूटा।

आपके प्रभाव से गाँव-गाँव आरती मंडल, भजन मंडल, सेवाश्रम आदि स्थापित हुए। रा.स्व.संघ, भा.से.दल. आदि सैंकडो संस्थाओं में जाकर "जाग उठा बालबीरा, अब

तुम्हारी बारी है" यह संदेश आपने युवकों को दिया। "अब काहे को धूम मचाते हो दुखवाकर भारत सारे" आदी भजनों से चिमूर-आष्टी आदि स्थानीय में १९४२ का सुविख्यात स्वातंत्र्य यज्ञ धधकाया जिससे अंग्रेज शासको ने आपको नागपूर-रायपूर जेल में ठूंसकर भजनों पर रोक लगा दी। जेल से बाहर आते ही आपने आतंकित जनता में नवचेतना भरने सर्वधर्मीय विश्व शांति प्रार्थना सप्ताह देश-विदेश में मनवाया। 'गुरुदेव' पत्रिका शुरू कर उसके द्वारा अ.भा.श्री गुरुदेव सेवामंडल की हजारों शाखाएँ तथा सैंकडो प्रचारक-प्रचारिकाएँ गठित की और बहुमुखी विधायक कार्यो का प्रभावी प्रचार-प्रसार बढाया। पीड़ित प्रदेशो को सहायता दी, कई परिषदों में स्फूर्ति प्रदान की।

आजादी के पश्चात सर्वांगीण, समाजशिक्षा, बलिदानबंदी, तीर्थयात्रा शुद्धि, व्यसन निर्मूलन, अछूतों के लिए मंदिरोंद्घाटन, व्यायामं आखाडों का संगठन, रझाकारों के प्रतिकारार्थ शक्तिसंवर्धन, संत सम्मेलन, भूमिदान आंदोलन, गांधी स्मृति पर्व के रूप में आदर्श ग्रामनिर्माण, २५०० वी बुद्धजयंतिनिमित्त एक करोड घंटोका समय दान, भारत साधु समाज का गठन, आयुर्वेद संमेलन, विश्व हिंदू परिषद का कार्य आदि कई महत्कार्य किये। तीन साल तक भारत साधु समाज के आप प्रथम अध्यक्ष रहे। किसानों को भारत-दर्शन कराया। कोयना-बाढ़ग्रस्तों को ठोस सहायता दी।

भारत के सभी प्रान्तों तथा गोवा, नेपाल आदि राज्यों में भी आपका जन जागृति दौरा चलता रहा। चीन व पाकिस्तान के साथ हुए भारतीय युद्ध में आपने जनता का मनोबल तथा सीमा पर तैनात वीरों का हौसला अपने भजनों द्वारा बढ़ाया। जापान में संपन्न जागतिक धर्म परिषद तथा विश्व शांति समिति के परमर्शदाता का संमानित पद दिया गया।

साधुत्व की वेषभूषा या विशिष्ट पंथ का अभिनिवेश न रखतें हुए तथा स्वास्थ्य की पर्वाह न कर आपने प्रतिदिन हजारों-लाखों लोगों को जगाने के लिये आजीवन रातदिन परिभ्रमण किया। इसी व्यस्तता में आपके सैंकडों लेख एवं पचासों हिंदी-मराठी गद्य-पद्य ग्रंथ लिखे। 'ग्रामगीता' उन्हीं में से एक है। अंतिम रुग्ण दशा में भी आपने 'गांधी गीताजंली' का लेखन किया। देवव्रत भीष्माचार्य के समाने रुग्णशैयापर पडे इस महामानव के पुण्यदर्शनों के लिये समूचा भारत उमड़ पड़ा। दि. १० अक्टूबर १९६८ को सब धर्मो को महत्त्वपूर्ण संदेश देकर वं. राष्ट्रसंत ने गुरु कुंज स्थित शांति धाम पंचवटी में अपने इहलीला का संवरण किया। वातावरण में आपकी आवाज गूँजती रही-

"तुकडया कहे आँधी लाऊँ। मैं भी मरकर जी जाऊँ।
कुछ क्रांति करूँ लगता हैं। इस जोश की लाट उठा दे।।"

-सुदाम सावरकर

पुष्प-वर्षा

मेरा और संत तुकड्यादासजी का संबंध बहुत पुराना हैं । उनके भजनों में अनोखी शक्ति है। उनका जनसेवा और भजन का काम तो रात दिन चलता ही रहता है। मुझे खुशी है कि उन्होंने सामुदायिक प्रार्थना की अच्छी प्रणाली शुरू कर दी हैं। उनके प्रचारक गाँव-गाँव में नवनिर्माण का अच्छा कार्य चला रहे हैं ।

–राष्ट्रपिता महात्मा गांधी

मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ कि वं. राष्ट्रसंत जैसे एक श्रेष्ठ महात्मा के साथ मेरा करीब बीस साल से सबंध रहा । महाराजजी हमारे बिहार प्रदेश मे आये; पिछडे लोगों मे कार्य किया। वैसे तो पूरे भारतवर्ष में अपने अनोखे और आकर्षक ढंग से उन्होने प्रचार कार्य किया । आज के युग में भारत के नवनिर्माण के लिऐ जिन बातों की आवश्यकता है, उन सभी बातों को व्यापक धर्म का सहारा लेकर उन्होंने प्रोत्साहित किया । सभी धर्म पंथ-पक्षों के लोगों में मानवता का प्रेम और राष्ट्रीय चरित्र एवं एकात्मकता को जगाने का निरंतर प्रयत्न किया। सामान्य जनता का वे 'जंगम विद्यापीठ' थे । हमें उनसे लेकर वही कार्य बढाना चाहिए।

–सर्वोदयनेता लोकनायक जयप्रकाश नारायण

सन्त तुकडोजी महाराज देशकी महान शक्ति थे । पूज्य बापूजी के ढंग का ही उतना रचनात्मक कार्य ग्रामों के उत्थान के लिए चलता था । देश की आजादी के लिए उन्होंने बहुत बड़ा काम किया । संत होकर भी देश के लिए जेलयात्रा की । उनका भजन जनजागृति का प्रभावशाली जरिया था । मैं जब कांग्रेस की अध्यक्ष थी, उनके आश्रम गयी थी, जहाँ की सामुदायिक गांधी स्मृति दिन के रूप में महाराजजी ने बहुत बड़ा कार्य किया हैं ।

–भू.पू. प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी

तुकडोजी महाराज जनसेवा में निरंतर व्यस्त थे । उन्होंने स्वयं ग्रामरचना का उद्योग दिया । गाँवोंको भगवान समझकर वे कार्य करते थे । ग्रामस्थ जनता का ही उत्थान उनका एकमात्र लक्ष्य था । ग्रामरचना के किसी भी अंग को उन्होंने दुर्लक्षित नहीं किया। उनका ग्राम कार्य स्वयंभू है । वे दिनरात देश की फिक्र करते थे । स्वतंत्रता संग्राम में श्री तुकडोजी महाराज को अंग्रेज-सरकार ने जेल का भी अनुभव दिया, वहीं मैं उनसे परिचित हुआ। भूदान यज्ञ कार्य में भी उन्होंने मुझे ठोस सहयोग दिया । उनकी 'ग्रामगीता' उन्हीं के कथनानुसार 'स्वानुभव संमत' हैं, जिससे वह आपही आप 'शास्त्रसमंत' बन चुकी हैं उनके विवेचन में पाठकों की कहीं भी संकीर्ण भावना और अंधश्रद्ध कल्पनाओं का आभास नहीं मिलेगा । बल्कि आधुनिक मनके ही दर्शन होंगे । उनका कार्य बड़ा है, सेवा अजोड़ है। गाँव-गाँव के बालगोपाल को इस 'ग्रामगीता' से अच्छी प्रेरणा मिलेगी, इसमें जरा भी संदेह नहीं है।

–आचार्य श्री विनोबा भावे

सन्त तुकडोजी महाराज वर्तमान समय में जीते जागते धर्म के सही आचार्य है। उन्होंने जनसेवा के जो बहुविध कार्य चलाये हैं वही सच्ची धर्म सेवा है ।

-पूज्य साने गुरुजी

श्री तुकडोजी बाबा की 'ग्रामगीता' आज के जमाने में गीता या ज्ञानेश्वरी के मुताबिक ही जनता को सही ज्ञान देकर गाँव-गाँव मे, झोपड़ी-झोपड़ी में सुख संतोष पैदा करेगी, ऐसा विश्वास से कह सकता हूँ। आज ऐसे ग्रंथ की ही देहातों को जरूरत है। भगवान की गीता का सच्चा हृद्गत 'जीव मात्र' देवता समान समझ कर सेवा करो' यह इस ग्रंथद्वारा आज यथावत् रूप में प्रकट हुआ है। इसी के द्वारा ग्रहस्थी में परमार्थ सिद्ध हो सकेगा । बाबा का यह प्रसाद सबको सुख शांति दे ।

-वैराग्यमूर्ति संत श्री गाडगे महाराज

श्रेष्ठ संत किसी पक्ष-पंथ आदि के हिमायती नहीं होते । 'स्वदेशे भुवनत्रयम्' यही उनकी अनुभूति होती है। वं. राष्ट्रसंत ऐसे ही थे । भारत के सभी राजनैतिक एवं धार्मिक पक्षों एवं श्रेष्ठ नेताओं से उनके आत्मीय संबंध थे । १६४२ के स्वतंत्रता-आंदोलन में उनकी अंतःस्फूर्त ओजस्वी भजन वाणी ने महान कार्य कर दिखाया । आजाद भारत में अपनी सूक्ष्म दृष्टि से स्वकीय सत्ताधीश धर्मविस्मृत होते देख उन्होंने सच्चे धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करने का अपना व्रत अधिक दृढतासे आगे बढाया, पंथविशिष्ट संकुचित दृष्टिकोण का त्याग कर सर्वव्यापी धर्मका पुनरुत्थान करना ही उन्हें अभीष्ट था । 'विश्वहिंदू' परिषद' की संस्थापक की प्रथम सभा मेंही उन्होंने सुस्पष्ट एवं प्रभावशाली मार्गदर्शन कर कार्यकर्ताओं को निःसन्देह बनाया था । इस महान विभूति के दर्शन एवं वंदन मैं सदाही श्रद्धापूर्वक करता रहा हूँ ।

- राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के भू.पू. सरसंचालक श्री गोलवलकर गुरूजी

वं. राष्ट्रसन्तजी को अन्तिम रुग्णशैयापर थे । हमने पूछा-"वर्तमान समय में आपका संदेश क्या है ? इस विज्ञानयुग मे जीकर जिलाने का उपाय क्या है?" वं. राष्ट्रसंतजी ने कहा- "ग्रामगीता में मैंनें अपने हृद्गत विचार रख छोडे हैं । विश्व प्रेम ही समस्त रोगों का उपचार हैं, जिसका आरम्भ गाँव-से व्यक्ति व्यक्ति से होने चाहिये ।" सामुदायिक प्रार्थना एवं 'ग्रामगीता' इनका अमर दान राष्ट्रसंतजी ने अपनी समूची शक्ति लगाकर राष्ट्र को दिया है। 'ग्रामगीता' जैसा ग्रंथ पढ़ने का ही हमारा अधिकार है ।

-आचार्य दादा धर्माधिकारी

-: अध्यायानुक्रम :-

अध्याय पेंज क्र.

सद्धर्म मंथन पंचक

१ देवदर्शन १७
२ धर्माध्ययन २५
३ आश्रमधर्म ३२
४ गृहधर्म-परमार्थ ४०
५ वर्ण-व्यवस्था ४९

लोकवशीकरण पंचक

६ संसर्ग-प्रभाव ५८
७ आचार-प्राबल्य ६६
८ प्रचार-महिमा ७४
९ सेवा-सामर्थ्य ८३
१० संगठन-शक्ति ९१

ग्रामनिर्माण पंचक

११ ग्राम रक्षा ९८
१२ ग्राम शुद्धि १०५
१३ ग्राम निर्माण कला ११३
१४ ग्राम आरोग्य १२१
१५ गोवंश-सुधार १३०

दृष्टि परिवर्तन पंचक

१६ वेष-वैभव १३७
१७ गरीबी-अमीरी १४५
१८ श्रम सम्पदा १५३
१९ जीवन शिक्षा १६१
२० महिलोन्नति १६९

संस्कार शोधन पंचक

२१ वैवाहिक-जीवन १७७
२२ अन्त्यसंस्कार १८५
२३ उत्सव-त्योहार १९४
२४ तीर्थ-मेले २०३
२५ देव-देवल २१०

अध्याय पेज क्र.

प्रेमधर्मस्थापन पंचक

२६ मूर्ति-उपासना २१९
२७ सामुदायिक प्रार्थना २२५
२८ प्रार्थना और विश्वधर्म २३३
२९ दलित-सेवा २४१
३० भजन-प्रभाव २५०

देवत्त्व-साधन पंचक

३१ संत-चमत्कार २५८
३२ संत-स्वरूप २६६
३३ अवतार-कार्य २७४
३४ प्रारब्धवाद २८२
३५ प्रयत्न-प्रभाव २९०

आदर्श-जीवन पंचक

३६ जीवन-कला २९९
३७ आत्मानुभव ३०७
३८ ग्राम-परिवार ३१५
३९ भू-वैकुण्ठ ३२४
४० ग्रंथाध्ययन ३३४
४१ ग्रंथ-महिमा ३४३

परिशिष्ट : नया संदर्भ

* * *

❖ अर्पण - पत्रिका ❖

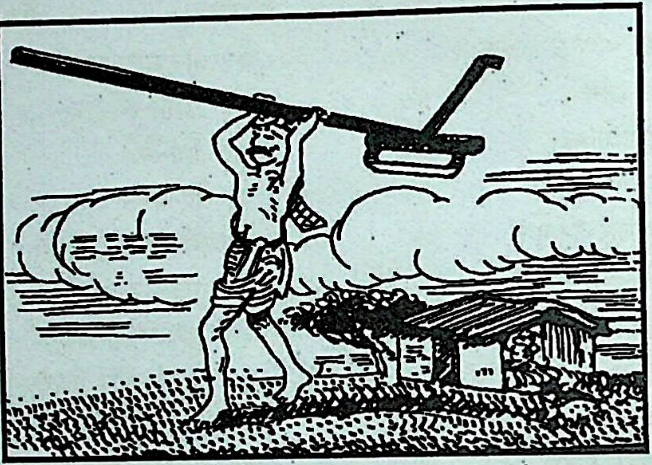

(रुचिराछंद)

अन्न-वस्त्र-पत्रादि सौंपकर ग्राम करे सुख-पूरण है ।
पर दुख स्वयं उठावे नित यह ग्रामनाथ ! तव भूषण है ॥
निज कष्टोंसे महल बना दें, पर तुझको कुंटिया न भली ।
स्वतंत्रता-रण में तू कूदा, पर औरोंकी मौज चली ॥
सौख्य मिले सब देशों के, ऐसे ही भोले शिवगण को ।
मानव ही पूर्णता प्राप्त हो तुझे, यही भाता मनको ॥
लिखी, 'ग्रामगीता' इस कारण, ग्रामदेवता जागृत हो ।
तेरा मेल साथ सबके ही, अब सागर-सरितावत् हो ॥
मिले प्रतिष्ठा श्रम को तेरे, तुझ पर सब की आँख लगे ।
इसी राह से मानवता का, प्रकाश पूरे विश्व जगे ।
इससे कर दूँ, तुझे समर्पित, अधिष्ठान तू विश्व सही ।
सबसे पहले समुत्थान हो, तेरा जगमें, चाह यही ॥
जन-बन में भी ऐसा हो, तब तृप्ति खिले मेरे मन में ।
कहता तुकडया, लक्ष्य यही है, बढे मित्रता त्रिभुवन में ॥

'ग्रामगीते' चे लेखक -

|| चित्र परिचय ||

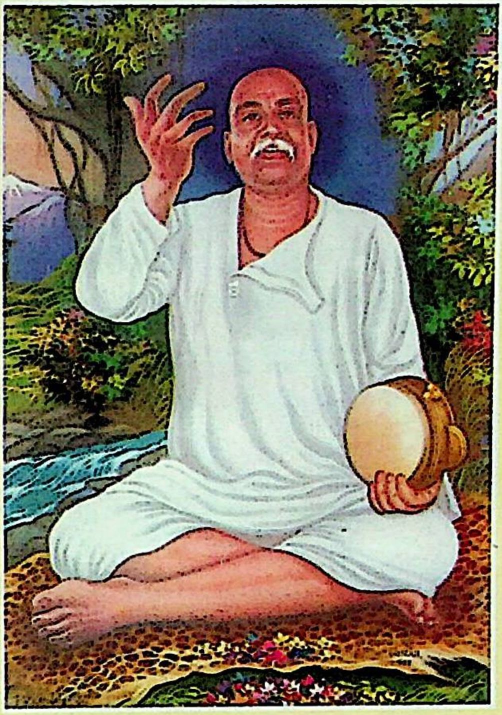

अ. १ -

वं. राष्ट्रसंत श्री तुकडोजी महाराज

राष्ट्रसंत श्री तुकडोजी महाराज हे पंढरपूर क्षेत्री आषाढी एकादशीस चिंता जगाची करीत चंद्रभागे तटाकी बसले असता, याच अध्यायातील ओवी ४३ व ४४ मध्ये वर्णन केल्याप्रमाणे, विश्वाचा विचार करण्या ऐवजी खेडयांची उन्नती करण्यासाठी 'ग्रामगीता' लिहण्याची प्रेरणा ईश्वराने त्यांना दिली. 'देव भक्तासवे जातो. ध्यानरुपे' ही समर्थ उक्ती व कर्तृत्वाभिमान न घेण्याची भक्त-मनोवृत्ती लक्षात घेता यात चमत्कारिक वाटण्याचे कारण नाही.

(कुंडलिया)

असाढ़ सुदि एकादशी, संवत दस दुसहस्त्र ।
राष्ट्रसंत थे ध्यानरत, भीमातीर अजस्त्र ।।
भीमातीर अजस्त्र लगा था सुभक्त मेला ।
प्रभु विठ्ठल सब छोड़ एक पल बढे अकेला ।।
राष्ट्रसंत के हिरदे प्रकटी श्यामल मूर्ति ।
जिसने दी सादेश 'ग्रामगीता' की स्फूर्ति ।।१।।
सेवा श्रम गुरुकुंज में, ध्यानयोग के धाम ।
विजया दशमी से हुआ शुरू ग्रंथका काम ।।
शुरू ग्रंथका काम हुआ बुद्ध के जन्मदिन ।
भ्रमण चले, ना वक्त मिले, पर चलता लेखन ।।
मोटरमें रेलमें, जहाँ जाते कुछ लिखते ।
स्फूर्ति खिले नित नयी, विषय बहुविध आ झुकते ।।२।।
एकादस बैसाख बदि, अमृतसिद्धि का योग ।
संवत ग्यारह में हुआ समाप्त गीता-ओध ।।
समाप्त गीता-ओघ वहीं गुरु के कुंजन में ।
थी जयंति नारद की जब प्रार्थना-भवन में ।।
बीच चोर ले गया 'ग्रामगीता' पा व्याधी ।
हो अनुतापी अमर देववाणी लौटा दी ।।३।।
राष्ट्रसंत-आदेश से संपादन का काम ।
गुरुकृपा से पूर्ण कर पावन हुआ सुदाम ।।
पावन हुआ सुदाम ग्रंथ करके अनुवादित ।
धन्य 'ग्रामगीता' नवयुग का ग्रंथ अबाधित ।।
राष्ट्र वेद, लोकोपनिषद, विश्वधर्म की स्मृति ।
रहे 'ग्रामगीता' यह घर घर सदा गूँजती ।।४।।

-सुदाम सावरकर

श्री ग्रामगीता

पहला अध्याय

देव–दर्शन

।।श्री गुरु देवाय नम :।।

ईश्वर व्यापि त व जीव दशा

(हरि.) **ओंकार अखिलाधार! हे जगवंद्य!जय मंगल सदन !**
वंदे जगत्पति विश्वचालक! सत्य सुख चैतन्यघन !
आद्यन्त में तू एक ही, दिखता अनेकाभास पर ।
यह विश्वरूप न अन्य है, गुरुदेव ! तू ही चर–अचर ।।१।।

(चौ.) बना स्वयं ही शेष धराधर । जग व्यापक हो बचा परात्पर ।।
कण–कण में संचरे सुनटवर । रचने जगका नाटक सुन्दर ।।२।।
आपहि मंदिर, मूर्ति, पुजारी । आपहि पुष्प अर्चना सारी ।।
ईश्वर बना स्वयं ले पूजा । भक्त हृदय पावे, नहिं दूजा ।।३।।
स्वयं गणेश–शारदामाई । भक्त–कल्पतरु सद्गुरु साँई ।।
खुद ही देव-देवता सुन्दर । खुद ही सेवक नारद -तुंबर ।। ४।।
विविध चातुरी कला कलापा । नाच–गाय खुद लेत अलापा ।।
हर्षित हो खुद ही रस पावे । सुगम भक्ति का सुफल दिखावे ।। ५।।
मूल एक घरके गुरु–चेला । भेद न जड़ में, स्वयं अकेला ।।
द्वैत दिखा सत्संग चलावे । जो सुख–रंग यहाँ प्रगटावे ।।६।।

(दो.) **पावे जो अनुभव यही, करे मूल पहिचान ।**
दुख क्या आवागमन का ? हुआ जो आतम ज्ञान ।।७।।
जगत् ब्रह्म अपने सहित, जाने सो निर्भ्रान्त।
जो जो कर्म करे सुजन, पूजन तेरा कान्त ! ।।८।।

(चौ.) यही पूर्णिमा तेरे बल की । जीव भाव में अजहुँ न झलकी ।।
इसही से हम दीन भिखारी । रही दशा अज्ञान दुखारी ।।९।।
होता है जब दर्शन तेरा । खुलता व्यापक ज्ञान – दुआरा ।।
कहाँ रहे 'मैं- तू' का गाना? भेद भाव को कहाँ ठिकाना ? ।।१०।।
जिस ने तेरे दर्शन पाये । उसे रहे फिर कौन पराये ?।।
सभी विश्व उसने अपनाया । दिव्य भाव में बचे न माया ।।११।।
पर हम है दर्शन से वंचित । दिखता स्वर्ग स्वार्थ में संचित ।।
कहाँ पराये सुख में सुख है ? सिमटा समाधान बेरुख है ।।१२।।

कमी किसी की देख हँसेंगे। विपद्ग्रस्त से दूर बसेंगे ।।
देख दूसरों का सुख वैभव। होगी जलन, यही है अनुभव ।।१३।।
भले मरें जन ले श्रम निष्ठा । पर हम बेचत अपन प्रतिष्ठां ।।
भजे नरों को चाहे जैसे । लोभ पूर्ति गर हो, हम ऐसे ।।१४।।

(दो.) ख्याल हुआ 'अल्पज्ञ हम', इस अनुभव के साथ ।
जीव भाव यह त्यागने, बने नाम-रत नाथ ! ।।१५।।
और गहूँ किसकी शरण ? किसमें सब बिध शक्ति ?
समय कहाँ जो कर सकूँ, एक-एक की भक्ति ?।।१६।।

(चौ.) जुगनू पकड़ उजाला पाऊँ । भूली राह सुधरने जाऊँ
होऊँ उसमें निर्भय कैसे ? स्वसंवेद्य तेरे पद-जैसे ।।१७।।
दृष्टी जो तारे से मिलावे । तारा पल भर में छिप जावे ।।
वैसी होगी दशा हमारी । भटकेंगे पथ में हम भारी ।। १८।।
तूही एक सत्य अविनाशी । अटल निरंतर निश्चय राशि ।।
सब गुण - ज्ञान - सुखादिक भावे । सो तो तुझ ही में सब पावे ।।१९।।
सूरज से जुड़ते ही नाता । दूर दूर पथ सब दिखलाता ।।
अपने ध्येय-शिखर को पाने । चिन्तन से अनुभूति रमाने ।।२०।।

ज्ञानात्मक दर्शन प्रभाव

नभ मण्डल में सूरज उगता । अन्धकार दुनिया का चुँगता
वैसा तू हिरदे में छावे । जीव विश्व व्यापी बन जावे। ।।२१।।
चन्द्र किरण कण कण को चूमे । दिल चकोर का खुश हो झूमे।।
वैसा तू अपनावे हम को । बचे न कोई ताप कसम को ।।२२।।

(दो.) पंचानन दीखे नहीं, अति गर्वान्ध सियार ।
रिपु बिकार ग्रसते तभी, जब न प्रकाश तिहार ।।२३।।
सूरज जीवन-शक्ति दे, हँसे-खिले राजीव ।
वैसा दर्शन-ज्ञान से, बने कृपारत जीव ।। २४।।

(चौ.) राजहंस जब चोंच छुआते । नीर-क्षीर न्यारे हो जाते।।
छू ले हृदय ज्ञान जब तेरा । दोष-अदोष का उठे हिलोरा ।।२५।।
घन तम में बिजली लहराती । दीख पड़े तब बिछुडा साथी ।।
वैसे तेरे दर्शन-बल से। मिलती शान्ति ज्ञान के फल से ।।२६।।
अज्ञानहि से बढ़े विकारा। है अज्ञान कुसंग-दुआरा।।
अज्ञानहि से सत्य दुरावे । निकट खड़ा हरि, पर नहिं पावे ।।२७।।
दर्शन माने ज्ञान सिद्ध का। होश आन्तरिक निजानन्द का।।
चीजों में भरकर तू पूरण। अभिन्नता में तेरे दर्शन ।। २८।।

प्रार्थना

दर्शन मिले ज्ञानके सागर ! पूर्ण कला युत आत्म सुधाकर! ।।
हे सर्वोन्नत दिव्य मुनीश्वर ! कृपा रहे हम पर जगदीश्वर! ।।२६।।
करने जीव-दरिद्र निवारण । सुसम्पन्न तू एक महा धन !
इससे तेरी शरण पड़े हम । आदि पुरुष ! सर्वज्ञ ! सख मम ।।३०।।

(दो.) बिछुडे हम, थे तेरे पर, पास रहे पर भूले ।
दौड़े प्यासे हिरन से, देखि मरीचिका फूले ।।३१।।
सूखी नदिया में जले, तृषित मीन बेहाल ।।
बाढ़ आय कितनी सुखी ! कर त्यों हमें निहाल ।।३२।।

(चौ.) उगे भूमि पर अंकुर कोमल। धीरे चलती वर्षा शीतल ।।
कृपा आर्त जीवों पर वैसी । शान्ति मिले फिर उन्हें न कैसी? ।।३३।।
करूँ प्रार्थना चाह यही धर। जीव प्राण तल्लीन बनाकर ।।
लक्ष्य यही रह भिन्न न पाऊँ । सागर नमक जैस घुल जाऊँ ।।३४।।
पर इसमें है कई दिक्कतें। मल और' भ्रम सकुचाये रखते ।।
विशालता का तेरा चिन्तन। कर देगा पर मुक्त दयाघन! ।।३५।।
कितने भी हम गिरें छिपेंगे। उड़त चील सम तुझे दिखेंगे।।
कर देगा भ्रम पार बीनकर। सुख देने सब भाँति निरन्तर ।।३६।।
बछड़ा भूले गया रँभाती । चिड़िया अण्डों पै मँडराती।।
करते काम मात शिशु पाले । यह सब 'अपनापन' करवाले ।।३७।।

(दो.) भौंरी अलि निज सम करे, उमग से अंग लगाय ।
देव भक्त को ले उठा, साधन-जाल बिछाय ।।३८।।
होता यह प्रत्यक्ष में, मिले आर्त को राह ।।
चलते पथ 'साक्षात्' सो, व्यापक दर्शन-थाह ।।३६।।

(चौ.) यही जान मैं करूँ प्रार्थना। पूरी हो मानवाराधना ।।
विश्व रूप के करने दर्शन । आया चरणों में अनन्य बन ।।४०।।
तू व्यापक अरु अंतर्यामी । ज्ञानानन्द-सत्य-निष्कामी ।।
वैसे ही हम दिल से हों जब । होगी तेरी भक्ति सही तब ।।४१।।
कर विशाल यह बुद्धि हमारी । करने कर्म जगत में भारी ।।
कर शतायु, दे निश्चय देवा ! जीवन लक्ष्य बने जन सेवा ।।४२।।

दृष्टान्त एवं दृष्टिकोण

(दो.) पुण्य धाम श्री पंढरी, चंद्रभागा के तीर ।
बैठे मन में स्फुरा, विश्व भाव गम्भीर ।।४३।।

हुआ अजब दृष्टांत तब, पड़ी भनक यह कान ।
"प्रथम ग्रामगीता उठा, गान विश्व का गान" ।।४४।।

(चौ.) विश्व आत्म ही से पहिचानो। विश्व-अंश अपने को जानो ।।
बने व्यक्ति से कुटुम-कबीला। उससे आगे समाज फैला।।४५।।
समाज से फिर, गाँव बसा है। गाँवों से ही, देश लसा है।।
विश्व बना यह, देश-देश मिल। आवत, निकट कच्छ जिमि तिल तिल।।४६।।
मनुज मात्र का पहला पीहर। अपना गाँव, उसी का यह घर।।
उसमें करते प्रगति सुहानी । चलो पार कर, विश्व-नसेनी।।४७।।
प्रथम नींव हो मानवता की। करें जतन से रक्षा उसकी।।
सुन्दर जीवन होय गाँव का। आदर्श चित्र खलु दिव्य विश्व का ।।४८।।
गाँव जगत का सुन्दर नक्शा। उस पर निर्भर देश-परीक्षा।।
बिगड़े गाँव देश बेहाला। गाँव बिना वह कहाँ निराला ?।।४९।।

(दो.) पर्वत-नदियां है बली, पृथ्वी महा विशाल ।
मूल अंश पर गाँव ही, बूँद-बूँद जस ताल ।।५०।।
गाँव न जब अच्छे रहें, भुगते देश दुकाल ।
सुजन इसे दिल ठान लें, ढहता भावी काल ।।५१।।

(चौ.) खुश जो गाँव सन्त खुश उस में। खुश संसार देव खुश जिस में।।
सबसे पहले खुश अपना मन । करना है, जो सब सुख साधन।।५२।।
इसे समझने ज्ञान उठाना। ज्ञान सही अनुभव में लाना।।
सुख सम्पादन होगा तबही। विश्वरूप दर्शन का सबही।।५३।।
जानो ग्राम यही हरि-मन्दिर। ग्राम निवासी जन सर्वेश्वर।।
सेवा यही समूची पूजा। समझाओ यह बोध, न दूजा ।।५४।।
ग्रंथ बनाओ इसी शान का। आदि पीठ आचार ज्ञान का।।
सक्रियता का स्तंभ अनूठा। खड़ा करो, सुधरे जग झूठा"।।५५।।
ऐसी सुनी मधुरतर बानी। भीमातट पर सहज सुहानी।।
पंढरीश-चरणों में वन्दन। ध्यानरूप से किया उसी क्षण।।५६।।
किया साधु सन्तों का चिन्तन । करने गाँवों का संजीवन ।।
कुछ न कहूँगा इसमें नूतन। भगवत् की है देन पुरातन ।।५७।।

(दो.) सन्तों का था सत् कथन, बाद बढ़ा भ्रमजाल ।
पाखंडी ने खड़ी की, जन-जन बीच दिवाल।।५८।।
विशालता नर की घटी, रचे पंथ, दल, जात।
बँटवारा था काम का, सर बैठा दिनरात ।।५९।।

(चौ.) सेवा हेतु पंथ मण्डल थे। बने खेल, जनता को छलते ।।

सब गोपाल, कौन हैं न्यारे? लड़ते पर यादव सम सारे ।।६०।।
जावे भाग द्वैत मति वैसी। शुरू करें हम सेवा ऐसी।।
सुसंकल्प यह हिरदे पैठा। ग्रंथ भाव से लिखने बैठा ।।६१।।
निज बल देख सुकार्य उठाना। अपनेसे जो सधे सुहाना।।
सुभग उसे दिखलाना करके। सुमिरन ही में गुरु-ईश्वर के ।।६२।।
शब्दमयी सेवा सेवाही। जिससे लगते जन पथ माँही।।
सारा जनगण जान जनार्दन। करना कारज यह ही पूजन ।।६३।।
जो जो भी जिसने है जाना। वह सबके प्रति है समझाना ।।
सब जन अपने, कौन बिराना? सब माँ-बाप, न हो अभिमाना ।।६४।।
कहने वाला सिर्फ सयाना । सुनता वह नाकाम दिवाना ।।
मति ऐसी जिसने दिल ठानी । डूब मरे खुद वह अभिमानी ।।६५।।
सभी सुनें इसकी न दवाई। पिछली हमने सुनी गवाही।।
फिर भी सेवा करना खण्डित। उचित नहीं, कहते बुध-पण्डित।।६६।।

(दो.) **जन सेवा की चाव से, आत्म तुष्टि के हेतु ।**
सहृदय श्रेष्ठों ने रचे, ग्रंथ विश्व-सुख-सेतु।।६७।।
विश्व-कथा कहते कई, देश किन्ही का लक्ष्य।
कहूँ 'ग्रामगीता' यही, उठा ग्राम का पक्ष ।।६८।।

(चौ.) हुई राम गीता शिव गीता । हंस, भीष्म अरु उद्धव गीता ।।
श्री अवधूत, हनूमत गीता । पाण्डव गीता भगवद् गीता ।।६९।।
हुई ब्रह्म गीता गुरु गीता । गणपति गीता उत्तर गीता ।।
देव-देवियाँ जग में जितनी । रची गई गीताएँ उतनी ।।७०।।
सार एक ही सबका सुन्दर । विशुद्ध करना है मन-मन्दिर ।।
सुखी बनाना विश्व चराचर । पावे तभी परमगति मनहर ।।७१।।
'विश्व ब्रह्म' की रट हे मुख में । डूबे चहुँ दिक समाज दुख में ।।
पर न गाँव सेवा भी जानी । छेरी का गलथन वह ज्ञानी ।।७२।।
वन तीरथ में जाय विचरता । पर नहिं अपना गाँव सुधरता ।।
भला अकेला मानें कैसा? दाग सफेद देह पर जैसा ।।७३।।
यही बचन सन्तों का भाई ! आप तरे वह कौन बडाई ?
लोगों को सन्मार्ग लगावे । पूरा एक वही तर जावे ।।७४।।

(दो.) **सन्तों पर विश्वास रख, यही किया अभ्यास ।**
सेवा हेतु यथा मति, यह ग्रामार्थ प्रयास ।।७५।।
मेरा मैं जानूँ, न हूँ, ग्रंथकार विद्वान् ।
करूँ धान्य भण्डार नें, कुछ निज कनकी दान ।।७६।।

(चौ.) प्रभुजी प्रेमभाव के भूखे। जाति पाँति या कला न देखे।
भोले भी हैं, भक्त उधारे। यह कीरत गाते जन सारे ।।७७।।
जो प्रभु सुन्दरता में रमता । कुब्जा से क्यों जोड़ी ममता ?
जो प्रभु चाहे वैभव-धनको। तो क्यों दौड़े विदुर-भवन को ?।।७८।।
प्रभु रुचि अगर कला कौशल में। पेंधा-वक्र बसे क्यों दिल में ?
ब्रह्मदेव का 'अहम्' मुँडावे। वहाँ पंडिताई क्या भावे ? ।।७६।।
ऐसी प्रभुलीला अति प्यारी । जितनी गाओ, रहे अधूरी ।।
यथा शक्ति इससे कर चिन्तन । करना कार्य भक्तिमय निसि दिन ।।८०।।
अपनी जैसी भी श्रद्धा हो । वैसी सेवा करना चाहो ।।
यहाँ न कोई रोक थाम है। कहने का अधिकार साफ है ।।८१।।
प्रभु पदमें हो स्वयं समर्पण। विकसा विश्वाकार विश्वमन ।।
देखूं जैसा निज नयनों से। कहता जाऊँ वही जनों से ।।८२।।

(दो.) शुरू 'ग्रामगीता' हुई, धर मन ऐसा चाव ।
लिये सन्त आशिर्वचन, कर प्रार्थना सभाव ।।८३।।
सन्त मनोगत और शुभ, ईश-दृष्टि संकेत।
शुरु करूँ सम्वाद शुभ, सरल शब्द जन हेत ।।८४।।

सन्त -देव स्मरण क्यों ? आस्तिक कौन ?

(चौ.) श्रोताने पूछा यह सुनकर। लिखी 'ग्रामगीता' जो गुनकर ।।
सन्त, देव क्यों इसमें डाले? स्तुति स्तोत्र गौरव से ढाले ।।८५।।
अपना गाँव समुन्नत करना । तदर्थ सबको बसमें धरना ।।
इसके लिये देव की लोरी। गाने को है कहाँ जरूरी ।।८६।।
क्या बिन नाम न काम बने छिन ? होवे विफल सन्त सुमिरन बिन?
आशिष नहि लें तो क्षय होगा? शुभ कारज क्या बन न सकेगा ? ।।८७।।
क्योंकर फिर मध्यस्थ बनावें ? बिरथा देव-धरम गुण गावें?
स्वयं बनाकर पोथे सारे। क्यों भगवत् के मत्थे मारें? ।।८८।।
ऐसे बैठे भरोसे प्रभु के। दिल कमजोर हुए हैं सबके ।।
बने भिखारी गाँव इसी गुण । छोडो 'देव-देव' की यह धुन ।।८६।।

(दो.) सुना आपका सब कथन, हुए आलसी लोग ।
पर प्रभु ने बोला कहाँ, लिप्त होउ तुम भोग? ।।६०।।
प्रभु ही वैसा नहि स्वयं, सब जानत नहिं अंध?।
कर्म भीरु जन आलसी, फैलायी भ्रम-धुंध ।।६१।।

(चौ.) करना चाहे जो न जरा ही। वही देव की देत गवाही ।।
अपने पाप छिपाता सारे। देव नाम के पीछे प्यारे! ।।६२।।

फैलाते लोगों में विभ्रम। टल जायें जिससे अपना श्रम ।।
देवके नाम कुकर्म बढ़ाया। ऐसों ने ही देश डुबाया ।।९३।।
इसीलिये उनसा नहिं, सज्जन। मेरा यहाँ देव का सुमिरन ।।
वह न कदापि बनानेवाला । जन-समाज़ डरपोक निठल्ला ।।९४।।
देव है जो कर्तव्य शूरवर। न्याय नीति का मंगल नैहर ।।
क्रान्ति कार्य का, सुदिव्य निर्झर। जग में सबसे ही अग्रेसर ।।९५।।
देव नहीं, वह है अतिमानव । महादर्श मानव का गौरव ।
ध्यान रहें शुभ कारज उसके। स्फूर्ति भरे नव जन में कस के ।।९६।।
प्रमुख देव का बखान सुंदर। यथार्थ पूर्ण न किया यहाँ पर।।
समझ देव को प्रभु पुरुषोत्तम । कहा-'सभी वैसे बरतें हम' ।।९७।।
परम देव का पहले चिन्तन । किया, वहाँ भी जो जो लक्षण ।।
वह होवें साधक के साधन। इसीलिये उनका था सुमिरन ।।९८।।
विशालता के चल दो पथ पर। जो भी गये उद्धरे वे नर ।।
सन्त कीर्ति का करके वर्णन। दी स्फूर्ति भावुकों के मन ।।९९।।

(दो.) **मित्र! गाँव सब बिधि बने, स्वयंपूर्ण आदर्श ।।**
आशिर्वच इस हेतुही, पूर्वज दिये सहर्ष ।।१००।।
श्रेष्ठों के सुनना बचन, दिल से करना याद।
करना सुफलित कार्य से, है वह आशिर्वाद ।।१०१।।

(चौ.) लोग बहुत आशीष लेते। पर न काम थोड़ा भी करते ।।
इससे मिलती उन्हें फजीहत । हो निर्बल, सोई दास बनत ।।१०२।।
आशीष का है प्यारा लक्षण। कर दे सज्जन का पथ-दर्शन ।।
बोध मार्ग वह हम भी जानें । बढ़ें सफल संकल्प बनाने ।।१०३।।
'शतजीवी' आशिर्वच पावे। पर व्यसनों से मौत बुलावे ।।
बिन अभ्यास फलेगी कैसे। 'खूब पढ़े' की आशीष ऐसे? ।।१०४।।
निबल अंधी भावुक भक्ति। कभी न मेरे मनको जँचती ।।
सन्त-देव का निष्क्रिय गर्जन। करें, नहीं आस्तिक ऐसा जन ।।१०५।।
हम हैं खास कार्य के प्रेरक। मान्य हमें हैं ऐसे नास्तिक ।।
जिनका भाव सदा है सम्यक । 'सब जन का सुख' धुन जिनकी इक ।।१०६।।
देव भले ही वह नहिं माने। निरत सभी को सुखी बनाने।।
मानव है पूरक मानव का। छोटे, बड़े का मत झूठे का ।।१०७।।

(दो.) **सुख पावें सब ग्राम जन, हों सम्पन्न सुराज।**
कोउ न किसके प्राण ले, सुस्थिर रहे समाज ।।१०८।।
रहें सभी सन्तुष्ट हम, सब मिल बाँटे खायँ ।

श्रम करके, भोगें सभी, जो फल दे सदुपाय ।।१०९।।

(चौ.) न है हमारी सम्पति अपनी। न है हमारी सन्तति अपनी ।।
कहें न अपनी कार्य शक्ति को। हक न भोग का सिर्फ व्यक्ति को।।११०।।
यह तो सभी गाँव का है धन। तन वाणी-बुद्धि अरु जीवन ।।
ऐसी जिसकी निश्चय धारा । वह नास्तिक भी हमको प्यारा ।।१११।।
वे नास्तिक हैं नहीं तत्त्व से। जो सबको सुख देते रहते।।
'देव-देव' यद्यपि नहिं गावे। वही देव सेवा कहलावे ।।११२।।
'देव' नाम हम बीच डालते। पर सब का हित-कार्य ढालते।।
किया नाम-मिस चहुँ दिसि वर्णन। जो करदे कर्तव्य परायण।।११३।।
जगको जो दे ज्ञान विशाला । है आदर्श न कोई निराला।
नाम देव का इस से गाया । जिसमें भाव विशाल समाया ।।११४।।

(दो.) अपनी खातिर हम मरें, सब हित देवक काम ।
भाव यही जिससे स्फुरे, 'देव' चित्त तस नाम ।।११५।।
'लेय' नहीं वह 'देव' है, जो सब कुछ देवाल।
जिसका पंथ यही, भजूँ, दिल से वह जग-पाल ।।११६।।

(चौ.) अन्तिम लक्ष्य सुशान्ति अखण्डित । हो नर उस अनुभव से मण्डित।।
किया इसलिये गौरव गुण का। साध्य देव अरु शुभ साधन का ।।११७।।
उसी शान्ति और सत्य मिलन में। हुए कृतार्थ ढाल कर तन में ।।
वे ही सेवा मूर्ति सन्त जन। गौरवमय, आदर्श रूप बन ।।११८।।
उदारचरित संत-सज्जन गण। हार्दिकता से उनको वन्दन।।
जो समझाते 'जनहि जनार्दन'। गाँव कराने सुख से पूरन ।।११९।।
साधु सन्त अरु देव धर्म सब। मनुजोद्धरण सभी का कर्तब ।।
कहता तुकड्या वही याद कर। गाँव उधारें हम सब मिलकर ।।१२०।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली।
परतीत गुरुकी, शास्त्रमत, आत्मानुभव-संमत भली।
इस आदि पर अध्याय में है देव-सन्तों को नमन।
अपना मनोगत भी कहा, सुनते रहें दिन-रात जन।।१२१।।

।। सदगुरुनाथ महाराज की जय ।।

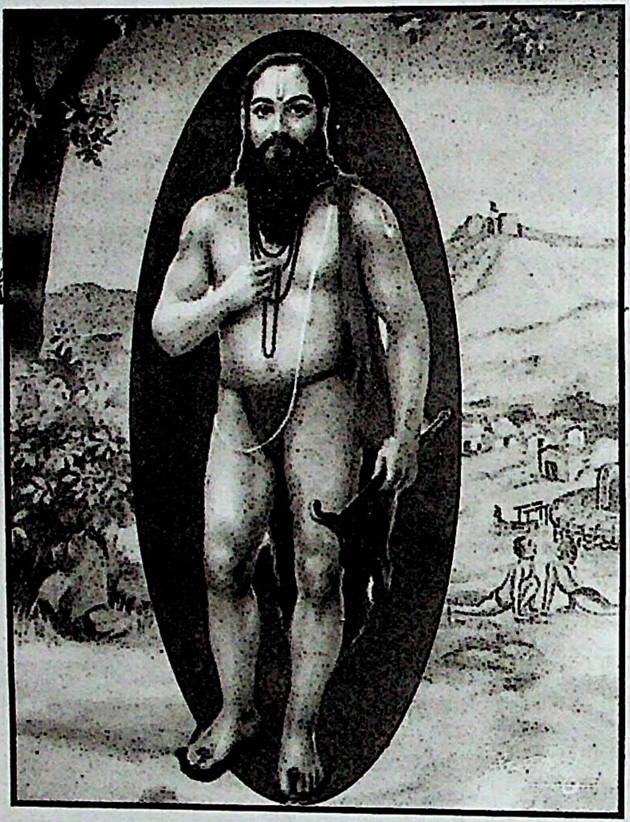

समर्थ श्री रामदास स्वामी

दुसरा अध्याय

धर्माध्ययन

।।श्री गुरु देवाय नम :।।

धर्म तथा धार्मिक

(हरि.) प्रभु के बनाये विश्व में, फैली प्रजापति से प्रजा ।
सुस्थित समाज रहे सभी, दी इसलिये धर्मध्वजा ।।१।।
है 'धर्म' लघुसा शब्द यह, पर है अलौकिक व्याप्तिका ।
मिलना यहाँ व्यवहार और' परमार्थ की संप्राप्तिका ।।२।।

(चौ.) प्राणी अनेक जहाँ बसते हों । सबकी स्थिति गर सुन्दर हो ।।
समाधान हो सबके मन का । विधान सच्चा वही 'धर्म' का ।।३।।
आत्मरूप की शुद्ध धारणा । सभी जगह है साम्य भावना ।।
विश्व कुटुम्बी सदाचरण है। परम 'धर्म' का यह लक्षण है ।।४।।
अपनी उन्नति करते जाना । औरों को सुख में नहलाना ।।
इसी हेतु संस्कृति हो जो जो । धर्म वही है दिल से खोजो ।।५।।
शुभ बर्ताव परस्पर में हो । न्याय नीतिं सम्यक जिसमें हो ।।
सुकर्तव्य, हर एक व्यक्ति का । 'धर्म' नाम है उस संस्कृति का ।।६।।
द्रोह न रखते हुए किसी का । करना ऐहिक विकास नीका ।।
समाधान आत्मन् का मिलना । यहीं 'धर्म' का लक्ष्य सुहाना ।।७।।
सुख संतोष सभी जन पावे । प्राणि मात्र नहिं दुःख उठावे ।।
जीवन में इसको अपनाना । 'धर्मनीति' का कथन सुहाना ।।८।।
कार्य विभिन्न, विभिन्न मनुज के । जीवन पूर्ति करें सब मिल के ।।
रहें भिन्न गुण नाम अमित हैं । पर सुखार्थ सहयोग उचित है ।।९।।
चहिये नहिं सत्ता का चाबुक । सत्कर्मों को दण्ड भयादिक ।।
स्वकर्म अपना सब लोगों को । धर्म सिखाता सब अंगों को ।।१०।।

(दो.) बिना हुकुम सीधा चले, 'धार्मिक' वही कहाय ।
अपने निजी स्वभाव से, सब से हिलमिल जाय ।।११।।
स्वयं स्वास्थ्य तत्पर रहे, फिर क्या डांक्टर-बैद ?
सहज न्याय व्यवहार जब, नहिं वकील-जज-कैद ।।१२।।

(चौं.) कहाँ जरूरी डण्डे का डर ? तड़प उठे आत्मा गलती पर ।।
अंतरंग में अंकुश प्रभु का । गवाह देता विवेक सब का ।।१३।।
स्फुरण सत्य का ऐसा मन में । 'धर्मशील' है सही जनम में ।।
आडम्बर सब धर्म-चिन्ह हैं । धर्म नहीं, छोटी बातें हैं ।।१४।।

करना प्रकट शुद्ध सात्विकता । वही जगावे जग में शुचिता ।
सँभले सब निज चरित्र बल से । सुप्रबंध दुनिया का दिल से ।।१५।।
व्यक्ति धर्म, परिवार धर्म की । समाज धर्म और' गाँव धर्म की ।।
हो मजबूती राष्ट्र धर्म की । प्रगति यही, है बात मर्म की ।।१६।।
व्यक्ति सभी हों कुटुम्ब पूरक । कुटुम्ब भी हों समाज पोषक ।।
बने ग्राम भी राष्ट्र सहायक । राष्ट्र विश्व को हो सुखदायक ।।१७।।
इसीलिए हो जो जो रचना । 'धर्म' उसी को साथी कहना ।।
देश का द्रोही वही अधार्मिक । दोनों शब्द यहाँ एकार्थक ।।१८।।

(दो.) **प्रमुख 'धर्मलक्षण' यही, त्याग अहिंसा सत्य ।**
ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह, संगतिमय हो नित्य ।।१९।।
निर्भयता, श्रमशीलता, सबसे प्रेम अभिन्न ।
सबको उपकारक बने, विद्या कर्म सुचिन्ह ।।२०।।

(चौ.) दुनिया भर में सुख की वृष्टि । यही 'धर्म' की सच्ची दृष्टि ।।
वही ग्राम जन में है लानी । तभी लाभ होगा सुखदानी ।।२१।।
देश हमारा घटक विश्व का । गाँव हमारा अंश देश का ।।
मानव है बुनियाद गाँव की । मूर्ति बने वह धर्मभाव की ।।२२।।
व्यक्ति धर्म जानें सब मन में । धर्म कुटुम्ब खिले जीवन में ।।
ग्राम धर्म छाये नस नस में । राष्ट्र धर्म आस्था जन ज़न में ।।२३।।
व्यक्ति व्यक्ति हो ऐसा धार्मिक । है नहिं धर्म रूढ़ि एकांगिक ।।
हो विकास भौतिक पारमार्थिक । सबका ऐसा सुधर्म व्यापक ।।२४।।
जन जन की देही मन वानी । प्राण इंद्रियाँ बुद्धि सुहानी ।।
इन सबका जो विकास-साधन । वही धर्म यह बात सनातन ।।२५।।

संस्कार प्रबन्ध व ब्रह्मचर्याश्रम

(दो.) **सर्वांगीण सुधर्म को, हो पहले सत् ज्ञान ।**
बिता सकें जीवन तभी, जग में उसी समान ।।२६।।
यदर्थ 'आश्रम' योजना, पुरखों की शुभ रीत ।
पहले धर्माध्ययन फिर, जीवन धर्म पुनीत ।।२७।।

(चौ.) मानव आया पशुजीवन से । बनना है नारायण नर से ।
इसीलिए करके संस्कारित । सँवारना है क्रम से निश्चित ।।२८।।
मानव द्वारा जो बनता है । भला बुरा दोनों होता हैं ।।
कौन अंश है पाप पुण्य क़ा । करना सही विवेचन उस क़ा ।।२९।।
सुधार कर आचार उसी का । नया मोड़ देना है नीका ।।

उद्धारे जिससे वह खुद को । सहयोगी बनकर औरन को ।।३०।।
इसीलिए संस्कार धरम के । जीवन में व्रत चतुराश्रम के ।।
शत वर्षीय आयु अनुमानित । की है उन्नति हेतु विभाजित ।।३१।।
पग धरते मानव जीवन में । लगा ब्रह्मचर्याश्रम तन में ।।
सभी आश्रमों का उद्गम जो । जीवन की हैं नीव परम जो ।।३२।।
सधा ब्रह्मचर्याश्रम जिसका । सुखद बना फिर भविष्य उसका ।।
हर आश्रम उत्कर्षवान ही । होगा उसके लिए सुखद ही ।।३३।।

(दो.) गर्भ दशा से ही पड़े, 'ब्रह्मचर्य' की नीव ।
जतन करो संस्कार से, पड़ा उदर में जीव ।।३४।।
कुसंस्कार नहिं गर्भ पर, डालें बुरा प्रभाव ।
मात पिता ऐसा रखें, सदाचार सद्भाव ।।३५।।

(चौ.) संभाषण बीभत्स न करना । हीन दृश्य नहिं कभी निहरना ।।
व्यसनाधीन बने नहिं रहना । खान-पान नहिं दुष्ट में बहना ।।३६।।
सत्वपूर्ण आहार विहारी । चिंतन पठन रहे गुणकारी ।।
नहिं सुनना गायन श्रृंगारी । लेकर साथ गर्भवती नारी ।।३७।।
इस हद तक है रक्षा करना । आगे के भी जन्म सुधरना ।।
सुसंस्कार जो सत्कर्मों के । जन्म काल से हों सब चोखे ।।३८।।
पुत्र रत्न उपजा है घर में । कुछ दिन बीतें लाड़ लहर में ।।
पर जन आगे नजरें रखते । बालक की करतूत परखते ।।३९।।
कौन खेल वह बच्चा खेले ? जाय कहाँ ? क्या देखें भाले ?।।
कैसा बोले घूमे गाये ? सदा देखती लोग-निगाहें ।।४०।।

(दो.) बालक में आयी समझ, रक्षा करो विशेष ।
उसगे आगे दुर्विषय, नहिं प्रकटाओ लेश ।।४१।।
सुसंस्कार शिशु पर पड़ें, तदरथ व्रतबंधादि ।
याद कराओ सद्विषय, दो दो शुभ बोधादि ।।४२।।

(चौ.) फिर हर कोई उसे हटकता । वन वन क्योंरे व्यर्थ भटकता ?
किया नहीं क्या नियत पठन है ? क्यों पागल सम तेरा मन हैं ? ।।४३।।
क्या न तुझे संस्कार मिले रे ? जिनसे हों व्यवहार भले रे!
करते रहे तेरे क्या पालक ? गलत राह पर जब तू बालक ।।४४।।
क्या न स्नान संध्या बतलाई ? विश्व वंद्य प्रभु स्मृतिदायी ।।
श्रेष्ठ जनों को प्रणाम प्यारे! क्या नहिं करता शाम सकारे ?।।४५।।
क्यों कर घूम रहा मन माना ? कैसे होगा भला सयाना ?

सुजन बोध देते हैं ऐसा । सद्गुण संवर्धन की आशा ।।४६।।
सुसंस्कार जिनसे हों पाते । सदाचार माँ-बाप सिखाते ।।
जिससे बालक पाय बड़प्पन । बनता गुणी चतुर उत्तम जन ।।४७।।

(दो.) **आठ साल की उमर में; हो 'उपनयन' सुभाग ।**
रूढ़ि बद्ध वह होय नहिं, केवल बटु का स्वाँग ।।४८।।
विद्या व्रत 'उपनयन', है, ब्रह्मचर्य आरंभ ।
शिशु पहुँचे गुरु के निकट, गढ़ने जीवन थंभ ।।४६।।

(चौ.) रहे ब्रह्मचारी गुरु भी वह । अथवा वानप्रस्थ अपरिग्रह ।।
रखे दक्षता वह सत्पथ की । ब्रह्मचर्य बच्चों के व्रत की ।।५०।।
खानपान, रहनी छात्रों की । खेलकूद, पठनी ग्रंथों की ।।
मनरंजन इत्यादि दशा भी। देखें, दे आचार्य दिशा भी ।।५१।।
जरा जो बिगड़ा जाय बिगड़ता । लाख करो फिर नहीं सँभलता ।।
लगी इंद्रियों को जो आदत । नहीं जन्म भर पीछा छूटत ।।५२।।
गुरु-आश्रम मे नियम इसी से । संयम युत हर कदम खुशी से ।।
छात्रालय में भी शुभ ऐसी । रहे दृष्टि हर जगह हितैषी ।।५३।।
पढ़ने में लगता जब बालक । भोजन उसे जरूरी सात्विक ।।
खट्टा-तीखा, नमक-मसाला । भोजन में मत दो चटकीला ।।५४।।
न हो चटपटा नहीं चरपरा । नहिं अति मीठा तला-बघारा ।।
खाना नहिं कृत्रिम मिश्रित हो । नहिं रूखा सूखा बासा हो ।।५५।।
सादा ताजा भोजन देना । नियत समयपर सोना जगना ।।
सोते जगत लाड़ दिखाने । पास रहे कोई नहिं स्याने ।।५६।।

(दो.) **करे शाम को प्रार्थना, बालक प्रातः ध्यान ।**
सोते जगते याद कर, नर आदर्श महान ।।५७।।
उषःपान, आसान तथा, सूर्य नमन हो नित्य ।
तैरे, सेवन नीम का, सुगम स्वास्थ्कर सत्य ।।५८।।

(चौ.) शीतल जलसे स्नान कराओ । भोर घूमने वन ले जाओ ।।
सही पठन-पाठन हो नित ही । चरित्रवंतों का निश्चित ही ।।५६।।
शौकीनियाँ रहन में नहिं हो । इत्र-फुलेल प्रयोग मना हो ।।
रखें न बाल, न तेल लगावें । ऐसे छात्र बनें, यश पावें ।।६०।।
दर्पण में नहि रूप निहारें । शान वेष भूषा की टारें ।।
बीड़ी चाय गिलौरी आदी । बरजें छात्र, सभी यह व्याधि ।।६१।।
लें न नशीली चीजें कोई । नहिं श्रृंगार काव्य मन मोही ।।
सेव्य-असेव्य सभी समझाओं । छात्रों से उपवास रखाओ ।।६२।।

अपना काम करें खुद ही हम । औरों के भी लिए परिश्रम ।।
सेवा धर्म छात्र यह नीका । सीखें स्नेह बहन-भाई का ।।६३।।
बाल-बालिका साथ न बैठें । नाटकमें फिर क़हाँ इकट्ठे ?
स्त्रैण संग श्रृंगारिक गायन । नहिं संपर्क छात्र का हो क्षण ।।६४।।

(दो.) उग्र छात्र की जय बढ़े, तज स्त्रिन का संग ।
चरित्रवान जनके उन्हें, देंय उदाहरण योग ।।६५।।
विवाह आदि देखें नहीं, प्रण्य काव्य दें फेंक ।
छात्र निडर व्यायाम के, दंगल की लें टेक ।।६६।।

(चौ.) पड़े नहीं अश्लील नजर ही। दिनचर्या आदर्श सुघरही ।।
शाम-सवेरे 'बौद्धिक' देना । शील विभव छात्रों का बाना ।।६७।।
ब्रह्मचर्य बतलाना महिमा । उद्देश्यों के उसकी गरिमा ।।
ब्रह्मचर्य की रक्षा कैसे ? दो उपदेश छात्र को ऐसे ।।६८।।

वीर्य रक्षा का महत्व

ब्रह्मचर्य आचरण ब्रह्म का । साधन है यह ब्रह्म तेज का ।।
ब्रह्मचर्य विद्या का पथ है । वीर्य सुरक्षा का यह व्रत है। ।।६९।।
ब्रह्मचर्य से बड़ी साधना । है सारे जग में कोई ना ।।
ब्रह्मचर्य पालन जो करता । देव तुल्य है ओज उभरता ।।७०।।
रिद्धि सिद्धि दासियाँ उसीकी । दौडत देव हाँक सुन ताकी ।।
कांतिमान तनसूरज जैसा । करे निरोग सर्व दुख नासा ।।७१।।

(दो.) व्रत निश्चय भी भीष्म का, कार्तिकेय चातुर्य ।
ज्ञान योग शुकदेव का, निर्भय, दे ब्रह्मचर्य ।।७२।।
दीर्घ दृष्टि अवधूत की, महावीर की शक्ति ।
वज्र देह अति चपल सो, दे ब्रह्मचर्य स्फूर्ति ।।७३।।

(चौ.) सब बल में बल पौरुष का बल । वीर्य नहीं वह दरिद्र दुर्बल ।।
बने वही घर सब रोगों का । दिन और रात, न फल सत् सुख का ।।७४।।
जिसने अपना वीर्य सम्हाला । यश उसको पहनाता माला ।।
क्षीण वीर्य जो मनुज हो चुका । सो शिकार बन गया मृत्यु का ।।७५।।
वीर्य जहाँ है ओज वहाँ पर । वीर्य जहाँ नव तेज वहाँ पर ।।
वीर्य जहाँ आरोग्यबीज है । बुद्धी बल निस्सीम वहाँ है ।।७६।।
सुनो, वीर्य कैसे यह बनता । चालिस किलो अन्न जब पचता ।।
एक किलो तब खून बनेगा । बीस ग्राम वीर्योद्भव होगा ।।७७।।
एक किलो रोजाना खाया । तीस किलो महिने में पाया ।।
पंद्रह ग्राम वीर्यरस होगा । कण-कण है उसका अति महँगा ।।७८।।

(दो.) पल में खोवे वीर्य वह, यह तो हानि अगाध ।
शत कष्टों से धन मिला, सहज किया बरबाद ।।७६।।
प्राप्ति मास की खो गई, पतन का पल बस एक ।
ब्रह्मचारी की आयु में, क्षति कितनी यह देख ।।८०।।

(चौ.) सात दिनों में बने अन्न रस । सात दिनों में रक्त धातु कस ।।
रक्त धातु से माँस बने फिर । क्रमशः बढता है तन-मन्दिर ।।८१।।
सात दिनों की कमान चढती । मेद-अस्थि अरु मज्जा बढती ।।
वीर्य रूप सर्वोच्च रसायन । हफ्तों बाद बना है कण-कण ।।८२।।
शुक्र धातु यह वीर्य शक्ति कर । बयालीस दिन बाद बने पर ।।
निस दिन कितने प्रयास इसमें । अनाज-व्यय भी कितना उसमें? ।।८३।।
वीर्य अमूल्य रत्न इस तन का । जो आधार मनुज-जीवन का ।।
अमृत कण वे स्वास्थ्य बढावें । रोम रोम में तेज चढावें ।।८४।।
इससे वीर्य निदान सँभालो । दिव्य ओज सामर्थ्य बढालो ।।
सूर्य चंद्रमा सम लो आभा । ब्रह्मचर्य से पाओ शोभा ।।८५।।

वर्तमान समय में राष्ट्रविकास पथ

(दो.) बालक-युवकों को यही, दो सब को उपदेश ।
ज्ञान भये देरी नहीं, जीवन बन आदर्श ।।८६।।
अपना शुभ आदर्श रख, गुरुजन दें जब पाठ ।
छात्र तेज चहुँ ओर तब, चमके राष्ट्र विराट ।।८७।।

(चौ.) 'ब्रह्मचर्य' पच्चीस बरस का । जीवन सफल हुआ फिर उस का ।।
'गृहस्थ' पद की ध्वजा उठाई । सत्कार्यों की स्फूर्ति लुटाई ।।८८।।
ब्रह्मचर्य ले गृहस्थ की गति । शतायु होगी उसकी संतति ।
रोग भोग दुर्बलता वाधा । कभी न होगी उनको ज्यादा ।।८९।।
बने गाँव आदर्श इसी से । देश बने बलवान उसी से ।।
सर्वोपति उत्कर्ष चिरंतन । हो मानव समाज नित नूतन ।।९०।।
इसे साधनें पहला उपक्रम । ठीक करो ब्रह्मचर्य-आश्रम ।।
बने प्रजा, कार्यक्षम सच में । अपने तथा राष्ट्र के हित में ।।९१।।

(दो.) बने राष्ट्र, जीवन बने, जब चरित्र का योग ।
ब्रह्मचर्य तन में भरे, स्वास्थ्य शक्ति संयोग ।।९२।।
प्रेम परस्पर में बढ़े, हो समाजहित-कार्य ।
है जीवन निर्माण ही, प्रथम नीव अनिवार्य ।।९३।।

(चौ.) है बालक के लिए नियम जो । वही बालिका के भी समझो ।।
प्रमुख भेद तो रहे उम्र का । रखें ध्यान में नारि-भूमिका ।।९४।।

हुई देश में ब्रह्मचारिणी । विद्या मूर्ति सुतेज धारिणी ।।
कन्या उपक्रम सब स्वतंत्र थे । आदर्शरूप महिला आश्रम थे ।।९५।।
ब्रह्मचर्य आश्रम जब तक था । राष्ट्र बलोत्तम भी तब तक था ।
बढा विषय का मोह व्यसन भी । तब से हुआ समाज-पतन भी ।।९६।।
धर्म-नीव विद्यार्थी धर्म है। ब्रह्मचर्य जिसका आश्रम है ।।
उससे होगा जीवन उत्तम । व्यक्ति राष्ट्र का और महत्तम ।९७।।
इसीलिए व्रत नियम संभालो । गाँव-गाँव में आश्रम खोलो ।।
मित्रो ! पीढ़ी नई को अपनी । देकर ध्यान, सिखाओ रहनी ।।९८।।

(दो.) **मैं जानूँ, बीते समय, संयम श्रद्धा सहज ।**
सुन्दर आश्रम गाँव में, मुश्किल बनाना आज ।।९९।।
भोग भाव सबके बढे, बदली रहन अपार ।
तीखी व्यसन-सितार की, इर्द गिर्द झनकार ।।१००।।

(चौ.) कन्या-विद्यालय न अलग है । विधवा भी श्रृंगार-सजग है ।।
किसी की धाक नहीं किस पर भी । बने सभी विषयों के लोभी ।।१०१।।
जीवन में नाटकी घुसी है । सिने-कहानी की मस्ती है ।।
अध्यापक भी व्यसन-विलासी । है श्रृंगार काव्यरस भाषी ।।१०२।।
राह डगर में खानपान है । वैभवशाली विद्यालय है ।।
मंजिल बनी चैन की बन्सी । गुनता कौन राह अब कैसी ? ।।१०३।।
है यद्यपि माहौल यह बुरा । ठीक करें, है काम हमारा ।।
देखत रहें गाँव की बिगड़न । अस आचरण सोह नहिं सज्जन ।।१०४।।
युवकों का बर्ताव नियम से । खानपान भी हो संयम से ।।
नियमित ब्रह्मचर्य का पालन । निश्चय से यह चलें आचरण ।।१०५।।
भुक्ति-मुक्ति सबका ही साधन । ब्रह्मचर्य अरु धर्म का पालन ।।
विनय इसी से श्रोताजन से । नहीं भुलाओं इसको मन से ।।१०६।।
जितना इसको तुम साधोगे । बालक भव में बलिष्ठ होंगे ।।
स्वास्थ्य गाँव का बढ़े सर्वथा । निश्चिय से यह तुकड्या कहता ।।१०७।।

(हरि.) **इति 'श्री ग्रामगीता' ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।**
परतीत गुरुकी, शास्त्रमत, आत्मानुभव संमत भली ।।
इस दूसरे अध्यायमें है, ब्रह्मचर्याश्रम, धरम ।
निजगाँव के निर्माण में, सुनकर करें आचार हम ।।१०८।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

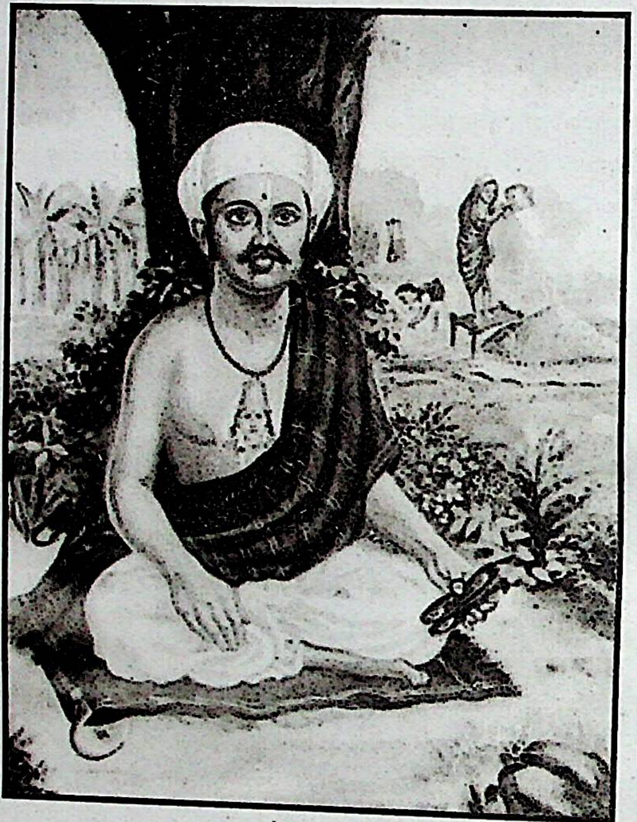

श्री संत सावता महाराज

तीसरा अध्याय

आश्रमधर्म

।।श्री गुरु देवाय नम :।।

ब्रह्मचर्य व गृहस्थाश्रम की आवश्यकता

(मनहरण) *श्रोताओं ने प्रश्न किया – 'ब्रह्मचर्याश्रम सुना,*
जीवन -विकासकी जो धर्ममय नीव है ।।१।।
किन्तु बढ़ी शंका, क्या समस्त रहें ब्रह्मचारी ?
संसार का व्याप फिर करे कौन जीव है ? ।।२।।
उत्तर सुगम सुनो, विश्वको चलाता कौन ?
खुद का ही रोना, जग-चिंता क्यों अतीव है ? ।।३।।
प्यारे! यह चिंता निर्माता की ओर सौंप चलो,
साधो तुम सधे गर ब्रह्मचर्य शिव है ।।४।।

(चौ.) नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत पालो । लेकिन अधःपतन को टालो ।।
वृत्ति अगर विषयों से खेले । तो गृह धर्म साधना ले लें ।।५।।
ब्रह्मचर्य पच्चीस बरस का । वीर्य संग्रही किया स्ववश का ।।
तो उतने से क्या यह सारा । खंडित होगा जगत-पसारा ? ।।६।।
बालक कुछ किशोर बन आया । मनमाना बर्ताव चलाया ।।
बचपन में भोगो तरुणाई । फिर सब जन्म बने दुखदायी ।।७।।
वे क्षय रोगी सूकर-कूकर । पातक के है पितर अबल नर ।।
क्या कर देंगे सुखी जगत को ? ले नहिं ब्रह्मचर्य के व्रत को ।८।।
उनका जीवन मूर्त पाप है । घर संसारहु त्रिविध ताप है ।।
उनकी जो संतान-बेल है । वह जग के प्रति शाप अनिल है ।।९।।
हो सुखमय संसार सकल ही । अपना भी उद्धार सकल ही ।।
है यह ब्रह्मचर्य की थाती । प्राप्त करो निश्चय सुखदाती ।।१०।।

(दो.) **बंद न कर संसार पथ, प्रजा तंतु नहिं तोड़ ।**
ब्रह्मचारि से बन गृही, यह वेदोक्ति अजोड़ ।।११।।
निसर्ग नियमों को निरख, दिया गृहाश्रम धर्म ।
व्यक्ति, गाँव अरु राष्ट्र में, संभव होंय सुकर्म ।।१२।।

(चौ.) दुर्धर गति है इंद्रिय गण की । सहज न हाथ लगे रुचि मन की ।।

इनसे आगे न हो फजीहत । सोच के चलो गृहाश्रम के पथ ।।१३।।
ये तो ब्याह परम आवश्यक । उसके बिना न काम सार्थक ।।
अस विचार बसे जिन बुद्धि । समझो वे सब मिथ्यावादी ।।१४।।
जिसको इंद्रिय दमन सधा है । सुकरम रत ही वृत्ति सदा है ।।
'करनी ही है उन को शादी' । यह कह दे वह मिथ्यावादी ।।१५।।
पर, न किया संसार, मनोजय । बना विरागी, उसे महा भय ।।
होत कठिन सेवा साधन भी । बिकट राह घरबार बिना भी ।।१६।।
गूँगे का वेदों को पढ़ना । लँगड़े का पर्बत पर चढ़ना ।।
करना युद्ध अंध का जाकर । ब्रह्मचर्य उस भांति कठिनतर ।।१७।।
बड़ा कष्टकर वह सब भाई । निसर्ग से उस तरह लड़ाई ।।
इससे राज मार्ग सीधा सा । धर्म बता दे गृह का ऐसा ।।१८।।

(दो.) पुत्र धर्म विद्या पढ़ा, सुजतन से गुणवंत ।
शक्ति युक्ति ने पा लिया, तरूणाई का प्रांत ।।१९।।
ओजवीर्य तन में खिलें, ब्रह्मचर्यके साथ ।
हुआ ब्याह अनिवार्य ही, यह निसर्ग की बात ।।२०।।

(चौ.) होगी गर विवाह में देरी । संभव दुर्व्यवहार विकारी ।।
इससे पिता बने चिंताकुल । हो न कहीं यह सुपुत्र चंचल ।।२१।।
उचित लग्न संस्कार दिलाते । लड़कपने का भाव भुलाते ।।
करते जिम्मेदार युवक को । दे दीक्षा, संसार-सबक को ।।२२।।
क्या है धर्म गृहस्थाश्रम का ? मर्म, आचरण, कौन किसम का ?
कैसे कर्म मार्ग पर चलना ? सभी सिखावें, हो नहिं छलना ।।२३।।

गृहस्थ धर्म एवं ऋण मुक्ति

अबलौं बटु ही एक खड़ा है । अब उत्तरदायित्व बढ़ा है ।।
गृहिणी घर में करे पदार्पण । तब करना पड़ता गृह-साधन ।।२४।।
पीछे खड़ा सभी विद्यार्जन । आगे खड़ा कर्म पथ का प्रण ।।
करके 'सावधान' बुध कहते । जाओ मत जीवन में बहते ।।२५।।
लेकर करमें ज्ञान-खजाना । जीवन का है मार्ग सजाना ।।
साधे धर्म कुटुम्ब देश का । 'सावधान' फिर वही हो सका ।।२६।।

(दो.) व्यक्ति विकास कुटुम्ब तरू, होय प्रकृति-संयोग ।
बोझ सभी घरबार का, पड़े उसीके योग ।।२७।।

कैसे अब उद्योग हों ? किमि सब का निर्वाह ?
समाज धर्मो के सभी, बंधन बाँधे ब्याह ।।२८।।

(चौ.) एक पत्नी के व्रत को रखना । बुरी नजर नहिं किसे निरखना ।।
निश्चय से यह उसे सिखाओ । गृहस्थ का आदर्श दिखाओ ।।२९।।
दुर्व्यवहार अगर कर जाता । कुल कलंकमय सब कहलाता ।।
'कुलंगार उपजा कपूत यह' । लोग करेंगे निन्दा दुस्सह ।।३०।।
इसीलिए है सतर्क रहना । सात्विक पथ से आगे बढ़ना ।।
जो सन्तों ने उचित कहा है । वही करो सर्वथा यहाँ है ।।३१।।
जन में वन में देखी नारी । उठे न मन कामना विकारी ।।
प्राण जाय वरु अमूल्य जीवन । कुमार्ग में नहिं नष्ट करो क्षण ।।३२।।
शास्त्र विधान एक पत्नी का । गृहस्थाश्रम पालन यदि नीका ।।
तो हम संसारी हों फिर भी । कहलावेंगे ब्रह्मचारि ही ।।३३।।
कर स्वीकार गृहस्थाश्रम को । अंकुश विषय रखे नियमन को ।।
वह गृहस्थ भी विधि का ज्ञाता । ब्रह्मचारि ही समझा जाता ।।३४।।
एहि हित दोनों पालें संयम । कारण बिन नहिं करें समागम ।।
अपने अपने व्रत नियमों से । दम्पति चलें सुसहज भाव से ।।३५।।

(दो.) वीर्य दान सन्तान हित, अनत न खोवे शक्ति ।
जिसका जीवन अस सधे, महा तपस्वी वृत्ति ।।३६।।
अरे! ब्याह यद्यपि किया, विषय दास्य नहिं मान्य ।
जन्म निभाने साथ में, मिलें दो मित्र अनन्य ।।३७।।

(चौ.) काम जीतने को है नारी । बढ़े न भव में वृत्ति विकारी ।।
सुमार्ग से सम्पदा कमायी । वह आसक्ति जीतने आयी ।।३८।।
हुई एकमय जीवन-शक्ती । जिससे प्रकट हुई सत्कीर्ति ।।
सुकर्म-कलियाँ खिलती जाती । ऐसी हो आदर्श गृहस्थी ।।३९।।
सुख हो मात पिता स्वजनों को । भाई बहनहु अन्य सबों को ।।
ऐसी रहे आचरण रीति । जिसकी लगे सभी को प्रीति ।।४०।।
बोल मधुर उन्मुक्त सुहाने । चाल चलें चारित्र्य निभाने ।
उज्ज्वलता से जीवन यापन । श्रेष्ठ जनो का निरख आचरण ।।४१।।
ज्ञान निहित है ऋषि सन्तों का । करें अध्ययन उन ग्रंथों का ।।
तभी चुकेगा ऋषियों का रिन । गृहस्थ का यह कर्तब हर दिन ।।४२।।
सुसन्तान आदर्श बनाना । मात-पिता का कर्ज चुकाना ।।

अथवा स्वयं देश सेवा कर । उनका नाम बढाना सुन्दर ।।४३।।
विश्व देव की सेवा करना । 'वैश्व देव' यह ही आचरना ।।
प्राणि मात्र को सौंपा हिस्सा । पावन 'भूत यज्ञ' हो ऐसा ।।४४।।
अदा तभी हो जाय देव रिन । सकल सहायक गृहस्थ जीवन ।।
करना हर्षित दीन दुखी जन । पाकर सेवा भाव ज्ञान गुण ।।४५।।

(दो.) कुटुम, गाँव अरु जीव जन, सबकी सेवा नित्य ।
ध्यान धारणा त्रय समय, गृहस्थ का धन सत्य ।।४६।।
सदाचार गृह में चले, जीवन बने महान ।
'धन्य गृहस्थाश्रम यही, सन्त करें गुणगान ।।४७।।

पुत्र व पत्नी, संयम व सद्गति

(चौ.) रहे भला कोई भी आश्रम । सब में प्रमुख तत्व है संयम ।।
त्याग बुद्धि का वह विकास क्रम । बढ़ता जाता उच्च उच्चतम ।।४८।।
गृहस्थ की सन्तान हुई है । उपभोगों की पूर्ति यही है ।।
त्याग वृत्ति के सुसंस्कार ही । आगे बढ़ें राह उस पर ही ।।४६।।
रही सही जो हवस हमारी । मंद बनी रहती बेचारी ।।
पुत्र रत्न ही सब सुख पावे । माता पिता मन यही मनावे ।।५०।।
कौर लगे जो खुद को रुचि कर । दे शिशु मुख में उसे बचा कर ।।
अन्य सुखार्थ कष्ट निज तन को । दे गृह धर्म इसी दीक्षा को ।।५१।।
शिशु के गुण ही अपने भूषण । उस की कीर्ति हमारा सुख धन ।।
बने बुरा वह तो अतिदूषण । लगे हमें ही, यह पितु-चिंतन ।।५२।।
दूरदर्शिता रख कर ऐसी । शिशु सुखार्थ ले कष्ट हितैषी ।।
बिपद पड़ी झट खुद ही झेले । पग-पग त्याग करे बिनु बोले ।।५३।।

(दो.) हो अपना सन्तान हित, नहिं किस पर अन्याय ।
अपनों के सम समझ कर, सबके सुत अपनाय ।।५४।।
सब के कारण श्रम करें, यों व्यापक मति साध ।
तत्व गृहाश्रम में यही, सीखो उसे अबाध ।।५५।।
अपने सुत प्रति जो दया, वही दास के साथ ।
'पंक्ति भेद' नहिं हृदयमें, सो गृह धर्म सनाथ ! ।।५६।।

(चौ.) पुत्र सीख कर बडा हुआ है । इक था, दूजा खडा हुआ है ।।
तीजी सन्तति ने जब ताका । हो समाप्त संसार पिता का ।।५७।।
अगर बिराम तहूँ कीजै नहिं । फंसे दुःख में जासु अन्त नहिं ।।

है इसलिए वानप्रस्थाश्रम । उचित धर्म-संस्कार का उपक्रम ।।५८।।
ऐसा जीवन जो है जीता । 'पुरुष' नाम उस ही को फबता ।।
विषय-निरत जो होय निरंतर । वे हैं, घोड़े, गधे और बंदर ।।५९।।
यह भी अचरज देखा हमने । ब्याह किये चालीस एकने ।।
हुई साठ संतानें उसकी । खेतीं पर, निर्भरता सबकी ।।६०।।
खेत खेतपर इक इक पत्नी । उड़ा रही हैं चिड़ियाँ रानी ।।
ब्याह हुआ वन के राजा का । जरिया सुंदर आमदनी का ।।६१।।
ऐसा यह संसार-तमाशा । वाह री घर जीवन की आशा ! ।।
बढती जाय वासना मन की । होत दुर्दशा सब जीवन की ।।६२।।

(दो.) करे ब्याह दो-चार जो, कर दे आयु-विनाश ।
इसे गृहाश्रम मत कहो, यह पशु वृत्ति विलास ।।६३।।
बहु पत्नी इक पुरूष को, स्त्री को क्यों नहिं ?
दोंनों की यह कामना, दुर्गति कारी आहि! ।।६४।।

(चौ.) इक पत्नी के पति दस भी हैं । रीति कहीं अबतक जीवित है ।।
कौन दशा है उस माता की ? नहीं थाह उस दुखिया मन की ।।६५।।
यह सब है अज्ञान पसारा । बढ़े बढ़ाओ जितना सारा ।।
इसीलिए ऐसे विकार के । बंधन काटो निश्चय करके ।।६६।।
एक बार जब इक शादी की । बात खत्म आगे पत्नी की ।।
मिले तभी दोनों को ही सुख । पाये शान्ति संसार निरख ।।६७।।
घर संसार अपूर्ण सदा से । कलह में समाधान फिर कैसे ? ।।
बाँधो गाँठ मर्म यह प्यारा । सुविचार से है सुख सारा ।।६८।।
नारी-नर दो हुए एक मन । स्वर्ग वहीं पर प्रकटे पूरन ।।
सन्तति भी आदर्श बनेगी । देश-दुर्दशा नहीं रहेगी ।।६९।।

(छंद) ब्याह नियोजित सन्तति के हित, शंकित होकर पूछत श्रोता ।
पत्नी इक से हुई न सन्तति, करत दूसरे ब्याह का न्योता ।।७०।।
किंतु निषिद्ध कहा यह आपने, तो कहिये गर पुत्र न होता ।
देश तथा पितु के रिण को फिर, मानव किस साधन से धोता? ।।७१।।

(चौ.) विवाह मंगल भी करने पर । पुत्र न पैदा हुआ एक गर ।
कहते उसको मिले अधोगति । बतायें अब इसकी भी संगति ।।७२।।
सुनो यथार्थ जवाब इसी का । यह विचार है मूढ़ सरीखा ।।
सेवा-ज्ञान मुक्ति सुख दाता । हर कोई वह शुभ गति पाता ।।७३।।

कितने ब्रह्मचारि सन्यासी । मुक्ति मिली बिन पुत्र सुहासी ।।
तरे स्वयं ऋषि मुनि सन्तादिक । डूबे श्वान सुअर पुत्राधिक ।।७४।।
कही अधोगति पुत्रहीन की । बात और थी उन शास्त्रों की ।।
हेतु सामयिक था कहने का । अमिट नहीं वह समाज रेखा ।।७५।।
आया समय एक भारत में । दौड़े सब सन्यासी व्रत में ।।
विवाह को नहिं देते कीमत । आँधी सम बढ़ गया यही मत ।।७६।।
जो देखो तप करने लगते । बहुतेरे बिन-समझे भगते ।।
सोच समझ कर रोक लगायी । श्रुतियों ने सुत महिमा गायी ।।७७।।

(दो.) पुत्र कुलोद्धारक बने, वर्ना अच्छी बाँझ ।
यह भी ग्रंथों ने कहा, मति विवेक से माँज ।।७८।।
धारण हेतु समाज के, सार है घर-संसार ।
यत्न शील नर साध ले, पुत्र बिना उद्धार ।।७९।।

(चौ.) सूत्र समाजोन्नति का लेना । कहीं न खण्डित होने देना ।।
योग्य पुत्र जो इसका पूरक । अधोगति जो इसमें बाधक ।।८०।।
पाप पुण्य है अपना अपना । पुत्र बंधु कोई तारे ना ?
यही शास्त्र की सत्य घोषणा । मित्रं शत्रु तू ही है अपना ।।८१।।
एक पुत्र यद्यपि नहिं पाया । पर सब पुत्रों को अपनाया ।।
जो उपयोग में आया सबके । उद्धार वही उसका बिन हिचके ।।८२।।
जो निज पुत्र सुखार्थ रखा धन । सत कामों में करें समर्पण ।।
इससे भिन्न भाव रखना मत । सदगति मिले तभी यह निश्चित ।।८३।।

(दो.) 'अपना घर ही घर नहीं, विश्व रम्य घरबार' ।
जो गृहस्थ यह सीख ले, सही राह उद्धार ।।८४।।
पति-पत्नी दिल खोजकर, कर लें सोच विचार ।
पुत्र हो-ने-हो पर करें, दूर दृष्टि व्यवहार ।।८५।।

वानयप्रस्थाश्रम तथा संन्यासाश्रम

(चौ.) घर में से लो खींच चित्त को । जिम्मेदारी सौंप पुत्र को ।।
पुत्र न हो तो सर्बस जन को । देकर निकलो देशाटन को ।।८६।।
वानप्रस्थ हो लेकर नारी । जो धर्मार्थ काम सहकारी ।।
साथ न दे यदि मोक्ष-सुपथ में । रहने दो माँ सुत को घर में ।।८७।।
पत्नी देवे साथ, व्रती बन । त्याग भोग निस्तारे जीवन ।।

दोनों निश्चय कर लो दिल में । त्याग भावना ही भविष्य में ।।८८।।
कर पारिवारिक काम समापन । वर लो वानप्रस्थ का जीवन ।।
मिलकर दोनों सदाचरण से । बरतें तप का जीवन मन से ।।८९।।
देखें मन्दिर, मुनि जन आश्रम । पावन तीर्थ, वन श्री अनुपम ।।
अनासक्त करने तन मन को । लगाओ सत्कार्यों में चित को ।।९०।।

(दो.) **अनुभव ले अध्यात्म का, दे सेवा का पाठ ।**
अर्पित सेवा कार्य में, बने सिखा दे बाट ।।९१।।
सेवा दीक्षा ले करें, गाँव दुर्दशा दूर ।
हर्षित मन सब के लिए, करे काम भरपूर ।।९२।।

(चौ.) शिक्षण संस्था, आश्रम संस्था । आध्यात्मिक सत्संग की संस्था ।
करना पूर्ण व्यवस्था इनकी । नीव शान्तिमय जनजीवन की ।।९३।।
अंध, अपंग, कुष्ट पीड़ित जन । अनाथ और असहाय वृद्ध जन ।।
आश्रम उनकी सेवा के हित । बनें हर जगह सुंदर सुस्मित ।।९४।।
घरवालों को मिले समय ना । ध्यान वानयप्रस्थी दे क्यों ना ? ।।
बच्चों का सो करे सुपालन । ब्रह्मचारी को सही सिखावन ।।९५।।
देना सबको जीवन-शिक्षण । जिससे बढ़ें कार्यकर्ता गण ।।
देना ज्ञान वही आश्रम में । सर्वांगों की उन्नति जिसमें ।।९६।।
कार्य करें यह वानप्रस्थि ही । तोड़ के बंधन घर के सब ही ।।
अनासक्ति से करें आचरण । सबकी सेवा मितहि रात दिन ।।९७।।
नहिं घरबार कामना रज भर । वैराग्य होत तब सहज और सुन्दर ।।
बचा कार्य फिर इतना केवल । मार्ग बताना अनुभव के बल ।।९८।।
गाँवकि सेवा स्वदेश-सेवा । देशकि सेवा महेश-सेवा ।।
सेवा का यह हार्दिक अनुभव । वानप्रस्थ आश्रमका गौरव ।।९९।।

(दो.) **वानप्रस्थ आश्रम यही, शुभारंभ सन्यास ।**
शमित वासनाएँ सभी, हृदय पूर्ण विश्वास ।।१००।।
वानप्रस्थ का भ्रम कटे, लेते ही सन्यास ।
आत्मरूप अनुभूति से, कटे वृत्ति का पाश ।।१०१।।

(चौ.) जब घर-घेरा छोड़ चले मन । हो सेवारत सब देशी बन ।।
संन्यासी साधना क्रमिक से । हो परमात्म परम पद जैसे ।।१०२।।
वान्यप्रस्थिन सिखाय संन्यासी । होय स्थितु्-प्रज्ञता कैसी ।।

प्राण जाय पर नहीं भटकना । आसक्ति से अछूता रहना ।।१०३।।
वान्यप्रस्थि घर द्वार तजत है। सन्यासी साक्षात योग है ।
परम रसहि जब उसने लूटा । आसक्ति का धागा टूटा ।।१०४।।
आत्मा-परमात्मा सब जाना । जीव, ब्रह्म, कैवल्य सुहाना ।।
प्रज्ञा वृत्ति होय तब निश्चल । आत्म रूप शुद्ध जो केवल ।।१०५।।
रोम रोम रम स्थितप्रज्ञता । जीवन्मुक्त व्रती वह होता ।।
जीवन की परिपूर्ण सफलता । इसी देह में वह पा जाता ।।१०६।।

(दो.) स्फूर्तिप्रद वह सभी को, पथदर्शक निष्काम ।।
सम्यक् जीवन दृष्टि दे, सब जग को अविराम ।।१०७।।
कहता तुकड्या, है यही, सब कर्मो का श्रेय ।
सद्ग्रंथों का सार यह, सत्य धर्म का ध्येय ।।१०८।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरुकी, शास्त्रमत, आत्मानुभव-संमत भली ।
इस तीसरे अध्याय में, त्रय मुख्य आश्रमधर्म हैं ।
अध्यात्मजीवनपूर्णता अरु, शुद्ध सेवाकर्म हैं ।।१०६।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

❧ ❧

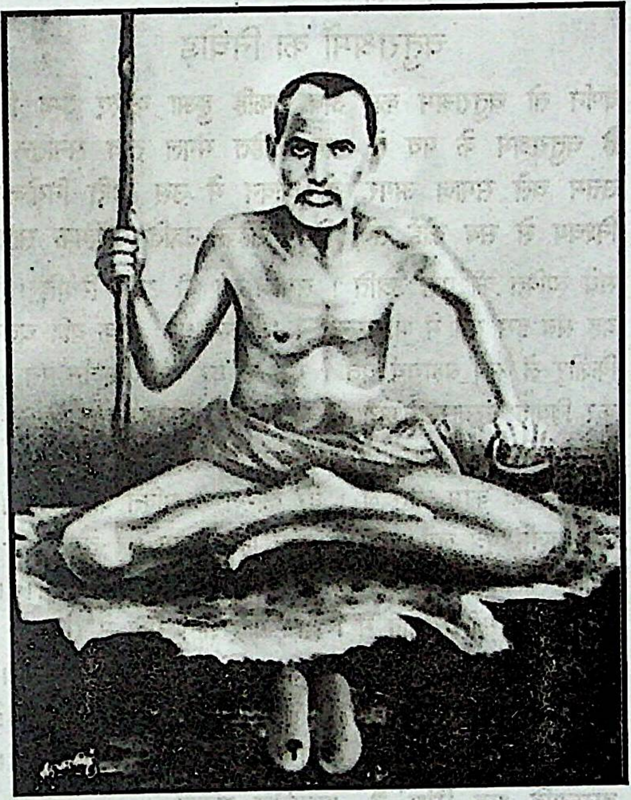

स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती

चौथा अध्याय

गृहधर्म–परमार्थ

।।श्री गुरु देवाय नम :।।

चतुराश्रमों का निचोड़

(सवै.) वर्णन तो चतुराश्रम का, अब तकहि हुआ करिए अब चिंतन ।
है चतुराश्रम के पथ में, सबके हित मंगल तत्व सनातन ।।१।।
उत्तम चले समाज अगर, हो जीवन में उस भांति नियोजन ।
निश्चय से सब कोई सधे, फिर, ऐहिक उन्नति आत्मिक साधन ।।२।।

(चौ.) सधे व्यक्ति की पूरी उन्नति । समाज की भी उत्तम स्थिति ।
यह सब इस युग में भी फलता । 'आश्रम धर्म' ठीक यदि चलता ।।३।।
किशोर लें सब ब्रह्मचर्य व्रत । गुरु के घर हों विद्यार्जन रत ।।
कर विवाह घरबार निभायें । पुत्र पौत्र को सुपथ दिखायें ।।४।।
ब्रह्मचर्य से सुधर्म सधता । गृहस्थ साधे अर्थ-व्यवस्था ।
वानप्रस्थ हो काम जीत लें । घर कारज से मुक्ति पा लें ।।५।।
कामकाजमें पुत्र लगें जब । आतम हित बैराग धरें तब ।।
सेवा रूप साधना के हित । छोड़े निज घर होय निश्चित ।।६।।
वृत्ति वानयप्रस्थी स्वभाव में । लागे गाँव ज्ञान सेवा में ।।
कभी न भूलें लक्ष्य मोक्ष का । साधन नित संन्यास भाव का ।।७।।
है सब को बनना संन्यासी । प्राप्ति मोक्ष की उस बिन कैसी ?
मोक्ष बिना भव-तारणकारी । अन्य उपाय कहाँ सुखकारी ? ।।८।।

(दो.) वासनाहि भव सिंधु है, आसक्ति संसार ।
पार करे सत् ज्ञान से, यही मोक्ष सुख सार ।।९।।
नाश वासना का हुआ, वही सही संन्यास ।
फिर नहिं बाधक कर्म कोई, यह आदर्श विकास ।।१०।।

(चौं.) 'मुक्त' वही वासना जो छोड़े । आसक्ति का फंदा तोड़े ।।
आत्मस्वरूप सबहि में देखत । होत विलीन विश्व रूपाइत ।।११।।
जग का अंतिम लक्ष्य यही है। कर्म प्रेरणा जहाँ सही है ।।
इसी मुक्ति में बस उपासना । मानव की उद्धार कामना ।।१२।।
अर्जित जो यह करे भूमिका । योग रूप हर कर्महि उसका ।।
इस संन्यास दशा को पाना । है सबका कर्तव्य सुहाना ।।१३।।

'चौथा आश्रम बूढ़ों का है' । यद्यपि ऐसा कथन चला है ।।
किन्तु आयु की यह मर्यादा । करे न आत्मोन्नति में बाधा ।।१४।।
यह सब है मन पर अवलंबित । करना मन को है संस्कारित ।।
दीक्षा-वीक्षा सहाय केवल । कहूँ धर्म ग्रंथन के मत बल ।।१५।।
आयु के भाग चार हैं माने । भोग से त्याग तलक उन जाने ।।
बिन विकार शतायु जो पाते । कितने लोग नज़र हैं आते ? ।।१६।।

(दो.) मत देखो दीक्षा प्रथा, चतुराश्रम के तत्व ।
लाओ जीवन में सभी, जान तुरंत महत्त्व ।।१७।।
किन्तु उमग वैरागवश, अगर चले घर छोड़ ।
करे न ऐसा भी कोई, वह पागल की दौड़ ।।१८।।

वैराग्य एवं दीक्षा

(चौ.) विरक्ति आये छोड़े जो घर । तीरथ धाम भटकते अस नर ।।
जीवन औरों पर ही निर्भर । भीख माँगते फिरते दर दर ।।१९।।
दुःख भोग को गौरव माने । पालत क्रोध काम अनजाने ।।
उपजे फिर घरबार मोह जब। मतलब अस विरक्ति का क्या तब? ।।२०।।
दीक्षा तदरथ सुसंस्कार की । उचित साधना आत्म प्रगति की ।।
दीक्षा हो बहिरंगी किंचित । तो वह स्वाँग व्यर्थ है निश्चित ।।२१।।
है विश्वास संस्कारों पर । होय व्यवस्था परन्तु सुन्दर ।।
यदि संभव ऐसा होवे ना । बेहतर है बिन दीक्षा रहना ।।२२।।
कैसी भी कोई हो दीक्षा । संप्रदाय या गुरुकी दीक्षा ।।
व्रत दीक्षा या सुकार्य दीक्षा । आश्रम-दीक्षा धर्म की दीक्षा ।।२३।।
दीक्षा से तैयार होय मन । पर हो नहिं तस नित्य आचरण ।।
बिन आचार फजीहत होती । विडंबना दीक्षित की होती ।।२४।।
एकादशी की ले व्रत दीक्षा । भोजन करे माँग कर भिक्षा ।।
यही तमाशा देख-देख कर । हँसते पागल समझ नारी नर ।।२५।।

(दो.) दीक्षा ली व्रत बंध की, नहिं संध्या नित नेम ।
कैसे हो संस्कार का, वहाँ योग या क्षेम ? ।।२६।।
ब्रह्मचर्य दीक्षा सोई, बिगड़ी संयम नीति ।
दशा गृहाश्रम की वही, सब है उलटी रीति ।।२७।।
आश्रमत्व गृह का गया, बढ़े नाटकी भाव ।
दीक्षा में बिन तत्व के, क्या सामर्थ्य प्रभाव ? ।।२८।।

(चौ.) 'वान्यप्रस्थ' होकर छोड़ा घर । व्यापार करे बाहार सो जा कर ।।
'संन्यासी' मानार्थ झगड़ता । तो सब व्यर्थ सुना मैं कहता ।। २९।।
पहने भगवे कपड़े तन पर । क्रोध भरा है अंदर-बाहर ।।
लंगोटी के लिए झगड़ते । यजमानों की बात न सुनते ।।३०।।
फेरी माँग करे धन संचय । कुटिया बना, करें वैभवमय ।।
'यति' कहलावें भस्म रमा कर । पर हैं वे संसार के किंकर ।।३१।।
गर्व नहीं छूटे कुटिया का । बसा प्रेम बिल्ली कुत्ते का ।।
समय न मिलता ब्रह्म ज्ञान का । अनुभव करने, बतलाने का ।।३२।।
दीक्षा कैसी यह अजीब है। सेवा, सहन शक्ति भी नहिं है ।।
पशु जस सो आहार को खोजत । मांगत भीख अरु मौज उड़ावत ।।३३।।
जिसको है जो दीक्षा लेना । पथ्य उसी का, फिर आचरना ।।
कभी न लेने दे निज मति को । दुष्कर्मों की टेढ़ी गति को ।।३४।।
व्रत न सधे तो सुख से जीओ । करो परिश्रम, न्याय निभाओ ।।
लेकर क़ोई दीक्षा निश्चित- । मत होने दो नाम कलंकित ।।३५।।
(दो.) जो बनता उपकार कर, सुखमय घर संसार ।।
ला अपने आचार में, चतुराश्रम का सार ।।३६।।
स्त्री सुत की चिंता खाये, लेय जोग बैराग ।
यह दीक्षा नहिं विरति की, कर्मभीरु का स्वाँग ।।३७।।
(चौ.) विराग से भर उठा एक नर । निकला सब घरबार छोड़कर ।।
लगा लंगोट गया वह वन में । 'दुनिया झूठ' भाव ले मन में ।।३८।।
गंगा में हर रोज नहा ले । तरु पर वही लंगोटी डाले ।।
पर इक चूहा उसे कुतरता । अब तो लगी नई यह चिंता ।।३९।।
गाँव जाय माँगे बैरागी । "कौन उपाय करें हम त्यागी ? ।।
चूहा राजा बनकर वैरी । कुतर जाय लंगोटी मेरी' ।।४०।।
जुगत किसी ने उसे बतायी । 'लो बिल्ली का पुत्र गुँसाई ।।
पालो इसे बनेगा सेवक । उत्तम यही लंगोटी रक्षक ।।४१।।
बैरागी को पथ वह भाया । बिल्ली का बच्चा ले आया ।
पर उसके खाने की चिंता । पीछे लगी, वहाँ क्या बनता ? ।।४२।।
(दो.) जन कहते 'गैया रखो, बिल्ली के निर्वाह ।
मिले तुम्हें भी दूध-घी, सात्विक गोरस वाह ! ।।४३।।
वैरागी के मन जँचा, गोधन माँगे दान ।
पर चारे की बाद में, चिंता लगी महान ।।४४।।

(चौ.) माँगे सानी-घास लगा रट । जन कहते 'बाबा ! यह झंझट ।।
करो यहीं कुछ खेती बारी । भिक्षा भी फिर नहीं जरूरी ।।४५।।
वैरागी को बात जँच गई । मनमानी फिर भूमि हो गई ।।
जोती लोगों ने मिलजुलकर । वैरागी का आशिष लेकर ।।४६।।
बढ़ता रहा वही क्रम आगे । जुटा माल-धन-धान्य-सुभागे ।।
बड़ा पसारा कौन संभाले ? यही समस्या मन को साले ।।४७।।
मिले कौन ईमानदार भी ? हो नहिं ऐबी, हो न चोर भी ।।
करे प्रबंध समझ कर अपना । ऐसा मानुस कहाँ खोजना ? ।।४८।।
सब चिन्तित पर कौन करे तय? बोला जोशी एकहि निश्चय ।।
होगा ब्याह उचित सब भाँती । धन-मन सो संभाल संगाती ।।४९।।

(दो.) त्याग बिचारे का गया, गले पड़ा संसार ।
कारण थे बदले नहीं, पहले भी संस्कार ।।५०।।
मैं कहता, वैराग मित, तज न युँही घरबार ।।
दिल में त्याग-विवेक हो, सेवा भाव अपार ।।५१।।

सच्ची विरक्ति तथा दीक्षा की आयु

(चौ.) हो विराग तो निज घर छोड़ो । पूरा गाँव अपन घर समझो ।।
सभी गाँव का कार्य उठाओ । प्रभु सेवा कह हाथ बँटाओ ।।५२।।
ईश्वर भजन रखो मन माँही । करो गाँव का काम सदा ही ।
करो न कभी मुफ्त का भोजन । वैरागी के यही सुलक्षण ।।५३।।
हो संन्यासी या वैरागी । नहीं गरज बाहर हो त्यागी ।।
त्याग वृत्ति यदि गृहस्थ बाँधे । वह विरक्ति घर में भी साधे ।।५४।।
विराग है आसक्ति त्याग ही । संग्रह त्याग अरु भोग त्याग ही ।।
कुछ करने की हो हुलास गर । करो ग्राम की सेवा जीभर ।।५५।।
सुत अपने सम सबहि गाँव के । हों अस भाव शुद्ध जब मन के ।।
व्रत लें सबके जो पालन का । 'वैराग्यशील' है जीवन उसका ।।५६।।

(दो.) अपना कपड़ा हो फटा, रहें ग्राम जन ठीक ।
कार्य करे यों लगन से, वह 'वैरागी' नीक ।।५७।।
लोभ परित्यागी सकल, वह सही 'वैराग' ।
जनसेवार्थ परिश्रमी, सदा सत्य-अनुराग ।।५८।।

(चौ.) कई स्वावलंबी बन पाते । कुछ धन दे दानी कहलाते ।।
पर जो सब कुछ करे समर्पण । वही सही 'संन्यासी' सज्जन ।।५९।।

अस 'संन्यास' सभी अपनालो । पहले निज घरबार संभालो ।।
दो फिर सुख समाज को ऐसे । लगते मधुर पके फल जैसे ।।६०।।
जब बालकहि होय सन्यासी । स्थिति विसम होय फिर तासी ।।
तस तन में जब भरे जवानी । चलती पापों को मनमानी ।।६१।।
पहले ही सन्यास लिया है। फिर नहि जाता ब्याह किया है ।।
कुकरम मार्ग खोजते नव नव । बने गाँव में मूर्ति उपद्रव ।।६२।।

(दो.) **संन्यासी संन्यास लें, सहे ग्राम जन ताप ।**
क्यों मूरखता यों करें, क्यों समाज ले पाप ? ।।६३।।
बचपन का संन्यास तो, है अपराध महान ।
वान्य-प्रस्थ संन्यास ले, फिर धोखा नहिं जान ।।६४।।

(चौ.) शुभ सन्यास ढलत बेला में । बीते समय आत्म चिंतन में ।।
आशिर्वाद सभी जन पावें । शंका निज-निज मन की मिटावें ।।६५।।
पर नहिं जिसने कष्ट उठाये । गृह जीवन अनुभव नहिं पाये ।।
वे जब कहते 'हम सन्यासी'। बात लगे अचरच की खासी ।।६६।।
जब से बिगड़ा यह समाज पथ । गाँव-गाँव की हुंई फजीहत ।।
गृहस्थाश्रम की परजा सारी । बिन रुचि श्रम के भई भिखारी ।।६७।।
झुंड-झुंड लड़के ले जाते । वैरागी सन्यासी बनाते ।।
बिडाल बनकर फिर वे सारे । भ्रमते जन में मारे मारे ।।६८।।
नहिं आदर सेवा का उनको । गृहस्थ की भी समझ न मनको ।।
जो मन भावे मौज मनाते । जन जीवन को भ्रष्ट बनाते ।।६९।।
इसलिए अब बदलो इसको । संन्यास दीक्षा नहिं किशोरको ।।
सदभ्यास में पहले डालो । विवेक अनुभव सही बनालो ।।७०।।

(दो.) **कोइ अनुभवी जन्म से, कोई महान संस्कारी ।**
वे गृहस्थ फिर हों न हों, निज इच्छा-अधिकारी ।।७१।।
रोक नहीं इन पर मगर, नहीं है यह सामान्य ।
खंडित होंगी अन्यथा, गुण परिपाटी मान्य ।।७२।।

(चौ.) जाना यह सब संत जनों ने । कहा कृपा कर तभी उन्होंने ।।
'बीबी बच्चे मती छोड रे ! कमाय सब परमार्थ यहीं रे ?।।७३।।
सुख से सब संसार करो रे ! अभ्यागत सत्कार करो रे !
उचित कार्य रे द्रव्य जुटाओ । अटारी, चाहे महल बनाओ ।।७४।।
इसमें ही बैराग चढ़ालो । सेवा, पर उपकार बढ़ालो ।।

भक्ति-मग्न हों सदाचार सह । सन्तों का है राज मार्ग यह ॥७५॥
सन्तों ने तो यही बताया । जीवन यों आदर्श बिताया ॥
नाम अमर हैं जग में उनके । इस पथ पर चल कर बिन हिचके ॥७६॥
यही जानकर हम आचरलें । गृहस्थाश्रम को उज्ज्वल करलें ॥
जागृत रख वैराग्य तत्त्व को । साध लोक सेवा महान को ॥७७॥
साथ अपनी पत्नी लेकर । सेवा करें खुशी से मिलकर ॥
यही सही बैराग्य निशानी । त्याग मोह संसारी ज्ञानी ॥७८॥

(दो.) यही खरा संन्यास है, त्रास अनत चहु ओर ।
खुद न तरे आसक्त नर, तारे किसे न और ॥७९॥
निरासक्त हो जाय वन, लेय तहाँ संन्यास ।
क्या उपयोग समाज के, आवे अस वनवास ? ॥८०॥

'धन्यो गृहस्थाश्रमः' एवं परस्पर कर्तव्य

(चौ.) नहिं गृहस्थ आश्रम को जाना । करें काम सब ही मनमाना ॥
कारज सब समाज-जीवन के । अस्त व्यस्त हो गये इसीसे ॥८१॥
यथार्थ ज्ञान दिया गीता ने । पर जन-मानस वह नहिं माने ॥
बहती चले रूढ़ि की धारा । 'सर्व भूत हित' तत्त्व बिसारा ॥८२॥
ब्रह्मचारि अध्ययन निरत है । वान्यप्रस्थ वन में विचरत है ॥
निरासक्ति में रम संन्यासी । अछूत समझे विश्व विनाशी ॥८३॥
ऐसी सब की अजब धारणा । बढ़ गृहस्थ का बोझ चौगुना ॥
कोई नहीं किसी का पूरक । समाज रचना का यह मारक ॥८४॥
सब ने मानों सब कुछ छोड़ा । गृहस्थ ने फिर ज्यादा जोड़ा ॥
करते काम हाड़ ही टूटे । बाकी सब उस को ही लूटे ॥८५॥
सबको देत गृहस्थ सहारा । फिर भी रहे नम्र बेचारा ॥
ऊपर से कह देत गुँसाई । यह संसार झूठ तज भाई ! ॥८६॥
वह सब सहता मन से खुल कर । कष्ट, लालसा सभी भुला कर ॥
देकर धन मानादि जगत की ! रखे लाज वह अपने घर की ॥८७॥

(दो.) निज जीवन - निर्वाह कर, कर निज तन से कष्ट ।
गाँव के हित देता रहे, सदा मान निज इष्ट ॥८८॥
आया साधू संत भी, राव रंक या त्रस्त ।
भूखा, भिक्षुक, अतिथि भी, सर्वाधार 'गृहस्थ' ॥८९॥

(चौ.) आये का वह करता स्वागत । संत साधु सत्कार यथोचित ।।
सार्वजनिक कामों का बोझा । सो संभाल सस्नेह तकाजा ।।९०।।
जाति और राजदंड जो आवे । उसको भी पूरा भर पावे।।
विश्व-जीव चींटी से सारे । रहतें सबहि गृहस्थ सहारे ।।९१।।
गृहाश्रमी कर्तव्य संभाले । सभी बाल बच्चों को पाले ।।
खर्चा घटा बचाता पैसे । अन्न दान फिर करे विनय से ।।९२।।
अर्थ गृहधर्म का जिम्मा ही । दारा सुत सबसे ऊपर भी ।।
सहज वृत्ति उसकी हितकारी । देशहु भेष संभालन हारी ।।९३।।
है दुनिया में नाना आश्रम । पर सब में गृहधर्म महत्तम ।।
है गृहधर्म आधार जगत का । योग क्षेम चलाता सब का ।।९४।।
शिक्षा-दीक्षा ब्रह्मचर्य की । त्याग भावना वानप्रस्थ की ।।
ज्ञानी-यति की तत्त्व समीक्षा । इनकी भी गृहधर्म से रक्षा ।।९५।।

(दो.) सब जिन्दा गृहधर्म पर, कहते उसे फिजूल ।
कैसी यह संसार की, रीति चलत बेमूल ।।९६।।
धन्य धन्य गृहधर्म है, गाते गौरव संत ।
जग का यह मातापिता, पाले जीवन अनंत ।।९७।।

(चौ.) गृहस्थ के ऋण को उतारना । होय संत की एक साधना ।।
उसकी संतति को सिखलाना । ऊँचे पद पर उन्हें बिठाना ।।९८।।
विश्वमित्र जिमि राम लखन को । आश्रम ले जाना बच्चों को ।।
संदीपनि द्रोणहु बन जाना । सब को बहु विध ज्ञान सिखाना ।।९९।।
सिर्फ न सीधा लेने जाओ । गाँवों का जीवन सुधराओ ।।
नरक गाँव के तिरस्कार से । मिलता मिथ्या अहंकार से ।।१००।।
जब तक तन की यह गाड़ी है। अन्न वसन सब आवश्यक है ।।
तब तक 'मिथ्या जग' मत बोलो । सब की सेवा करते डोलो ।।१०१।।
गुरु बन कर न कमी गुर्राना ।। आत्मा रूप सब जग में लखना ।।
व्यवहार आपसी जो है उत्तम । नासमझन सिखाओ मान सम ।।१०२।।

(दो.) आपस में पूरक बनें, सब निज कार्य संभाल ।
झेला जाता सहज तब, जग का बोझ विशाल ।।१०३।।
शिक्षा आश्रम में मिलें, दे गृहस्थ सहयोग ।
पिता पुत्र से लें विदा, भार उठावन जोग ।।१०४।।

(चौ.) करें बाद में देश पर्यटन । अथवा गाँव सुधारे निस दिन ।।
बन संन्यासी सही अनंतर । बरते सेवा भाव निरंतर ।।१०५।।
अपना उदर स्वयं सब भर ले । निज रुचि कार्य को उन्नत करले ।।
इसीलिये रहना अवलंबित । गृहस्थ पर है नहीं वांछित ।।१०६।।
अपना कार्य स्वयं संभलावे । जीव मात्र संतुष्ट बनावे ।।
रहे न कोई किस पर निर्भर । ऐसा हो जन-जीवन सुंदर ।।१०७।।
आगे तो सेवा ही है सब । जीवन धारणा हित सब कर्तब ।।
जितना जो कुछ बचे तुम्हारा । गाँव हितार्थ बाँट दो सारा ।।१०८।।
कितना कौन देय सेवा धन । नियत काम पूरा कर आपन ।।
गौरव सच्चा है इस ही में । पायें जो दुनियादारी में ।।१०९।।
परंपरा है यही सनातन । जिससे चले जगत का जीवन ।।
भिन्न भिन्न कामों का सारा । समानता से हो बँटवारा ।।११०।।
करना सब को काम जहाँ है । ऊँचा नीचा कौन कहाँ है ?
है सब मिलकर जगत सजाना । अपना अपना काम निभाना ।।१११।।

(दो.) पूरक को व्यवहार कर, मान सबहि आभार ।
संन्यासी या हो गृही, सबका सम अधिकार ।।११२।।
गृहस्थ तनमन से खपे, दे संन्यासी दृष्टि ।
हर किस के पग छुअत क्यों, बिन कारज का इष्ट ।।११३।।

(चौ.) मैं नहिं जानूँ यह सब क्या है? । किसने क्या उपकार किया है ?।।
अपने अपने स्थल पर जो । कार्य में तत्पर धन्य सभी सो ।।११४।।
पुत्र धर्म रत पुत्र श्रेष्ठ है । पितृ धर्म रत पितु वरिष्ठ है ।।
छोटा बड़ा कहें फिर किसको ? मत रहनें दो ऐसे भ्रम को ।।११५।।
पैर पड़े वे ही नर नारी । कर्तव्य हीन या होय विकारी ।।
उचित अन्यथा यही, प्रेम कर । आदरमय व्यवहार परस्पर ।।११६।।
हीन समझले किसे न कोई । वह अपमान जगत्पति का ही ।।
संन्यासी दंभी से महान । है पतिव्रता जो निरभिमान ।।११७।।

(दो.) जो भी हो आदर करे, होय कौन भी कोय ।
व्रत यह आश्रम धर्म का, अहंकार नहि होय ।।११८।।
निष्ठा से सत्कार्य कर, हीन भाव को छोड ।
अपन गाँव सहयोग दे, वही गृहस्थ अजोड ।।१६६।।

(चौ.) गृहस्थाश्रम अपने को साधो । धर्म ग्राम सेवा का पालो ।।
अपने नियम गाँव जीवन हित । अच्छी तरह संभाले निश्चित ।।१२०।।
इससे श्रम संपदा बनाओ । सत्कार्यों में उसे लगाओ ।।
कभी फिजूल काम नहिं लें पर । दंद फंद में किसी के आकर ।।१२१।।
पाने इसकी शिक्षा पावन । गाँव-गाँव हों कथा और प्रवचन ।।
गौरव बढ़े गृहस्थ आश्रम का । प्रबंध उत्तम हो अब इसका ।।१२२।।
घर की दुनिया सुन्दर हो जब । सधे परमार्थ उसी में ही तब ।।
यह संगति संतन बतलाई । ग्राम धर्म सहज सुखदायी ।।१२३।।
घर संसारहि सारा हमारा । सह कारज भंडार हमारा ।
करें प्रतिष्ठित हम सब मिल कर । ग्राम धर्म यह अपना सुंदर ।।१२४।।
ग्राम धर्म का महत्व ऊँचा । गृहस्थ धर्म तहँ सबसे ऊँचा ।।
महातीर्थ का तीर्थ है सुन्दर । तुकड्या कहे गृहस्थ आश्रम वर ।।१२५।।

(हरि.) इति ग्रामगीता' ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरु की, शास्त्रमत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
चौथे इसी अध्याय में गृहधर्म में परमार्थ है ।
सब आश्रमों का सार भी, बैरागका सत्यार्थ है ।।१२६।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

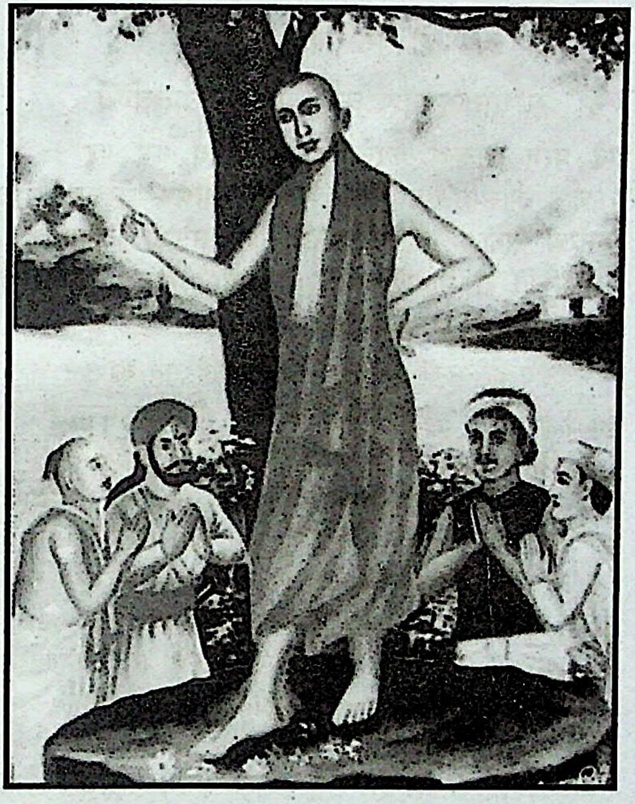

श्रीमत् स्वामी रामतीर्थ

पाँचवाँ अध्याय

वर्ण-व्यवस्था

।।श्री गुरु देवाय नम ः।।

स्वभावज गुण कर्म भेद व चातुर्वर्ण्य

(हरि.) **पाने परम पुरुषार्थ करने, अमल मानव धर्म पर ।**
हैं चार आश्रम कह दिये, जिनमें गृहाश्रम मुख्यतर ।।१।।
बहुसंख्य समाज गृहाश्रमी, गरजें भी उसकी विविध हैं ।
अरु प्रकृति से भी विश्व में, जन भिन्न भिन्न अनन्त है। ।।२।।

(चौ.) समान जदपि मानव सब दिखते । हाथ, पैर, आँखें दो रखते ।।
पर स्वभाव की सहज भिन्नता । पहिचानहिं सब की बन जाता ।।३।।
स्वरूप की धारणा अलग हैं । विचार ही से सभी बनत हैं ।।
मन संस्कार मचलते ऐसे । खेल चले खो-खो का जैसे ।।४।।
एक उग्र है एक शांत है । सुस्थिर, चंचल एक भ्रांत है ।।
गुण कर्मों का व्याप घनेरा । कर पावेगा कौन निबेरा ।।५।।
कैसा एक कहें फिर मानव? न सम योग्यता, है सब नव-नव ।।
जीवन है भिन्नत्व निदर्शक । है सबका ही स्वभाव मूलक ।।६।।
भिन्न वृत्ति है भिन्न प्रकृति है । भिन्न कुटुम्ब, भिन्न संगति है ।।
आपस में टकराते गिरते । ज्ञान नहीं कारण दुख पाते ।।७।।
पर इनमे कुछ कुछ लोगों में । दिखती समता है स्वभाव में ।।
राजस तामस सात्विक ऐसे । गुण समूह हैं भिन्न प्राकृति से ।।८।।
स्वभाव के गुण यही तीन है। प्रणि मात्र में सोइ मिलत हैं ।।
जीव जगत में भेदभाव की । रचना है तिन गुण प्रभाव की ।।९।।

(दो.) **जिस तन में जो मुख्य गुण, बरते वह वैसाहि ।**
एक दूसरे से अलग, कर्म सभी के भाई ! ।।१०।।
भिन्न दिशा हर एक लें, दृढ समाज केहि रीति ?
व्यक्ति और फिर देश की, प्रगति होय किस नीति ? ।।११।।

(चौ.) धर्मचार्यों ने यह जाना । गुण और कर्म भेद पहिचाना ।।
किया परस्पर पूरक उन को । स्थिर करने जन जीवन को ।।१२।।
सत प्रधान अरु रज प्रधानभी । संमिश्रित अरु तम प्रधानभी ।।

शुद्ध-मलिन गुण को कर लक्षित । विभाग चारों किये सुनिश्चित ।।१३।।
नैसर्गिक स्वभाव पर रचना । ईश्वरीय कहलाय योजना ।
समाज कल्पना पुरुष रूप सम । कार्य बुद्धि बल उदर चरण सम ।।१४।।
जड़ में सभी एक सम निश्चित । अमित गुणों से फिर भी व्यापित ।।
गुण से ही गुण बढ़ता जायें । यही सही 'संसार' कहाये ।।१५।।
रूप अनेक हैं मानव गुण के । प्रमुख भेद पर चारहि उनके ।।
'चातुर्वर्ण्य' तभी कहलावे । ऋषि गण दिया नाम यह भावे ।।१६।।

(दो.) **'क्षत्रिय' रक्षा करे जो, निडर 'वैश्य' व्यापार ।**
न्याय शास्त्र संयोजना, 'ब्राह्मण' का निर्धार ।।१७।।
रक्षा शिक्षा वणिकता, सधे नहीं वह 'शुद्र' ।
सबकी करे सहायता, सेवामूर्ति विरूद ।।१८।।

(चौ.) सत्य, न्याय, अस्तेय, सुसंयम । नियम धर्म यह सबको है सम ।।
कर्म-कुसुम हैं विभिन्न सब के । करते पूजन समाजे-प्रभु के ।।१९।।
जो भी उत्तम गुण हो जिस का । उससे उसकी चले जीविका ।।
समाज का भी धारण-पोषण । हो यह चातुर्वर्ण्य-नियोजन ।।२०।।
सहयोगी संगम विविध गुणों का । योग क्षेम तहँ समान सबका ।।
जीवन में संग्राम चले क्यों ? वर्ग कलह को ठौर मिले क्यों ? ।।२१।।
सर्व देश अरु सर्व काल में । भेद नित्य नैसर्गिक गुण में ।।
इसीलिये है वर्णाश्रम का । संयोजन आधार शांति का ।।२२।।

जन्म जातिवाद व जीवन कलह

(दो.) **पर यह तत्त्व पड़ा रहा, बढ़ अपने का मोह ।**
शूद्राचारी सुतन को, गिने स्व-वर्ण गिरोह ।।२३।।
अनदेखे कर कर्म-गुण, चले जन्म से वर्ण ।
धंधों पर से जातियाँ, जन में बढ़ी विभिन्न ।।२४।।

(चौ.) उसको मोड दिया सुबुधों ने । कर्महि से गुण पैदा होने ।।
जन्म वर्ण जिसमें नर पाया । तैसहि दे संस्कार बनाया ।।२५।।
उस हित ही संस्कार आदि थे । शिक्षा में गुण कर्म केंद्र थे ।।
ऋषिगण था मर्मज्ञ पुराना । ठीक चलाने समाज-रचना ।।२६।।
कुटुंब संस्था रूप बनाये । बचपन से गुण उचित सिखाये ।।
गुण कर्मो का उचित समागम । प्रचलन प्रयत्न से हुआ सुगम ।।२७।।
कृषक-पुत्र के हल हाथों में । क्षत्रिय सुत तलवार हाथ में ।।

वैश्य तनय तो बचपन से ही । धरे तराजू सह चतुराई ।।२८।।
मंत्र जाप ब्राह्मण का बालक । सीख लेइ खुद ही बिन पालक ।।
परंपरा ऐसी चलती थी । साँचे में रहनी ढ़लती थी ।।२९।।
करता थां जो धंधा जैसा । बन जाता था स्वभाव वैसा ।।
स्वभाव बनते ही जीवन में । संस्कारों की दृढ़ता तन में ।।३०।।
फिर वैसा ही चले आचरण । वैसे खेल, कथन अरु भोजन ।।
अंग अंग बनते थे वैसे । संस्कारों के गुण हों जैसे ।।३१।।

(दो.) **परम्परा वह भी गयी, सत्ता लोभ से फूट ।**
व्यापी है उपभोग-रति, कोई रहा न छूट ।।३२।।
कहीं विपति या संग भी, कहिं सत्ता का भाव ।
औरों के धंधे लिये, अपने सुख का चाव ।।३३।।

(चौ.) धंधा किसी ने लिया वैश्य का । फला व्यापार सूद खोर का ।।
छोड़ा नहीं मित्र अपना भी । हड़पा सोइ लाभ उसका भी ।।३४।।
संगति हीन कार्म व्यापारी । अंकुश हीन मुनाफाखोरी ।।
कोउ न हित देखे जनता का । करे मिलावट, पीट के डंका ।।३५।।
झूठ कपट स्वाभाविक चलता । स्वास्थ्य कारण पातक बढता ।।
इस को कैसे कौन संभाले? सत्ता खुद कर्तव्य न पाले ।।३६।।
सहज रूप पर कोई समझावे । बात शत्रुता में बढ़ जावे ।।
इससे भला एक हो जावे । मिल दोनों धंधा चमकावे ।।३७।।
होय विरोधी गाँव में जन मत । धर्म चाल से होय फ़जीहत ? ।।
वे भी कामचोर बन जाते । जब तब वैश्यों को हड़काते ।।३८।।
जब सबमें झगडा बढ जाता । क्षात्र तेज ही उसे मिटाता ।।
पर वे पेट के लिए बेचारे । दौड़ रहे अब मारे मारे ।।३९।।
जिधर मिले सम्मान-धनादिक । उधर दौड़ते क्षत्रिय बालक ।।
न्याय नीति को कौन संभाले ? पलड़ा झुक जाता धन डाले ।।४०।।
दौडे चोर खोजनें चोरी । वर्दी पुलिस पहन के कोरी ।।
मिलता अस चोरों को मौका । गाँव में खुल कर के चोरी का ।।४१।।
न्याय करें ब्राह्मणं ऐसे में । देकर जिम्मा सबको उसमें ।।
मिला उन्हें भी दान-मान पर । हुए उन्हीं के साथी सहचर ।।४२।।

(दो.) **फिर तो चलती रीति यह, क्षत्रिय डंडेबाज ।**
चोर बजारी जो करे, वैश्योत्तम वह आज ।।४३।।

बुद्धि लगाय फूट करवावे, वह ही ब्राह्मण खास ।
गाँव-गाँव ऐसे हुआ, वर्ण व्यवस्था ह्रास ।।४४।।

(चौ.) इनमें साबित जो दुर्बल नर । कहकर 'शूद्र' दिया कर बाहर ।।
कर दीना मुहताज उसी को । दो मुट्ठी भर सिर्फ अन्न को ।।४५।।
वर्ण ज़ाति नहिं गुण कर्मो पर । छूटे तत्त्व, बने सब नौकर ।।
वर्णाश्रम भावना महत्तर । खतम हुई, विकृतियाँ भर कर ।।४६।।
सिर्फ बचा अभिमान वर्ण का । ध्वंस हुआ है कर्म गुणों का ।।
ऐसा जिस जिस गाँव में होगा । बहुत दिनों वह नहीं चलेगा ।।४७।।
पहले नहिं ऐसा बिलकुल था । पूरक ही हर एक काम था ।।
जिसमें हो कल्याण सभी का । एक भाव था सबके मन का ।।४८।।

ऊँच नीच एवं कर्म गौरव

पर वह सारा ही वर्णाश्रम । अब मानों बन बैठा है भ्रम ।।
वर्ण नियोजित काम पुराने । छोड़ सभी चलते मनमाने ।।४६।।
ब्राह्मण जूते अब सींता है । चर्मकार मंदिर पुजारि है ।।
क्षत्रिय नौकर पेशा होकर । करे काम है वैश्यों के घर ।।५०।।
वैश्य लड़ें सेना में जाकर । कीर्तन-प्रवचन करे शूद्र नर ।।
कहते इसे 'वर्णसंकर' है। वर्णन पर कामों के सहज हैं ।।५१।।
बतलाते हैं जाति पुरानी । पर कामों में है मनमानी ।।
कैसे होगी निश्चय-दृढता ? लोगों में संभ्रम ही बढ़ता ।।५२।।

(दो.) **पुरखों का धंधा अलग, वह न पुत्र के हाथ ।**
पितु का धंधा सुत कहे, अर्थ हीन यह बात ।।५३।।
इसीलिये जो काम कर, वर्ण जाति वह बोल ।।
जाति वर्ण यदि मानता, तो तेरा यह कौल ।।५४।।

(चौ.) यदि ऐसे कुल नाम चलाते । सब जन वैसी बात बताते ।
तो फिर वर्ण व्यवस्था माँही । कहता कौन भ्रष्टता आयी ? ।।५५।।
पर जन यों कहते शरमाते । किन्तु कर्म विपरीत चलाते ।।
जीते पुरखों केहि नाम पर । आलस में बस आँख्र मूँद कर ।।५६।।
'माना यद्यपि कर्म भ्रष्ट हम । औरों से फिर भी ऊँचे हम ।।
ऐसी मुफ्त प्रतिष्ठा पाने । गाते रहें रूढ़ि के गाने ।।५७।।
असल काम के लिए वर्ण हैं । समाज हित में आवश्यक हैं ।।
इसीलिए है महत्व सबका । हो ब्राह्मण या अंत्यज तबका ।।५८।।

‘तू नीचा मैं ऊँचा कहकर । व्यर्थ बढ़ाया सब आडम्बर ।।
हुआ इसी से पतन गाँव का । वर्ण धर्म का, मनुज धर्म का ।।५९।।

(दो.) **हर धंधे का फन अलग, अलग खाद्य, आचार ।**
रोटी बेटी का अलग, था इससे व्यवहार ।।६०।।
भेद हुए अज्ञान से, सत्ताधारी ऊँच ।।
समाज स्वच्छता जो करे, सो कहलाए ‘नीच’ ।।६१।।

(चौ.) असल नीचता दुराचार में । खरी उच्चता तपाधार में ।।
ऊँच नीचता जात पाँत से । तय होती है कौन न्याय से ? ।।६२।।
नीच कर्म जिसने भि किया है । समाज ने तब दण्ड दिया है ।
अस्पृश्यता चली उससे ही । कारण वश तात्कालिक भाई ।।६३।।
पर उस वंश को नीच मानना । नीचपना अपना दिखलाना ?
यहि शुरुआत प्रथा का पड़ना । सद्गुण भी न अन्य के गिनना ।।६४।।
अरे ! कहाँ का न्याय कर्म यह? बुद्धि-गुलामी का विधान यह ।।
इससे कैसे गाँव हमारा । पुनःनिर्माण करेगा प्यारा ? ।।६५।।
अस्पृश्यता कृत्य से मानो । मानव एक जाति सब जानो ।।
जो संभव हों काम उठा लो । समाजहित में हाथ बँटालो ।।६६।।

(दो.) **धंधा हो गुण कर्म सम, जाति सभी की एक ।**
परिचय निज उद्योग के, कारज से दो नेक ।।६७।।
यों तो सब में गुण सभी, वर्ण सभी सर्वत्र ।
पर है कौन प्रधान गुण, यही विभाजक सूत्र ।।६८।।

(चौ.) सज्जन कथित शूद्र घर उपजा । शूद्र रहा वह कैसे समझा ?
उपजे भ्रष्ट जीव क्षत्रिय घर । क्षत्रिय उसको माने क्यों कर ?।।६९।।
ब्राह्मण गर दुकान में पैठा । मछली माँस बेचने बैठा ।।
वहाँ पूजने जो जावेगा । उसको क्या वह शोभा देगा ? ।।७०।।
करे विलास, लिप्त व्यसनों में ।ब्राह्मण कहलाये समाज में
करे नौकरी साहूकारी । कैसे ब्राह्मण ऐसे विकारी ? ।।७१।।
परम्परा से बना गुँसाई । फिर शादी की धूम मचाई ।।
तिस पर यति का गौरव चाहे । लज्जास्पद कितना है प्यारे ।।७२।।
हैं आचार्य और आचारी । एक जाति के ही अधिकारी ।।
तो क्यों उनका समान आदर। निष्ठा से नहिं करें निरंतर ? ।।७३।।
किस को भी गर ब्राह्मण कह कर । कोई पूजे पद वंदन कर ।।

बन जूता दुकान में नौकर । पैर पोंछना इससे बेहतर ? ।।७४।।

(दो.) **ब्राह्मण को खुद चाहिये, दे अस पूजन टाल ।**
कहे, नमन सब ही करें, मानवता सुविशाल ।।७५।।
अलग-अलग व्यवसाय के, सब हैं मित्र समान ।
पूजा का यह ढोंग क्यों, करते रहें सुजान ? ।।७६।।

(चौ.) ऐसा सब ही को सिखलाना । बिगड़ा दिखते ही सुधराना ।।
जन सब उद्योगों में लगाना । अपने से जो बने बनाना ।।७७।।
जहाँ झलकते ब्राह्मण के गुण । कहें उसे श्रद्धा से ब्राह्मण ।।
स्थापित है यही पुरातन । वर्णाश्रम का नियम सनातन ।।७८।।
ध्यान करो बस गुण पर केंद्रित । जो गुण हो वह वर्ण कहो नित ।।
सकल गुणों का सहज समादर । होय सभी के लिए निरंतर ।।७९।।
जो भी जैसे कर्म करेगा । उसी वर्ण का पात्र बनेगा ।।
नियम यही सर्वत्र चले गर । सुप्रबंध तब होगा सुखकर ।।८०।।

(दो.) **पर सवाल है एक नर, करता बहुविध काम ।**
तो पल पल गुण देख क्या, क्षत्रियादि दें नाम ।।८१।।
बैठा मंदिर ध्यान में, वैश्य उद्यमी एक ।
उसे वहाँ पर वैश्य ही, कैसे कह दें नेक ? ।।८२।।
करे सफाई कार्य पर, मंदिर समय से जाय ।
भंगी ही उसको कहें, कहो कहाँ का न्याय ? ।।८३।।

(चौ.) वह उस घड़ी सही ब्राह्मण ही । कम रोज गर होय अन्य ही ।।
इसीलिए हैं काम देखते । समझ प्रधान नाम हैं रखते ।।८४।।
प्रमुख लक्ष्य व्यापार किसी का । पर वह करता कीर्तन नीका ।।
तो क्या ब्राह्मण कह दें उसको ? समाधान क्या पावे किसको ? ।।८५।।
सद्ब्राह्मण ने कृषी संभाली । नाम होय क्या उसका माली ?
इससे पल पल हो अनवस्था । कैसी तब फिर बने व्यवस्था ? ।।८६।।
बहुरूपिया बने हैं राजा । राज चले कैसे किस काजा ? ।।
जिसकी कला सोह उसको ही । वैभव पल का, नहिं स्थायी ।।८७।।
मतलब यही, समझ लो इसमें । अंतः भाव मुख्य क्या किसमें ।।
निश्चितता उसके जीवन की । सच पहिचान विशेष कर्म की ।।८८।।

(दो.) **है विशेष किन कौन गुण, कर्म विषय है कौन ।**
अंतरंग क्या, अंग कस, देखि नाम तस तौन ! ।।८९।।

तन मन क्या सर्वस्व भी, जिसमें जिस का लीन ।
उसी प्रमुख गुण से करो, नियत वर्ण शालीन ।।९०।।

(चौ.) यहाँ महत्व नहीं कहने का । जो सर्वस्व होय जिस किसका ।।
तदनुसार हो गौरव उसका । समाज में भी स्थान व्यक्ति का ।।९१।।
उत्तम जस हो समाज-रचना । सदा सहर्ष वही है करना ।।
दीक्षा सुन्दर गुण कर्मों की । समझ बूझ कर लेना बाँकी ।।९२।।

सही ब्राह्मण्य तथा ब्रह्मकर्म

बुध जन तत्वाभ्यांस बढावें । दें नव रूप अमल में लावें ।।
समाज की जो बिगडी रचना । कैसे सुधरे, यही सोचना ।।९३।।
सुखी गृहस्थाश्रम कर पाने । जीवन का संग्राम मिटाने ।।
होय गाँव जीवन सहकारी । सबको दे सुबुद्धि हितकारी ।।९४।।

(दो.) **काटे गुण को गुण जहाँ, समझ न कोऊ उपाय ।**
ले संभाल निज यत्न से, सो सच्चा 'ब्राह्मण्य' ।।९५।।
गुण को गुण सहयोग दें, जिससे सुफलित कार्य ।
जगक्रम में 'ब्राह्मण्य' का, यह कर्तब अनिवार्य ।।९६।।

(चौ.) करने सही ऐक्य संवर्धन । आज चाहिए गुणाढ्य ब्राह्मण ।।
नहिं 'ब्राह्मण्य' बढ़े गर निर्भय । कभी न जन में बढ़े समन्वय ।।९७।।
बुद्धि सामुदायिक सिखलाना । सब जीवों में समत्व लाना ।।
सुख संतोष विष पात्रों का । कर देना हि कर्म 'ब्राह्मण' का ।।९८।।
सच्चा ब्राह्मण सुदूर दृष्टि । मकान उसका निखिल समष्टि ।।
चलने लोक जगत् सुनियंत्रित । कष्ट करे वह 'ब्राह्मण' निश्चित ।।९९।।
ब्राह्मण सागर हृदय शुद्धि का । महाकाल वह दुष्ट बुद्धि का ।।
दुर्जन के मन का सारा मल । हिंसा बिना करे सब प्रांजल ।।१००।।
शक्ति युक्ति में जो उदार है । भक्ति मुक्ति का जो अधार है ।।
सर्वोदय के पथ से जाता । वह ब्राह्मण संसार सजाता ।।१०१।।
प्रेम से वह सबको हि संभाले । श्रेष्ठ गाँव सेवाहि मनाले ।।
कभी कहीं कुछ त्रुटि नहिं राखे । सर्वांगीण सजगता पाखे ।।१०२।।
उसका ध्यान न निष्फल जाता । बिगड़ी को सुधार ही लेता ।।
मेल जोल की पैरोकारी । यह ब्राह्मण की जिम्मेदारी ।।१०३।।

(दो.) **स्फूर्ति कीर्ति जन में भरे, सब का मेल कराय ।**
लौकिक-आध्यात्मिक कमी, कतहुँ न आवन देय ।।१०४।।
करे गाँव व्यवहार विद, भर निर्मल संस्कार ।

न्याय नीति से चले हित, आपस में सहकार ।।१०५।।

(चौ.) यही सिखाने श्रेष्ठ-कथाएँ । सदा सुनावें, मिटे व्यथाएँ ।
उचित प्रथाएँ महाजनों की । वृद्धि करें त्यागादि गुणों की ।।१०६।।
राम कथा अरु कृष्ण पराक्रम । संत-पुण्य तिथि आदि उपक्रम ।।
न्याय संग्राम सुना ग्रंथों से । करें सभी को निर्भय मन से ।।१०७।।
कर्तव्य बता उत्साह भरे । उद्यम, सबकोई मन से करे ।।
मिलन करायें सब गाँवों का । सच्चा पथ है यह ब्राह्मण का ।।१०८।।
ब्राह्मण अगर गाँव में बसता । माहौल तहूँ गुट-कलह का रहता !
समझो पतन हुआ ब्राह्मण का । टूट गया है मुकुट गाँव का ।।१०९।।
ब्राह्मण ने तज दी निज निष्ठा । तब ही जन में घटी प्रतिष्ठा ।।
क्या उसने सुन भी नहिं पायी । पुकार लोगों की दुख माँही ।।११०।।
ब्राह्मण ही पथ भूल चके जब । स्वैराचारी हुए गाँव तब ।।
मचे गाँव में लाख तरह के । झगड़े और तमाशे जम के ।।१११।।

(दो.) जन श्रद्धा में फर्क क्यों, कारण मूल है कौन ?
यह जाने निर्मल वही, त्यागी तपो निधान ।।११२।।
दीक्षा ले यम नियम की, पाने यही प्रभाव ।
ब्राह्मणत्व मित चाहिए, त्याग, तपस्या, भाव ।।११३।।

(चौ.) आबाल वृद्ध समझाने सबको । ओज-तेजमय होना मन को ।।
तेहि हित जप तप है आवश्यक । कंठस्थ करें सद्ग्रंथन चिंतक ।।११४।।
दे उपदेश क्रोध मत लाना । लोभ हेतु निर्णय न बदलना ।।
तेहि हित इंद्रिय जय करनी है। आत्म साधना आचरनी है ।।११५।।
पहले त्याग ब्राह्मण करवे । जनता को वह तभी सिखावे ।।
इसी मार्ग से प्रभाव जन में । दीख पडे अप आप सहज में ।।११६।।
दीक्षा जो भी यह ले लेवे । भोग वासना दूर हटावे ।।
ब्राह्मण संज्ञा वह ही पावे । वर्णाश्रममें उच्चतम होवे ।।११७।।
ये गुण कर्म जुटाने भूला । ब्राह्मण का गौरव पा फूला ।।।
पर उसकी वह व्यर्थ उपाधि । छेरी के गलथन सी बादी ।।११८।।
जाति द्वेष का पूजक होना ।। व्यर्थ दशहरे का वह सोना ।।
कौन अघाया कहो कहाँ पर? केला समझ आँक फल खाकर ।।११९।।

(दो.) विशालता का नाम ही, 'ब्राह्मण' कभी न जाति ।
यही समझ पथ आचरो, ग्राम जनो ! हर भाँति ।।१२०।।
घट घट देखे ब्रह्मही, बरते सेवा भाव ।
उस ब्राह्मण की विनय का, सब पर पडे प्रभाव ।।१२१।।

(चौ.) उज्ज्वल शील चरित्र देख कर । करे स्नेह बालक, नारी, नर ।।
सब को धर्म महान बताता । मानव जागृति का वह ज्ञाता ।।१२२।।
ब्राह्मणा साथी है क्षत्रिय का । वैश्यों का भी अस्पृश्यों का ।।
नहीं किसी की वहाँ उपेक्षा । देता सबको निर्मल शिक्षा ।।१२३।।
सबकी वह चाहता भलाई । भिन्न गुणी जन जोड़ मिलाई ।।
सुबुद्धि दे कर गाँव चलाता । सुख संतोष इसी में पाता ।।१२४।।
तब भी जो नहिं तजे दुराग्रह । करता दंडित ब्रह्ममूर्ति वह ।।
गाँव में रूढ़ि बुरी जो पावे । प्राण की बाजी लगा मिटावे ।।१२५।।
अस ब्राह्मण का वचन न रखता । सो त्रिलोक में भी नहिं टिकता ।।
कारण, इसका यही जानना । अनर्थ करे कोई ब्राह्मण ना ।।१२६।।

(दो.) शांति मिले हर वर्ण को, यह ब्राह्मण का लक्ष्य ।
सुख लोकेंद्र तपस्वि को, जन सुख में प्रत्यक्ष ।।१२७।।
इससे ही डंका बजा, 'ब्राह्मणवर्ग महान'।
झेले भृगु की लात भी, वह मेरा भगवान ।।१२८।।

(चौ.) ब्राह्मणत्व ऐसा उपजाओ । बनो प्रचारक घर-घर जाओ ।
शांति सुखों का तभी सहारा । पा जायेगा समाज सारा ।।१२९।।
ब्राह्मणत्व जातीय नहीं यह । निर्भय साध सके चाहे वह ।।
जो होगा आदर्श प्रचारक । ब्राह्मण वही, नहीं इसमें शक ।।१३०।।
है ब्राह्मण्य सही सद् बुद्धि । वह कर दे शुभ गुण समृद्धि ।।
रिद्धि सिद्धियाँ बसे गाँव में । सहयोगी गुण-कर्म भाव में ।।१३१।।
कथा-निरूपण, राजनीति भी । सतर्कता भी, सेवा कृति भी ।।
सार यही वर्णों का चारों । न्यूनाधिक हर व्यक्ति सँवारो ।।१३२।।
जनता शिक्षण, न्याय सुरक्षा । सब का पोषण, श्रम की दीक्षा ।।
इस हित जो भी यत्न करेंगे । वर्णाश्रम समझो साधेंगें ।।१३३।।
स्वभाव गत कर्तव्य करें सब । सुन्दर गाँव सजाए मिल सब ।।
जीवन का उद्धार सभी का । होगा साफ वचन तुकड्या का ।।१३४।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरुकी, शास्त्रमत, आत्मानुभव-संगत, भली ।।
इस पाँचवें अध्याय में है वर्णधर्म-विवेचना ।
गुणकर्म अरु ब्राह्मण्य-महिमा दें नये जगको बना ।।१३५।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

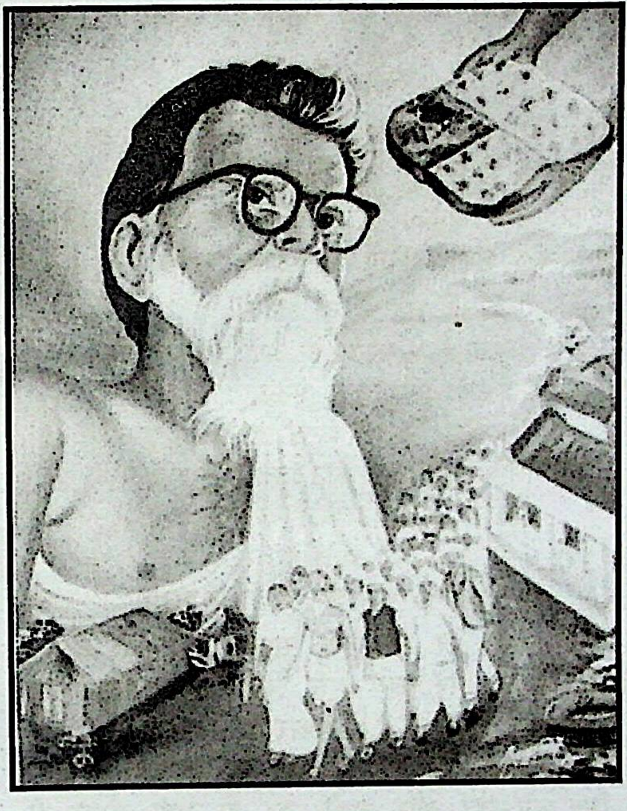

आचार्य श्री विनोबा भावे

छठा अध्याय

संसर्ग–प्रभाव

।।श्री गुरु देवाय नम :।।

मानव और जगत् ।

(सवै.) ईश्वर ने जो किया जग-सर्जन, कार्य अभी उसका है अधूरा ।
मानव को उसने मति दी शुभ, जो भी बने कर दें वह पूरा ।।१।।
'एकसे होय अनेक, को फिर एक स्वरूप में लावें ।
मूल यही संकल्प दिया भर ईश्वर सबके मन में भावे ।।२।।

(मनहरण) एषणाए प्रेरणाएँ सहजता जो अनेक,
होती हैं ये कारण ही आत्म विकसन को ।
पुत्र पौत्र आदि रूप लेकर अनेक,
नर खुद ही को करता प्रकट पाय उन को ।।३।।
कोउ शिष्य शाखा बढ़ा कोउ लिखाय ग्रंथादि,
कोउ पंथ, कोउ कीर्ति पाने देत धन को ।
जग में हमारी परंपरा चले निरंतर,
स्वाभाविक चाह तो यही है हर मनको ।।४।।

(हरि.) मानव जगत पर ही जिया, समुदाय में बढ़ते चला ।
समुदाय का गर कार्य भूले, क्या उचित होगा भला? ।।५।।
ब्रह्मांड-पिंड घनिष्ठ है, संस्कार हैं जग से बँधे ।
ले आत्मज्ञान अलिप्त हो, पर जग उपेक्षित कर न दे ।।६।।
शिव,सत्य,सुंदर और सुखी, यह हो सभी संसार ही ।
कर्तव्य मानवको महा, कर्तार ने सौंपा यही ।।७।।
मानव करें उद्धार निज, वैसा समाज सुधार लें ।
है धर्म पथ तय कर लिया, इस हेतु, लोग सिधार लें ।।८।।

(दो.) इस हित ही अवतार अरु, संत भुक्त व्यवहार ।
लक्ष्य एक सब का यही – 'सुखी करें संसार ।।९।।
तार सको नहिं अखिल जग, करो समुन्नत गाँव ।
मिले मोक्ष थाती तभी, खुश होंगे महादेव ।।१०।।

लोग कैसे मानेंगे ?

(चौ.) 'है यह ठीक' कहें श्रोता पर। क्या जिम्मा है गाँव का हम पर ?
नहीं गाँव में कोई सुनता। क्या होगा यदि हम को चिन्ता ? ।।११।।
सुत नारी हित सब करते हैं। अपने चैन के मित मरते हैं ।।
नहिं सुधिं किसको है औरन की। कुछ भी पर हित काम करन की ।।१२।।
सब चाहते 'हमारी मानें'। कैसे मनवावें नहिं जाने ।।
इस ही कारण बढ़ने आगे। प्रेरणा काहू मन नहिं जागे ।।१३।।
'करने कार्य अगर बढ जाऊँ। साथ न मिला फजीहत पाऊँ ।।
कौन जान दे फिर आफत में ?। भाव यही बहुतों के मन में ।।१४।।
हम भी चाहें गाँव सुधारें। कहो कौन पथ सुगम सँवारें ? ।।
सुमार्ग पर सब जन चलने का। करें उपाय कौन बढ़ने का ? ।।१५।।

(दो.) **मित्र ! तुम्हारे प्रश्न का, उत्तर दूँगा ठीक।**
पर मनमें रख कर उसे, बरतो हो निर्भीक ।।१६।।
मैं ही कहता सो नहीं, यही कह गये संत।
श्रद्धा मेरी दृढ़ जहाँ, वही कहूँ निर्भ्रांत ।।१७।।

(चौ.) सबसे बड़ा सुनो यह निश्चय। अनुकरण सहज है सब जन प्रिय ।।
अच्छा जो उन को दिख जाये। अपना लेते बिन बताये ।।१८।।
प्रमुख कार्यकर्ता की रहनी। लेती निरख लोक मति पैनी ।।
फिर वह उसके पीछे दौड़े। जैसे गाय के पीछे बछड़े ।।१९।।
नेता सुप्रभावकारी हो। ओज पूर्व सेवा, चरित्र हो ।।
उसके बिना सुधार न होगा। गाँव न कोई ठीक बनेगा ।।२०।।
मार्ग यही है जन जागृति का। सूत्र यही लो कर मे कृति का ।।
हम खुद ही बरतेंगे जैसे। बरतेंगे सब जन भी वैसे ।।२१।।
उस हित पहले अपनी शुद्धि। तन की शुद्धि, मन की शुद्धि ।।
घर की शुद्धि और अंत में। ग्राम की शुद्धि ऊँची सब में ।।२२।।

मानव स्वभावतः अनुकरण प्रिय

(दो.) **कैसे तुम रखते अपना घर, यह देखेंगे लोग।**
फिर निज निज घर तुरत ही, कर लें वही प्रयोग ।।२३।।
दृश्य मनोहर देख कर, दर्शक करे पसंद।
वही बनाने फिर करे, चेष्टा वह सानंद ।।२४।।

(चौ.) फूल बाग देखा वह जिस के। कुसुम खिले अनंत रंग के ।।

मधुर फलों की बहार प्यारी । सुंदरता की खान सुखारी ।।२५।।
बहता जल झरनों का चंचल । लता कुंज का थामे आँचल ।।
भीनी गंध फलों फूलों की । पकड़े बाँह पवन झूलों की ।।२६।।
घनी छाँव डोले हरियाली । कोमल अंकुर दूब की जाली ।।
रंग रंगीली कई तितलियाँ । विमुग्ध मन की खिलती कलियाँ ।।२७।।
कहीं चमकता ज्यों दर्पण जल । कहीं कलागिरी पत्थर, बस ।।
कहीं भूमि का रूप सुकोमल । गोद में लोटन को चाहे दिल ।।२८।।
कहीं भूमि के भिन्न रंग हैं । कहीं श्याम पीताभ अंग हैं ।।
श्वेत कहीं, लालिमा कहीं पर । सुवर्ण सम हैं कण-कण सुंदर ।।२९।।
लता लता पर पक्षी झूले । देखत सब जो फले और फूले ।।
विहरें यद्यपि आसमान में । किन्तु पके फल सदा नजर में ।।३०।।

(दो.) खग उड फल को झपटते, लेते रस का स्वाद ।
जीव करे संकल्प जो, वही लाभ ले साध ।।३१।।
प्रसन्न हैं सब इंद्रियाँ, इत उत भरी सुगंध ।
नाक कान जिव्हा नयन, विविध विषय रसनंद ।।३२।।

(चौ.) ऐसा दृश्य देख लें प्राणी । वही बात फिर दिल ने ठानी ।।
लौट चला घर ले वह सपना । सुभग सजाने मकान अपना ।।३३।।
लघु आँगन में बाग लगावे । या गमलों में फूल खिलावे ।।
यथा संभव अपनी कुटिया ही । शृंगारित करता मन चाही ।।३४।।
गर उसको उद्यान न दिखता । तो क्यों उस उद्यम में लगता ?
है विशेष यह मानव गुण ही । जो देखे वह करे स्वयंही ।।३५।।

(दो.) शिशुओं की यह खासियत, देंय शब्द दुहराय ।
जो भी देखे आँख से, वही हुलस कर पाय ।।३६।।
अगुआ का दायित्व यह, करे ग्राम में जोहि ।
खींच मातु पितु को तनय, बरतेंगे घर सोहि ।।३७।।

गाँव की आत्माअनुकरणशीलता

(चौ.) एक प्रमुख ने मुर्गी पाली । सुंदर उसकी उपज बढ़ा ली ।।
कला दूसरे ने फिर भाई ! वही मोह वश तुरत उठाई ।।३८।।
नई लहर फिर चली गाँव में । जगा नया उन्माद भाव में ।।
मुर्गों की चल पड़ी लड़ाई । उसी शौक की बढ़ी बड़ाई ।।३९।।
मुर्गों को जूमते देखकर । नशा चढा फिर वही गांव पर ।।

लगता फिर मुर्गों का मेला । गाँव-गाँव से लड़वैये ला ।।४०।।
बाँध पैर मुर्गों के छूरे । चले युद्ध मैदान में पूरे ।।
खून सना वह खेल बढ़ा है । क्रूर वृत्ति का पेल बढ़ा है ।।४१।।
मुखिया बोले टैक्स लगाओ । धन अर्जन का मार्ग बढाओ ।।
जान गये जन गाँव-गाँव हैं । मुर्ग लड़ाई काहि चलन है ।।४२।।

(दो.) **बेचारे निर्दोष खग, उनको किया निमित्त ।**
दीन जीव लड़ते मरे, बढ़ा पाप का वित्त ।।४३।।
एक प्रमुख ने दी गति, वही करे सब गाँव ।
मुर्गेबाजी की बढ़ी, प्रौढों में भी चाव ।।४४।।

(चौ.) सभी शक्ति बाजी मुर्गो की । गिरी प्रतिष्ठा बड़े बडों की ।।
यह दुर्भाग्य एक ने ताडा । शुरू किया तिन नगर अखाड़ा ।।४५।।
बालक-युवक किये कुछ साथी । नवोत्साह से भर दी छाती ।।
उमंग से स्वशरीर बाँधने । लगा दिया व्यायाम साधने ।।४६।।
'द्रंगल' किया गाँव में पहले । इनामी कुश्ती के भर मेले ।।
देख-देख बच्चे सब खीचे । लगे सभी व्यायाम के पीछे ।।४७।।
घर घर बालक कुश्ती खेले । गली-गली ललकार गुँजालें ।।
मस्ती यह व्यायाम की फैली । छोटे बडे बने बलशाली ।।४८।।
मुद्गर, मलखम, बरछा, लाठी । कसरत, लेजम, तेग, बनेठी ।।
कटार, पट्टा, तीर, सुहाना । क्या व्यायाम चला मर्दाना ।।४९।।
इसी लगन में व्यसन गाँव के । हुए नदारद बुरे भाव के ।।
बदन बलिष्ठ बनाने ही की । धुन थी एक बडों, बच्चों की ।।५०।।
हर कोई निज सीना ताके । देखे फिर फिर भुजा घुमाके ।।
जंघा पट भी लगे बढाने । सही मल्ल-सुन्दरता पाने ।।५१।।
मैदानी कर्तब खेलों से । गाँव रँगा सब लाल धूल से ।।
मुर्गों का वह शौक बिसारा । गाँव लड़ाई भूला सारा ।।५२।।

(दो.) **मति सूझी फिर एक को, बैल बनाये मस्त ।**
दौड-होड़ में अन्य की, जोड़ी कर दी पस्त ।।५३।।
नया मनोरंजन दिखा, गयी लोक मति घूम ।
गाँव-गाँव फिर बढ़ चली, बैल रखन की धूम ।।५४।।

(चौ.) हेतु उचित कुछ इसमें प्यारे! खुराक देकर बैल सुधारे ।।
स्पर्धा पशुओं की बल वृद्धि । बन सकती कृषि की वह सिद्धि ।।५५।।

किन्तु कुफल इसमें उग आते । भले काम पीछे रह जाते ।।
शौक बैल दौड़ाने का ही । आगे बढ़ जाता है भाई ! ।।५६।।
फिर जो बैल दौड़ नहि पाते । लोहे की भी कील चुभाते ।।
शर्त जोश में खून गिराते । शिव नंदी के प्राण दुखाते ।।५७।।
रहा काम खेत बाड़ी का । स्पर्धा ही उद्यम जोड़ी का ।।
रगडे-झगडे चल पड़ते है । तनाव कर्म कई बढ़ते है ।।५८।।
बैल जोत कर सहज भगाते । पैना लेकर हाथ चुभाते ।।
बैल न चल पाते थकने से । रगेदते तब निर्दयता से ।।५९।।

(दो.) **गाँव बहा इस लहर में, भली सुनत नहिं बात ।**
जन मे धंधे आसुरी, फैल गए बिन बात ।।६०।।
धूम मचादी एक ने, 'नाच तमाशा' लाय ।
राग रंग सब पिछला, बदला 'जलसा' पाय ।।६१।।

(चौ.) गायें सबहि लावनी-ठुमरी । क्या घर मंदिर खेती पौरी ।।
जिस तिसके मुख में नट गाने । शृंगारिक विषयों की ताने ।।६२।।
शौक भंडौआ का यह फैला । शिशुओं में संस्कार विषैला ।।
शिशु जवान भी बनते ठनते । भाँडों के सम छैला बनते ।।६३।।
करे माँग पट्टी हर कोई । बना लजीली मुद्रा भाई ! ।
भाव भंगिमा वैसी तन की । बालक करते कृति नर्तन की ।।६४।।
मिले प्रशंसा मात पिता से । कन्याएँ भी हँसे मौज से ।
कोउ बजावे बक्सा थाली । मानो डफ-संगति मतवाली ।।६५।।
फिर भी कोई गौर न करता । क्या दुर्गति होगी न समझता ।।
गाँव महफिलों के रंजन में । रंजित हुए सभी जन उस में ।।६६।।

(दो.) **ढोलक कहती 'डूबते', कहे सितारी 'कौन?'**
झाँझ कहे 'सब जन' मगर, मति सबकी है मौन ।।६७।।
कहाँ कथा कीर्तन रहे? प्रवचन भजन पवित्र ।
खिल्ली ही सद्भाव की, युवक उड़ाते मित्र ! ।।६८।।

(चौ.) गाँव जिन्होंने गुलची लाये । नर्तक निकले उनके जाये ।।
नाचें गाँव-गाँव में जाकर । शुरू हुई मजलिसें वहाँ पर ।।६९।।
डरती कन्याएँ पथ चलते । युवक बेशरम उनको छलते ।।
आवा जाही रख घर जारी । युवती कितनी ही छल डारी ।।७०।।
फिर मुखिया की चौंकी आँखें । अरे! बढ़े पाखंड कहाँ के ?

मेरे भी घर घुसा भयंकर । यही तमाशे का आडम्बर ।।७१।।
भैया ने भंडताल है लाया । सभी वंश अपना बिगड़ाया ।।
लड़की भागी, रहा न लड़का । गया डुबो कर घर औरों का ।।७२।।
मुखिया पूछे फिर जिस-तिस को । कैसे बंद करें अब इस को ?
कहते सब तुमने करवा दी । भले गाँव की यह बरबादी ।।७३।।

(दो.) शौक भला व्यायाम का, सुभव बना था गाँव ।
पर टूटत ही छंद ये, है अब नाश बहाव ।।७४।।
बैल दौड़ भी ठीक थी, उचित खुले में खेल ।
भरी उदासी गाँव में, देख पाप की बेल ।।७५।।

(चौ.) भुगतो सजा आप उस की अब । गाते तानारिरी बल सब ।।
जलसों की ही धूम मची है । गरिमा उत्सव की न बची है ।।७६।।
रंगीनी तबियतवाले ही । अक्सर आते गाँव में वे ही ।।
मुखिया उनको रोक न पाता । मुश्किल हल न कोई कर सकता ।।७७।।
एक ने किस्सा नया चलाया । पिया शराब झूमता आया ।।
नम्बर एक तमाशा सुख का । मान गये जन नये बली का ।।७८।।
धीरे धीरे फैली वह लत । मिले शराबी जित देखो उत ।।
मत पूछो फिर व्यथा गाँव की । मनकी टीस वहाँ जन जन की ? ।।७९।।
कहीं रास या नौटंकी भी । बकते है गालियाँ शराबी ।।
कोई रंच न किसकी माने । मन मौजी आबाल-सयाने ।।८०।।
भीड़ लगी व्यभिचारी जन की । चाह बढ़ी जूए की धन की ।।
बच्चे करते चोरि डकैती । घर-घर दारू खुली निकलती ।।८१।।
मांसाहार का बढा व्यसन है । मदिरा बिना चैन नहिं क्षण है ।।
रोग बढ गये जन में अनगिन । माँस-मद्य के सेवन कारन ।।८२।।

(दो.) तेल चुपड़ कंघी करे, थूके पान चबाय ।
सिगरट पी छोडे धुँआ, डर नहिं सुत को हाय ! ।।८३।।
श्रम का धन मजदूर का, मदिरा में उड़ जाय ।
बच्चे भूखे तड़पते, जीवन दुर्गत पाय ।।८४।।

(चौ.) मदिरा पी औरत को मारे । पगला गये गाँव जन सारे ।।
बाढ बढ़ी झगड़े फिसाद की । धूम अदालत में विवाद की ।।८५।।
अमीर भी कीचड़ में लोटे । कोई किसी को भी जा पीटे ।।
नहीं रहीं लड़कियाँ सुरक्षित । हुई गाँव की ऐसी हालत ।।८६।।

धन दौलत सब नष्ट हो गया । 'ग्रामोन्नति' बस राग रह गया ।।
शराबियों ने गाँव समूचा । किया भ्रष्ट अरु नंगा बूचा ।।८७।।
पिये शराब गाँव-मुखिया ही । उससे बढ़ा व्यसन जन माँही ।।
उमड़े भीड़ चहूँ दिसि उत नित । डुबकी पुण्य गटर गंगा मित ।।८८।।

(दो.) क्यों बढ़ता चोरी जुआ, या व्यभिचार प्रभाव ?
पहले मुखिया बिगड़ते, फिर बिगड़े सब गाँव ।।८६।।
जो भी बिगड़ा लोक-पथ, यह संसर्ग प्रभाव ।
देखा देखी और के वही करे सब गाँव ।।६०।।

(चौ.) पहले स्वयं अमल में लाया । तभी दूसरों को बतलाया ।।
इसीलिए जन रंगे रंग में । भली बुरी उसकी तरंग में ।।६१।।
है बर्ताव गाँव का निर्भर । सभी कार्यकर्ता के ऊपर ।।
प्राण गाँव के कारज कर्ता । यही हमारी सही मान्यता ।।६२।।
चार भले जन सत बरतेंगे । तभी गाँव शुभ गति पा लेंगे ।।
मुखिया कहला स्वारथ साधे । वैसा ही पथ गाँव अराधे ।।६३।।
मानो गाँव शुद्ध है दर्पण । जो दरसाओ लो वह दर्शन ।।
जो भी तुम कर लो वह सारा । करने लगता गाँव हमारा ।।६४।।
मैंने पहले बात बताई । बाग देख मन खुशी समाई ।।
फिर घर उसकी मूर्ति बनाई । यही रीति जन मन की भाई ।।६५।।

कार्यकर्ताओं का कर्तव्य

इसीलिए यह आज विनय है । जो आदर्श उचित सुखमय है।।
कर निर्माण शुरू अपने में । होगा तभी प्रभाव जगत में ।।६६।।

(दो.) फकीर वह कंकाल सा, दे भूदान अवाज ।।
गाँव गाँव लहरें उठी, अनायास वह आज ।।६७।।
निज सुख चैन बिसार जन, घूम रहे दानार्थ ।
दान गरीब-अमीर भी दें सहर्ष निःस्वार्थ ।।६८।।

(चौ.) अगुआ करे गाँव में जैसा । लोग बरतते घर घर वैसा ।।
इसीलिए है जिम्मेदारी । मुखिया कीहि गाँव में भारी ।।६६।।
सोचो क्या है गाँव में लाना । वही योजना प्रथम बनाना ।
फिर वैसा निज सुधार कर लो । सोच समझ कर हर पग धर लो ।।१००।।
सतर्कता हो इसमें हरदम । जो जो भी करना हो उत्तम ।।
दूरदर्शिता बरतो उसमें । तभी काम लो जिन हाथों में ।।१०१।।

नतरु सहज में कार्य उठाया । फिरं वह प्राणों पर बन आया ।।
बिगड़ा गाँव सभी, हो ऐसा । दो कौड़ी का अगुआ वैसा ।।१०२।।
वही गाँव में कार्य उठावें । जिससे गाँव कीर्ति धन पावे ।।
अन्य विडंबन कार्य धुरंधर । नहिं आने दें सीमा अंदर ।।१०३।।
कोउ बुराई कर भी बैठे । तो झट उसके कान उमेठे ।।
बढ़ा समझदारी की नीति । उछाल दें हर एक कुरीती ।।१०४।।
क्योंकि रहेगी संगति जैसी । झट परतीत मिलेगी वैसी ।।
इसीलिए सद्गुण संवर्धन । करने हो नितं चौकन्ना मन ।।१०५।।
उत्तम खेल, कार्य भी उत्तम । उचित कला, सुंदरता शुचितम ।।
बने गाँव में भूषणदायी । वही उठाओ जमकर भाई ! ।।१०६।।

(दो.) व्यसन घुसा कोई कहीं, उसे हटाओ शीघ्र ।
तदर्थ मुखिया गाँव के, पीछा करें समग्र ।।१०७।।
अगर हुआ कुछ रंज भी, गये युवक-शिशु रूठ ।
बुजुरग उनको लें मना, समझा दें सच झूठ ।।१०८।।

(चौ.) सबसे एक उपाय सफल ही । जावे बदल वायु मण्डल ही ।।
ऐसा शुभ नव छंद लगावे । तभी कार्यकर्ता यश पावे ।।१०९।।
वही गाँव का कारज कर्ता । लोभ न जिसमें कही पनपता ।।
'सुखी गाँव ही मोक्ष हमारा' । जिसके दिल में गूँजे नारा ।।११०।।
फिर उसका आदर्श देखकर । सुधर जाय सब गाँव बराबर ।।
मुखिया पर ही रहे निरंतर । तुकड्या कहे गाँव यह निर्भर ।।१११।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथ की, एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरु की, शास्त्रमत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
अजि! इस छठे अध्याय में, है ग्रामजीवन -मर्म ही ।
संसर्ग के हि प्रभाव से, बनते-बिगड़ते सब सही ।।११२।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

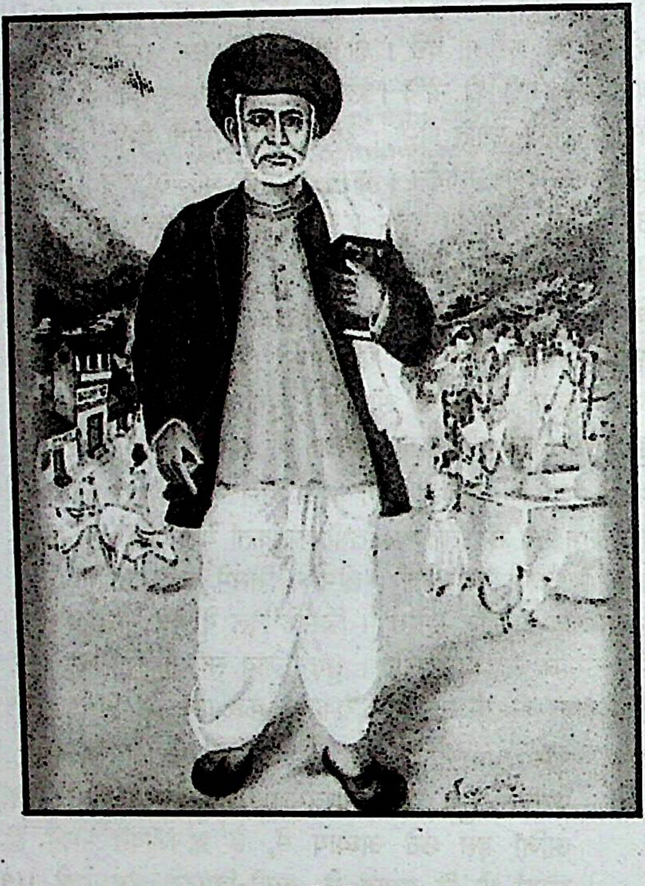

महात्मा ज्योतिराव फुले

सातवाँ अध्याय

आचार–प्राबल्य

।।श्री गुरु देवाय नम :।।

नेता एवं ग्रामवासियों का पतन

(सवैया) सज्जन एक सवाल करे, यह ज्ञात हुई जन रीति हमें ।
भल मुखियहि आज सुधार सके, सब गाँव जँची यह नीति हमें ।।१।।
किन्तु बड़ेहि बुरे अगुआ, हित शत्रु बने, परती हमें ।
बाजि नगाड़ रहे उनके, फिर देगी कहाँ यश तूति हमें?।।२।।

(मनहरण) *सिंहासन अधिष्ठित न्याय की देवी ही,*
न्याय के सुनाम से अन्याय कर जायेगा ।।
फिर कैसे होगा सुप्रबंध लोक में उचित?
कहो फिर कैसे न सुनीति मर जायगी ? ।।३।।
पंडित बुलाया सतसंग के लिए जो भला,
गाँव में उसी से यदि रार मच जायगी ।
सयाना कहा था, वही निकले जो महामूढ,
फिर कैसे जनता प्रगति पथ पायेगी? ।।४।।

(हरि.) गायन रखा सुख के लिये, सुनना पड़ा रोना मगर ।
अपने उदर निर्वाह हित, चिंघाड़ता, अड़ता मुखर ।।५।।
घुड़–सवारी जो सिखाये, गिरे वह टूटे कमर ।
फिर कौन बैठे अश्व पर? है ग्राम नेता इस कदर ।।६।।
सोचा धनिक विश्वस्त है, पर बेइमानी वह करे ।
विश्वास फिर व्यवहार में, जन कौन किस पर क्यों धरे ।।७।।
शिक्षक रखा बच्चे पढाने, पर करे दुर्नीति वह ।
उसको हि शिक्षा की जरूरत, रीति उलटी इस तरह ।।८।।
डॉक्टर दवा देने बुलाया, बीमार को दे जहर वह ।
उपचार फिर किससे करायें? बतलाए कोई सांच कह? ।।९।।
ऐसा हुआ है गाँव में, अब क्या व्यवस्था हम करें ? ।
विश्वास से किसको पुकारें ? जब दुष्ट नेता सब भरे ।।१०।।

(चौ.) लोग सभी मनमानी करते । मदिरा पीते, भाँड़ नचाते ।।
बड़े लोग खुद आगे बढ़कर । उन कामों का करते आदर । ।११।।

संग साथ लेकर गुंडों का । अपमान करत चाहें जिस किस का ।।
कहते बिन आतंक बढ़ाये । नेता कहाँ प्रगति पथ पाये? ।।१२।।
मुखिया ने जब ऐसा सोचा । नष्ट हो गया गाँव समूचा ।।
बने चोर मालिक घूमत तहँ । सज्जन सब उपवास करत वहँ ।।१३।।
गाँव समूचा बिगड़ गया है। मनमाना स्वच्छंद भया है ।।
नहीं रहा वर्चस्व किसी का । कोई आदर करे न किस का ।।१४।।
कहो कहो अब कैसे करना । जो कहते हो गाँव सुधरना ।।
किस मारग से अब हम जायें ? जहाँ गिरावट यह थम पाये ।।१५।।
करते हैं यदि हम कुछ साधन । हँसी मजाक करें सब ही जन ।।
कहते साधू कहाँ से आया ? पेट पालने ढोंग मचाया ।।१६।।
करूँ सफाई झाडू ले कर । शौच करे तहँ ही वे अस कर ।।
कहते तुम चलने दो सेवा । हम तो यही करेंगे, देवा ! ।।१७।।
अगर सीख कुछ देने जाओ । कहते तुम हो कौन बताओ ?
जैसा जी चाहेगा वैसे । हम बरतेंगे यहाँ खुशी से ।।१८।।

(दो.) हुई गाँव की यों दशा, दर्द उठे दिल माँहि ।
लगता तज दें गाँव ही, पर जी माने नाहिं ।।१९।।
अंत शरण आया तेरे, गाँव किये आदर्श ।
कैसे जन बस में किये ? अनुभव कहो सहर्ष ।।२०।।

आत्म शुद्धि ही लोक वशीकरण मंत्र

(चौ.) मित्र! सवाल किया यह अच्छा । हर्ष हुआ है दिल में सच्चा ।।
सहज भाव से जवाब दूँगा । निज अनुभव का मर्म कहूँगा ।।२१।।
अपनी पहले बता साधना । अपने मन की सही धारणा ?
दिनचर्या की कैसी रचना ? कैसा जीवन यापन अपना ? ।।२२।।
यही मर्म की बात सनातन । बात सिर्फ नहिं, दिखे आचरण ।।
बरतेंगे जन बातें सुनकर । समझो मत यह कभी भूल कर ।।२३।।
लोगों को हो जो सिखलाना । पहले निज जीवन में लाना ।।
सिर्फ चमकना नेता बनकर । कभी न इससे बढ़ता आदर ।।२४।।
हो नेतृत्व एकेक विषय का । लेकर करो आचरण उस का ।।
ठीक कर सके जनता सारी । तब गुंडे, व्यसनी, व्यभिचारी ।।२५।।
गाँव हमें वैसे सुधारने । साधन होंगे विशेष करने ।।
जिस में मन में उमंग आवे । पूरा गाँव स्वयं अपनावे ।।२६।।

(दो.) नेता अन्य रहें तबहुँ, रुके न तस अभियान ।
लीक-तोड़ नेतृत्व की, चाहत सदा सुजान ।।२७।।
नेता बन आचरण से, छोड़ निराशा भाव ।
सत्य सही सिद्धान्त है, उसका पूर्ण प्रभाव ।।२८।।

(चौ.) जोड़ सत्य से जो ले नाता । गुरुत्वाकर्षण उस में आता ।
प्रभाव पड़ता अधिक कथन से । उसके महज शुद्ध जीवन से ।।२६।।
प्रथम चाहिए इंद्रिय निग्रह । खान पान में भी नियमाग्रह ।।
बनो असंग्रही सब विषयों में । यह बंधन अपने जीवन में ।।३०।।
पवित्र, मित आहार विहारी । निद्रा थोड़ी, शांति अन्तरी ।।
प्रसन्न भाव सदा चेहरे पर । बोल-चाल में मिठास सुंदर ।।३१।।
आसन, यम नियमादिक साधे । जो तन-मन नीरोग बना दे ।।
बल-बुद्धी, चातुर्य भरा हो । तेजोमय आचरण सदा हो ।।३२।।
अपने ही श्रम के बल जीना । किसी का सिर उपकार न ढोना ।।
कम से कम ही खर्च गुजारा । सीधा सादा घर हो सारा ।।३३।।
तन ढँकने के लिए बसन हैं । सादा सिले सुरुचि पूर्ण हैं ।।
नही शौकपानी से प्रीति । नेता सही रहें इस रीति ।।३४।।

(दो.) हित अपना अरु अन्य का, दोनों रखलें ध्यान ।
करें गैर भी मान्य जो, हो व्यवहार सुजान ।।३५।।
नहिं हो कारोबार में, किस पर भी अन्याय ।
चलें सजता सत्य की, हिरदे सदा बसाय ।।३६।।

(चौ.) दया, क्षमा अरु शांति नम्रता । सभी जगह हो प्रामाणिकता ।।
सरल भाव अरु प्रेम भाव को । सहेजें इस दैवी संपति को ।।३७।।
सार्वजनिक कामों में जाकर । निःस्पृह रहें कष्ट भी सहकर ।।
जाति पक्ष अरि मित्र देखकर । पक्षपात नहिं करें कहीं पर ।।३८।।
असभ्य अड़ियल न हो आचरण । दिखे कहीं नहिं कर्कश जीवन ।।
निंदा स्तुति भी किसकी सुनकर । दुराग्रही नहिं हो मन उसपर ।।३६।।
दोष प्रत्यक्ष बिना देखे ही । विश्वस्त सूत्र सूचना बिना भी ।।
कोई फैसला कभी करें नहिं । जब तक दोनों पक्ष सुने नहिं ।।४०।।
सामूहिक जो जिम्मेदारी । नागरिकों की होती सारी ।।
अचूक पालन उसका करना । स्वार्थ भाव हिरदे नहिं धरना ।।४१।।
करें न निंदा, करें न स्तुति । स्वयं करें आदर्श सदा कृति ।।
सलूक तिय शिशु वृद्ध आदि से । करे स्नेह विश्वास बुद्धि से ।।४२।।

रखें वचन की अपने कीमत । महत्त्व समय का होवे निश्चित ।।
सुख दुख लाभ हानि औरन की । अपने सम ही जानें सब की ।।४३।।

(दो.) यह सब जन जब देख लें, कहें सुजन तुम कोहि ।
ख्याति तुम्हारे कार्य की, धीरे धीरे होइ ।।४४।।
बाहर भीतर सत्य मय, तुम्हें जान कर लोग ।
फिर तो देखेंगे तुम्हें सभी देवता जोग ।।४५।।

(चौ.) मित्र! करे जब तू इस भाँति । सब जन होंगे प्रसन्न साथी ।।
सुनने को हर बात तुम्हारी । उत्कंठित होंगे नर नारी ।।४६।।
स्वयं कहेंगे-'जो कह दो तुम । वैसा ही बर्ताव करें हम ।।
तोड़ेंगे गर बात तुम्हारी । वह तो होगी मौत हमारी' ।।४७।।

नेतृता की कार्य रीति

इसमें पहले विचार करना । अगुआ बने न बने, समझना ?
एक बार गर कदम बढ़ाओ । प्रलय होय पीछे न हटाओ ।।४८।।
जन सेवा करना जो चाहे । लोक लाज पहले वह त्यागे ।।
निज आत्मा की बात सुने सो । कार्य सत्य की निश्चितता हो ? ।।४६।।
वही सत्य जिस में सब का सुख । कभी न हो उस पथ से विन्मुख ।।
सुकार्य छोडे कायर सम जो । वह तो घोर पापमय समझो ।।५०।।

(दो.) धीरे जड़ जन में जमे, सुगम करें आरंभ ।
हृदय-इंद्रियों में रहे, मेल बढ़े नहिं दंभ ।।५१।।
कार्य कदम क्रम से बढें, कृति में हो संतोष ।
उत्तर नम्र विरोध का, लेश न हो आक्रोश ।।५२।।

(चौ.) लोगों को गर बोल सिखाना । पहले अच्छा अपन बोलना ।।
वाणी में माधुर्य सदा हो । प्रेम भाव भी परिलक्षित हो ।।५३।।
ऊबें जैसी बातों से जन । ऐसे कभी करें नहिं भाषण ।।
बात किसी की पूरी सुनना । बीचहि कभी जवाब न देना ।।५४।।
कोई गुस्सा होवे हम से । बातचीत हम करें प्रेम से ।।
उसके वे आघात शब्द के । शांति से हम सदा सह सकें ।।५५।।
क्रोध करे कितना भी कोई । हँस कर टालें उसे सदा ही ।।
जवाब भी दें उसे शांति से । समुचित निश्चित अपने पन से ।।५६।।
भीड़ सदा शंकाएँ पूछे । पग-पग पर लगती है पीछे ।
सहकर भी वे झंझट सारे । कदम बढ़ाने होंगे आगे ।।५७।।

(दो.) एक बार निश्चय हुआ, फिर जन ही दे साथ ।
करने काम समाज का, राह सुगम हो जात ।।५८।।
सहज मिले फल तुरत ही, भीड जुड़े चहुँ ओर ।
उनमें किन किन को लगन, चुन लों कर के गौर ।।५९।।

(चौ.) बनाओ साथी ऐसे ही जन । शक्तियुक्ति भरदो उनके मन ।।
कार्य सौंपदो उनको करने । अपने जैसी राह पे चलने ।।६०।।
मिलते ही कुछ साथी ऐसे । समझो शुभारंभ हो जैसे ।
पूरण काम गाँव-सेवा का । महा पुण्य अपने में सब का ।।६१।।
इससे भिन्न उपाय नही है । करने गाँव-प्रबंध सही है ।।
सिद्धान्तमयी है मंत्र यही । सुधार हेतु निजं गाँव सही ।।६२।।

दो मुँह धूर्त ही ग्राम शत्रु

(मनहरण) *सुन के जवाब मेरा प्रश्न कर्ता सकुचाया ,*
बोल उठा फिर से बड़ा ही जो कुशल है ।
कई दिन लगेंगे बताया मार्ग आचरने,
होगा गांव में क्या तब तक, यही सवाल है? ।।६३।।
आपने बतायी साधना भी है महा कठिन,
कौन साधे यम-नियम? ध्यानासन भी क्या सरल है? ।।६४।।
वर्ष भी लगेंगे कई, शिथिल बनेंगे गात्र,
फिर कौन देखे गाँव हित, सुधा है या गरल है ? ।।६५।।

(दो.) बीचहिं में हम मर गये, इच्छा रहे अधूरी ।
जोन कौन करेगा हमरी, कार्ययोजना पूरी ? ।।६६।।
मार्ग सुगम इससे कहो, सभी सधे जिस माँहि ।
यदि कुछ खर्चा भी लगे, सहर्ष देंगे ताहि ! ।।६७।।

(चौ.) सुनो मित्र! इसका भी उत्तर । मुझको छोड़ गाँव हो सुंदर ।।
ऐसी गर इच्छा है मन की । तो वह केवल पागलपन की ।।६८।।
मेरा गाँव बनें सब सुंदर । बन्सी मेरी बजे अलग पर ।।
दिखता इस ही भाँति असंगत । मित्र तुम्हारा पूरा ही मत ।।६९।।
व्यक्ति शुद्धि के सिवाय दूजा । पैसे से क्या होगी पूजा ?
गाँव गाँव में चले भले व्रत । दिखे न मुझे अन्य इसका पथ ।।७०।।
तू कहता सरकार सुधारे । कानून बने झट पट वैसे रे ।।
तोड़े तुझ जैसे जो उनको । स्वार्थी लोग बचाले तिन को ? ।।७१।।

कौन सुनेंगे कहना ऐसा ? कथन भले हो उदार जैसा ।।
जब जन मानस पहचानेगा । हमारी भी छी-थूहि करेगा ।।७२।।
फिर वैसा भी कर पाने से । गाँव सुधर जावेगा कैसे ?
गाँव बना है जन जन मिल कर । यह भूलें तो विफल सभी फिर ।।७३।।

(दो.) सुधार के नक्शे बना, धन से अमल न होय ।
धन देखत सबकी नजर, ताही पर गड़ि जोय ।।७४।।
कहो 'करूँ' व्याख्यान से', जन रटले व्याख्यान ।
फिर क्या फल होगा वहाँ, नहिं बदला इन्सान ? ।।७५।।

(चौ.) बात यहाँ है असली मन की । अंतःकरण से सेवा व्रत की ।।
तभी गाँव होगा नंदन वन । कोई कहीं भी आडम्बर बिन ।।७६।।
समय नहीं वास्तव में प्यारे! साथ चलेंगे सुधार सारे ।।
करना स्वयं और बतलाना । मन से जन जन को सिखलाना ।।७७।।
बोल, अभी दें इसका उत्तर । कौन इसी क्षण चलने तत्पर ?
अगर नहीं, तो समय हमारा । है अमूल्य, तू गवाँ न सारा ।।७८।।

(दो.) तब निराश हो वह कहे, असंग्रही न जाउँ ।
तो बच्चों को क्या रहें ? लाभ कौन मै पाउँ ।।७९।।
कठिन कार्य यह क्यों करें ? चलने दो जस चलत ।
स्वयं दुखी हो क्यों मरें, गैरन चिन्ता करत ? ।।८०।।

(चौ.) अस सुन कर बोले वे सब ही । गुण्डे बड़े हो सबसे तुम ही ।।
शरम नहीं, चाहते हमारी । मदद डुबाने जनता सारी ।।८१।।
गाँव डुबाया यह तुमने ही । आये शान दिखाने खुद ही ।
इसी तरह से गाँव-गाँव में । घात हुआ निस्संग देश में ।८२।।
समझ मिली मुझ को तुम ही से । गया गर्त में देश इसी से ।।
तुमने गाँव बिगाड़ा पूरा । लगा बुद्धिमानी का तुर्रा ।।८३।।
पहले तुमने हमें बताया । "जो जो सुधार करने आया ।।
गाँव उन्हीं ने सभी हमारा । डुबो दिया बिगड़ा कर सारा" ।।८४।।
साफ हुआ अब झूठ कथन ये । क्यों हंटर तुम पर न उड़ायें ? ।।
वर्ना करो सुधार सही अब । जैसा भी कहते हैं हम सब ।।८५।।

(दो.) पग न उठावे वीर जो, फ़ँसा कीच के खेत ।
बात बदल बोला सुभग, आया दर्शन हेत ।।८६।।
पंडित, साधू, अग्रणी, महंत आते गाँव ।
उन सब से शास्त्रार्थ ही, करना मेरा चाव ।।८७।।

(चौ.) जैसी पढ़ते पुराण पोथी । उस पर वैसी चर्चा होती ।
कौन सुबुद्ध कौन कुछ कम है ? यही देखते फिर फिर हम हैं ।।८८।।
वैसा ही की चर्चा सारी । चलती गप्पें सदा हमारी ।।
भविष्य में भी होगी वैसी । मनो भावना आपकी जैसी ।।८६।।
मगर कसौटी आप लगाते । 'अभी शुरू कर' हुक्म सुनाते ।।
पर विचार तो करना होगा । कुछ वर्षों का समय लगेगा ।।६०।।

(दो.) मैंने उसका सब सुना, अति अकुलाये प्राण ।
सोचा, ऐसे भी किये, प्रभु ! पैदा इन्सान ।।६१।।
हाथ जोड़ उससे कहा, खतम करो सत्संग ।
दिया तुम्हें उस्ताद ने, ग्यान बहुत बहिरंग ।।६२।।

(चौ.) परंतु इससे मूर्ख भले हैं । बेचारे सुन कर चलते है ।।
'यत्न करेंगे हम' कह पाते । घर सद्भाव लिये ही जाते ।।६३।।
तुम तो 'पढ़ेमुर्ख' लगते हो । अन्य के दुख में सुख पाते हो ।।
समुझत भी सच बात न मानत । हम ही अचरज करत लजावत ।।६४।।
पर अब इतना रखो ध्यान में । कभी तुम्हारा भला न इस में ।।
किंतु मिले संतोष सभी को । व्यवहार रूप दें गर चर्चा को ।६५।।

(दो.) श्रोता जैसी बुद्धि का, पहुँच कहीं कोइ जाइ ।
सेवा कारज गाँव के, नष्ट होय पल माहिं ।।६६।।
कथनी में वह अति चतुर, किंतु घिनौने काम ।
बतलाओ फिर किस तरह, इससे सुधरे ग्राम ।।६७।।

(चौ.) छोडे बिन डकैती चोरी । बनना चाहे मुखिया भारी ।।
घूमे कंधे धर पत्नी को । गौरव चाहे संन्यासी को ।।६८।।
ज्ञानी से भावुक बन बोले । मूर्खों में ज्ञानी सम डोले ।।
व्यसनी लोगों से भी मिलकर । भोगे व्यसनों को भी खुलकर ।।६६।।
जहाँ तहाँ वे हों सम्मानित । धन का भी हो संग्रह निश्चित ।।
और न धक्का लगे जरा सा । वे व्यापार चाहते ऐसा ।।१००।।
समझो सब धूर्तता यहाँ है । 'पढ़ा मूर्ख' शास्त्रों ने कहा है ।।
'छुतहा रोग' यही पहचानो । यत्न करो पर असाध्य मानो ।।१०१।।
उससे अपना गाँव बचालो । सच्ची सात्विकता भर डालो ।।
सीधे सच्चे प्रयत्न लोकर । खुद ही ग्राम सुधारक बनकर ।।१०२।।

(दो.) इसका साधन एक ही, जो भी हों मक्कार ।
उनके ही पीछे पड़ो, सिर नित रहो सवार ।।१०३।।

बातों में जो वीर वर, पर ओछा बर्ताव ।
चतुराई से जाँच लो, उन्हें साथ ले गाँव ।।१०४।।

(चौ.) विफल ज्ञान चर्चा न हुई है । ज्ञान शक्ति की कमी रही है ।
ऐसा सोच भूल है भारी । त्यागे जन, है अनिष्टकारी ।।१०५।।
अभय, अदंभ, दयादि सही गुण । गीता मान्य ज्ञान के लक्षण ।।
क्रियावान सो ही है पण्डित । जीवन जिसका सर्व भूतहित ।।१०६।।
लाखों बातूनी नगण्य है । कर्मवीर बस एक सुभट है ।।
सुंदर सूक्ति यही अजमालो । गाँव सुधारो, कार्य संभालो ।।१०७।।
बातें चलती जब 'सुधार' पर । कहो 'चलें', कृति कर लें मिलकर ।।
मिट्टी भरी टोकरी ले लो । सिर पर अपने, फिर कुछ बोलो"।।१०८।।
दे दो सबको काम सही है । सबसे उत्तम मार्ग यही है ।।
ग्राम तभी आदर्श बनेंगे । सत्कार्यों में साथ जो देंगे ।।१०९।।
जीवन नहिं आदर्श बनावे । क्यों आदर्श मान सो पावे ?
कैसा हो आदर्श खड़ा फिर । तुकड्या कहे, जंगत में सुन्दर ? ।।११०।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरु की, शास्त्रमत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
इस सातवें अध्याय में ग्रामीण उन्नति के लिए ।
आचार का प्राबल्य, पथ, अरु धूर्तलक्षण हैं कहे ।।१११।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

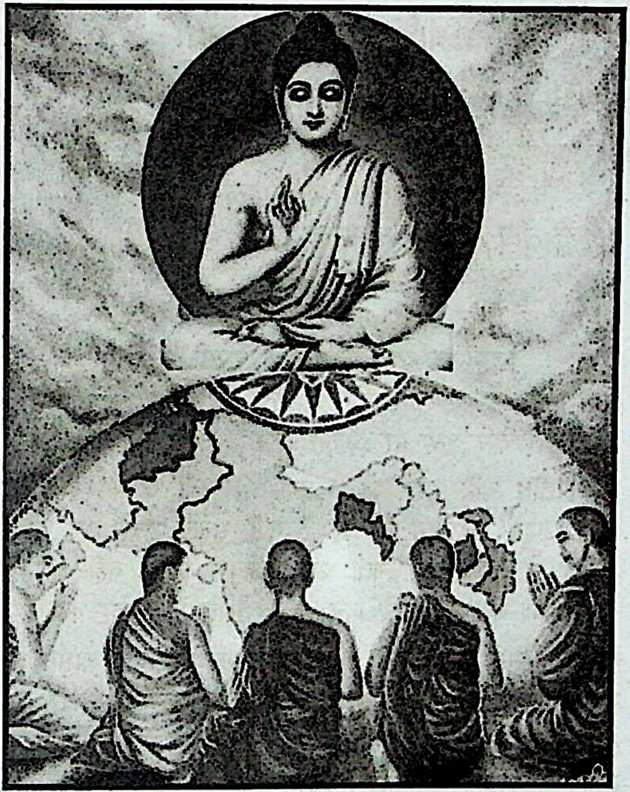

भगवान गौतम बुद्ध

आठवाँ अध्याय

प्रचार–महिमा

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

कानून या प्रेम प्रचार ?

(मनहरण) *एक साधू वेषधारी मुझसे बतलाने लगे,*
उचित ही आचरण यद्यपि हमारे हैं ।।
किन्तु लोग फिर भी न मानते हमारी बात,
दूसरों ने प्रभावित किये वे तो सारे हैं ।।१।।
बुराई की ओर नर-प्रवृत्ति है सहज ही,
दुर्जनों के हाथ प्रलोभन के पसारे हैं ।।
आम तरु को जिलाना कठिन है यत्न से भी,
जिस जमी पर उगाना घास का भी मुश्किल हैं ।।२।।

(सवैया) है परतीत यही मुझ को, कहके भी नहीं जँचता जन को है ।।
कौन उपाय करें इस का फिर? नहिं सुनते पगले छन को हैं ।।३।।
साहब से हि करूँ बिनती अब, कानून बनाए वही शुभ है ।।
दण्ड-सजा-बल से उधरे जन, जिस भाँति जँचे मन कोमल है ।।४।।

(चौ.) बोला मैं, सुन साधु वचन नहि । फिर भगवान हुआ शासन ही ।।
करता भजन मित्र! क्यों प्रभु का? पूजा जूता हीं साहब का ।।५।।
अरे! सन्त का कथन प्रेममय । शासनोक्ति में डंडे का भय ।।
यद्यपि लक्ष्य एक दोनों का । किसी रूप में सुख जन जन का ।।६।।
भले दमन से लोग डरेंगे । कुछ पल शुभ बर्ताव करेंगे ।।
फिर उसमें से राह निकालें । कोटि कोटि पातक कर डालें ।।७।।
वैसा पथ न साधु सन्तों का । स्नेह भावमय कहना उन का ।।
एक बार जब विचार जँचता । भूले नहिं मरने तक जनता ।।८।।
साधु करे प्रार्थना भजन को । देता रहे बोध सब जन को ।।
यही साधु सन्तों का साधन । रहा जगत में सही सनातन ।।९।।
फिरे प्रचारक साधु पुराने । गाँव-गाँव के लोग जगाने ।।
देते पहरा 'अलख' जगा कर । अरुणोदय की बेला घर घर ।।१०।।

(दो.) उनका प्रेमहि कारगर, जन रखते नित नेम ।
रहन सहन बाहर सुघड़, अंतर निर्मल प्रेम ।।११।।

कथा-कीर्तनादिक करे, पाप भीरु जन भाव ।
चले सुपथ जिससे सभी, बिन कानून जमाव ।।१२।।

स्वभाव भिन्नता से मार्ग भेद

(चौ.) जग में है कुछ जन अज्ञानी । औरन देखि करे जो करनी ।।
आदर्श रूप 'जीवन' श्रेष्ठों का । संभव होय अनुसरण उनका ।।१३।।
सोच विचारवान कुछ होते । बात जँचे तो ही तस करते ।
उनके लिए यथार्थ विवेचक । सदा चाहिए उचित 'प्रचारक' ।।१४।।
पड़े प्रलोभन में कुछ भाई! अपन लाभ हित करत भलाई ।।
'सेवक' बन जन स्वर्ग दिखाते । सेवा धन पा दुःख मिटाते ।।१५।।
किन्तु बिना भय अच्छी बातें । कुछ जन तो सुनही नहिं पाते ।।
डंडे बिन जैसे पशु कोई । नहिं चलते सीधे पथ से ही ।।१६।।
फिर उनको हित कौन सिखाये ? कौन मूर्ख का मन बदलाये ?
इसीलिए यह पथ 'सत्ता' का । है सरल सही आगे बढ़ने का ।।१७।।

कानून से श्रेष्ठ प्रचारक

साम-दाम अरु दण्ड-भेद सब ।राजनीति के विविध रूप अब ।।
कर सकते कानून सहारे । जनका जीवन शुद्ध मना रे ।।१८।।

(दो.) गाँव बने कानून से, तत् निदेश व्यवहार ।
आपस में सहयोग भी, होवे विधि अनुसार ।।१९।।
भंग करे कानून का, होवे दण्ड तुरन्त ।
मगर फैसला एक का, जो भी सत्तावन्त ।।२०।।

(चौ.) पर फिर जग में स्वयं प्रचारो । राजा विष्णु-अंश है प्यारो ।
कानून राज का तभी चलेगा । उदय प्रचार तंत्र का होगा ।।२१।।
देश हमार पवित्र देव है । तस कानून प्रबंध सूत्र है ।।
उसे न मानो होगा पातक । यहाँ प्रचार तंत्र आवश्यक ।।२२।।
संविधान, ध्वज, विधि पर श्रद्धा । प्रचार से ही होती पैदा ।।
सिर्फ़ दण्ड भय जो श्रद्धा बिन । नियम बद्ध नहिं रखता हर दिन ।।२३।।
परन्तु अगर ये भय नहिं होते । बल्कि प्रचारहि बहु विधि होते ।।
निज विवेक से चलती जनता । अनुचित उचित का अनुभव आता ।।२४।।
वैसे, विधि की रेख बचा कर । करते पाप नित्य कितने नर ।।
पर भिन्न विचारों के प्रचार से । सहसा कुपथ पाँव नहि निकसे ।।२५।।

(मनहरण) *सार यह संक्षेप में कि सत्ता के नाम पर*
राज करे पूरे ही जीवन में प्रचार है ॥
सत्ता का बंधन इस तरह, सदैव रहे देह पर
कानून उसके बीच बस अंधा भिखारी है ॥२६॥
प्रचार ही मन पर करत संस्कार सभी,
संस्कार वही भीतर से जन को उजारे है ।
बाहर से मानव को सुधारता है राज्य ही,
इसी तरह से देश में गाँव तीर्थ सम बनत है ॥२७॥

(चौ.) अस सुधार पर कभी न होता । है सत्ता का चकमा भ्राता ।
सुजन गरीब वृथा मर जाते । छलिया राज के लाभ उठाते ॥२८॥
सत्ता जो कानून बनाये । लाभ सभी मुँहजोर उठाये ।
रहे दीन भोले पीछे ही । हुआ आज तक सब जग यह ही ॥२९॥
समझो नहिं कानून ही सब कुछ । प्रचार जैसा श्रेष्ठ न अंकुश ॥
दे मानवता पाठ सभी को । गुप चुप करे नियंत्रित मन को ॥३०॥
कितने राजा आये, गुजरे । नष्ट हुए उनके विधि सगरे ॥
दरबारहु उजड़े सत्ता के । राज निरंतर हैं सन्तों के ॥३१॥
सन्तों का उपदेश अमर है । आजहु अंकित जन मन पर है ॥
राज हृदय पर उसका चलता । जिससे जीव लाख उद्धरता ॥३२॥

(दो.) सत्ता का डंडा नहीं, नहिं सन्मार्ग में भीति ।
उपदेश सूर्य देता दिखा, निज कर्तव्य और नीति ॥३३॥
कमी जदपि रह समझ में, तहुँ माने अपराध ।
ऐसे दण्ड विधान से, बढ़े विकृति निर्बाध ॥३४॥

(चौ.) दण्ड में यदि अन्याय न होते । लोग सुधर सत्पथ पर चलते ॥
तो न जेल ही बढ़ते जाते । नहि गुनाह अधिकाधिक होते ॥३५॥
यही जान कहते है सज्जन । अन्तर्ज्योति जगाओ निज मन ॥
मानव वृत्ति तभी सुधरेगी । दुनिया यह आदर्श बनेगी ॥३६॥
जो भी कहते सत्ता के बिन । आदर्शवान नहिं पायेंगे बन ॥
उनका कथन सत्य यह नाहीं । गाँठ बाँध कर रख लो भाई! ॥३७॥
चाहिए उस हित सही प्रचारक । सरल प्रेममय विनम्र भावुक ।
पूरन करें काम जन जन के । सत्ता बिना धुनी सेवा के ॥३८॥

(दो.) है महान जन शक्ति! गर, उसे गठित कर पाय ।
अपने बल से स्वर्ग पर, दे झंडा फहराय ॥३९॥

हाथ बिना तलवार ले, जगत बुद्ध का राज ।
कारण सद् उपदेश ही, सप्रभाव तेहि काज ।।४०।।

उपदेश कला महिमा और आदर्श प्रचारक

(चौ.) अब तक काम हुए जो जग में । किये प्रचारक ने ही सच में ।।
सही प्रचारक जहाँ मिले नहीं । रुके काम उस कारण सब ही ।।४१।।
मूल मंत्र यह ग्राम सुधारक । प्रचार तंत्र नीक आवश्यक ।।
बिना प्रचारक सभी तरह के । पड़त अड़ंगे राह में जन के ।।४२।।
जिधर प्रचारक पीठ घुमा दे । उधर सूर्य निज तेज गँवा दे ।।
उदासीनता की तम-उलझन । रहे फैलती प्रचार के बिना ।।४३।।
जहाँ उपदेश प्रभाव फैलता । स्वर्ग समान गाँव बन जाता ।।
वहाँ न्याय से होय सुशोभित । जन का जीवन सुंदर निश्चित ।।४४।।
मरे हुओं में प्राण फूँक दे । कार्याभिमान् सभी में भर दे ।।
विगाडना अरु सुधार दोनों । प्रभाव प्रचारक का ही मानो ।।४५।।

(दो.) है प्रचार उत्तम कला, मानस की भावना ।
प्रचार तंत्र बनता कहीं, पेटहु की साधना ।।४६।।
प्रचार से झूठा बिके, पत्थर भी भगवान ।
प्रचार फूंके रण-बिगुल, बरसा अमृत पान ।।४७।।

(चौ.) स्वभाव ही है कुछ लोगों का । कुप्रचार जेबें भरने का ।।
जनता लूटें इसी में कुछ जन । पावें सुख आनन्द होत मन ।।४८।।
पर वे बुरे प्रचारक सारे । मर कर स्वयं और को मारे ।।
कलंकित श्रेष्ठ गाँव का जीवन । घर परिवार अशांति भरे मन ।।४९।।
उनका जहरीला प्रचार जब । प्रबल पूर्ण छा जाय गाँव तक ।।
सत्प्रचार का महत्व होगा । परिवर्तन भी सहज फलेगा ।।५०।।
जब तक मन में नहि रम जाये । प्रचार निरंतर चलता जाये ।।
इसके लिए प्रचारक का मन । उस में समरस हो रंग जीवन ।।५१।।

(दो.) मित्र ग्राम आदर्श हित, श्रेष्ठ प्रचारक खोज ।
काम ठीक तब आपके, चले गांव का रोज ।।५२।।
रानी बैठी तहँ चली, मधु मक्खियाँ कतार ।
सृष्टि देखते ही सजी, ऐसे होत सुधार ।।५३।।

(सवै.) श्रोतृजनों ने सवाल किया, निज गांव में पूर्ण प्रचार करेगा ।।
लक्षण ऐसे प्रचारक के कह दो, जन में जो विचार भरेगा ।।५४।।

कैसी प्रचारक की रहनी, व्यवहार, सुभाव अरु भाषण कैसा?
साधन, साध्य, नियोजित पद्धति, ग्राम हितार्थ सुजीवन कैसा ? ।।५५।।

(चौ.) जवाब इसका सुन लें सब जन । होंय प्रचारक में जो जो गुण ।।
अंगीकार करे जो कोई । सहज सुधारे जन को सोई ! ।।५६।।
भविष्य गांव का करने उज्ज्वल । अनिवार्य प्रचारक-शक्ति प्रबल ।।
प्रचारकों में ही सुशीलता । सत्य, चारित्र्य और नम्रता ।।५७।।
मुख्य प्रचारक के हैं ये गुण । कार्य करें वे सत्ता के बिन ।।
आत्म शुद्धि से गांव सुधारें । इसी कला को सदा सँवारें ! ।।५८।।
नहिं उस को चाहत सत्ता की । धन का मोह न मन में बाकी ।।
आत्म प्रेम का बहता झरना । मन में शक्ति भरे दिन रैना ।।५९।।
होय प्रचारक सरल स्वभावी । दुष्ट वृत्ति का काल प्रभावी ।।
अंतरंग जल से भी निर्मल । सदा अहिंसक वृत्ति सुमंगल ।।६०।।
रहे बोलने में जो निर्भय । श्रम करने में आगे निश्चय ।।
रहे सदा आदर्श आचरण । वही प्रचारक वश करता जन ।।६१।।
प्रचार की दिनचर्या सुंदर । व्यर्थ गंवाए समय न पल भर ।।
जो जो सेवा कार्य भला है । वही सही सब कुछ करता है ।।६२।।

(दो.) सत्व तेज है नयन में, भरा वचन में ओज ।
प्रचारक जीवन में सहज, वैराग्य-त्याग की मौज ।।६३।।
डंठल टूटत पके फल, तसहि प्रचारक चित्त
विषय इंद्रियासक्ति से, होता जाये मुक्त ।।६४।।

(चौ.) रहा इंद्रियों में उन्मेशन । उन्मुख हुई सभी सेवा प्रण ।।
वर्षा, गर्मी या जाड़ा है । सब ही उसको इक समान हैं ।।६५।।
मन न उदास प्रचारक का पर । हँस मुख दिखती मूर्ति निरंतर ।।
स्फूर्ति कार्य करने की दिल में । उमगे और दिखे पल पल में ।।६६।।
कभी चिडचिडा होय नहीं पर । विपदा का पहाड टूटे गर ।।
करके वह जी-तोड परिश्रम । लोग लगाये पथ से उत्तम ।।६७।।
नहीं प्रचारक का अपना घर । सब घर उसे 'मायके' सुंदर ।।
अखिल विश्व में सभी लोग ही । उसके सम गोत्रज मानव ही ।।६८।।

(दो.) मोह न सत्ता का कहीं, कहाँ प्रतिष्ठा मान ?
निज हित काहू से कहूँ, नहिं माँगे धन-मान ।।६९।।
पर करने सत्कार्य को, माँगे भू धन मान ।
माँगे बिन संकोच वह, माँगे सर्वस प्रान ।।७०।।

(चौ.) अपने लिए नहीं कुछ भी है । जो भी करे वही सब का है ।।
कर दें अपने प्राण समर्पण । इसी भाव से सेवा कारण ।।७१।।
करना बस है सबके खातिर । आत्मा के अरु प्रभु के खातिर ।।
मानवता का रचने मंदिर । सुमतिपूर्वक जग में सुंदर ।।७२।।
उसमें बची एक ही इच्छा । सुख से सुधरे समाज सच्चा ।।
मानव की दुर्दशा दीनता । मिट जाये मन की मलीनता ।।७३।।
सब की हो प्रार्थना एक ही । सभी काम मानव पूरक ही ।।
रहनी सबकी समान, सात्विक । सब के हित की समान साधक ।।७४।।
इसीलिए ले कष्ट प्रचारक । संकट में भी गिरे भयानक ।।
लगता उसे, प्राण भी अपने । करें समर्पित आगे बढ़ने ।।७५।।

(दो.) प्रचारकों की साधना, संतन से कम नाहि ।
ऊँचा शिखर प्रचार का, संतत्वहि जग माहि ।।७६।।
खरे प्रचारक सन्त जस, समझाते जग-हेतु ।
दिखा जगतमें सत् असत्, काटें भ्रम का केतु ।।७७।।

(चौ.) बने वहीं से प्रथम प्रचारक । सत् समाज के होकर साधक ।।
शंका समाधान भी सुनते । चित्त लगा कर उसको गुनते ।।७८।।
बोध होय जिस क्षण ही जिनके । आनद तरँग होय मन तिन के ।।
अभ्यास उसी का फिर सुंदर से । करे सुदृढ़ सो सत्संगति से ।।७९।।
मनन से आत्मसात वे करते । मति विचार वैसे फिर बनते ।।
वाणी में घुल जाय सुमति गर । सीधे कदम चलें उसके फिर ।।८०।।
फूँके कान महान पुरुषने । समझो मंत्र लिया है उसने ।।
फिर तो चले हवा के जैसा । सर्वत्र प्रचार उसी का वैसा ।।८१।।

(मनहरण) प्रचारक का प्रचार ही, आगे प्रचार करे ।
आंधी जस वेग होत, उसके सुविचार का ।।
पहुँची न गाड़ी जहाँ, पहले ही पहुँचे वहाँ,
संदेश तूफानी उसका और उसकी बात का ।।८२।।
जो भी जहाँ कोई, जिसे भी जहाँ मिले,
लगता है करने जिक्र, खुद ही उसकी बात का ।।
बादल के समान वह, घुमड़-घुमड़ सभी दूर
कोई लेता अनलेता, चीन्हे बिना बरसा करे नेह का ।।८३।।
फटे हाल दिखे कोई, गरीब अमीर कोई हो,
विद्वान शिक्षित हँसे रूठे, प्रचार उसका बंद नहीं ।।८४।।

कोई किसी पंथ का हो, द्रष्टांत उसी का दे उसे,
प्रचार की उस बाढ में, गड्ढे सभी भरे दिखत हैं ।।८५।।
आँखों देखी मुख-कली, प्रचारक-वाणी खुली,
तोते जैसी बातें चली, 'हाँ-ना' हर चंद हैं ।।८६।।
लोग कहे 'रुकना' प्रचारक का काम बना,
फिर बढे शब्द गंगा राह से सानंद है ।।८७।।

(चौ.) वचन प्रचारक होते तात्त्विक । बिना चूक वे संशय छेदक ।।
हैं मार्मिक पर नहिं मर्मान्तक । हृदय सरस सुख आनन्द दायक ।।८८।।
भले विरोधक बके गालियाँ । हँस कर उनका क्रोध सह लिया ।।
समझा देते मधुर वचन से । अपनी बातें सब लोगों से ।।८९।।
सहन शीलता शक्ति है उसकी । वाणी में अप शब्द न उसकी ।।
वाद विवाद कहीं गर होता । तब भी वह गांभीर्य न खोता ।।९०।।
किसको भी 'हट' नहीं बोलता । मन में गहरी सहन शीलता ।।
सादी बातों में आवश्यक । समझा दे सिद्धान्त प्रचारक ।।९१।।
मीठे शब्दों से बांधे मन । प्रेरित करे गाँव-सेवा जन ।।
तरह-तरह से काम कराना । हिल-मिल सब मिल छोड़ किसे ना ।।९२।।

(दो.) दे सँवार बिगड़े कुटुम, मेल करे जहाँ फूट ।
दया जगा निर्दयी में, करके यत्न अटूट ।।९३।।
प्रचारकों की साधना, कहते बने न एक ।
तरह तरह की योजना, उनके पास अनेक ।।९४।।

(चौ.) कहीं भजन से प्रचार करता । कहीं प्रार्थना से मन भरता ।।
कहीं सुनाय कहानी प्रेरक । परिवर्तन कर हृदय प्रचारक ।।९५।।
कहीं करे कीर्तन या प्रवचन । कहीं पँवाड़े, तुमड़ी गायन ।।
मथ डाले वह उत्सव मेले । अपनी बात प्रचारक बोले ।।९६।।
कहीं घुसे वह उद्योगों में । ले जन खींच कला रंजन में ।।
कहीं मनोरंजन माध्यम से । प्रचार होय आंधी की गति से ।।९७।।
स्फूर्ति कहीं कसरत से भर दे । दावत में ही सभा जमा दे ।।
कहीं मंगल विवाह में ही वह । काम शुरू कर धूम मचा दे ।।९८।।
कहीं जयंती पुण्य तिथी हो । यज्ञोपवीत का संस्कार हो ।।
समय पडेगा जैसाभी जब । करे प्रचारक स्वभाव से सब ।।९९।।
दर्जी की दुकान में बैठा । नाई के सैलून में पैठा ।।
चाहे हो चौपाल या चौरा । चारों ओर प्रचार पसारा ।।१००।।

वही करे बाज़ार-हाट में । भेद न कोई नौटंकी में ।।
प्रचारकों की सदा चटपटी । चलती रहती जीभ बावरी ।।१०१।।

(दो.) माँ-बहनों में बैठकर, ले घर वाले खींच ।
क्या जाने किस मार्ग से, घुसे प्रचारक बीच ? ।।१०२।।
हो गायन या व्यसन हो, हो मजाक या काम ।
चलते फिरते, खेलता, रंग प्रचार अविराम ।।१०३।।

(चौ.) बने बालकों में वह बालक । युवकों में बुध युवक प्रचारक ।।
देने वृद्ध जनों को सात्विक । हैं उसमें भी अनुभव तात्विक ।।१०४।।
शिशुओं को सेवा समझाये । कन्याओं में कला जगावे ।।
मोहे युवक-युवतियों का मन । लगे गाँव-सेवा सो निशि दिन ।।१०५।।
व्यसनिन की भी करता संगति । परंतु जगाने उनमें सन्मति ।।
अस व्यवहार सहन हैं उसके । कल्प-दांव नस कभी न चूके ।।१०६।।
विविध कलाएँ उस के तन में । होय जरूरी जो जिस पल में ।।
सावन दे बिखेर रंग नाना । जग मग होय प्रचार सुहाना ।।१०७।।
संगति स्वरहु तासु मन मांही । कड़े प्रचार, सुमधुर शुद्ध ही ।।
ऐसी अनूप प्रचारक करनी । गाँव किया वश ज्यत्त मोहनी ।।१०८।।
वही प्रचारक प्रिय सब के मन । जिसे देखते हो संमोहन ।।
वह कह दें तो दौड़ पड़े जन । ग्रान कार्य में सभी उसी क्षण ।।१०९।।

(दो.) गाँव गाँव घूमत सहज, होत सबहि जन साथ ।
कहे प्रचारक जो उन्हें, सब करते वह बात ।।११०।।
यही प्रचारक जादुगर, मुट्ठी में जन सिंधु ।
शिल्पकार नव सृष्टि का, सीधा सादा बंधु ।।१११।।

(चौ.) क्षमता सबसे बातचीत की । अंग अंग में कांति ज्ञान की ।।
रोम रोम वैराग्य अंकुरित । वही प्रचारक करे विश्व हित ।।११२।।
इसके कारण अस आकर्षण । दौड़ आते पक्षी समान जन ।।
गाँव बनाना स्वयं पूर्ण गर । होय प्रचारक अस जादूगर ।।११३।।
जिसके मन में महान निश्चय । लेता थाह करे जो भी तय ।।
सभी तरह के उपाय करता । संकल्पित अस लक्ष्य भेदता ।।११४।।
महाप्रबल है प्रचार उसका । चले अहर्निश छू दिल सब का ।।
प्रचार के बिन कभी न कोई । शब्द न निकले, बात न होई ।।११५।।
'क्या करना' बस यही बात है । 'ना' नहिं फटकत कहीं पास है ।।
उसका जीवन कोष भरा हैं । 'नहीं' शब्द उससे निकला है ।।११६।।

क्या क्या किस किस गाँव नहीं है । उसे लगे गर खबर यही है ।।
कार्य हाथ में वह लेकर के । उसकी पूर्ति दिखावे कर के ।।११७।।
गलती होय बताये उस की । बड़ी कला सो जन जीवन की ।।
लोगों में सत्कार्य चेतना । भरे प्रचारक नई प्रेरणा ।।११८।।

(दो.) जो प्रचार कर में लिया, हुआ समझ लो पूर्ण ।
वर्ना समझो हो गया, स्वयं प्रचारक चूर्ण ।।११६।।
अधिष्ठान है गाँव का, प्रथम प्रचारक मान्य ।
कमी हो जो उसको भरे, करे गाँव को धन्य ।।१२०।।

(चौ) सारांश यही जिस गाँव प्रचारक । पंढरी दूसर वहीं लोक इक ।।
आनन्द मगन होवे नाचत सब । जन,मन और शिला-पत्थर तब ।।१२१।।
गाँव प्रचारक चुन लो ऐसे । लोग रहें फिर सुख वैभव से ।।
गाँव-गाँव में सेवा मण्डल । गठित करो सेवार्थ सुमंगल । १२२।।
जो भी ऐसा गाँव बनाए । सो ही कीर्ति ध्वजा लहराये ।।
इसीलिए अब आज अभी ही । करे शुरू सुप्रचार कार्य ही ।।१२३।।
यही बराबर कहा सो मैंने । भिड़ा प्रचारक तयार करने ।।
फिर प्रचार से उनके द्वारा । हुआ दास मैं सब का प्यारा ।।१२४।।
सही ग्राम निर्माण सहायक । स्तंभ मुख्य है भला प्रचारक ।।
उद्देश्य इसी को पूरा करने । रची ग्राम गीता तुकड्यां ने ।।१२५।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरुकी, शास्त्रमत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
इस आठवें अध्याय में, जीवन प्रचारक का खिला ।
सत्ता विचार, प्रचार महिमा और कह दी वह कला ।।१२६।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

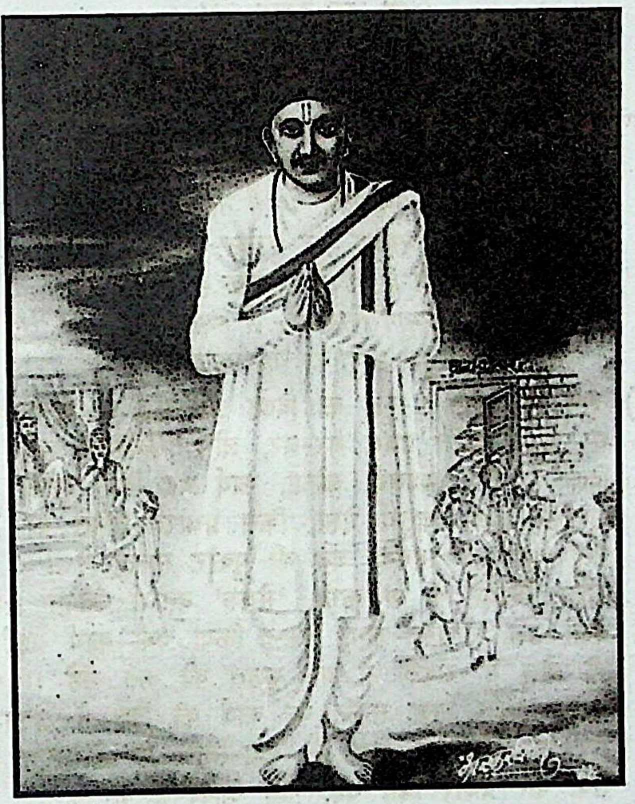

श्री संत दामाजी महाराज

नौवाँ अध्याय

सेवा–सामर्थ्य

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

प्रचारक बिन प्रचार कार्य का मार्ग– 'सेवा'

(मनहरण) *श्रोताओं ने कहा, हमें ज्ञात हुआ है महत्त्व*
प्रचार कार्य का, जो कि आपने बताया है ।।
किन्तु ज्ञान कला पूर्ण कार्य यह है महान,
सभी को सधेगा ऐसा भरोसा न आया है ।।१।।
मिलना कठिन ही है आदर्श प्रचारक का,
दूसरा सुमार्ग फिर कौन है हमारे लिए ?
ग्रामोन्नति-हेतु मन में दुविधा यह समाई है ।।२।।

(हरि.) सुन लो सुजन ! मुझे का दिखा इक गाँव था सुन्दर महा ।
था शिस्त शांति प्रबंध घर-घर, लोग निर्व्यसनी वहाँ ।।३।।
दिल में जगा आश्चर्य, खोजा, कार्य यह किस व्यक्ति का ?
सुफलित हुआ चातुर्य ऐसा, किस प्रचारक-शक्ति का ? ।।४।।
नेता बढ़ा तब सामने, जब की पुकार समाज ने ।
बोला, शिविर में था कभी, 'सेवक' बनाया आपने ।।५।।
देखा उसे, अचरज लगा, इसने किया क्या कार्य यह?
जो बोल भी सकता न था, कुशल की बात कँहें ।।६।।
दिखता बहुत सादा सरल, पर कार्य की दिल में लगन ।
सब को लगे प्रिय हृदय से, सेवा-सगुण में जो मगन ।।७।।
सेवा करे प्रचार बिन वह, गाँव आकर्षित करे ।
है यह रहस्य उसे समझ, कारज करे मन में धरे ।।८।।

(चौ:) 'सेवा' शब्द बिना बोले भी । सुखी सभी जन बाल वृद्ध भी ।।
सहज हृदय जीते वह पल में । बढ़े आत्मीयता जन जन में ।।९।।
होय प्रचार विविध साधन से । संस्कार बनें सुन्दर उस से ।।
पर सेवा बिन निश्चय मन का । टिका रहे नहिं सदैव जन का ।।१०।।
सेवा से मन हर जब लेंगे । तभी मोड़ उस को पायेंगे ।
उपदेशों के असर से केवल । जीवन में नहिं टिकत कार्यबल ।।११।।
अहो ! न बोले भला प्रचारक । किन्तु आचरण दे जन को सुख ।।
सेवा प्रेमहि उसका सर्बस । मोहित करइ ग्राम जन बरबस ।।१२।।
जब जब जिस जिस राह चले वह । कदम कदम नव कार्य करे वह ।

देखत हीं जन विनम्र होते । वे ही उस का कार्य बढ़ाते ।।१३।।
यद्यपि नहिं वह वक्ता अच्छा । नहिं उपदेशक, नहिं व्याख्याता ।।
पंडित वक्ताओं से भी फिर । जन में नाम उसी का ऊपर ।।१४।।
ऐसे ही जग गाँव सुधरते । देश-नाम वह उज्ज्वल करते ।।
भले न उनको जानें कोई । वन फूलन जस सुगंध होई ।।१५।।

(दो.) महल बडे ऊँचे खड़े, दिखती शान अपार ।
पर पत्थर के नीव ही, हैं उनके आधार ।।१६।।
दिखे न पत्थर नीव का, पर उसका ही मान ।
सेवा राष्ट्र-उत्थान में, सब से ऊँची जान ।।१७।।

(चौ.) प्राणी जिस की सेवा करता । मन मोहित कर उसे जीतता ।।
फिर उदारता उपजे मन में । छोड़ लंगोटी, सब दे जग में ।।१८।।
मृग को सुंदर गान सुनाया । उसका हृदय प्रसन्न हो गया ।।
फिर उसका लूटा सर्वस ही । है जग की यह रीति अनकही ।।१९।।
सामर्थ्यवान सेवा से होता । जो जो बोले सच्चा होता ।।
औरों के या अपन हाथ से । होय काम सब तस प्रताप से ।।२०।।
जिस दिन होय भरोसा जन को । मान मान्य सेवा भगवन को ।।
कौन बात की उसे कमी फिर? जो चाहे आ जाय दौड़ कर ।।२१।।

सेवक का प्रभाव

सेवक का संकल्पहि है सब । इच्छा होतहि घर प्रकटत सब ।।
चाहे हो जिस मार्ग सुभीता । होता है सब ही मन चीता ।।२२।।
पर वह अपने लिये नहीं है । सेवक माने सदा यहीं है ।।
यही सही वैभव सेवा का । भोगानंद सतत सेवक का ।।२३।।

(दो.) उपभोग वासना होत ही, सेवा समझो खत्म ।
दिन दिन निंदा फिर बढ़े, यही जगत का नेम ।।२४।।
सेवा ही धन मानता, नहीं अपेक्षा आन ।
घर-घर उस को पूजते, होय वही भगवान ।।२५।।

(चौ.) लोग न पूछें धनवानों को । लोग न पहचाने सत्ता को ।।
परन्तु चरण सेवाधारी के । पूजत जन जन बिना हिचक के ।।२६।।
हुए पूज्य जितने भी जग में । गौरव पाये सब सेवा में ।।
सेवा तजे सो होय राक्षस । देवों द्वारा अवसि मरन तस ।।२७।।
संत दामजी ने सेवा की । लुटा भंडार घड़ी विपदा की ।।
किया देव ने उनका आदर । किया अदा ऋण खुद ही जा कर ।।२८।।
जहां कहीं ऋण देव चुकाए । समझो मन में भगवन आये ।।

निपट अजनवी भी धन दे कर । बिपत हरे अनघर में जा कर ।।२६।।
किसकी मन-वाणी क्या छाये । रहस्य इसका कौन बताये ?
यदि है कर्म पुण्य कुछ नीका । प्रमाण एक बस जन सेवा का ।।३०।।

सेवा की सर्वश्रेष्ठता

(दो.) सभी कर्म, व्रत आचरण, वन घूमे या तीर्थ ।
सेवा जन की तहँ करें, तभी मिले सत्कीर्त ।।३१।।
यज्ञ तीर्थ व्रत आदि सब, पात्रहि भोजन दान ।
माने सेवा पुण्य सो, मिथ्याडम्बर जान ।।३२।।

(चौ.) जिसे जरूरत उसे न देवे । क्षेत्र पवित्र मान उलिचावे ।।
पुण्य कभी भी जन सेवा का । उससे मिले नहीं भ्रम मन का ।।३३।।
'तीर्थ पुण्य की खान' यही तय । 'ग्राम निवासी सभी पापमय ।।
कहते संत उसे न मिले फल । तीर्थहु उसे सिर्फ 'झरना' जल ।।३४।।
काशी की गंगा जल काँवर । अंजुलि पान करे प्यासा नर ।।
कोटि पुण्य इसमेंहि तीर्थ से । बता गये प्रभु एकनाथ से ।।३५।।
सेवा कर खुद कष्ट उठाना । जीव जंतुओं को सुख देना ।।
करना सुखी ग्राम जन सारे । पुण्य यही सेवा का प्यारे ! ।।३६।।
जो भी यह सेवा कर पावे । भव बन्धन उसका कट जावे ।।
मिले हृदय में सखा दयाधन । कभी न चूके नियम चिरंतन ।।३७।।
सेवा सही सही धन संपद । जन्म-जन्म में रहे निरापद ।।
पूजन सेवा मयी ग्राम का । विश्वाभिमान बढ़े अन्तर का ।।३८।।

(दो.) सदा कहूँ सेवा करो, यही मार्ग अभिराम ।
जन्म अपन उद्धार कर, उद्धर लो निज ग्राम ।।३६।।
होगी यों सेवा सही, तब ही जीवोद्धार ।
तभी गाँव उन्नति, सभी भाँति सुख सार ।।४०।।

स्वार्थी सेवा प्रचार

(चौ.) यों तो सबही करते सेवा । कोइ घर सेवा, कोइ जन सेवा ।।
पर क्यों नही होता उन से । ग्रामोद्धार बता दे हम से ।।४१।।
सेवा होत सब ही हैं तत्पर । सेवा का व्यवहार निरंतर ।।
इस सेवा के रूप अमित हैं । किन्तु भावना अलग-अलग हैं ।।४२।।
'अपने गांव का मैं पटेल हूँ । उसी के हित सेवा करता हूँ' ।।
सेवक अस खूशहाली होता । किन्तु गरीबों को दहलाता ।।४३।।
बैल खड़े थे भूखे उस के । देर से लौटे खेत जोत के ।।
कहे पटेल दया नहिं थोड़ी । 'साहब जायँ, जोत ले गाड़ी' ।।४४।।

दोपहरी तक काम किया हो । भोजन को नहिं वक्त मिला हो ।।
उनको भी पटेल बुलवा ले । बेगारी में काम करा ले ।।४५।।
भूखन मारि बैल अरु नर को । करता हैं वह खुश साहब को ।।
साहब देता धन्यवाद है । अपार सेवा यादगार है ! ।।४६।।

(दो.) होय ब्याह निज गेह में, गाँव विघ्न नहिं छोर ।
काम करें भूखन मरें, डटकर खावें चोर ।।४७।।
प्रीति भोज दे गाँव में, जुटें चूनिंदा सेठ ।
कदर गरीबों की वहाँ, करते मटियामेट ।।४८।।

(चौ.) 'चलबे साली' कहकर कोई । करे इकट्ठा लोग लुगाई ।।
काम धाम घर के सब छोड़ें । कर बेगार रात दिन दौड़ें ।।४६।।
बने काम सुन्दर सुख राशि । जागिरदार पाय शाबाशी ।।
कामगार हाँके सब भूखे । सेवा ऐसी भी जग देखे ।।५०।।
'साहब गाँव हमारे आते' ।रात रात सब लोग जागते ।।
कमरतोड़ मेहनत करते सब । गाँव दुरुस्ती हो पूरी तब ।।५१।।
मुखिया लंबी बात बनाये । कपड़ो में सिलवट नहिं आये ।।
शाबासी मिलती उसको ही । जनता रहती खड़ी दूर ही ।।५२।।
गाँव बना जब अतीव सुंदर । जुते काम जब सब नारी नर ।।
बड़ा खिताब अकेला पावे । 'नेता सेवाशील' कहावे ।।५३।।

(दो.) अति सुंदर मंदिर बना, पैसा लगा अकूत !
गूँजे नाम 'उदार' तस, को जाने करतूत ? ।।५४।।
लूट पहले जन-जगत, लगा धन अम्बार ।
उसमें से देवल बना, घटी न एक किनार ।।५५।।

(चौ.) करके चोरी धनिक हुआ जो ।'दानवीर' बन लेत दुआ सो ।।
बदला नहीं गरीब बेचारा । ज्ञान नहीं मेहनत कर हारा ।।५६।।
'सेवक' का आदर्श रखें जन । करके फोटो का उद्‌घाटन ।।
कहते 'दाता' जिन्हें भिखारी । ऐसी है यह सेवा भारी ।।५७।।
करे भजन ईश्वर का कोई । लोभ प्रतिष्ठा का मन होई ।।
'हम सेवक हैं' कहकर उनको! लूटा भोले भाले जन को ।।५८।।
चारों ओर बिछा कर फंदा । बटोरते मन चाहा चंदा ।।
'बनी धर्मशाला सेवा मित' । बन मालिक साधें अपना हित ।।५६।।
करते फंड इकट्ठा जा कर । पहले ज्ञान अपार बता कर ।।
जन सेवा का कार्य अपरिमित । करे विविधि बातें रेखांकित ।।६०।।
नाना लाभ दिखा कर उस में । करते लोगों का मन बस में ।।
बचत नाम भर सेवा आखिर । राज स्वार्थ का चले वहाँ फिर ।।६१।।

कुछ तो यज्ञ याग कराते । 'विश्व शांति' का ध्येय बताते ।।
अतिथि बने सेवा करवाते । फिर भी सब 'सेवक' कहलाते ।।६२।।

(दो.) **मदद मिलेगी लक्ष्य कर, रचें धर्म के काम ।**
चैन करत सेवक बनें, फैलावे निज नाम ।।६३।।
सेवा अपनी होन हित, नतरु कौन ले कष्ट? ।
मिले प्रतिष्ठा तभी जन, होते हैं संतुष्ट ।।६४।।

(चौ.) कुछ लोगों ने जनसेवा की । नाम न हुआ, तभी झट फेंकी ।।
उलटे झगड़े वहाँ मचाते । 'अपना क्या है?" सीधे कहते ।।६५।।
विशिष्ट जन को खुश करने का । शुरू किया धंधा सेवा का ।।
तिनन जन जीवनहि नसाया । भ्रष्ट चलन जन में फैलाया ।६६।।
एक तमाशगीर मिल गया । वेश्या जोड़ के नाच कराया ।।
कहता, मैं जन सुख की खातिर । सेवा अर्पित कष्ट उठा कर ।।६७।।
रिश्वत काला बाजारी भी । कहते कोई है सेवा ही ।
अपने बुद्धि समर्थन से ही । हरते लोगों की कठिनाई ।।६८।।
किसी ने भिखमंगे हि जुटाये । गाँव-गाँव में तिन पहुँचाये ।।
उनसे भी पैसा रखवा कर । सेवा करें अनाथ की सुंदर ।।६९।।

(दो.) **तन मन से सेवा करे, तब तक आँख मुदाय ।**
फोटो तक की चाकरी, बाद ढूँढ नहिं पाय ।।७०।।
सेवक बन 'यात्रा' गये, घूम लिये चहुँ धाम ।
फिर बेचारे घर बसे, मतलब तब तक काम ।।७१।।

(चौ.) कितनों ने तो जन चेताये । सेवा के बल गुट्ट गिराये ।।
अन्दर चलती मिली भगत ही । स्वार्थ सधा फिर क्या हैं व्रत हीं ?।।७२।।
जनना का मत अर्जित करने । सेवा का व्रत लिया किसी ने ।
मिली हाथ में सत्ता आखिर । सेवा का प्रण करता जाहिर ।।७३।।
'वर्ष गये सेवा में कितने । सत्ता का अधिकार बरतने" ।।
कह कर खून चूसते जन का । दम भरते हैं मगर प्रगति का ।।७४।।
सेवा शुरू करे कोई कोई । चूके समय मगर पहले ही ।।
जिनकी सेवा हाथ उठाई । कमर तोड दी उनकी भाई ।।७५।।
सेवा करने साधू आते । दूल्हे के सम ऐंठ जताते ।।
भूले सब कारज सेवा को । पलड़ा भारी हुआ इन्ही का ।।७६।।

(दो.) **अब तक जन यूंही फँसे, सावधान सब कोय ।**
बिन विचार सेवा चली, नाश उसी से होय ।।७७।।
सेवा फर्जी अब नहीं, बढ़े सही सहयोग ।

काम परस्पर लें निभा, नहीं लोभ का रोग ।।७८।।

(चौ.) होवे सबका समाधान नित । सेवक-सेवा भावी संयुत ।।
सेवा लेने-देने वाले । तुष्टि उभय की निश्चित कर लें ।।७९।।
देख दांभिक सेवा नहिं हो । भीतर-बाहर रूप एक हो ।।
सेवा न हो कभी भी कृत्रिम । सुंदर कागज के फूलों सम ।।८०।।
सेवा न हो प्रतिष्ठा के हित । ले न स्वार्थी सेवा का व्रत ।।
नष्ट करे जन जीवन शांति । दुष्परिणामी सेवा भ्रांति ।।८१।।
सत्सेवा निष्काम कर्म ही । जान परस्पर सौख्य मर्म ही ।।
करे सहर्ष त्याग उद्यम जो । सेवा भावी समझो उसको ।।८२।।
जो भी अपना घर बिसरावे । वही 'गाँव मेरा' कह पावे ।।
वही करे गा पूरे मन से । सेवा गाँव की अपने पन से ।।८३।।
माया व्यापे जिस को घर की । कसम खाय नहिं सो जन हित की ।।
हो मधु भाषी भी पंडित ही । लोग न उसका सुनते मत ही ।।८४।।
घर का स्वार्थ लगा है जिस का । धंधा होता सेवा उस का ।।
समझ लिया ऐसा जनता ने । कौन उसे फिर मन से माने ? ।।८५।।

(दो.) स्वार्थ हेतु साधू बने, नेतहु कहूँ महान ।
यों तो देते स्वार्थ में, कितने भी निज प्राण ।।८६।।

निष्काम सेवा व्रती बनो !

हुआ स्वार्थ से मुक्त जो सेवा रत निष्काम ।।
चमक उठे सेवक वही होय विश्व मे नाम ।।८७।।

(चौ.) समझें सभी कार्यकर्ता यह । करें विचार स्वार्थ निज पर वह ।।
तभी कदम आगे वे डालें । सेवा प्रति संकल्पित होलें ।।८८।।
सूरज सब की सेवा करता । बदले में कुछ चाह न धरता ।।
उसकी अविरल चले चाकरी । सेवा भाव अपूर्व ईश्वरी ।।८९।।
वृक्ष सभी की करता सेवा । देता छाँव, पुष्प, फल, मेवा ।।
करे अन्त में प्राण समर्पित । सेवा कार्य बढ़ाने निश्चित ।।९०।।
पहले भी सेवा की कुछ ने । दे धन धान्य, राज्य भी अपने ।।
आखिर तन भी देकर भाई! सेवा की परिपूर्ति कराई ।।९१।।
बने पुराण सुसेवा उनकी । स्फूर्ति रूप बनि कीरति जिनकी ।।
उसको ही स्वीकार करें हम । सेवा करने लगे महत्तम ।।९२।।

(दो.) प्रकार सेवा के कई, मनन करे दिन रात ।
सध पाये व्यवहार में, कर उस की शुरुआत ।।९३।।
अन्न ज्ञान धन और श्रम, इन से सेवा साधि ।

अंत प्राण सेवा भली, दवा दिये हर व्याधि ॥९४॥

(चौ.) कर्महि सेवा, सुधर्म सेवा । वड़ी सभी से आत्मिक सेवा ॥
एक आत्म सेवा में सब ही । सध जाती सेवाएँ तब ही ॥९५॥
सेवा आत्म, न इंद्रिय गण की । वह निधि निर्मल ज्ञान रतन की ॥
उन्नत करने गाँव समूचा । मार्ग एक सत्संगति ऊँचा ॥९६॥
सेवा कोई एक नहीं है । सेवामय हर एक कार्य है ।
किंतु न उसमें संग्रहवृत्ति । व्यक्ति भाव वाली चल सकती ॥९७॥
सभी तौर से हो अपरिग्रह । है सेवा तो सचमुच में वह ॥
उस से भी आगे है गौरव । सेवा का कुछ अपूर्व वैभव ॥९८॥
स्वयं भूमि के समान रह कर । दीन हीन को रखना ऊपर ।
समाधान इस में ही मानो । सेवक का यह स्व धर्म जानो ॥९९॥

(दो.) **'हम ही दें, देते रहें', मंत्र जपो यह नित्य ।**
अपने श्रम की आहुति, यज्ञ शेष सम सत्य ॥१००॥
पूरा जब श्रम कार्य हो, यश दो सब में बाँट ।
'हम में नाहीं गुण कोई, मान यही एहि हाट ॥१०१॥

(चौ.) प्रतिष्ठा मंजिल नहिं सेवा की । स्वाभाविक हुलास वह मन की ॥
समाधान अपना हो जावे । पूरा फल सेवा का पावे ॥१०२॥
हमने गाँव स्वच्छ कर डाला । मिला सभी को हर्ष निराला ॥
हुई सभी आनंदित जनता । सेवा की है यही पूर्णता ॥१०३॥
अतिथि विशिष्ट गाँव में आया । अगवानी में गाँव सजाया ॥
आगे नाम कार्यकर्तों के । करें, यही गुण सब सेवक के ॥१०४॥
मेहनत में कुछ पीछे छिपते । आते दौड नाम जब छपते ॥
ऐसे नेता की बहु भाँति । जनता हँसी मखौल उडाती ॥१०५॥

(दो.) **द्वेष, राग, ईर्ष्या तथा, जिसे प्रलोभन प्यार ॥**
सत्सेवा की विडम्बना, उस की सेवा यार ! ॥१०६॥
बड़ा बना दे और को, माने इसमें हर्ष ।
आगे युग का है वही, सेवक, कहूँ सहर्ष ॥१०७॥

(चौ.) सही जीवन का है विकास यह । निज को समझे सर्व भूत मय ॥
वैसा ही व्यवहार करें फिर । 'अहं' छोड़ और विनम्र हो कर ॥१०८॥
सब का भार स्वयं पर ले लों । सच्ची सेवा वही सोच लो ॥
व्रत यह कठिन साध्य नहिं हो गर । डालो अपना बोझ न किस पर ॥१०९॥
करे न चिंतित जिसका आना । शोकास्पद हो जिसका जाना ।
ऐसा संमोदक सुभाव का । सेवक आश्रय बने गाँव का ॥११०॥

कुछ सेवक घर आते भाई! पड़े फिक्र में लोग लुगाई ।।
कहते सो गरीब हम जैसे । करें प्रबंधहु इनका कैसे ? ।।१११।।
सच, सेवक जहाँ पहुँचे प्यारा । सब घर को मिल जाय सहारा ।।
मेल जोल में गीत उसी के । गालें छोटे बडे खुशी के ।।११२।।
सेवा भावी गाँव पधारा । लगे दिवाली और दशहरा ।।
हो संतोष सभी के मन को । पाकर तस सहयोग सभी को ।।११३।।

(दो.) रहन, कथन, भजनादि में, सेवक हो आदर्श ।
मिले सदा सत्कार्य में, सेवक मन को हर्ष ।।११४।।
सुन लोगों की दिक्कतें, सेवक स्वयं पुराय ।
जीव जनों के अनगिनत, कारज करता जाय ।।११५।।

(चौ.) जो हर भाँति यत्न करता है । दुर्गुण जनता के हरता है ।।
पर रखता संयम निज मन में । सेवा कार्य यही जीवन में ।।११६।।
याद उसे नहिं अपना मतलब । जो भी करता सेवा ही सब ।।
काम करे पर नहिं खुलता मुख । कभी माँगने कोई स्वार्थ सुख ।।११७।।
क्या घर, बाहर सभी दूर तक । प्रेम सभी से रखता सेवक ।।
कर सकता प्रचार वह तब ही । आदर्शों का निज कृति से ही ।।११८।।
रहें गाँव में पक्ष, पंथ भी । भिन्न जातियाँ, मत अनंत भी ।।
वे सेवा के एक सूत्र में । सभी पिरोये जाते उस में ।।११९।।
ऐसा ही सेवक जन पा लें । वही राह शुभ गाँव बना लें ।।
प्रेम भाव सब के ही हिरदे । सेवक सच्चा सो उपजा दें ।।१२०।।
ऐसा सेवक अति आवश्यक । हो घर घर में सच्चा सेवक ।।
कुटुम गाँव हो या हो नगरी । बिन सेवक उत्तम नहिं होगी ।।१२१।।
कही इसी से बात एक है । सेवा कारज महा प्रबल है ।।
सच्चा सेवक जभी मिलेगा । तभी सुखी हो गाँव खिलेगा ।।१२२।।

(सवै.) श्रोतृजनो! समझो महिमा, जब साधन माँहि महा धन सेवा ।।
लो दिल में शुभ तत्त्व बसा, निकलो घर से करने जन सेवा ।।१२३।।
कौशल और कला न सही, निश्छल मन अरु शुचिता यशदायी ।।
शीघ्र बढ़ो इस ही पथ से, तुकड्या कहे लो सबही सुख भाई! ।।१२४।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरु की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।
नौवें इसी अध्यायमें, की विशद सेवा साधना ।
सेवक सही-नकली बताये, हो सजग जन. भावना ।।१२५।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

* * *

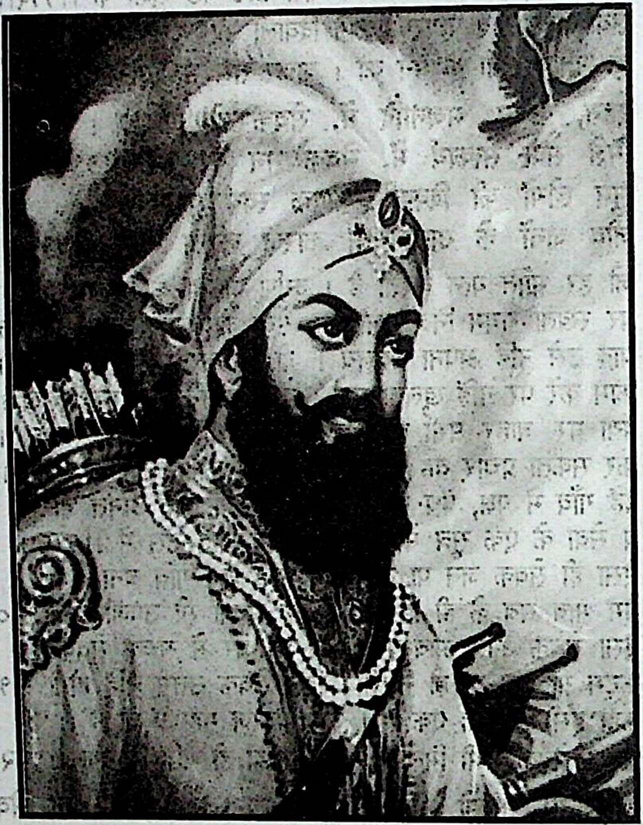

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी

दसवाँ अध्याय

संगठन–शक्ति

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

ग्रामशत्रु और गाँवकी दुर्दशा

(मनहरण) *सेवा–अनुभवी श्रोता दर्द भरे हिरदे से*
दुखड़ा सुनाने एक आया मेरे सामने ।
कहे भरे कण्ठ से, सुनो जी मेरी शोक–कथा,
सुनो एक बार, कैसे दुखी किया ग्राम ने ।।१।।
आपने जो कहा–सेवा वृत्ति बर्ताव करे
ग्रामोद्धार फल तो उसी के हाथ आता है ।
सेवा के अलावा मंत्र लोक–वशीकरण का
और नहीं कोई, यह मुझे भी सुहाता है ।।२।।

(सवै.) **है यह तो सब ही निश्चय, अरु अनुभव भी यह आते ।**
स्वार्थ भरे पर लोग कई सच, सेवक का अति द्वेष चलाते ।।३।।
है विद्वान, धनाढ्य तथा, जन–शासन में जिनकी चलती है ।
स्वार्थहि नेतृत्व गाँव का, चाह रहे हर ठौर अती है ।।४।।

(हरि.) **गर लोग सब रहें दाब में, स्वारथ सधे सब देसिया ।**
इस हेतु चालें खेलते, है स्वाँग सेवा का लिया ।।५।।
देते प्रलोभन कुछ किसे, दुर्लभ दिलाते चीज भी ।
गुंडो–व्यसनियों को बढ़ा कर, प्रेम यों पाते सभी ।।६।।

(चौ.) वहाँ हमारी सेवा सारी । शक्ति हीन हो पड़े बिचारी ।।
फँसती जनता भोली भाली । फंदे में जा उनके जाली ।।७।।
गाँव हमारे हुआ यही है । सेवा से जो बना यही है ।।
पर दुर्भाग्य इसी पथ आया । जिसने आगे गाँव नसाया ।।८।।
आँगन बोई बेलें सुंदर । नीर परिश्रम रूप सींच कर ।।
फल फूलों की बहार आयी । छूने गगन चली ऊँचाई ।।९।।
तभी हवा ने अंधड़ लाया । गिरे फूल फल, पतझड़ छाया ।।
हुई साथ ही उस हलचल में । तहस–नहस बेलें भी पल में ।।१०।।
कैसे दुखिया नहिं होगा मन ? जिसने जतन किया दे जीवन ।।
लुप्त हुई घर की सुंदरता । अकस्मात छाई नीरवता ।।११।।
वैसे गाँव नीति से पाला । बच्चों को भी ठीक संभाला ।।

हेल मेल से सेवा बल से । प्रेम बढ़ा आपस में दिल से ।।१२।।

(दो.) गाँव-विभेदक घर घुसे, फेंक स्वार्थ का जाल ।
बुद्धि बिगड़ टूटन पड़ी, गाँव समाज दुकाल ।।१३।।
चाटुकार उसके करें, सेवा नाम कुकाम ।
बुरा होय सो डाल दें, सत्सेवक के नाम ।।१४।।

(चौ.) तीर चलाते नथनी में से । हैं रुस्तमी बहादुर ऐसे ।।
गाँव को बाँट दिया खेमों में । जीवन नष्ट किया पल भर में ।।१५।।
भाँति भाँति का वाद वितण्डा । दल, गुटबाजी का हथ कण्डा ।।
यही ही एक काम उनका है । कभी छुपा है कभी खुला है ।।१६।।
जन मन को डाला चक्कर में । प्रेम भाव का नाम न मन में ।।
जिधर देख लें एक कल्पना । फूट डाल साधो हित अपना ।।१७।।
कुछ सुजनों ने गाँव बनाया । कुछ गुण्डों ने उसे मिटाया ।।
हुए तमाशे किसम-किसम के । गाँव बीच सब बिना शरम के ।।१८।।
व्यक्ति स्वार्थ का बढ़ा तकाजा । जो देखो सो मन का राजा ।।
प्रलोभनों में तरह-तरह के । लिप्त समाज सभी बिन हिचके ।।१९।।
छिपा होत काँटा दाने में । देखे मछली नहिं खाने में ।।
वैसे सब जन भ्रांत हुए हैं । प्रलोभनों में फँसे हुए हैं ।।२०।।

(दो.) कुछ दरसाते अति विनय, बनि साहब की जूत ।
मन भावना कि गाँव में, बजे हमारी तूत ।।२१।।
ताण्डव सत्ता हित चला, किसे न सेवा भान ।
गाँव किया विच्छिन्न ही, लड़ा चुनाव महान ।।२२।।

(चौ.) जब निर्वाचन चले गाँव में । अविश्वास भड़के आपस में ।।
सभी पक्ष लड़ते आपस में । दुःख बढ़ाते जन जीवन में ।।२३।।
तैसी ही गति हुई यहाँ की । आग लगाई जातिपने की ।।
गलत राह से मिली प्रतिष्ठा । वादे कोरे कैसी निष्ठा ।।२४।।
दी दावत पर कई जनों ने । मद्य पिलाया वोट को पाने ।।
भोली जनता को फुसलाकर । लाया मोटर में बिठलाकर ।।२५।।
सबही काम किये ऐसे ही । जीता गुण्डा-गर्दी से ही ।।
कहे 'मिला सेवक को मौका । सब की सेवा भाग्य उसीका ।।२६।।
अशुद्ध मूल से साधन जिसका । शुद्ध होय कैसे फल उसका ?
जन को पेर सम्पदा पाते । सभी गाँव में कलह मचाते ।।२७।।
सत्ता का अति लोभ बढ़ा है । चाहे जैसा पाप जुड़ा है ।।
लोक शक्ति को रौंद डालना । स्वार्थ हेतु यह चली योजना ।।२८।।

(दो.) दुर्गत इस में गाँव की, बढ़े मतान्तर-जंग ।
निराश हो जाते सुजन, मानो मौत प्रसंग ।।२६।।
अब कहिये हम क्या करें ? कैसे सुधरे गाँव?
'जो कुछ हो वह देखना', बढ़ा निराशा भाव ।।३०।।

सुजान कसौटी तथा ग्राम निर्माण नींव

(चौ.) यह श्रोता ने प्रश्न किया है । मैंने मतलब समझ लिया हैं ।।
उपाय तुम को मित्रों! इस का । बतलाता हूँ अपने मन का ।।३१।।
है तो यही परिस्थिति सचमुच । किन्तु निराशा से न बने कुछ ।।
बल बढ़ाना निसि दिन दुर्जन का । कारण होता है निरास का ।।३२।।
'हमको क्या करना? क्या-पाना?' ऐसा कहे समाज सयाना ।
तो समझो इस ही कारण बस । होगा नष्ट गाँव का सर्वस ।।३३।।
नेता ऐसे लोग नही हैं । क्यों न समझ लें सत्य यही है ?
जानकार सब ही मिलजुल कर । यत्न करें निश्चय से दुष्कर ।।३४।।
दृष्टिकोण हो ऐसा जिस का । भूषण वही कार्यकर्ता का ।।
करने नव निर्माण गाँव का । दाँव लगा दे निज जीवन का ।।३५।।

(दो.) विरोध देखि घर जा बसे, सेवा व्रत यह नाँहि ?
गंगा डरती देख नग, सागर मिलता नाहि ।।३६।।
तैरे सूखे हौज में, वह क्या गौरव पाय ?
गौरव अपना हो तभी, भरी बाढ़ तर जायँ ।।३७।।

(चौ.) इसीलिये कर्तव्य संभालो । गाँव धर्म के काम निभालो ।।
नहीं प्रभावित हो अंधड के । चक्कर में फँस लोग गाँव के ।।३८।।
गाँव की सेवा प्रभु सेवा है । यही भाव सब में भरना है ।।
सबसे ऊँचा है काम यही । तत्पर सेवा को रहें सभी ।।३६।।
तटस्थता से 'बौद्धिक' देना । सब लोगों की समझ साधना ।।
सँवारना है गाँव सुबुद्धि । प्रचार द्वारा सबकी सिद्धि ।।४०।।

(दो.) जन जागृति जब तक न हो, ग्राम दैन्य नहिं जाय ।
दृष्टि मिले जन को, कुजन, धाक जमा नहिं पाय ।।४१।।
अच्छे कारज मिल करें, भले लोग के साथ ।
भक्तिवान संगठ बने, ग्राम-शत्रु थर्रात ।।४२।।

(चौ.) हो या न हो साथ सत्ता का । मिले सहयोग सभी सत्-जन का ।।
सत्य नीव हो ग्राम राज्य की । सुन्दर रचना जन सेवक की ।।४३।।
जिनमें भी कुछ न्याय धार हो । और ग्राम सेवार्थ प्यार हो ।।
उन का बने संगठन पक्का । दिन दिन बढ़े कार्य दल उस का ।।४४।।

दिखते सुजन मिलाओ उनको । सदर हृदय हो चुनो पुरुष को ।।
श्रेष्ठों के नेतृत्व चलाओ । कार्य भार, ग्रामोन्नति पाओ ।।४५।।

आवश्यक सेवा संगठन एवं चुनाव

(हरि.) श्रोता कहे वह भी हुआ, सज्जन जुटाये जतन से ।
चूके मगर इक बात तो क्या, संभव सुधरना है उसे ? ।।४६।।
हाँ ! एक समिति बन गयी, सुन्दर बनाने ग्राम को ।
निर्णय लिया चुनाव हो, नेता मिले शुभ काम को ।।४७।।
हो कौन नेता गाँव का ? सम्मान पहला दें किसे ?
सब गाँव सेवा कार्य यह, किस के चलावें हाथ से ? ।।४८।।
चुनाव हो इस फैसले से, आग बारूद में गिरी ।
टंकीहि कैरोसीन की, उसमें उड़ेली हो भरी ।।४९।।
अति आग धधकी गाँव में, मत भेद-कोलाहल अहा !
मतिमान काल कराल सम, दिखते परस्पर को महा ।।५०।।
हर नर कहे मैं ही भला, कोई सुने किसकी नहीं ।।
तोबा! अरे! क्या है गजब! नहिं शोर की हद ही रही ।।५१।।
घर घर झगड़े बाढ़े, इतने, करे पिटाई पति की नारी ।
कहें युवा हम चतुर सयाने, पुस्तक पढ़ डाली हम सारी ।।५२।।
माने किस अग्रणी को ? बात यही सब गाँव में ।
फिर भी सबके मन अलग, कैसे चलें कहिये हमें ।।५३।।

(चौ.) अनुभव है यह जो श्रोता का । नया नहीं, वह गाँव-गाँव का ।
किन्तु यहाँ तो गलती सारी । मूल बात में हुई हमारी ।।५४।।
गंदा पानी मथने जावे । उछल गंदगी कर में आवे ।।
नहीं भावना जहाँ सेवा की । उठा पटक है नियति वहाँ की ।।५५।।
सेवा भावी सुजनों ही की । संघटना हो पहले पक्की ।।
घुस पावे नहिं कोई दूसरा । निश्चित करना फर्ज तुम्हारा ।।५६।।
सुजन गाँव के एक-एक को । खोजो जोड़ो उस में उन को ।।
पूरा मण्डल हो सेवामय । करो प्रयत्न रात दिन निर्भय ।।५७।।
उसके अच्छे ठोस काम को । बतलाओ निर्भय लोगों को ।।
अपने आप करेंगे निश्चय । अमल कराने उनके निर्णय ।।५८।।
सेवा की यह नैतिक सत्ता । गाँव के हित की बढ़े महत्ता ।।
विरोध उसूली या व्यवहारिक । फिर न सकेगा वहाँ कभी टिक ।।५९।।

(दो.) दाब बता लालच दिखा, डालत गाँव में फूट ।
करे विघ्न शुभ कार्य में, दूर होय सब दुष्ट ।।६०।।
सेवा संघटना चुने, प्रमुख भला इंसान ।

धीरे चलि संमार्ग पर, होवे गाँव महान ।।६१।।

(चौ.) श्रोता कहे, ठीक यह सब हीं । पर चुनाव की हवा गजब ही ।।
उससे तो सब गाँव हमारा । बनता अजब धुंध मतवारा ।।६२।।
स्वास्थ्य रत सेवा के घातक । सक्रिय हों सब अवसर ताकत ।।
विग्रह फैलाते लोगों में । तरह तरह की जुगति लगा के ।।६३।।
इस हालत में क्या है करना ? कैसे यह निज गाँव सुधरना ?
श्रोता जनों! सुनो धीरज धर । समाधान जो एकहि इस कर ।।६४।।
कहा वही सब सही उपद्रव । गाँव-गाँव का यह ही अनुभव ।।
सीधी सच्ची बात करूँ अब । सोचो समझो गाँव गाँव सब ।।६५।।

(दो.) चुनाव की चालू प्रथा, है, जड़ में ही रोग ।
उस बाबत सच बात से, हों्य सजग सब लोग ।।६६।।
चुनाव से कितने बड़े, हैं जीवन के काम ।
पहले समझ महत्व फिर, लो चुनाव का नाम ।।६७।।

(चौ.) बिचार से ही हौले हौले । सही राह मिलती बिन बोले ।।
अमल करें उसका चुनाव में । आप अशान्ति मिटेगी जन में ।।६८।।
अजी! गर्ज क्या नेतापनकी ? करने सेवा ही तो जन की!
फिर सेवा का निकष लगाओ । नेता कौन यहीं तय पाओ ।।६९।।
कौन गाँव हित कष्ट उठा ले ? कौन प्रात उठ नियम संभाले ?
निज हाथों में झाडू लेकर । बढ़ता कौन गाँव के पथ पर ? ।।७०।।
कौन सादगी से रह दिन भर । करता काम गरीबों का हर ?
करता कौन गाँव की 'वारी' ? परिक्रमा कर बिन सवारी ।।७१।।
कौन नीति से चलता अच्छा ? पक्षपात की क़िसे न इच्छा ?
निधि अपनी या होय गाँव की । दाग कहीं भी नहिं छदाम की ? ।।७२।।
कौन देखता सब का सुख दुख ? सेवा हित दिखता किस का मुख ।।
सच पहिचान यहीं नेता की । वही चुनो, तज हाँका-हाँकी ।।७३।।

(दो.) देय चुनौती काम की, हुकुम होय दो टूक ।
देखो करता कौन है, बिन अराम बिन चूक ? ।।७४।।
समझो फिर अगुआ वही, चुने उसे तो अंध ।
विज्ञापन का ढोल फिर, करो तुरंत ही बंद ।।७५।।

नागरिकों का कर्तव्य

(चौ.) घटक गाँव का एक-एक जन । पहिचाने हरेक व्यक्ति तिन ।।
कौन अलाल? कौन है सेवक? कौन गाँव का सच्चा नायक ? ।।७६।।
कौन गाँव की सेवा करता ? कौन प्रतिष्ठा हित इतराता ?

सरे गाँव में उचित समय पर । कहना होगा यह सब खुल कर ।।७७।।
लाज शर्म काहे की सच में ? बिगड़े ग्राम काम फिर उस में ।।
इससे दुविधा सारी तज कर । दो सच्चे का नाम समझ कर ।।७८।।
जिस गाँव का दर्द भला हो । कार्य ज्ञान का जो पुतला हो ।।
वही अगर निर्वाचित होगा । सभी गाँव सुख पूर्ण करेगा ।।७६।।
यह न करो तो होंगे झगड़े । गाँव निरंकुश बनकर बिगड़े ।।
स्वार्थ भक्त साधेंगे मौका । कुछ न चलेगा फिर सुजनों का ।।८०।।
इसीलिये चुन गुणी पुरूष को । 'वाह वाह!' सब कहते जिस को ।।
बागडोर दे दो उस के कर । सब ही उसको नायक कह कर ।।८१।।

(दो.) नहीं तो नेता होंय जो, लेय ब्याज ड्योढेर ।
भूखों मरते गाँव-जन, खाय स्वयं बन शेर ।।८२।।
भाषण में देते उठा, दलगत कोई सवाल ।
मेल जोल की तोड़ मति, हो झगड़ो का जाल ।।८३।।

(चौ.) नही चाहिए ऐसा नेता । जो न होइ कर्तव्य प्रणेता ।।
मित्र नहीं, वह तो है वैरी । सही धारणा यही हमारी ।।८४।।
किया ग्राम हो उन्नत उसने । जन-कामों में रहे सामने ।।
वही बोलने का अधिकारी । सही धारणा यही हमारी ।।८५।।
जो भाषण की रेल चलाते । दो पैसे में छह मिल जाते ।।
वे किस के भी बसें न मन में । क्रियाशील यदि नहीं जीवन में ।।८६।।
हो ऐसा नेतापन जिस में । भूत न पालें अपन गाँव में ।।
जो ईमानदारी हो सेवक । समझो वही गाँव का मालिक ।।८७।।
कथनी करनी मेलं न खाते । एक छिपाते एक दिखाते ।।
होंगे वही गाँव को घातक । श्रोता जन! समझो यह बेशक ।।८८।।

(दो.) चुपके अहि को दूध दे, विष खा ले हठ मान ।
करे शेर से मित्रता, विनाश निश्चय जान ।।८६।।
करो न ऐसा आचरण, जो हों सेवक नेक ।
उनको ही चुन कर चलो, सब की सम्मति एक ।।६०।।

(चौ.) समाज में सब को हो चिन्ता । जाँचें नित योग्यता सुजनता?
किसे गाँव की फिक्र सालती? किसे रात दिन नींद न आती ।।६१।।
ऐसे को ही प्रमुख बनाओ । किसी के चक्कर में मत आओ ।।
पैसा खर्च करे गर कोई । इसे वोट नहीं देवे कोई ।।६२।।
'हैं नेतृत्व सिर्फ सेवा से' । यही कहो सब मिल दृढ़ता से ।।
पनपे गुटबाजी गर इस में । बढ़ने न दो गाँव के हित में ।।६३।।
रिश्ता, कुलहु, पंथ अरु' जाती । धनिक-गरीब, धर्म, संगाती ।।

लेना-देना, धाक, मुरौवत । इनके खातिर कभी न दो मत ।।९४।।

(दो.) मेरे मत पर ही टिका, गाँव-राष्ट्र-भवितव्य ।
लाख मूल्य का एक 'मत', जानो महिमा दिव्य ।।९५।।
तेग दुधारी 'मत' यही, किया न सध कर वार ।
तो हम पर ही आखिरी, उलटे वह तलवार ।।९६।।

(चौ.) दुर्जन बन जाते बलवत्तर । अपने मत का अमृत पाकर ।।
सभी गाँव कर देंगे जर्जर । मत तुम नहिं दो सुपात्र को गर ।।९७।।
अवसर मतदान न रंजन का । नहिं चुनाव सौदा बजार का ।।
है चुनाव मौका महान इक । अपनी राह बनाने का हक ।।९८।।
है चुनाव जिस तरह स्वयंवर । जीवन डोरी दें किसके कर ?
उचित कसौटी पर है कसना । पग पग पर चौकसी बरतना ।।९९।।
पैर का फोड़ा कहा चूसने । शिष्य चुने तब रामदास ने ।।
गुरु गोविंदसिंह ने परखे । मृत्यु-कसौटी पर कस कर के ।।१००।।

(दो.) युवा उतरते दौड़ में, थककर बाहर कोय ?
किस का क्रम आगे बढ़ा, जग जाहर सो होय ।।१०१।।
चुनाव का भी है यही, सब का देखो काम ।
अधिक मूल्य का जो करे, वह मुखिया सरनाम ।।१०२।।

(चौ.) ऐसा समझा दो सब को ही । फिर कोलाहल मचे न कोई ।।
कारज कर्ता ही ले मौका । फलता पथ यह, टलता धोखा ।।१०३।।
फिर उसका ही कहना मानो । गाँव जुटाओ सभी सुजानो !
बके फालतू उसे डाँट दो । ग्राम जनो! तुम सत्य बाट दो ।।१०४।।
यह बनते ही हुआ संगठन । शुरू हो गया गाँव सुयोजन ।।
मुरझाया जो मानव-उपवन । फिर से हुआ प्रेम से चेतन ।।१०५।।
चिर नूतन योजना पुष्प दल । विकसित हों, देंगे सुमधुर फल ।।
ग्राम राज्य का सपना सुंदर । मूर्तिमान अस गाँव में आकर ।।१०६।।
गरचे कोई धूल उड़ावे । वह उसकी ही आँख में जावे ।।
गाँव रहेगा सुख से सारा । तुकड्या कहे, यही पथ प्यारा ।।१०७।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरु की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।
दसवें इसी अध्याय में, हैं नीव उत्तम गाँव की ।
है संगठन बल योजना, है शुद्ध दृष्टि चुनाव की ।।१०८।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

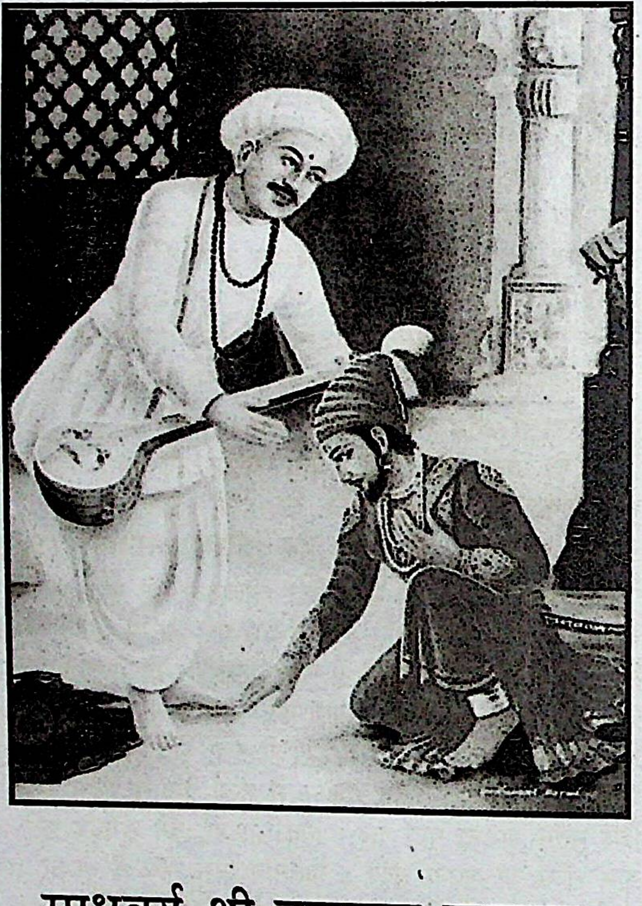

साधुवर्य श्री तुकाराम महाराज

ग्यारहवाँ अध्याय

ग्रामरक्षा

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

गाँव के असुर एवं ग्राम सेना

(मनहरण) *ईश सेवा सही गाँव-सेवा ही में आ जाती है,*
सब के ही सुखका अमोल जो विधान है ।।
किन्तु यह कार्य-यज्ञ भंग करने वृथा ही,
गाँव में बसे, कई असुर प्रधान है ।।१।।
इसी से सवाल किया एक श्रोता सज्जन ने,
प्रफुल्लित होने लगा गाँव में उद्यान है ।।
किन्तु कुछ दुष्ट आग लगा रहे उस में भी,
क्या उपाय करें स्थायी? कहिए कौन विधान है ।।२।।

(हरि.) हमने किया शुभ संगठन, अच्छे जनों को चुन लिया ।
पर दुर्जनों के सामने, चलता न गर कुछ भी किया ।।३।।
आदर्श जीवन दो दिखा, या दो प्रबोध प्रचार से ।
या रात दिन सेवा करो, कितनी भी उनकी प्यार से ।।४।।
पर वे न कुछ भी मानते, चिढ़ते वरन् उपदेश से ।
कर कार्यकर्ता को विफल, पग-पग अड़ाते द्वेष से ।।५।।
लेते भले में से बुरा, दूषित हवा देते घुमा ।
ढाते सुजन पर विघ्न भी, कर लाख हथकडे जमा ।।६।।

(चौ.) कलम कसाई, बड़ बोले पंड़े । बाहु बली औ' गाँव के गुण्डे ।।
कज्ज' दलालहु धन्ना सेठी । सेना उनके साथ अनूठी ।।७।।
सत्ता का भी सदा समर्थन । लेकर पेंच कसाते पूरन ।।
जन मन में बैठी यह दहशत । अब क्या करें ? बताओ सत्पथ ।।८।।

(दो.) मित्र ! जहाँ जो रोग हो, उसका वहीं इलाज ।
प्रयोग कौशल सके जो, कर्ता चाहिये आज ।।९।।
सत्य होय कमजोर जब, असत् बने सरजोर ।
प्रबल करें अब सत्य को, सेवा मित हिं कठोर ।।१०।।

(चौ.) बढ़े सत्य की ताकत कैसे ? वही बताऊँ सुनो शांति से ।।
सज्जन नहिं बैठे आलसा कर । अथवा न में हताश हो कर ।।११।।
यदि आतंक लोक मन में है । 'अच्छाई' जीतेगी जग में ।।१२।।
तुम सम प्रिय हो सेवा जिन को । रहे बचाते सत्य के धन को ।।

लोकतंत्र का समय अभी है । जनता में ही शक्ति सभी है ।।
जनता के निश्चय की ताकत । झुका सके सम्राट् का मस्तक ।।१४।।
बँधे घास रस्से में हाथी । साँपहि त्रस्त चींटियाँ करती ।।
सुगढ़ संगठन वन-कुत्तों के । करते टुकड़े बाघसिंह के ।।१५।।
क्या न संगठन से बन पाता ? बूँदें मिल सागर बन जाता ।।
बहार आये गाँव बाग तित । फूले फले सुसंगठना जित ।।१६।।

(दो.) सुमंत्र गाँव-सुधार का, इक जुट होंय सुजान ।
शक्ति सूत्र है संगठन, करे ग्राम निर्माण ।।१७।।
'गाँव करे सो राव ना', कहते चतुर ललाम ।
गर हाकिम नहिं ध्यान दे, स्वयं सुधारे ग्राम ।।१८।।

(चौ.) इस कारज हो सबल संगठन । करे तुरत अन्याय निवारण ।।
देय न्याय सब ही को उत्तम । करे ग्राम रक्षा भी हर दम ।।१९।।
गाँव रहे मजबूत संगठन । उसे सुनावे अपना दुख जन ।।
अन्याय नहीं हो कभी किसी पर । यही संगठन कार्य महत्तर ।।२०।।
एहि हित चुन लो मिल कर कुछ जन । जो ईमानदार हों सज्जन ।।
त्यागी, निर्भय, चरित्र उज्ज्वल । वही न्याय रक्षा के काबिल ।।२१।।
हुए गाँव के पवित्र सेवक । समय पड़े तब वे ही सैनिक ।।
ऐसे भक्त सूरमा होंगे । वहाँ बिघ्न नहिं पाँव धरेंगे ।।२२।।
गुनह गाँव में कोई भी हो । संघटना को तुरत खबर हो ।।
सब जन उस में हाथ बँटायें । जो बिगड़ा सो ठीक करायें ।।२३।।

(दो.) सभी सुजन यदि गाँव के, पूरा दें सहयोग ।
पुकारते ही एक पल, जुट जायें उस सब लोग ।।२४।।
जिसने किया गुनाह हो, समझा उसे सयान ।
गुनहगार सुनता न हो, उसे दण्ड दे ग्राम ।।२५।।

(चौ.) जहाँ लोभ में फँसा सयाना । बना रहा हो नींद बहाना ।।
वहाँ चिकोटी काटा काट कर । उसे उठाना होगा जा कर ।।२६।।
साबुन से धोया, घिस डाला । पर कोयला अंत तक काला ।।
जब संस्कार अग्नि में तपता । तभी कोयला ठीक उजलता ।।२७।।
असहयोग इसलिये करें सब । बहिष्कार आवश्यक हो जब ।।
तोड़ो संवल उनके जह तहँ । नाक दबाओ बायेगा मुँह ।।२८।।
ऐसा पीछा करें सभी जन । जो भी गाँव बिगाड़े दुर्जन ।।
नहिं माने तब उसे गाँव से । दूर करो सत्ता प्रभाव से ।।२९।।

(दो.) उत्तम का संचय करो, बुरे का पूर्ण निषेध ।
वृक्ष बुराई के कभी, न दे पनपने जोध ।।३०।।

सब सक्रिय हों इसलिए, छुट-बड़ कांम करॉय ।
सेवा में सब दुख सहें, भले प्राण ही जायँ ।।३१।।

(चौ.) होय गाँव की अस तैयारी । बने स्वर्ग तब बस्ती सारी ।।
फिर न जरूरत रहे किसी की । सत्ताधीशों के अंकुश की ।।३२।।
हो आचार-विचार यही जब । गाँव न्याय मन्दिर होगा तब ।।
सज्जन चतुर सहित सब ही जन । जागृत सेवा के हित निसि दिन ।।३३।।
ऐसे चले गाँव जो नीका । भाग्य उदय हो गया उसी का ।।
अस व्यवहार न गाँव जो करे । तिन नसीब में बदी ठोकरें ।।३४।।

सात्विकता दुर्बल सामंजस्यापूर्ण हो ।

(मनहरण) *यह सुन एक जन बोला, शान्ति के समर्थक तम*
तुमही से दण्ड दुराचरण कस लहे जी ! ।।३५।।
सज्जन हो, दुर्जन हो सबमें समान प्रभु,
दण्ड दोगे एक को, तो सेवा कहाँ रहे जी ? ।।३६।।
दया क्षमा शान्ति यही सम्पदा है सात्विकों की,
निष्ठुरता आचरो तो सज्जनता है कैसे जी ! ।।
दण्ड जो विरोधियों को दोगे बन के कठोर,
कहाँ की यह सज्जनता ? 'भक्त' कौन कहे जी ? ।।३७।।

(चौ.) सुनो मित्र ! यह विचार-धारा । भ्रान्त न करे दें हृदय तुम्हारा ।।
सुसंगति को समझो मन से । गाँव सुधारो विवेक बल से ।।३८।।
क्या करने से होता सज्जन । मापदण्ड इसके हैं पूरण ।।
सबसे पहले यही समझ कर । गाँव होय आगाह सोच कर ।।३९।।
सेवा का है पात्र कौन जन । होय सफाई पहले निज मन ।।
इसकी समझ ने जिसमें आयी । होहि फजीहत निश्चय भाई! ।।४०।।
करे 'चोर बाजार' सरासर । कस ईमानदार वह नौकर ।।
सुंदर देवा देता उसको । पुण्य लाभ होता क्या किसको ? ।।४१।।
साधू-सन्त करें सेव जन । गले सत्य रक्षा में तिन तन ।।
आस कभी तिन मन मे नहिं की । किरपा राजा-रजवाड़ों की ।।४२।।

(दो.) **पूज्य न सब राजा बने, यद्यपि हुए अनंत ।**
मंदिर हृद में देव सम, पूजे सज्जन सन्त ।।४३।।
किसकी सेवा को करे, पहले समझो मर्म ।
कूद पड़ो सेवार्थ फिर, है यह मानव धर्म ।।४४।।

(चौ.) रहें सदैव दया की वृत्ति । मन में पर-उपकारक प्रीति ।।
रहने मत दो कमी कहीं पर । जो भी दिखे, मिटा दो जा कर ।।४५।।
क्षमा शांतिमय सदा हृदय हो । रहन अभय विश्वासवान हो ।।

प्राणों की बाजी लग जाये । निष्ठुरता मन में नहिं आये ।।४६।।
होय जरूरी निष्ठुरता जब । पत्थर से भी कठोर बन तब ।।
अस विवेक जागे जब मन में । संगति होय गाँव जीवन में ।।४७।।
बिन विवेक दया दिखाई । उलटे नाश करे अपना ही ।।
करे गाँव को तहस-नहस जो । नहीं दया, कमजोरी मन सो ।।४८।।
भीख भिखारी को दे डाली । शराब-गांजे मेंहि उड़ाली ।।
कहो हुआ क्या लाभ दया से ? उसे दया फिर कहते कैसे ? ।।४६।।
चोर-उचक्के फिरें गाँव में । साधू वेष धरें सो दिन में ।।
वे ही रात डालते डाका । करके बदल वेष-भूषा का ।।५०।।

(दो.) **लोक डकैती भी सहें, छोड़े साधू मान ।**
'दया-वीर' का यश मगर, कभी न होवे गान ।।५१।।
दया दान है धर्म पर, समझो उनका मर्म ।
विकार आलस को बढ़ा, करो न मूरख कर्म ।।५२।।

(चौ.) घर को तज कर बने गुँसाई । दर दर 'भिक्षांदेहि' चलाई ।
सदाचार सब डुबो दिया है । इस का कारण मूढ़ दया है ।।५३।।
कष्ट नहीं करते है तनसे । नहिं संग्रह के त्यागी मन से ।।
ढोंगी भेष बनाय घूमते । सन्तों का शुभ नाम डुबाते ।।५४।।
दान धर्म गर कर ऐसों को । होवे पापों का संगम तो ।।
इसीलिए हर कदम सजग हो । दान पुण्य में सुंदर युति हो ।।५५।।
अन्न दान लेते घर-घर से । खेलें सट्टा-जुआ खुशी से ।।
शराब गाँजा भाँग औरतें । गुप्त रूप से मठ में रखते ।।५६।।
ऐसों को गर दान दिलाओ । लो बदनामी, गाँव नसाओ ।।
कौन देव ने गाया ऐसा ? धर्म बताओ हमको वैसा ।।५७।।

(दो.) **मुख्य धर्म लक्षण 'दया', प्राण मात्र प्रतिपाल ।**
दया से कंटक दूर हों, बोले सन्त कृपाल ।।५८।।
करता रक्षा सुजन की, अरु दुर्जन का काल ।
लक्षण यहि अवतार के, जगत नवाये भाल ।।५६।।

(चौ.) अन्याय गाँव में करे जो कोई । दुख देवें गरीब को जोई ।।
उन का हो प्रतिकार इसी पल । यही गाँव में सुमती का बल ।।६०।।
वर्ना राज होय गुण्डों का । सबका स्वर एकहि गदहों का ।।
दुष्टों को कर दया छोड़ना । नहीं धर्म यह कभी मानना ।६१।।
अन्यायहि प्रतिकार करें जन । पर समझें वे उसका कारण ।
निश्चय जैसे ही हो जावे । संगठना आवाज लगावे ।।६२।।
अन्याय तरह तरह के होते । इज्जत लूटे पैसा खाते ।।

बढ़े व्यसन अरु होय अनीति । नष्ट करे लोगों में प्रीति ।।६३।।
इन सब में से राह निकालें । गाँव में दुराचार नहिं पालें ।।
सत्य धर्म यही जग जाहिर । किया विचारवान जन आखिर ।।६४।।

(दो.) **दोनो पलड़े न्याय के, सम राखो मन आप ।**
दया शीलता एक में, दूसर दण्ड का ताप ।।६५।।
भूषण सच्चा है यही, सोना गठरी व्यर्थ ।
मरे चोर के हाथ जो, नहिं सो वीर समर्थ ।।६६।।

(चौ.) कुछ जन इतने सीधे होते । अपने मानव गुण भी खोते ।।
कहें लोग गर उन्हें 'सात्विक' । वह है पागलपन के माफिक ।।६७।।
कर न सके संकल्प का पालन । न्याय के समय मौन का धारन ।।
ऐसे जन को सात्त्विक कैसे । कह सकते हैं सिर्फ विनय से ? ।।६८।।
जिसे चोर भी ठग लेते हों । गुण्डे जिसे फँसा देते हों ।।
लेती लूट जिसे परनारी । सात्त्विक कैसे वह अविचारी ? ।।६९।।
मुँह पर की मख्खी न उड़ाता । पुलिस देखते ही घबड़ाता ।।
जो न जानता अपना भी हक । उसे कभी नहिं कहना सात्विक ।।७०।।
जिसमें नहिं पुरुषार्थ का पानी । आतम-रक्षा जिन नहिं ठानी ।।
कहो उसे है निर्बल प्राणी । कायर, विकासहीन, अज्ञानी ।।७१।।

(दो.) **दे उठाय कोई जिसे, दारू गांज दिखाय ।**
भोला बन पी जाय जो, कैसा भोला राय ।।७२।।
पत्थर है मतिहीन वह, उत्तम काम न ज्ञान ।
गंभीर शांत कहते जिसे, गोबर-गणेश सो जान ।।७३।।

(चौ.) सही शांत है वही फँसे ना । भूल-भूलैया काहूकी मा ।।
गप्प हाँक कर समय गंवाना । सीखा जिसने कबहूँ ना ।।७४।।
पर निंदा जिस को नहिं भाती । आँखें पर दुख नहिं सह पाती ।।
गिरे पड़े की सेवा करता । देने को सहयोग दौड़ता ।।७५।।
जहाँ बुराई-चुगली होवे । संगत छोड़ तुरत चलि जावे ।।
जन से कहे, व्यर्थ की बातें । करके क्यों जिन्दगी नसाते ।।७६।।
पीछे करें न निंदा किस की । मुँह पर कहता बात सभी की ।।
निर्भय निर्मल इस का अंतर । स्फटिक्-शिला सम शुभ्र निरंतर ।।७७।।
तनिक गंदगी भी नहिं भावे । यशो गान सुजनों का गावे ।।

सत्संगति के लिए सदा ही । ललक रहे उस के मन माँही ।।७८।।
नाता सबसे बंधु भाव का । मिलन करावे मन से मनका ।।
कौशल से संगठन बनाने । लगा रहे जन जागृति लाने ।।७९।।
(दो.) **सुखमें अहमी होय नहिं, विपदमें नहिं घबराय ।**
न्याय स्वयं भी आचरे, सबसे वही कराय ।।८०।।
जिसमें हों ये गुण वही, सात्त्विक शान्त महान ।
उनसे ही हो ग्राम हित, कही हमारी मान ।।८१।।
(चौ.) तस बदले आई निर्बलता । राह विनाशहि गाँव पकड़ता ।
संभालने की कोशिश सारी । होती निष्फल बिन आधारी ।।८२।।
इससे निष्ठुर न्याय जरूरी । जदपि दया की संगति प्यारी ।।
उन्नति करे वही सेवा है । रूप अनेकहु तत्त्व एक है ।।८३।।
बिना द्वेष मर्दन दुर्जन का । पद पहला उसके विकास का ।
चीरा फाड़ी करे देह की । डाक्टर दया न बात द्वेष की ।।८४।।
ईश्वर है सब जीवों में जब । सत व्यवहारमें बाधा कस तब ?
बने संगठन गाँव में सुंदर । यही प्रभू की पूजा गुरुतर ।।८५।।
सब जीवों से प्रेम भाव हो । गुण गौरव का मूल्य बढ़ाओ ।
सभी उपद्रव खतम करा कर । अपना गाँव बने सुख सागर ।।८६।।
(दो.) **'जग तो देव हमार पर, स्वभाव निंदक आन' ।**
सन्त तुका ने कर किया, गुण्डों को हैरान ।।८७।।
'जहँ हरि भक्त निवास हो, कस आवे पर सैन्य ?'
प्राण लगाये दाँव पर, रक्षा हित सो धन्य ।।८८।।
(चौ.) 'वारकरी' होते अति भावुक । संकट काल बने सब सैनिक ।।
धाक जमी दुष्टों पर माजी । एक एक जन बना शिवाजी ।।८९।।
ले प्रेरणा उसी से मन में । गठे न्याय सेना गाँवों में ।
जिससे अस्त व्यस्त सा जीवन । शेष रहे नहिं गाँव में आपन ।।९०।।

ग्राम सेना का कर्तव्य

दारू, गाँजा, भांग अफीमा । वेश्या, जुआ, काम सब हीना ।।
नाम निशान नहीं इन सब का । बचा रहे गाँवों से चिपका ।।९१।।
इसीलिए कुछ गाँव के सज्जन । करते रहें व्यसन निर्मूलन ।।
अतिम श्रेणियाँ भले गुणों की । बढ़ती रहें गाँव में सब की ।।९२।।
चार गाँव के भल जन मिल कर । अनिष्टकारी प्रथा खतम कर ।।
जिस किस से हो गाँव की हानि । बचे न कोई नई पुरानी ।।९३।।
कुछ किसान तो होश गँवाते । पैना चुभा बैल दौड़ाते ।।
खून बहा कर मूक जीव का । ताप निकाले अपने मन का ।।९४।।

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(दो.) देवों के भी नाम पर, करते बलि कुछ गाँव ।
बंद करावें अस प्रथा, सुधरे जन मन भाव ।।९५।।
ओझा गुरुघंटाल सब, व्रत मत भ्रान्त सिखाय ।
फाँस जनों को लूटते, करो सजग समुझाय ।।९६।।

(चौ.) देना साथ एक दूजे को । निबाहना विपदामारे को ।।
समुचित सेवा सब के द्वारा । करवाना, कर्तव्य हमारा ।।९७।।
गाँव कार्य में दिक्कत आयी । पहले देखो उस को भाई!
निज निज भूमि आदि भी दे कर । करो प्रबंध सभी को सुख कर ।।९८।।
यदि सब को सेवा न जरूरी । करे सहायता गर्जमंद की ।।
जितना भी बन सकें करें वह । भाव पूर्ण निष्कपट सदा रह ।।९९।।
बेटा-बेटी के विवाह में । दौड़ धूप सब करें गाँव में ।।
कमी काम में नही ज़रा भर । बोझ पड़े नहिं मात पिता पर ।।१००।।
थोड़ा थोड़ा सब ही लावें । वर-वधु को संबल मिल जावे ।।
प्रीति भोज तक सभी तरह से । कर दें जन संपन्न सुमति से ।।१०१।।
हर मँडवे पर पाँच डँगालें । ग्राम धर्म नाते सब डालें ।।
वैसेहि कारज सब जीवन के । निवहिं घर काम मान के ।।१०२।।

(दो.) ज्यों ज्यों सह कारज बढे, उन्नत होवे गाँव ।
विपदा फिर नहि किसी को, पेर सके उस ठाँव ।।१०३।।
अस सेवा जीवन बसे, कमी होय कोहि भांति ।
फिर भी सेवा दल अलग, गठन उचित सब भांति ।।१०४।।

(चौ.) रहें सुसज्जित युवक गाँव के । होंय इकट्ठे विपदा सुन के ।।
काम धाम अपना सब छोडें । सब उसका हल करने दौड़ें ।।१०५।।
आग लगे, गिर पड़े कुए में । हैजा या बेहोशी, घर में ।।
हर मौके को देख दौड़ना । सेवक दल की यही साधना ।।१०६।।
यहि योजना ग्राम सेवा की । फलित होय जहाँ सेन ग्राम की ।।
वहाँ स्वर्ग के नन्दनवन सी । बहार आये सहज सदा ही ।।१०७।।
ऐसी संगठना के गाँव में । वैभव दिव्य होय घर घर में ।।
सुख अनन्त यह ग्राम राज्य का । कहता तुकड्या राम राज्य का ।।१०८।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरुकी, शास्त्रमत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
अध्याय ग्यारहवाँ कहे, यह 'ग्राम रक्षण पथ, महा ।
बल संगठन के साथ सदगुण, सुमति खिलती है यहाँ ।।१०९।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

* * *

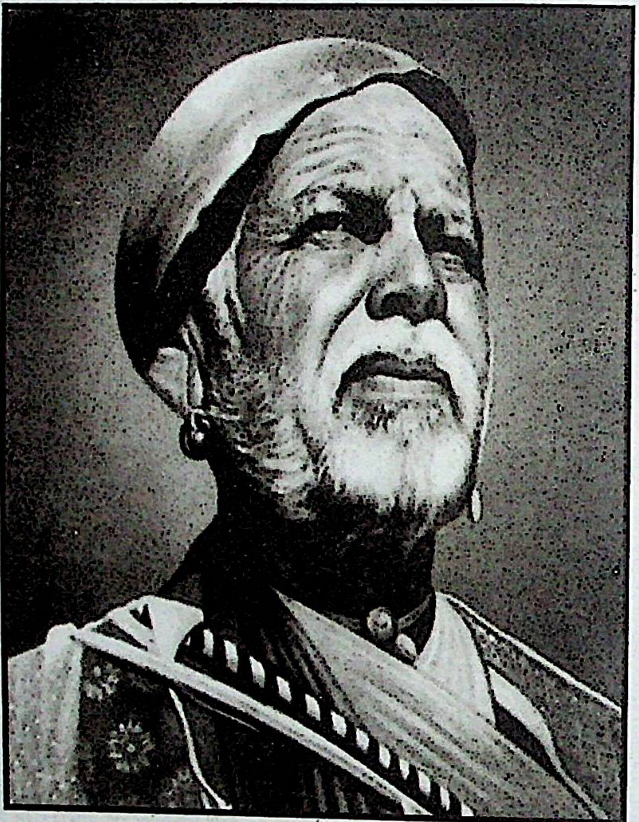

वैराग्य मूर्ति श्री गाडगे महाराज

बारहवाँ अध्याय

ग्राम शुद्धि

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

देहातों की दुर्दशा का कारण एवं उपाय

(मनहरण) *एक सज्जन ने पूछा "ग्राम राज्य में क्या रक्खा है ?*
जहाँ तहाँ अस्त व्यस्त मन का तमाशा ही बना है ।।१।।
कागज की किताब में और बड़े बड़े शब्द काव्यों में
देहातों के दिव्य रूप का वर्णन तो सुंदर है ।।
किन्तु वास्तविकता देखते ही देहातों की,
पल भी ठहरने को मन नहीं करता है ।।२।।
रस्ते सने गंदगी से, जिधर देखो कीचड़ है,
एक भी काम बिना शहर के नहीं निभता है ।।३।।
'चलो देहात चलें, सुनते हैं शोर बड़ा,
किन्तु वहाँ सुप्रबंध एक भी तो नहीं है ।।
घर क्या हैं ? बिल जैसे, दडबे या जानवरों की मांद,
खण्डहरों के बीच ये घरौंदे अजीब ही हैं ।।४।।
नौटंकी मंडली नाच तमाशे भड़ैती सिवा
मनरंजन की सुविधा भी कहीं नहीं है ।।
तब फिर 'देहातों का जीवन है रमणीय'
झूठ मूठ क्यों बताना? क्या ऐसी बातें सही है ?" ।।५।।

(चौ.) सुन ली बातें मित्र! तुम्हारी । दिल में सार जँचा हितकारी ।।
लेकिन ग्राम दशा का कारण । सुन लें अब सब ही श्रोता जन! ।।६।।
कार्यकर्ता जब होय आलसी । रम जाय भोग में खुशी खुशी ।।
गाँव सेवा में अंतर भारी । पड़े इसी से अनिष्टकारी ।।७।।
एक बार की चूक ठीक है । किंतु रोज की बात अलग है ।।
ऐसे में राजहु मिट जाते! कहाँ टिकें तहँ गाँव की बातें ।।८।।
कार्यकर्ता ही नशा करे जब । गाँव-दुर्दशा कैसे सुधरें ?
गुण्डा गर्दी शुरू होय फिर । मन मानी तहँ होय गाँव भर ।।९।।

(दो.) **प्रधान, मुकद्दम गाँव के, जोशी और पटेल ।**
जिन जिन के अधिकार थे, सबने किया है खेल ।।१०।।

भूल न कोई जाँचता, सब जन खोजें राह ।
जिस को जो कुछ दिख गया, पूरन करे सो चाह ।।११।।

(चौ.) चाव से कोई घर बनवाये । पथ पर ही चौंतरा उठाये ।।
छप्पर इतना निकला आगे । गाड़ी बैल निकल नहिं पावे ।।१२।।
किसी ने गंदी छोड़ी नाली । भरा राह में उसका पानी ।।
घर घर के सब घिरे रास्ते । गोरू क्या मानव भी फँसते ।।१३।।
नाबदान दुर्गंधित सड़ते । मच्छर कीड़े तहाँ पनपते ।।
अड़ोस-पड़ोस बचा नहिं कोई । बेजार रोग से हुआ न जोई ।।१४।।
कोई सड़क पर गोरू बाँधे । बड़े मरकहे उन में आधे ।।
फजीहत हो राहगीरों की । कहते भी नहिं बनती उनकी ।।१५।।
किसी ने पत्थर दर पर गाड़े । उलट गये औरों के गाड़े ।।
गिरे कोई जन ठोकर खाकर । रात के अँधियारे में पथ पर ? ।।१६।।

(दो.) **फेंके कूडा राह में, काँटे कीलें काँच ।**
आने जाने में चुभे, तहूँ न बोलो साँच ।।१७।।
साहब मोटर में चले, धनिक जूतियाँ डाल ।
पूछे कौन गरीब से, कटे पैर का हाल? ।।१८।।

(चौ.) सडे गले फल, फल्ली छिलके । पथ पर सड़े तने केली के ।।
इत उत झाँक; कोई माँ उस पर । देती फेंक घिनौना खप्पर ।।१९।।
रस्ते मल से बने घिनौने । भरी गदंगी कूँचे कोने ।।
घूरे ठौर ठौर पड़ते हैं । गुहदरियों से गाँव घिरे है ।।२०।।
सड गल गयी घरों की बागड़ । बिखरे काँटे रस्ता ऊपर ।।
झाँखर भरी गाडियाँ लाते । उन के काँटे उठा न पाते ।।२१।।
झाड़-झंखाड़ खंड़हरन छाये । बिच्छू साँपहु भरे असंख्ये ।।
बुर्ज भयानक ढ़ही गढ़ी की । पार नहीं गंदगी तहाँ की ।।२२।।
बावड़ी बुजुर्गो ने बनवाई । तब से किसने नहिं सुधराई ।।
धोवन से गंदगी बढ़ी है । पानी में पत्तियाँ सड़ी हैं ।।२३।।
डाले कोई गाद राह पर । कुओं नाबदानों से लाकर ।।
काँच-टकोला, खपडी-टिक्कर । चूहे मरे फेंक दें उस पर ।।२४।।
बाड़े-गोठे और चौंतरे । धनिकों के रस्ते पर पसरे ।।
पत्थर, लकड़े, ईट वहीं पर । टोके कैसे कौन उन्हें पर ? ।।२५।।

(दो.) **गाँव पंच कैसे कहें? 'सब तो अपने यार' ।**
आँखें मूँदी इसलिये, गाँव बना रैबार ।।२६।।

गाँव दशा ऐसी अजब, हुआ मुझे अहसास ।।
चाहूँ तभी सुसंग का, गाँव-गाँव परकास ।।२७।।

(चौ.) दुरुस्त करने अब इस सब को । चलें भले जन देहातों को ।।
चूँकि राष्ट्र की नीव यही है । करें ग्राम आदर्श सही है ।।२८।।
गाँव गाँव मति मान हुए जो । शक्ति बुद्धि से चले बढे सो ।।
पहुँचत दौड़ सबहि शहरन में । इसीलिए यह दशा गाँव में ।।२६।।

ग्राम सफाई की परम्परा तथा 'राम धुन' की भूमिका

कामगार कर शहर सफाई । वैसी ही थी गाँव सफाई ।।
काम सभी थे मन से करते । अब तो सिर्फ पटेल की सुनते ।।३०।।
पवित्र रखना मार्ग देव का । यही भाव था तब जन जन का ।।
जगह जगह देवल बनवाये । पर घूरे अब तहँहू छाये ।।३१।।
चलन नगर की परिक्रमा का । प्रिय था विषय कई पंथों का ।।
वे भी बातें खतम हो गईं । अमद्रता बस शेष बच गई ।।३२।।

(दो.) रथ-यात्रा, दिण्डी प्रथा, उत्सव दही प्रसंग ।
उनमें भी अब घुस पड़े, नाच रास बेढंग ।।३३।।
जुलूस, संकीर्तन चले, पर न तत्त्व का ज्ञान ।
घर-घर दर-दर गंदगी, अति बाढ़ी अनजान ।।३४।।

(चौ.) फ़ेरी कभी कभार भजन की । घर-घर जाय निकाले जन की ।।
टूटी बीन, मँजीर बेसुर । गया काम से मृदंग भी फिर ।।३५।।
आये बाज बजंत्री जो भी । साथ न उन में ताल सुरों की ।।
जैसे-तैसे लगा चलाते । ब्याह मौज सी धूम मचाते ।।३६।।
घण्टे, शंख, नगारे, कर्णे । इक जस शोर लगें सब करने ।।
यों बेताल हुए गाँवों में । ताल भरे कैसे जीवन में ? ।।३७।।
ताल हुआ बेताल ऐस सब । बिगड़ी सभा-कीर्तनों की ढब ।।
कहते 'दया करें श्री वल्लभ' । पर सुधि नहिं निज जीवन सौरभ ।।३८।।
मंदिर से 'पालकी' निकलती । उसमें तमाशबीनी चलती ।।
कहाँ भावना ? हँसती टोली । माँ-बहनों की करे ठिठोली ।।३६।।

(दो.) अनुशासन नहिं चाल में, बाजी जल्द अजीब ।
किसी का किससे मेल नहिं, नहिं कुछ भी तरतीब ।।४०।।
कोई किसी की नहिं सुने, ऊधम बढ़ता जाय ।
नहिं इस की शिक्षा किसे, मारग कस चलि पाय? ।।४१।।

(चौ.) चलने की कोई नीति न जाने । पशु सम चलते सब मनमाने ।।
स्वस्थ चाल मानव की सारे । भूल गये हैं लोग हमारे ।।४२।।
ठोकर खाते कई राह में । होय अँगुलियाँ घायल उस में ।।
ठेलमठेल और धक्का-मुक्की । परिक्रमा में चहूँ ओर की ।।४३।।
परिक्रमा ऐसी इस युग की । विडम्बना है परिक्रमा की ।।
नही गंदगी मिटी ग्राम की । परिक्रमा फिर कौन काम की ?।।४४।।
चलन चला अब राम धुनो का । सुजन लक्ष्य निर्माण गाँव का ।।
'सेवा मण्डल' संस्था द्वारा । होना है यह कार्य हमारा ।।४५।।
मित्र 'रामधुन' नहीं आज की । परम्परा यह परिक्रमा की ।।
परिक्रमा की कार्य योजना । वही 'रामधुन' में सहेजना ।।४६।।

(दो.) मैं समझूँ है गाँव तन, रखो सदैव पवित्र ।
तभी रमेगा गाँव में, रस आनंद सर्वत्र ।।४७।।
स्वयं नहाते त्यों रखे, निर्मल गाँव पखारि ।
ग्रामोन्नति का श्रेय लें, मिलि सब नर अरु नारि ।।४८।।

(चौ.) साफ सफाई से खुद रहना । गंदे वातावरणकि सुधि ना ।।
कभी ना होगा मंगल इस से । दूषित होंगे तन मन उस से ।।४९।।
साफ रखें इससे दुकान घर । नाली, मोरी, सड़कें चौसर ।।
फिर आबाल वृद्ध नर नारी । चलें निकाल राम धुन-फेरी ।।५०।।
पूरे गाँव राम धुन पहले । होवे स्वच्छ सौन्दर्यवाले ।।
कहीं किसी के घर कैसेहू । दिखे गलीजपना न कबहू ।।५१।।
इस में मदद माँग लो सब की । सेवा व्रतियों के हाथों की ।।
सेवा ही व्रत पसन्द जिन को । सहाय देंगे वे सब जन को ।।५२।।
ग्राम सफाई कर लो मिल कर ।। नाली मोरी जगह जगह पर ।।
हाथों हाथ साफ सब कर लो । चहूँ ओर की सड़कें भी लो ।।५३।।

खाद का महत्त्व एवं प्रबंध

(दो.) गंदा कूडा ले चलो, सभी गाँव से दूर ।
सुप्रबंध उसका करो, मत फेंकों बेठौर ।।५४।।
गड्ढे खाद के खोद लो, बाहर ऊसर माहि ।
गोबर मूत्रहु पशुन का, भर दो उस में जाइ ।।५५।।

(चौ.) चर संडास बना ले ऐसे । बिष्टा कहीं दिखे नहिं जिससे ।।
अपनी विष्टा का खुद अपना । उचित है सारा प्रबंध करना ।।५६।।

नदी किनारे, सड़क किनारे । शौच करें नारी नर सारे ।।
वह गंदगी और लाचारी । 'चर संडास' मिटा दें सारी ।।५७।।
उसमें मलका त्याग करें पर । डालें मिट्टी जरूर उस पर ।।
जिससे खाद रूप बन जावे । मल मूत्रादि काम में आवे ।।५८।।
सभी गाँव की नीति यह हो । कहें सो करें बात तब ही हो ।
धरती उन पर प्रसन्न होगी । तृप्ति खाद से अवश्य होगी ।।५६।।
जो इस उत मल करे विसर्जित । वह तो बौडम होगा निश्चित ।।
सोन-खाद जो व्यर्थ नसावे । बंदर वह क्यों नहीं कहावे ।।६०।।

(दो.) **यह जो रचना प्रकृति की ! हो सब को ही ज्ञात ।**
खाद्य बदलता खाद में, खाद खाद्य उपजात ।।६१।।
जो जो हम खाते वही, बने रक्त रस माँस ।
बचा अंश ही खाद है, बने भूमि का ग्रास ।।६२।।

(चौ.) इसी खाद का जतन करोगे । तबही उपज अधिक पाओगें ।।
मिले खाद गर नहिं जमीन को । हो कमजोर, विकल्प न ताको ।।६३।।
जज़्ब होय मल मूत्र हड्डियाँ । भरे भूमि नव-स्फूर्ति शक्तियाँ ।।
फिर जब बोते बीज खेत में । आते अद्भुत दानें उस में ।।६४।।
समझे अब यह बात गाँव नहिं । खो बैठे वह ज्ञान सभी कहिं ।।
नष्ट कर रहे वस्तु अनमोल । गोबर पशु का अरु अपना मल ।।६५।।
उपले पाथ जला देते हैं । महा लाभ को खो देते हैं ।।
निवास गोबर में लक्ष्मी का । है यह वचन धर्म ग्रंथों का ।।६६।।
इसीलिये मल मूत्र गाँव कर । विधि को समझ ढको समेट कर ।।
उससे ही फिर गाँव की सारी । खेदी खाद मिले भर पूरी ।।६७।।
इससे दूर गंदगी होगी । रोग दोष की हानि रुकेगी ।।
अनाज की भी उपज बढ़ेगी । एक बाल दस का फल देगी ।।६८।।
समिति बने सो यह समझावे । अरु हर संभव यत्न करावे ।।
जनता जब जागृत हो आखिर । उत्पादन तब बढे निरंतर ।।६६।।
घेंटू या गोखरू, मखाना । धरती घेल लेय मनमाना ।।
उन सब को मिल कर उखाड़ लो । खाद बना कर उपज बढ़ा लो ।।७०।।
खूब खाद, खूबहि हो पानी । खूबहि श्रम, बीजहु बलदानी ।।
पैदावार गगन को छूले । पूरा गाँव खुशी से डोलें ।।७१।।

(दो.) **सच्ची सेवा है यही, जो चाहे प्रभु राज ।**
शान बडप्पन की वृथा, क्यों दिखलाते आज ? ।।७२।।

करो गाँव की स्वच्छता, जो आरोग्य-निधान ।
मैली खाद में तब खिले, वैभव नया महान ।।७३।।

'रामधुन' की झाँकी

(चौ.) ग्राम सफ़ाई कर लेने पर । चले 'राम धुन' नाम घोष कर ।।
स्वच्छता से हीं पवित्र सारा । हो जाये परिवेशहि पूरा ।।७४।।
प्रात समुहिक ना भजन जँह । सुख सुशांति ही रहे सदा तँह ।।
इसीलिए है ब्राह्म मुहूरत । कहे वेद, यह राम पहर सत ।।७५।।
श्रोता की जिज्ञासा इस पर । 'राम धुन' परिक्रमा में क्यों कर ?
इस से होता प्रभु का चिंतन । साथ स्वास्थ्य का भी संपादन ।।७६।।
रीति 'राम धुन' की अब सुन लो । पहले ग्राम शुद्धि कर डालो ।।
गांव स्नान जो हिस्सा लेगा । अवशि स्वास्थ्य लाभ पायेगा ।।७७।।
सूर्योदय के पहले घर-घर । चौक पुराए द्वारा साफ कर ।।
करें गाँव सब मार्ग सफाई । हो आनंद भुवन सा भाई! ।।७८।।
जिधर उधर सींचा हो पानी । रंगावलियाँ सजी सुहानी ।।
रखो राह में जहाँ तहाँ पर । संत देव तस्वीरें सुंदर ।।७९।।

(दो.) **मंगल बंदनवार हों, शोभित सब मैदान ।**
प्रदर्शनी सी दर बदर, अपने श्रम की शान ।।८०।।
फिर सब सेवक जन मिलें, चले 'राम धुन' शान्त ।
प्रथम सुसज्जित पंक्तियाँ, करें चतुर संभ्रान्त ।।८१।।

(चौ.) शिशुओं को बच्चों में मिला दे । प्रौढ़न साथ युवक सब जायें ।।
वयोवृद्ध भी सहज रूप से । मिल जाये वृद्धों के दल से ।।८२।।
चलें स्वतंत्र कन्या-महिलायें । शोभित सुन्दर पथ हो जाये ।।
बीच बीच में गायक उत्तम । मोती माला में माणिक सम ।।८३।।
निकट चलें बाजू सेवक जन । तस गणवेष होय परिपूरण ।।
संभाले वे ही सभी कतारें । दो-दो की लाइन में सारे ।।८४।।
घण्टा थामे एक हाथ में । सेवक फिर दो ठोक बजामें ।।
नियत रीति से चले 'राम धुन' । जय उद्घोषों से प्रमुदित जन ।।८५।।
'रघुपति राघव राजा राम । पतीत पावन सीता राम' ।।
गायक पहले गाते जावें । फिर पीछे से सब दुहरावे ।।८६।।
धुन गंभीर अरु गति धीमी हो । लय संभली अरु अनुशासित हो ।।
गायक पर सब गायें गाने । राष्ट्र भक्ति भावना सुहाने ।।८७।।

कुछ गीतों में ग्राम विषय हो । कुछ तो मंगल सुभक्ति मय हों ।।
कुछ तो ऐसे हों सर्वोत्तम । जो चरित्र पर अंकुश हरदम ।।८८।।
घण्टा बजे चौक चौराहे । मंदिर दर पर शान्ति बनाये ।।
करें गर्जना जय घोषों की । कंपति करें गगन को जो की ।।८९।।

(दो.) **जय हो श्री गुरू देव की, भारत माँऽ की जय ।**
संतों की जय-वाणि से, जागृत हो समुदाय ।।९०।।
महा पुरुष के चित्र के, दर्शन कर कर जोड़ ।
मूड़ नाय बिन ही रुके, राम धुनहु बिन तोड़ ।।९१।।

(चौ.) चले सुमंगल ऐसी फेरी । गुरु देव चौक में पूरी ।।
लोगों से कुछ आकर पहले । सेवक सीधी सतर लगा लें ।।९२।।
लोग खड़े फिर हों वैसे ही । अलग थलग पर कतार में ही ।।
बच्चे, युवक, वृद्ध जो होंगे । भिन्न पंक्तियों मेंहि रहेंगें ।।९३।।
पंक्ति अलग हो महिलाओं की । सुन्दर रचना बने सभी की ।।
खुला होय मैदान या प्रांगण । शोभा युत हो पूरा जन गण ।।९४।।
उद्घोषक जो करे घोषणा । लिखी हुई अरु सुपठित होना ।।
प्रार्थना, भाषण और समापन । क्रम से ही हो सब आयोजन ।।९५।।
भाषण में संदेश निरंतर । रहे गांव जीवन नित सुंदर ।।
सहकारी हो रोम रोम से । सच्चा सुख सादा जीवन से ।।९६।।
बढ़े गंदगी रास्तों में जब । मन मलीन होवे निश्चित तब ।।
उससे आत्मा का विकास भी । रुक जाता पूरा पूरा ही ।।९७।।
अनुशासित अरु स्वच्छ सभी हो । आपस में नित प्रेम भाव हो ।।
तभी गाँव यह स्वर्ग बनेगा । लक्ष्य हमारा पूरा होगा ।।९८।।

(दो.) **भाषणान्त जय घोष कर, घूमें तहँ सब लोग ।**
शांत विसर्जन होय फिर, यही 'राम धुन योग' ।।९९।।
पीछे से सेवक चलें, प्रसन्न मन निज धाम ।
यही विधान है शान्ति का, स्वर्ग उतारे ग्राम ।।१००।।

(चौ.) लोग मार्ग पर चल नहिं पावें । यह उपाय इसलिये बतावें ।।
ग़रीव अमीर अपढ़ हर कोई । चलना सीख लेय तह सोई ।।१०१।।
दो-दो की ही पंक्ति बनाते । एक एक के पीछे जाते ।।
होय पवित्र भजन गंगा से । गाँव संगठन बाढ़े उस से ।।१०२।।

सहज चालना सहज बोलना । अच्छी तरह बैठना उठना ।।
गायन वादन होय कलामय । दरबार गांव हो ऐसा रुचिमय ।।१०३।।
मरम्मत घर घर की हो जावे । सौन्दर्य भाव में भी रुचि जागे ।।
मिटे प्रवृत्ति अस्वच्छता की । बढ़े वृत्ति सहयोग भाव की ।।१०४।।
'हम सब एक' की जगे भावना । आलसपन का रहे नाम ना ।।
छोटा बड़ा लगे नहिं कोई । प्रदर्शन गुण का अवसर सोई ।।१०५।।

(दो.) अति प्रसन्न होवें सभी, बढे परस्पर प्रेम ।
ऐसी है यह 'राम धुन', विद्यालय सहकाम ।।१०६।।
यों आयोजन हाथ लें, कर लो गाँव-सुधार ।
जिस से सब को सुख मिले, तुकड्या कहे अपार ।।१०७।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरुकी, शास्त्रमत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
अध्याय बारहवाँ, यह 'ग्राम शोधन बतावे राम धुन ।
सब गाव नहलाकर बढ़ावे स्वास्थ्यकारी श्रेष्ठगुण ।।१०८।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

* * *

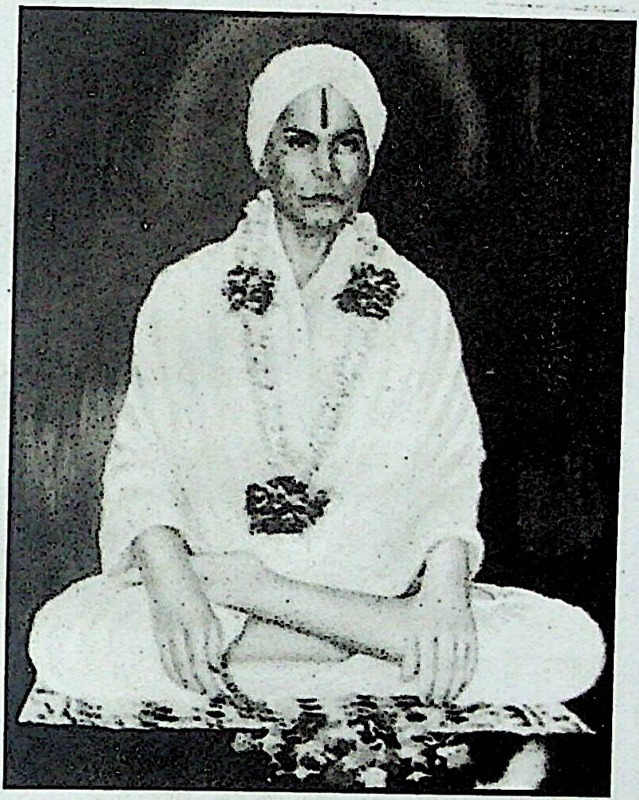

योगीराज सीतारामदास महाराज

तेरहवाँ अध्याय

ग्राम निर्माण कला

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

ग्राम दैन्य का कारण व स्वावलम्बन

(सवै.) सूत्र खरा रख लो दिल में यह, 'हाथ चले लछमी तहँ खेले' ।।
गाँव करो शहराधिक सुंदर, कार्य यही हम हाथ में ले लें ।।१।।
आलस से हि, दुर्दैव घुसा, यह भूल गये जब लोग गाँव के ।।
दैन्य-दरिद्र भरा सब ओरहि, बचा नहीं कोउ मार से उसके ।।२।।
शहरों में यंत्रादि भर गये । ग्राम कला उद्योग मिट गये ।।
भागें शहर की ओर कुशल जन । उद्योगन बीच काम को खोजन ।।३।।
शहर हि गई गाँव की बुद्धि । शहर चल गई गाँव समृद्धि ।
हस्त कला अरु श्रम की शक्ति । सिद्धि गई उन दोनों की भी ।।४।।
गाँव में बची मुख्यतः खेती । वह भी जैसे तैसे चलती ।।
विशेष योग्यता, शक्ति और धन । दुसरी ओर हुआ सब का मन ।।५।।
सामर्थ्यवान उत्तम शिक्षित भी । ढूंढ़ रहे नौकरी कहीं भी ।
कैसे उन्नत होगी खेती ? उद्योग या धंधे गाँव की प्रगति ।।६।।
देवे ध्यान अगर ये हीं सब । लघु उद्योग और खेती तब ।।
निश्चय ही सबको पोषेंगी । बेकार दीन कोई न रहेंगी ।।७।।

(दो.) गाँव के कच्चे माल से, दुनिया सब खुशहाल ।
पक्का बने न गाँव में, उसी से हम बेहाल ।।८।।
कच्चा मट्टी मोल दे, पका चौगुना भाव ।
पैदा कर भूखा मरे, सुखी हो कैसे गाँव ।।९।।

(चौ.) मुख्य है साधन गाँव के सुख का । निज अवलंबन सभी तरह का ।।
शहरों पर सो रहे न निर्भर । करें काम सब ही जन मिल कर ।।१०।।
उत्तम बुद्धि, ज्ञान कौशल इत । करे शक्ति सामर्थ्य नियोजित ।
स्वावलंबन फिर बढ़े गांव का । आलस झड़ जाये सब जन का ।।११।।
सबहि स्वावलंवन प्रेमी तँह । सबहि काम होवें घर ही मँह ।
अपना निपटि दूसरे जन की । करई मदद बिन चाहत फल की ।।१२।।
घर में वालक बड़े जो होते । खेती धंधा हाथ बँटाते ।
बीवी बच्चों सहित खुशी से । बसर जिन्दगी कर निज श्रम से ।।१३।।

हाथों में उद्यम का साधन । मुख में राम नाम का चिंतन ।।
यही धर्म है महान बाँका । ग्राम निवासी सब जनता का ।।१४।।
घटक गाँव का हो हर कोई । कलावंत सेवक जस भाई!
जो अपना घर सुगढ़ बना कर । करें गाँव को शोभित सुन्दर ।।१५।।

(दो.) **श्रम कर्ता की जीवनी, शोभा देव समान ।**
होय स्वावलम्बी स्वयं, करत गाँव सह काम ।।१६।।
गृह कारज पहला कदम, दूजा द्वार-प्रबंध ।
ग्राम सफाई-कार्य फिर, होय अमित आनंद ।।१७।।

(चौ.) नाना रूप बनेंगे श्रम के । फल स्वरूप अपने अनुभव के ।
फिर भी रूप कलात्मक देना । सीखे विधि वत श्रम को नाना ।।१८।।

उपयुक्त आत्मनिर्भर कला का विकास

'कला' है यह भूषण मानव का । भुला न लाय लक्ष्य 'जीवन' का ।।
सुख संतोष उपज मन मांही । तेहि बिन कला कला जग नाहीं ।।१९।।
सर्व कला हो अस हितकारी । वर्ना व्यर्थ मनुज हित सारी ।।
प्राणी जन्म और जीवन ही । होवे व्यर्थ, कला जो नाहीं ।।२०।।
मानव की पहचान कसौटी । कला और गुण से ही होती ।
राजा रंक कछू हो जोई । नही पूछने वाला कोई ।।२१।।
धनिक अगर हो जावे कोई । कला में चित्त लगावे सोई ।।
यही बुद्धिमानी है उसकी । आस तजे भाड़े के सुख की ।।२२।।
घर में नहिं तो सभी सयाने । गान-वाद्य, लय कोई न जाने ।।
पर बाहर से गायक ला कर । करे जागरन ठेका दे कर ।।२३।।
कहते 'उत्सव बड़ा हमारा' । 'नव रात्रि' का उपक्रम' प्यारा ।।
कलाकार गायक सो लाये । निकट देव के तिन बैठाये ।।२४।।
गायन का रसहू नहिं जाने । श्रोता रसिक बुलौआ आने ।
उन सबकी ही देखा-देखी । देंय दादा अरु हँसे विसेखी ।।२५।।

(दो.) **क्या करना इस रीति का? जिसमें समझ न होय ।**
कला स्वयं कोइ सीख लें, सुखी तबहि सब होंय ।।२६।।
राजहंस से और के, अपना भला कपोत ।
निज निज तोते को सभी, सिखाय करना बात ।।२७।।

(चौ.) एक न एक कला मानव के । जीवन में आवश्यक कर के ।।
'मानव' पद तब ही शोभित है । बिना कला जीवनहि कलह है ।।२८।।

कला उचित सुंदर भाषण की । कला चुस्त रहने-सहने की ।।
तन की मेहनत बने कलात्मक । जीवन हित हैं ये आवश्यक ।।२९।।
सुंदर अक्षर सुन्दर लिखना । ग्रन्थों का स्पष्ट बांचना ।।
टालमटोल न दिखे जरा भी । कलावान का जीवन साक्षी ।।३०।।
जीवन में घुल जाय सरलता । होय सादगी अरु सात्विकता ।।
निर्मल सागर रहे हृदय का । धर्म यही है कलावंत का ।।३१।।
यों तो कलावंत सब ही हैं । बिना कला कें कोइ नहीं है ।।
जन संमुख जहँ होवें प्रस्तुति । विवेक भले बुरे का निश्चित ।।३२।।

(दो.) निज हाथों से काम कर, होवे घर आदर्श ।
कुटिया में भी तब मिले, नंदन वन सा हर्ष ।।३३।।
मिट्टी घर सुन्दर बना, पक्के की क्या शान ।
खर्च होय थोड़ा मगर, रचना दिखे महान ।।३४।।

(चौ.) ईंटें, सुरही, मटकी, गमले । खपरा भी निज गाँव बना ले ।।
सुन्दर गढ़ना और पकाना । कला पूर्ण सब काम सुहाना ।।३५।।
कलावन हो गाँव का बढ़ई । लकड़ी सीधी सुगढ़ बनाई ।।
उसमें करें नकाशी सुंदर । शोभित घर हो जैसे मंदिर ।।३६।।
बने गाँव में कील हथौड़े । ऐरन, फरसे, दरात, पिंजड़े ।।
बने फावड़े, कुदाल, छींके, । सब जीवन-उपकरण यहीं के ।।३७।।
तोड़ के पत्थर गढ़ें फर्शियाँ । उनमें डालें सरल धारियाँ ।।
इमारतों में दिखती सुंदर । सीधी सी चौकोर मनोहर ।।३८।।
झाड़ू, पलंग, निवार, चटाई, । डोर, पाँवड़ा, मोटहु भाई!
बक्खर, हेंगा, नई तर्ज के । बने गाँव में हर किसान के ।।३९।।
धुन कपास सूत काते फिर । स्वेटर, वस्त्र बुनें सब सुंदर ।।
बने गाँव में दरी आसनी । सुंदर कलसी, गराँव जाली ।।४०।।

(दो.) कोई खेत चौरस करे, क्यारिन मेड़ बनाइ ।
लसैं कतारें, पौध की, लगी जो सीध लगाइ ।।४१।।
पंक्ति बद्ध हैं वृक्ष भी, सरल हरित अभिराम ।
करता घर मालिक स्वयं, निज हाथों से काम ।।४२।।

(चौ.) घर के पासहि बने बगीचा । परनाले के जल से सींचा ।।
लता फूल फल पेड़हु पौधे । साग सब्जियाँ रोजहि होवें ।।४३।।
दिखे न पानी घर से बाहर । बहे भूमिगत पाइप होकर ।।

धुआँ धुआँरे से ही निकले । गाय थान गोमूत्र न फैले ।।४४।।
निर्मलता हो पूरे घर में । भाव सौंदर्य रहन सहन में ।।
रखी होय हर चीज ठिकाने । सहजहि दिखे और मिल जावे ।।४५।।
नाम लिखे सब चीजों के ही । मिले समान बिना पूछे ही ।
दिखता आते ही घर-अंदर । कहे व्यवस्था किसकी सुंदर ।।४६।।
जो जो दिखे देहली द्वारे । क़ला पूर्ण हो सजे सँवारे ।।
सज्जा सब हो बनी गाँव की । रचना अपने कलाकार की ।।४७।।
शान न होय उधारी वाली । दुसरन के बल ऐंठ न खाली ।।
नहिं गद्दार कोउ होवै अस । बस्तु विदेसी भरे ठसाठस ।।४८।।
दिखे सोइ हो अपना गाँव का । या अपने ही प्रान्त-देश का ।।
जो आयेगा सो ही इसकी । होय चकित अरु करे बड़ाई ।।४६।।

(दो.) **सुन्दरता घरबार में, भरो स्वयं यह आज ।**
देख नजर भरके जिसे, हर्षित होय समाज ।।५०।।
हो श्रम-अर्जित कला से, स्वावलंब उद्योग ।
ओज लबालब तब भरे, देश में जीवन योग्य ।।५१।।

(चौ.) किसीकि कला शरीर सजावे । किसीकि घरको सुघड बनावे ।।
उत्साह भरे मन कला किसी की । बाढ़े शोभा सभी गाँव की ।।५२।।
व्यक्ति कला से गाँव कि शोभा । गाँव कला से प्रान्त की शोभा ।।
प्रांतों की मिल कला सुशोभित । करें देश वैशिष्ट्य विभूषित ।।५३।।
करें कलाएँ अर्जित सब जन । श्रम साधन से अपनी आपुन ।।
कलावान सच्चे के मन में । सार्थकता उसकी नित घूमे ।।५४।।
वर्ना सर पर टोप विदेशी । पहने पंचा खादी देशी ।।
लगना जैसे हनूमान का । मुख हो, अरु तन हो गणेश का ।।५५।।
बनाई बैठक सुन्दर इक जन । देखि होय आनंदित तस मन ।।
बिगड़ गई पर पैखाने की । टंकी सुधि नहिं किसको उसकी ।।५६।।
आया चतुर मुलाकाती घर । पहले घुसा पखाने भीतर ।।
सही सफाई कहीं न पायी । इत उत भरी गंदगी पाई! ।।५७।।
रसोई घर में वह देखा । राज़ प्याज आलू छिलकों का ।।
कूड़ा राख ढेर चूल्हों में । लगा न झाडू कई दिनों में ।।५८।।
कोने पान पीक से सींचे । गंद भरी अल्मारी पीछे ।।
जरा उठाये दरी गलीचे । कागज गर्द चीथड़े नीचे ।।५६।।

(दो.) कहे 'कला निधि ! धन्य हो! क्या अन्दर की बात !
जरा देख लो तो दिखे, लिपा न घर दिन सात' ।।६०।।
और सभी सुंदर बना, पर इतना ही दाग ।
ऐसा अंतर नहिं रहे, वही कला बेदाग ।।६१।।

(चौ.) कला में सभी पक्ष पूरे हों । निर्मल बाहर भीतर भी हो ।
लागे हाथ जहाँ भी तेहिकर । लक्ष्मी पहुँचे वहीं दौड़कर ।।६२।।

कलात्मक आदर्श ग्राम रचना

कला से घर इस तरह सजाया । सुन्दर निज जीवनहु बनाया ।
पर यदि गाँव रहे बिगड़ा ही । टिक सौन्दर्य सके तहँ नाही! ।।६३।।
काले तन पर कोढ़ दिखे जस । त्यों वह दिखे अकेला ही तस ।।
इसीलिए निज कला संवारो । गाँव को खुद आदर्श बनाओ ।।६४।।
सेवक मण्डल संकल्पित हो । 'हाथ काम अरु मुखमें राम' हो ।।
अरु श्रम यज्ञ अखण्ड चलावे । उसे ग्राम सेवा नित भावे ।।६५।।
श्रमदात्री सप्ताह मना लें । दुरुस्त सब मिल रस्ते कर लें ।।
बने मोरियाँ, शोषक खड्डे । गंदा पानी कोउ न छोड़े ।।६६।।
गाड़ी डगर जो सकरी होवे । लीक में गहरे गड्ढे होवें ।।
बढ़े झाड झंखाड़ कँटीले । ठीक करें इनको सब पहले ।।६७।।
भर डालें कीचड़ के डबरे । काटें ऊँचे नीचे टीले ।।
निर्भंगी पैखाने नूतन । सबके लिए बनालें सब जन ।।६८।।
नदी तलैया तीर सफाई । चौरें, घट आदि सुखदायी ।।
उपज बढ़ाने प्रयोग जल का । प्रबंध करें सभी मिल उस का ।।६९।।
कुएँ, मकान, गाँव की गलियाँ । सुघड़ सजे पशु बाड़े, पुलियाँ ।।
ठौर ठौर पेशाब घरों का । हो निर्माण नालि-गटरों का ।।७०।।

(दो.) वृक्षारोपण सब करें, पथ के दोनों ओर ।
रख दें कूडे दान भी, बीच बीच चुनि ठौर ।।७१।।
पवन चले जीवनमयी, चहुँ दिस सुन्दर गाँव ।
कहीं न गंदा घर दिखे, होवे सहज स्वभाव ।।७२।।

(चौ.) जहाँ कहीं भी हों टूटे घर । सुजन वहाँ जायें सब मिलकर ।।
'बंधु हमार' भाव से मिलकर । करें मरम्मत बनाय सुंदर ।।७३।।
बिन खिड़की साँसत घर जैसे । घुटन सीड़ की घर दड़बे से ।।
घर के बीच मवेशी बाड़ा । काहीं न रहने देंय कबाड़ा ।।७४।।

बोल्डर पत्थर पड़े राह में । आड़े चौंतर-छज्जे उस में ।।
इन्हें सुधारे किसे न छोड़ें । अस्तव्यस्तता सभी मिटा दें ।।७५।।
इन सबको हम खोद निकालें । फीता लेकर सीध बँधाले ।।
बनें खुले पथ नये सिरे से । जिन पर चल करसब जन हुलसें ।।७६।।
लक्कड़-पत्थर बीच रखें नहिं । दिखे साफ सुथरी चहु बाटहि ।।
हठी होय अक्खड़ यदि कोई । सब मिली गाँव मना ले सोई ।।७७।।
फूँस के छप्पर, बेड़ कँटीले । बने जहाँ तक गाँव न डालें ।।
कंडे ढूह, घिनौने घूरे । मनमाने न रखें ये पूरे ।।७८।।
ओसना, खलिहान, लाँक भी । टालें बनी घस या कड़वी ।।
भट्टा, आवा आदि सभी की । जगहें निश्चित कर दो नीकी ।।७९।।
बाहर फेकें मरे जानवर । अस्थि माँस फिर फैल गाँवभर ।।
उचित नहीं यह, अलग जगह हो । चिकना गड़ना सब विधिवत हो ।।८०।।

(दो.) **नाम पट्टियाँ सड़क पर, लगी रहें सब नीक**
महाजनों के नामसे, हों शोभित पथ चौक ।।८१।।
रहे अंधेरा मार्ग पर, वहाँ प्रकाश-प्रबंध ।
कारजकर्ता यों भरें, चहुँ दिशि ही आनंद ।।८२।।

(चौ.) शाला का निर्माण करावें । कांजी हाउस भी बनवावें ।।
बाज़ार जरूरी होय गाँव में । प्रबंध उसका लेंय हाथ में ।।८३।।
नही तो हाट भरे गाँवों में । नहीं व्यवस्था दूकानों में ।।
रखीं कहीं भी चीजें कोई । गड़बड़ चहूँ ओर तहँ होई ।।८४।।
धकापेल लोगों में होती । कितनों की जेबें कट जाती ।।
रीति नीति मानवता सी तहँ । समझ नहीं कुछ उस हड़बड महँ ।।८५।।
भल मानस जहँ तरुण देखते । ऊल जलूल बोल हैं बकते ।।
चलते इधर, उधर हैं आँखें । क्यों न लगें लोगों को धक्के ? ।।८६।।
कोई बीच में माल उतारे । खुले कहीं मिरचों के बोरे ।।
खुली घूमती गाय बकरियाँ । गड़ी खूँटियाँ, खड़ी गाडियाँ ।।८७।।
कतार में दूकान न कोई । माल कहीं भी रखते भाई! ।।
इससे होती बड़ी फजीहत ।क्रय-विक्रय वालों की आफत ।।८८।।
तिस पर झुण्ड मक्खियों के भी । कौन सुनाये? सुने न लोभी ।।
कदम कदम पर सोच लोभ का । चले कमाई का बस झोंका ।।८९।।
कोउ कहें "क्यों करते ऐसा?" व्यापारी कह भरते पैसा ।।
टैक्स देत फिर कौन कहेगा ?' ऐसे में ऐसा ही होगा ।।९०।।

ऐसा जहाँ जहाँ भी पावें । मिलकर सब सुधार करवावें ।।
प्रेम से जब सब मिल बोलेंगे । हठ कोई तँह नहीं करेंगे ।।९१।।

(दो.) जब न इसे कोई सुनें, 'डाले सभा दबाव ।
कह देखें सरकार से, सब सुधारने गाँव ।।९२।।
समिति रहें अपनी प्रमुख, हो सुंदर बाजार ।
नाप तौल पद्धति जगह, माल उचित तस सार ।।९३।।

(चौ.) सब की ही फसलें रखवाना । घुसे गाँव में बंदर दल ना ।।
ऐसे कितने ही कामों की । करे समितियाँ गठित गाँव की ।।९४।।
सर्वांगीण ग्राम रचना हो । मन रंजन का स्वस्थ रूप हो ।।
मगन होय जिसमें सब कोई । लगन शहर की जरा न रहई ।।९५।।
भाषण, कीर्तन, कला पथक हो । वाद विवाद, नाट, ढोला हो ।।
ऐसे नित्य नये मनरंजक । चलें गाँव में, किन्तु सात्विक ।।९६।।
एक होय उद्यान सुशोभित । मनः स्वास्थ्य के लिए यथोचित ।।
विविध रंग के वृक्ष, फूल, फल । लता कुंज, दे प्रसन्नता बल ।।९७।।
उस में हों झूले, क्रीडांगण । प्रमुदित करें युवक बालक मन ।।
जाति पाँति को रोना तज कर । सहभोजादि चलावें सुंदर ।।९८।।
होय विश्राम भवन गाँव में । सुख में महमान रहें जिस में ।।
खुला द्वार हो सबको उसका । हो मेहमान किसी के घर का ।।९९।।
सुन्दर वापी हो उस माँही । शीतल जल सब पियइ सराहीं ।।
उद्बोधक अरु सुन्दर वचना । हर दिवाल पर सुन्दर लिखना ।।१००।।

(दो.) करो 'अखाडा' खेलने, बालक हुमक सहर्ष ।
स्वयं खिलाडी मल्ल का, उतारने आदर्श ।।१०१।।
बाल बदन दिखते सभी, चारु गुलाब समान ।
खिला सुपुत्रों का भला, हरा भरा उद्यान ।।१०२।।

(चौ.) वाचनालय भी सुन्दर होवे, नाना ग्रन्थ ज्ञानमय जिसमें ।।
सद्बुद्धि का ग्रामजनों में । पोषण होवे यही केंद्र में ।।१०३।।
क्या चल रहा आज धरती पर । सहज जान लें गाँव बराबर ।।
हो ताजा अखबार इसलिए । आकाशवाणी को भी सुनिये ।।१०४।।
हस्त लिखित पत्रिका भी निकले । हस्ताक्षर सुन्दर सब कर लें ।।
लेखन कविता चित्रकला में । रुचि बिकसेगी गाँव गाँव में ।।१०५।।
फैले खबर विचार सहज में । लिखित बोर्ड पर रखो चौक में ।।
मानो वह ज्ञानेश्वर-भित्ती । सदा ज्ञान सब को है देती ।।१०६।।

अपढ़ो में सामर्थ्य ज़गाने । प्रौढ़न शिक्षा देय सयाने ।।
लगे नाम की तखती घर-घर । मकान का हो क्रमांक जिस पर ।।१०७।।

(दो.) पशुओं की जाने दवा, उस जन को लो साथ ।
लोकगीत, नुसखे सही, कर संग्रह निज हाथ ।।१०८।।
स्वास्थ्य गाँव का ठीक हो, रहें जीव सक्षेम ।
'आरोग्य धाम' हो गाँव में, जिस में सेवा प्रेम ।।१०९।।

(चौ.) अपन गाँव की वृक्ष लताएँ । जड़ी बूटियाँ बने दवाएँ ।।
साथ प्राकृतिक इलाज का भी । वैद्यहि ज्ञान होय सब का ही ।।११०।।
कोई साँप का जहर उतारे । हाड़ जोड़ दे, घाव सुधारे ।।
अनुभव ले उन औषधियों का । आदर कर इन सब वैद्यों का ।।१११।।
जहाँ औषधालय पुरुषों का । वहीं सूतिका गृह भी नीका ।।
दोनों की ही आवश्यकता । ग्राम जनों को रही सर्वथा ।।११२।।
वैद्य और वैदिनी भले से । गाँव बना लें अपनों में से ।।
नये-नये सब ज्ञान सुसाधन । देकर कर लें उन्हें अद्यतन ।।११३।।
होय गाँव में एक डाकघर । जिससे मिलती खबर शीघ्र तर ।।
चले परस्पर दूरस्थों का । पत्रों से व्यवहार - सलीका ।।११४।।
ऐसी सुख सुविधाएँ सारी । निश्चय कर सकते सब जन ही ।।
मगर स्वावलंबन के बल पर । जब होवे सहयोग परस्पर ।।११५।।
सब का जितना समय, बुद्धिबल । श्रम सामर्थ्य होत है फादिल ।।
आ जाये गर वही काम में । सुखी ग्राम हो निश्चय मन में ।।११६।।
वह आदर्श गाँव का जीवन । बने शहर से भी नंदनवन ।।
कहता तुकड्या सुंदर जीवन । होगा सबको ही आकर्षण ।।११७।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरुकी, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
अध्याय तेरहवाँ बतावे ग्राम के निर्माण की ।।
यह स्वावलम्बी शुभ कला, ना गर्ज शहरी शानकी ।।११८।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

* * *

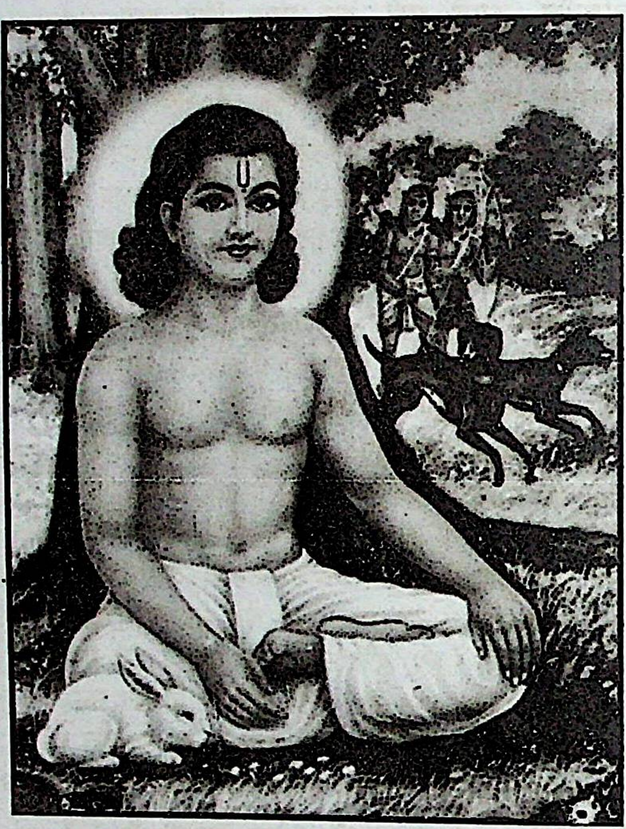

सर्वज्ञ श्री चक्रधर प्रभु

चौदहवाँ अध्याय

ग्राम-आरोग्य

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

रोग-कारण एवं लोग भ्रम

(मनहरण) श्रोता अति भावुक सवाल करे स्वाभाविक,
यद्यपि करेगें हम गाँव सब ठीक है ।
किन्तु कहीं कुपित देव होय अगर,
कोइ नहिं निकाल सके, मिटे नहिं रेख है ।।१।।
गाँव की तो बात क्या, शहर में भी क्यों न रहें?
सामने देव के नहीं ताव चले नीक है।
बेहाल गाँव को भी बनाया शहर जैसा,
कौन लाभ होगा? कौन देगा शक्ति का स्रोत कहाँ है ।।२।।
देवि देवताओं का प्रकोप यदि हो गया हो,
हैजा-महामारी का धमाका यदि आया हो ।
तब न किसी को कोई कदापि सुधार सके,
चाहें बैदराज के भी बाप को बुलाया हो ।।३।।
इसीलिए देवताओं को प्रसन्न है कराना,
महा पूजा देने में ही स्वहित समाया हो !
रहे गाँव अथवा शहर कोई सुसंपन्न,
सुखिया न बने जब प्रभु कोप छाया हो ।।४।।

(चौ.) मित्रो! सुनो इसी का उत्तर । देवि-देवता या परमेश्वर ।।
वे तो सभी दयाके सागर । संभव नहिं तहँ कोप लेश भर ।।५।।
कोप करइ सो दुष्टन पाहीं । तहँ उद्धार भाव मन माहीं ।।
निरपराध को गर दुख देंगे । कैसे उनको देव कहेंगे ।।६।।
सब तो हैं उस के ही बालक । तिन छेड़े क्यों कोई नाहक?
काम हमारे यह तन आवे । हम ही अपने शत्रु कहावे ।।७।।
चारों ओर किया सब गंदा । हो कीटाणु उसी से पैदा ।।
नाना रोग होंय उन ही से । बढ़ें तहाँ बिन रोक कहीं से ।।८।।
नियमवान आचार नहीं हैं । शुद्ध व्यवहार अहार नहीं है ।।
अशुद्ध वायु अरु जल हो सब मिल । संहार करत जन हो निर्बल ।।९।।

कुछ भी कभी कहीं भी खाना । चाहे जब जागना या सोना ।।
सप्त धातुए कोपें उस से । देतीं फल सो रोग रूप से ।।१०।।
‘होटल खाना मरघट जाना’ । यही सयानों का है कहना ।।
उस पर नाना विकट व्यसन । बनि बिताल, हैं पीठ चढ़े तिन ।।११।।

(दो.) नियम कहीं कुछ नहिं रहा, होत तहाँ हुड़दंग ।
थूके खाये को कहाँ ? रोग बढ़ें संसर्ग ।।१२।।
फैलत इत उत रोग यों, बढें छुतैले रोग ।
हवा प्रदूषण की चले, मरे हजारों लोग ।।१३।।

(चौ.) कोई ‘देव का कोप’ बतावे । ओझा को भी कोई बुलावे ।।
‘बाहर’ भीतर घात समझ जन । करत रात में चौरा पूजन ।।१४।।
कोई तो ‘टोटका’ बताते । पिशाच वश का मंत्र दिलाते ।।।
रोगी को सो दवा न देते । मूरखता से तिन मरवाते ।।१५।।
ओझा, मांत्रिक, भगत, घुमारे । भावुक जन तिन हेरत सारे ।।
फैलाते निज पेट की खातिर । अँध विश्वास गाँव में घर घर ।।१६।।
मनौतियाँ मनवाते बाँकी । बड़ी धूम देवी पूजा की ।।
भैंसे बकरे मुर्गे पामर । व्यर्थ कटाते धर्म नाम पर ।।१७।।
परमेश्वर ने जीव बनाये । वह क्यों उन्हें मारना चाहें ?
दलाल उसका लाभ उठाते । अपनी पूरी हविस कराते ।।१८।।
संतो ने जब देव मनाया । तब किस की बलि कहो चढाया ?
कह चैतन्य, चक्रधर, चोखा । ‘देव मात्र भावहि का भूखा’ ।।१९।।

(दो.) पशु बलि चाहे देवता, है भ्रम अरु अभिमान ।
गाँव सुखी तब तक नहीं, रह जब तक अज्ञान ।।२०।।
बिगड़े गाँव अरु शहर के, सब आचार-विचार ।
रोग महामारीन से, होंय सभी बेजार ।।२१।।

आदर्श दिनचर्या व भाग्यवान की परिभाषा

(चौ.) गाँव बनाने निरोग सुंदर । सुधारना है एक-एक घर ।।
यह ही नहीं, सभी घर वालें । निज जीवन आदर्श बना लें ।।२२।।
व्यक्ति बने आदर्श व सम्यक् । तस दिनचर्या गर हो सात्विक ।।
हो निरोग सभी का जीवन । सुंदर तभी गाँव का अंकन ।।२३।।
बँधे नियम से एक-एक दिन । उस से सुधरे समग्र जीवन ।।
होय निरोग गाँव इससे ही । होय प्रसन्न देव देवी भी ।।२४।।

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नियमों का आधार मुख्य यह । दृढ संकल्प अटल हो मन मँह ।।
उन्नति का हो वह अवलम्बन । आध्यात्मिक या ऐहिक जीवन ।।२५।।
बिन संकल्प नियम गर माने । पूरा जीवन सुन्दर चालें ।।
एकहु बार ध्यान जो उतरे । ताँता लग गलतिन का सगरे ।।२६।।
एक बार जो जगे रात भर । तब वह सुबह उठेगा क्यों कर ?
फिर आलस में दिन बीतेगा । नियम कौन सा तहाँ टिकेगा ? ।।२७।।
नहिं चिंता, नहिं डर किसका भी । घर वाले बोलें न जरा भी ।।
उठे दूसरे भी दिन वह फिर । सूरज निकले दस बजने पर ।।२८।।

(दो.) **कुछ दिन रहे न ध्यान तो, आदत ही बन जाय ।**
नहिं बदले संकल्प बिन, कुछ भी करो उपाय ।।२९।।
ऐसा होने देय क्यों, उठे रोज ही प्रात ।
जगे न जो, तस दे जगा, सब घर वाले साथ ।।३०।।

(चौ.) उठना कोई कहे देर का । लंक्षण यह तो भाग्यवान का ।।
कौन बात की कमी किसीको ? खाना पीना धनवानों को ।।३१।।
इसी समझ से हुए आलसी । बातें भाग्यवान की कैसी ?
भाग्य निशानी सोना है गर । बड़ भागी रोगी नहिं क्यों कर ।।३२।।
वह तो सोया ही रहता है । सोये ही खाता पीता है ।।
क्या वह अधिक भाग्यशाली है? क्या उसका जीवन सुंदर है? ।।३३।।
उलटी व्याख्या भाग्यवान की । हो सकती किस बुद्धिमान की ?
जो उठता हो रोज सवेरे । भाग्यवान उसको समझो रे ! ।।३४।।
भाग्य संपदा उपजे श्रम से । उस की क्षति होती सोने से ।।
बढ़े बोझ औरों के श्रम का । घट उत्साह अपने मन का ।।३५।।
घर का मालिक सोता रहता । सिर के ऊपर सूर्य चिलकता ।।
फैली धूप तहूँ नहिं उठता । पलंग पै करवट रहे बदलता ।।३६।।
नौकर-चाकर आलस करते । कहते 'घर मालिक ही सोते ।।
फिर क्या जल्दी पड़ी हमें ही ? जा कर काम करें क्यों अब ही?।।३७।।
काम काज का नाहीं खटका! राज तहाँ भौंकत कुत्तों का ।
रोते चिल्लाते हैं बालक । पड़ी नींद में माँ-बहनें तक ।।३८।।
पवित्र फिर घरबार कहाँ ये ? जगने बाद अंग अलसाये ।।
चहुँ दिसि बेतरतीबी छाई । पेट में व्याधि विकट समाई ।।३९।।
उसी में जड़ है सब रोगों की । लगी बला डाक्टर बैदों की ।।
काम तहाँ सब बिगड़त जाही । घुस दुर्भाग्य ऐस घर माही ।।४०।।

प्रातःकालीन कार्य व प्रार्थना समय

(दो.) हवा सुबह की स्वास्थ्य कर, सब जीवन सब ठौर ।
भरि ऋतुएँ दे प्रसन्नता, प्राणिमात्र चँहु ओर ।।४१।।
वन उपवन सब जागते, खिलते पुष्प बिहान ।
पशु पक्षी प्रातः समय, नित उठ गाते गान ।।४२।।

(चौ.) दुहो सवेरे गाय भैंस को । सारवान जब अधिक दूध हो ।।
रोग हरण लालिमा रक्त की । नित्य बढ़ावे वायु प्रात की ।।४३।।
इसीलिये प्रातः उठ बैठो । ब्रह्म मुहूर्तहु दर्शन लूटो ।।
पहले अपने आसन में ही । 'प्रातः स्मरण' करो सुखदायी ।।४४।।
स्मरण ईश का स्फूर्ति नई दे । प्रगतिवान पूरा दिन कर दे ।।
भले काम हों पूरी गति से । करें प्रार्थना तदरथ प्रभु से ।।४५।।
करें संकल्प उस बेला में । 'बुरा करूँ नहिं' चिंतन मन में ।।
सुसंस्कार से बढ़ता जाता । वेगवान उन्नति पथ यात्रा ।।४६।।
प्रातः स्मरण इसलिये करना । नवोत्साह से मन को भरना ।।
नित्य कार्य फिर सब निबटावें । यह नित नेम अमूल्य चलावें ।।४७।।
हो यदि सुबह शौच मुख मार्जन । होवे वायु दोष परिमार्जन ।।
तन में नवल शक्ति संचारण । मन भी पाता शुभ निर्मलपन ।।४८।।
उषापान यदि प्रात करे जन । अंतर इंद्रिय हों‌य शांत वन ।।
शीतल जल से स्नान करे नित । अति प्रसन्न रहता उसकी चित् ।।४९।।
शीतल जलस्नान महिमा अति । जागे अनुपम त्वचा में शक्ति ।।
रहे बदन में फुरती हरदम । नहिं होवे उत्साह कभी कम ।।५०।।

(दो.) सिर-सुशुम्न ठंडी रहे, तभी बुद्धि-उत्कर्ष ।
महान जन अनुभव यही, कई हुए आदर्श ।।५१।।
स्नान गर्म जल से करे, वह समझो बीमार ।
यह आदत नित की बनी, कर दे तन बेजार ।।५२।।

(चौ.) अरुणोदय से पूर्व नहाकर । सामूहिक हो ध्यान निरंतर ।।
कमरा या कि प्रार्थना मंदिर । होवे स्वच्छ ध्यानके खातिर ।।५३।।
प्रभा सुनहरी अरुणोदय की । छटा लावण्यमयी सृष्टि की ।।
प्रतिभा शान्ति निसर्ग बढ़ावे । योगी लाभ दिव्य वह पावे ।।५४।।
'करें ध्यान पूजन योगी जन' । हम क्यों करें स्मरण या गायन?'
है इसमें नहिं कोई सचाई! कहने वाला हो जो कोई ।।५५।।

योगी धरे समाधी अपनी । साधक करें सुमारग करनी ।।
सुयोग जीवन उज्ज्वलता का । जग में होय सुबह ही नाका ।।५६।।
बाद ध्यान के सैर करें नित । होवे क्रम यह शामिल आदत ।।
देह रहे निर्मल मन जिससे । खुली प्राण वायू सेवन से ।।५७।।
कोई दौड़े, कोई चलता । आसन सूर्य नमन कर खिलता ।।
कोई गाता, करता चिन्तन । सुप्रभात हो यह शुभ दर्शन ।।५८।।

(दो.) **करे पठन-पाठन कोई, तन मन को दे मोड़ ।**
ऐसे क्रम से ही बने, सुन्दर वय बेजोड़ ।।५९।।
आश्रम या घर में रहे, प्रवास तीरथ धाम ।
प्रात समय नित ही करें, शुभ अभ्यास तमाम ।।६०।।

(चौ.) घर आश्रम की करे सफाई । रस्ते साफ करे हर कोई ।।
गौ-भैंसों के भी गोठाले । निर्मल दर्पण सम कर डालें ।।६१।।
दें सहाय नौकर चाकर भी । पर हर व्यक्ति काम निज करही ।।
माँ-बहनें भी मिल कर झट पट । समिटायें सब काज पटापट ।।६२।।
प्रात समय देखे गर कोई । रंगावलियाँ, रई, पुताई ।।
निबटे काम सभीके सुंदर । नहीं गंदगी बाहर-भीतर ।।६३।।
गाँव समूचा ऐसा होवे । मानो लक्ष्मी का मन मोहे ।।
राज करे आरोग्य वहाँ पर । बने गाँव जो ऐसा सुँदर ।।६४।।
प्रात सफाई होय निरंतर । जहाँ न कोई दिखे खाट पर ।।
जीव होय चैत्यवान जहँ । आयु बड़े बेजोड़ अवशि तहँ ।।६५।।
नियम इसलिए ठीक चलावें । गलती से भी चूक न होवे ।।
निज बर्ताव संवारे फिर फिर । यही राह इस निश्चय हितकर ।।६६।।
अस अभ्यास कि जड़ जम जावे । अवसि स्वास्थ्यमय जीवन होवे ।।
गरज न तन को औषधि की फिर । बड़े तेज नव तस अभ्यंतर ।।६७।।
प्रात समय मध्यान्ह शाम को । त्रिकाल संध्योपासन हम को ।।
बतला दिया पूर्व ऋषियों ने । संस्कारों की शक्ति बढ़ाने ।।६८।।
सभी समय इसलिए उचित है। प्रातः ध्यान परन्तु श्रेष्ठ है ।।
अरु वैसे ही सांध्य प्रार्थना । करें नियम से सभी साधना ।।६९।।
निद्रा के भी आदि अंत में । गोधूली की शुभबेला में ।।
संकल्प करें भोजन के भी संग । दृढ संस्कार रमें तब अंग-अंग ।।७०।।
भोजन में, जन में हरि चिन्तन । गीता पाठ आदि उच्चारण ।।
मन में सात्विक भाव का सागर । शुद्ध होय जीवन का निर्झर ।।७१।।

सात्विक भोजन का महत्त्व

(दो.) प्रश्न करे श्रोता स्मरें, भोजन में भगवंत ।
कहिए उसका कौन फल? कौन भला यह पंथ ? ।।७२।।
भोजन भरना पेट है, वहाँ 'देव' क्यों गायँ ?
हँसी मजाक क्यों न करें ? जो मन को हुलसाय ।।७३।।

(चौ.) सुनो! जवाब एक ही इस का । भोजन है संस्कार पिंड का ।।
अग्नि वैश्वानर में समर्पण । यज्ञ इसे कहते हैं बुध जन ।।७४।।
भोजन समय रहे प्रसन्न मन । करे विचारों का शुभ चिंतन ।।
गुण सोई सब अन्न साथ में । जज़्ब होय सो निर्मल तन में ।।७५।।
धूप पवित्र सुगंधित सात्विक । वातावरण रोग का नाशक ।।
सुख कारक रंगावलि आदि । स्वच्छ जगह फिर भी हो सादी ।।७६।।
बिना स्वच्छता का भोजन जो । है मलीनता का प्रतीक सो ।।
हाथ पैर धो कर पोंछन से । भूख खुले जठराग्नि तेज से ।।७७।।
पंगत पहले काम जो होवे । उससे आराम सभी पावें ।।
सब के मिलजुल करने से ही । होता सुगम कार्य सब भाई ।।७८।।
कोई आसन पाट बिछावे । कोई पत्तल, जल परसावे ।।
धूप बत्तियाँ कोइ जलावे । रंगावलियाँ कोउ सजावे ।।७९।।
सभी बैठ पंगत में पहले । गीता पाठहि रस रंग भर लें ।।
परोस पूरी होवे फिर तब । 'शांति मान्त्र' का पाठ करें सब ।।८०।।
करें बाद में ब्रह्म समर्पण । आदर सहित अन्न का सेवन ।।
श्लोक-छंद भोजन में गावें । सहर्ष मृदु मधु वचन सुनावें ।।८१।।
भोजन पूर्व 'आचमन' जल का । हेतु अग्नि दीपन ही उसका ।।
'चित्रहुति' में जल आवर्तन । उसका भी है भाव 'समर्पण' ।।८२।।

(दो.) प्रभु उपजावे अन्न को, अन्न ईश्वरी दान ।
उस पर जीवन विश्व का, प्रभु स्मरण महान ।।८३।।
प्रभु के शिशु हैं जीव जन, अग्रासन तिन देय ।
वैश्व देव तर्पण यही, भोज यज्ञ तब होय ।।८४।।

(चौ.) भू माता का प्रसाद भोजन । समझ करो सुख से आस्वादन ।।
अन्नहि पूरा किसान का श्रम । सेवन सेवा हितहि करें हम ।।८५।।
भोजन प्रेम भाव से पाना । श्लोक छंद शुभ सादर गाना ।।
उलटी सीधी बात न करना । भोजन समय क्रोध नहिं करना ।।८६।।

यद्यपि हास्य विनोद चलावे । अश्लीलता ना उसमें आवे ।।
दाना एक न छोड़े जूठन । भोजन में हो रीति का पालन ।।८७।।
राजस तामस सात्विक जैसे । भोजन के हैं प्रकार ऐसे ।।
अपनी शक्ति अवस्था सम्यक । देख अन्न लें हित कर पाचक ।।८८।।
कोई सज्जन कहते हैं अब । 'खाद्य बने हैं पाचनार्थ सब' ।।
पर पाचन का विधि-विधान भी । जरा मिला लें समझ देख भी ।।८६।।
कोई खाद्य रोग करता है । कोई खाद्य भोग भरता है ।।
कोई खाद्य दुष्ट संस्कारी । कर डाले, जो जीव विचारी ।।६०।।
कुछ तो चूना कंकड़ खाते । कीड़े माँस कोई चुँग जाते ।।
स्वभाव प्रकृति उन जीवों की । परन्तु रहती है वैसी ही ।।६१।।

(दो.) क्या खाकर मानव बने, मानवता का रूप ।
सुजन सोच कर तय करें, सो ही रीति अनूप ।।६२।।
शुद्ध सत्वमय अन्न से, बढ़ते सत्त्व-विचार ।
राजस तामस खाद्य से, फिर वैसा आचार ।।६३।।

(चौ.) बने शराबी, माँसाहारी । मनमानी हो बुद्धि विकारी ।।
तरह-तरह के रोगहु होते । छुतिहा जीवन नर्क बनाते ।।६४।।
सब ही यह सिद्धान्त जानते । रस रक्तादि खाद्य से बनते ।।
माँस मेद वीर्यादि खून से । बनते तन में निज निज गुण से ।।६५।।
रहें रुधिर गुण जिन के जैसे । विचार स्फूरित होते वैसे ।।
हो क्रूर शूर या मूढ़ निपुण । सब का आधार रक्त का गुण ।।६६।।
कई वंशगत आते हैं गुण । ज्यों हो रक्त वीर्य संमिश्रण ।।
कुछ तो खान पान के कारण । बनते है संस्कार देह मन ।।६७।।
कुछ संगति से बनती आदत । देश काल भी करे प्रभावित ।।
कुछ तो निज प्रयत्न के ही बल । लाघें सागर हो जाय सफल ।।६८।।
सब बातें ये जदपि ठीक है । खान पान ही तदपि मुख्य है ।।
बनते-घटते क्योंकि उसी में । रक्त माँस मानव शरीर में ।।६६।।
उत्तम रुधिर चाहते तन में । उत्तम अन्न होय भोजन में ।।
दूषित भोजन बुद्धि इंद्रियाँ । दूषित होंय न कोइ सुनैया ।।१००।।
विषय-वासना फिर न रुकेगी । बाह्य जीवन की हवा लगेगी ।।
लड़ते जैसे रहें जानवर । वैसे ही उद्दाम बने नर ।।१०१।।

(दो.) क्रूर कर्म यदि लक्ष्य हो, वैसा ही सो खाय ।
तैयार रहे पर भुगतने, कुफलन उस पथ पाय ।।१०२।।

जो चाहे मन प्राण से, मनुष्यता संस्कार ।
वे लें सात्विक अन्न ही, पक्का वही अधार ।।१०३।।

(चौ.) प्रश्न गरीब का पूछे कोई । सात्त्विक अन्न कहाँ से पाई ?
फिर उसको निज जीवन के हित । क्या करना है? कहिए निश्चित ।।१०४।।
मिलना सात्विक अन्न सहज है । श्रम से जो कृषि में उपजत है ।।
रोटीं चावल साग पात ही । अल्प यत्न से मिलते सब ही ! ।।१०५।।
रवि किरणों से पकती जो भी । कंद मूल सब्जी बागों की ।।
वह सत्वांश भरी सब भाई ! सभी स्वास्थ्यकर सुलभ सदा ही ।।१०६।।
सदा ताजा सहज सुनिर्मल । अन्न वही है सात्विक केवल ।।
नाना रीति बने पकवाना । नहीं सात्त्विक, विकृति नाना ।।१०७।।
सात्विक कनकी कांड़ा भी हैं । गरीब सभी जिनसे जीते हैं ।।
सात्विक है शरीर का पोषक । शुभ संस्कारी स्वास्थ्य विनायक ।।१०८।।
तले, चटपटे, बासी, खारे । खट्टे या अति मीठे सारे !
व्यंजन पाना नहिं हितकारी । सादा भोजन ही सुखकारी ।।१०९।।
नहिं मिष्टान्न हमेशा खावें । मिर्च मसाला अधिक न पावें ।।
शौक तली चीजों का नहिं हो । निसर्गता का ध्यान बना हो ।।११०।।
स्वच्छ तथा हो सखरा सात्विक । ताजा रसमय रुचिर सुपोषक ।।
सागपात फल सब्जी सब ही । तन हितकारी स्वाद सहज ही ।।१११।।

(दो.) **औट-औट रबडी बने, पूरन पूरी फेंट ।**
तति भजिये अरु पूड़िया, भोजन कर भर पेट ।।११२।।
कपड़ छान मैदा बना, भरिये खोया लाल ।
करे जीभ तो वाहवाह! पेट होय बेहाल ।।११३।।

(चौ.) कुछ खाने की टेव बढ़ाते । भर भर थाली चावल खाते ।।
लेते साथ चटपटा खट्टा । इमली रस भर भर कर लोटा ।।११४।।
लड्डू-पेढे चट कर जाते । रबड़ी हलुआ लड़ कर लेते ।।
पैसे लेकर शर्त लगा कर । खाते खूब नाप या गिनकर ।।११५।।
फिर उसका पाचन क्या होवे ? जर्जर उन का तन हो जावे ।।
भाँति भाँति के रोग जकड़ते । विकट यातना रहें झेलते ।।११६।।
कई स्वाद के मित ही खाते । भूख नहीं पर ठूँसे जाते ।।
उठते फिर ले रोग लाजिमी । हैजा, संग्रहणी, बद-हज़मी ।।११७।।
पेट किसी का तुरत बिगड़ता । शर्मनाक बदबू फैलाता ।।
हँस कर कहते लोग सयाने । 'क्यों मन मानी खाने पीने? ।।११८।।

प्रकृति विरोधी करते अहार । समय रितु की भी नहीं शुमार ॥
खट्टा तला चरपरा घोला । विषम-मिश्र आहार विषैला ॥११९॥
कई लोग बिन कारण खाते । तबियत बिगड़े दवा मँगाते ॥
दौलत कैसे गरीब पाये ? घर बैठे जो बैद बुलाये ॥१२०॥
डाक्टर कहें 'पथ्य नहिं कोई' । रहे रोग की जड़ वैसी ही ॥
रोगी मन सोई ही भावे । मौत निमंत्रण असकर पावे ॥१२१॥
पहले खाकर मस्ती करना । फिर औषधि ले उसे पचाना ॥
खोखट ऐसी क्यों कर करना ? उन्मादी का नाम कमाना ॥१२२॥

(दो) **ऐसा खाना व्यर्थ है, माँगे पाचक चूर्ण ।**
नाश अन्न रस का करे, यह किसलिए अजीर्ण ॥१२३॥
धन्वन्तरि भी क्या करें ? विषमय हुए विकार ।
दवा में सारा धन गया, मिट्टी हो घर द्वार ॥१२४॥

(चौ.) आग्रह करके लोग खिलाते । हित चिन्तक बन कर वे आते ॥
मानों ऐसे दोस्तन दुश्मन! तोड़ें नहिं अहार का नियमन ॥१२५॥
सात्विक, नियमित भोजन होवे । सादा, ताजा सागहु होवे ॥
दूध, दही भी भरसक पावे । भोजन ही औषधि बन जावे ॥१२६॥
भोजन तो वह उत्तम सब में । गोघृत दूध दही हो जिस में ॥
शरीर-मित है वैसा भोजन । मानो अमृत का ही सेवन ॥१२७॥
गौ का दूध पिये यदि नित ही। होवे काया कल्प सही ही ॥
शक्ति, चपलता बुद्धिमत्ता भी । हाथ रहे आरोग्य नित्य ही ॥१२८॥
दीर्घायू हों सभी निरोगी । गाँव में अल्प मृत्यु या रोगी ॥
खोजे पर भी नहीं मिलेंगे । तुकड्या कहे सफल सब होंगे ॥१२९॥

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरुकी, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ॥
अध्याय चौदहवाँ कहे कुंजी हि ग्रामारोग्यकी ॥
हर व्यक्ति का आचार ही है नीव सच्चे भाग्य की ॥१३०॥

॥ सद्गुरुनाथ महाराज की जय ॥

* * *

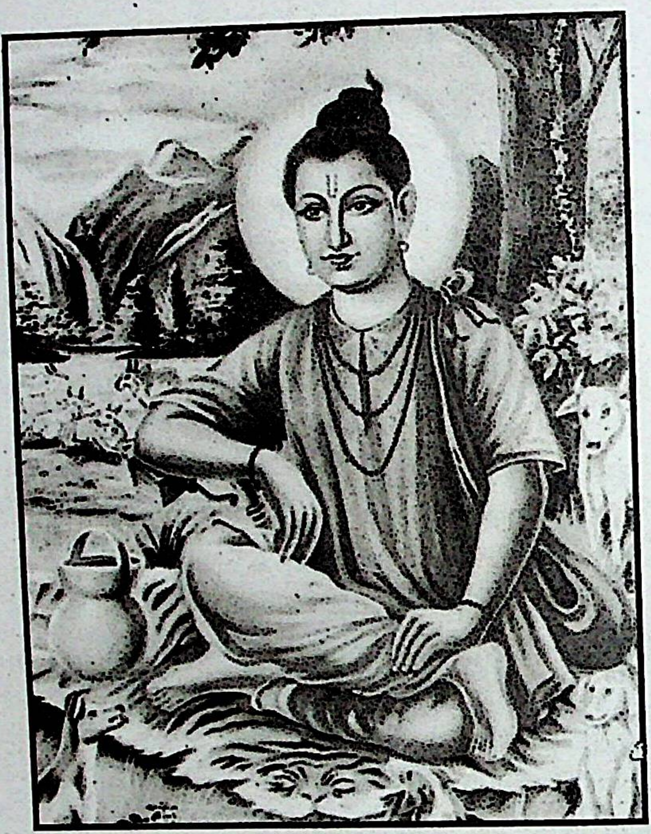

श्रीगुरुदेव श्रीपाद श्री वल्लभ स्वामी

पंद्रहवाँ अध्याय

गोवंश–सुधार

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

गोवंश हास के कारण

(मनहरण) श्रोता करे प्रश्न, "दूध का तो है अकाल पडा,
गौ माता की छाछ भी कहाँ से मिले सब को? ।।१।।
भैंस के दूध में पानी डाल गाय का बतांते,
बेचने वाले फँसाते पाने ज्यादा लाभ को ।।२।।
कहाँ रही गायें ? शायद ही बेचने से बची,
करोड़ों बछड़े कटते हैं जूते बनाने को ।।३।।
गोपालों का देश भारत पूजते आया गाय गोरू को ,
परंतु गायें बनी खाद ख्याल नहीं किसी को ।।४।।
ले जाते कसाई कुछ, दूसरे ले गये कई,
बची खुची गायें आज बनी सब कूड़ा हैं ।।५।।
महँगा है चारा पानी, प्रबंध नहीं पालन का,
आधा पेट मानव जब, गाय कैसे पालना है ।।६।।
ब्योरेवार बातें सुन मैंने कहा प्यारे भाई!
तुम्हारी सभी बातें मान्य शिरोधार्य हैं ।।
किन्तु मत भूलो, जरा सोचो तो पता चले,
इस में तो मूल दोष अपना हीं बड़ा है ।।७।।

(चौ.) कृषि प्रधान है देश हमारा । है कृषि का गोवंश सहारा ।।
सत्वांश शुद्ध जितना गोरस में । उतना मिले न और किसी में ।।८।।
इसीलिए गोवंश सुखी जब । नहिं यहाँ थी दरिद्रता तब ।।
रोगों की भर मार आज सी । गाँव हमारे कहीं नहीं थी ।।९।।
मिल गोबर गोमूत्र रात दिन । कायम होता भूमि शक्ति गुण ।।
तब तो भरते गाँव-गाँव में । कोठी, कुठले, खत्ते घर में ।।१०।।
भूमि जानवर ये दोनों ही ।कोठारे उत्पत्ती के ही!
एक अनेक होत सो जाते । घर-घर सह उद्योग सो बनते ।।११।।
घर-घर दूध दही, गोरस था । खाद्य अन्न का पूरक वह था ।।
रहते थे आबाल वृद्ध भी । रोग रहित अरु शक्तिमंत भी ।।१२।।

इसीलिए नामहि गोधन का । सच्चा रहा गाय-गोरुन का ।।
सुखिया था तब पूरा भारत । गऊ वंश जब रहा सुख उन्नत ।।१३।।
किन्तु बाद में दृष्टि बदली । कुछ शासन की नीतिहु बदली ।।
खाद्य हो गया मांस गाय का । बड़ दुर्भिक्ष, नतीजा उसका ।।१४।।
भैंसें दूध बढ़ाने पाली । काँफी-चाय की आदत डाली ।।
जिस से वंचित हुए गाँव सब । गाय सहित सुख अरु समृद्धि सब ।।१५।।

(दो.) आमिष खा कर खुश हुए, फिर न मिले वह प्राणि ।।
खाद, बैल, दूधहु कहाँ? पागलपन की खानि ।।१६।।
गाय बेच मौजें अभी, क्या खावें फिर नित्य?
पेट काट पाले गऊ आगे पावे सौख्य ।।१७।।

गो माता की दिव्यता

(चौ.) 'गो रक्षण में ही निज रक्षण' । पुरखों का है कथन पुरातन ।।
इसीलिए गायों के हित में । प्राण दिये कितने वीरों ने ।।१८।।
श्री गोपाल कृष्ण, शिव शंकर । वशिष्ठ वैसे दत्त दिगंबर ।।
दिलीप, शिवबा, गो सेवा रत । कई संत गो भक्त महाव्रत ।।१९।।
सर्वस त्यागी बने उदासी । करतल भिक्षा तरुतल वासी ।।
यों निष्काम दत्त गुरु भाई ! चूके गो-सेवा नहिं सोई ।।२०।।
गो माता के तन में सारे । देवि देव कल्पित कर डारे ।।
सच्चा मर्म यही है उस का । अधिष्ठान है गाय देश का ।।२१।।
गौ का गोबर फसल बढ़ावे । कृषि से ही सुख धन जन पावें ।।
इसीलिये यह सुन्दर उक्ति । 'गोबर में लछमी जी बसती' ।।२२।।
गोरस दे आरोग्य बदन में । धन्वंतरि फिर कौन नगर में ।।
बुद्धि बढ़े गोरस पीने से । वास सरसती का गोरस में ।।२३।।
दही गाय का सात्विक पोषक । कई उदर रोगों का नाशक ।।
मस्तक को भी घृत दे शांति । गऊ नेत्र में रवि शशि कान्ति ।।२४।।

(दो.) स्वास्थ्य धाम गौ मूर्त है, साक्षात् श्रम गौमूत्र ।
सुगम राष्ट्र सुख मार्ग है, गो-सेवा सुपवित्र ।।२५।।
हो गो वंश सुधार अब, ऐसा करो उपाय ।
यह सब का कर्तव्य है, सक्षम कर लो गाय ।।२६।।

गोवंश-सुधारः आवश्यकता व उपाय

(चौ.) जब कसाई गाँवों से अपने । ले जाते हों गाय कटाने ।।
देख दुखी सबके ही दिल हों । गौओं को प्यारे! लौटाओं ।।२७।।

दलाल ऐसे सभी भगा दो । अथवा अच्छे काम लगा दो ।।
सभी बेचने-लेने वाले । हर विधि सत्पथ निरत बना लें ।।२८।।
बिक्रय कर्ता को समझाओ । इस से कौन अमीरी पाओ ?
खाद मूत्र लो मरते दम तक । गो सेवा फल घर को तारक ।।२६।।
द्वारे प्रात रंभाती गैया । दे गो मूत्र उठे जब मैया !
समझो तभी हुए वे पावन । भूमि और परिवेश सुनन्दन ।।३०।।
जिसके घर है खेती बारी । अवश्यक पालें गौएँ प्यारी ।।
जिसका मल अरु मूत्र लाभ कर । गो माता ऐसी है सुंदर ।।३१।।
गो माता है माँ समान ही । उसका पूरा रहे ध्यान ही ।।
वह न मख्खियों की खदान हो । नहीं हड्डियों की मचान हो ।।३२।।
दे कर सानी खली कनी हम । गाय बना दें हाथी के सम ।।
सहलाए उस को दुलार से । प्रसन्न रक्खे गाय प्यार से ।।३३।।
रहें साँड आदर्श गाँव में । देय बैल सोई सुगढ़ हमें ।।
खेत जोतने मिले सदा ही । सुन्दर सी बैलों की गोई ।।३४।।

(दो.) **सुन्दर साँड गऊ सुभग, दर्शन सुखद अखण्ड ।**
दिखलाते पी दूध को, बालक शक्ति प्रचंड ।।३५।।
है सात्विक सौंदर्य वह, कर गो-वत्स दुलार ।
दूध पिये तन्मय रहें, खेलन शिशु घर द्वार ।।३६।।

(चौ.) गौंओं का जब दूध बढ़ेगा । संतति उन्नति मार्ग खुलेगा ।।
लड्डू-पेड़े अगर खिलावे । बढ़े पेट, शक्ती नहिं पावे ।।३७।।
कृत्रिम घी अरु दूधहु लेवे । लाभ नहीं गोरस सम मिलिवे ।।
नाना रोग लगे देही में । कृत्रिमता से अनजाने में ।।३८।।
नहीं सदा यंत्रों से खेती । मूल्यवान सुखकर हो सकती!
रहे गाँव में गाँव संपदा । यही मार्ग है उत्तम सादा ।।३९।।
गाय गोरु घर घर में पालो । सुन्दर से गोवत्स सँभालो ।।
दिखें प्रसन्न स्वस्थ पशु सब ही । बढ़िया दही दूध हो तब ही ।।४०।।
दही दूध भरपूर होय जब । स्वस्थ गाँव में नर नारी सब ।।
घर घर गायें बछड़ों वाली । गाँव वही है सुभाग्यशाली ।।४१।।

गो सदन का स्वरूप

जो न गाय रख सकते हो घर । उन के लिए गो-सदन सुन्दर ।।
बरतें सुविधा वह गरीब ही । उत्तम गोरस मिले सदा ही ।।४२।।
'गो रक्षण' के हित में कोई । करें इकट्ठी मरियल गाई ।

पैसे उनके नाम् से खाते । गायों को भूखों मरवाते ।।४३।।

(दो.) होय न ऐसा गो सदन, जो जन-चित्त दुखाय ।
देख साँड-गायें वहाँ, मन में हर्ष समाय ।।४४।।
दूष दही 'गो सदन' से होय सुखी सब गाँव ।
खाली गो पूजा नहीं, घर हो या हो गाँव ।।४५।।

(चौ.) उत्तम चारा चुनी खिलाकर । बढ़े बज़न अरु गाय हो सुन्दर ।।
गाय-साँड आदर्श रखें नित । उत्तम गो धन तहँ बढ़े अमित ।।४६।।
गाँव झुण्ड सुन्दर गौओं के । गोचर भूमि चरें सो खुल के ।।
नदी तलैया कुआ तथा वनं । हरा भव्य वह निसर्ग प्रांगण ।।४७।।
देवर्पित साँड हो उत्तम । चरे स्वच्छन्द खिलावें सब सम ।।
बीजारोपण से गायें फिर । देती दूध कावड़े भर भर ।।४८।।
यही सही गो सेवा प्यारे ! नहीं कसाईखाने सारे ।।
गायें सिर्फ बंद बाड़े में । क्या गो सेवा उस घेरे में? ।।४९।।
चरागाह यदि नहीं गांव में । राज बनाये तस पड़ती में ।।
अथवा बड़ी जमीनों वाले । अर्पण कर दें गऊ चराने ।।५०।।
होस अध्ययन गोरक्षा का । कर संशोधन प्रयोग उसका ।।
किस बिधि अन्य देश बढ पाये । दें सूचना सबहि मन भाये ।।५१।।

(दो.) गाँव औषधालय बनें, निवरन गोकुल रोग ।
रोक थाम भी समझ लें, हो सबका उपयोग ।।५२।।
गो सेवाहि उपासना, केंद्र दूध के होंय ।
बालक बूढ़े रुचि बढ़े, शुद्ध दूध गो माय ।।५३।।

सात्विक आहार व उत्पादक व्यायाम

(चौ.) सभी करो जो कुछ हो करना । अपना किन्तु सात्विक खाना ।
बिन उस के सद् बुद्धि पाना । कठिन राह कह गये सुजाना ।।५४।।
खान पान सात्विक के बिन ही । संभव आरोग्य गाँव नाहीं ।।
नहीं देह में उत्तम शक्ति । फिर धन संपत कौन काम की ।।५५।।
उत्तम दूध, साँड भी उत्तम । उत्तन खेत, बीज भी उत्तम ।।
उत्तम श्रमिकहु होंगे तब ही । प्रचंड शक्तिशाली भी सब ही ।।५६।।
ऐसे जिसने गाँव बनाये । वे सब आज प्रतिष्ठा पाये ।।
नाटकबाज निकम्मे सारे । जादत कोई नहिं जिये, मरे ।।५७।।
व्यर्थ निकम्मों की है संपति । व्यर्थ निठल्लों की भी शक्ति ।।

तरह तरह से विनष्ट होगी । अंत में उनको दुःख ही देगी ॥५८॥
छप्पन व्यंजन भोजन पाया । बिना काम सो पेट बढ़ाया ॥
होगी वहाँ फौज रोगों की । पैदा उन क[illegible] दुख देने की ॥५९॥
इसीलिए कुछ काम करें सब! स्वास्थ्यप्रद व्यायाम करें सब!
गिरे पसीना तन से खुल के । होय नष्ट जीवाणु रोगा के ॥६०॥

(दो.) आरोग्य मित्र व्यायाम है, रखो ध्यान में सूत्र ।
आलस बैरी है बड़ा, सबसे ही सर्वत्र ॥६१॥
बिन व्यायाम विकार बन, मारे सत्वाहार ।
सहज अग्नि-दीपन पचन, व्यायामहि से यार ॥६२॥

(चौ.) फुरती दे व्यायाम बदन में । जडत्व, आलस रहे न तन में ॥
उत्तम रहे रक्त संचालन । बढ़े बिचारो में सजीवपन ॥६३॥
कसरत से हों सबल स्नायु । कसरत से मानव दीर्घायु ॥
बिन कसरत पित्त कफ वायु । जर्जर करें क्षीण हो आयु ॥६४॥
व्यायामहि प्रतिकार शक्ति दे । निज अवलम्बन की प्रवृत्ति दे ॥
व्यायामहि से बढ़े बदन में । स्फूर्ति कार्य की करने जग में ॥६५॥
देखो यह व्यायाम सभी को । है उपयुक्त सही गर आँको ॥
सिर्फ न यह मल्लों का पथ है । उनका तो एकांगी व्रत है ॥
राह व्यायाम एक ने साधी । हुआ पहलवान सोई नामी ॥
वह तन का सामर्थ्य दिखाता । जन को सहज चमत्कृत करता ॥६७॥
पुरस्कार पाने का कोई । जीवन को अटपट कर देई!
पैसे की खातिर तो कोई । मार पीट में नहिं हिचकाई ॥६८॥

(दो.) तन सेवामें दे खपा, रखे सत्यपथ गाँव ।
यही मल्लविद्या विभव, दे अबलों को छाँव ॥६९॥
पर सेवा का ध्यान नहिं, नष्ट करे मिष्टान्न ।
बल खोवे दुष्कर्म में, ऐसे मल्ल न मान ॥७०॥

(चौ.) किसी मल्ल के बलिष्ठ तन पर । हैं वसन मुलायम, ज़रीदार ॥
भोजन अरु खुराक अपने की । चिन्ता एक मात्र है उनकी ॥७१॥
काम गाँव-सेवा का आया । सब मिल मुखिया उसे बनाया ॥
पर उस का तो चलता मुहँ ही । स्वयं काम नहिं करे एक भी ॥७२॥
वसन में सिलवट पड़े एक नहिं । बच कर रहता इसीलिये ही ॥
काम दिया हर मानुज करता । पर वह नहीं जगह से हिलता ॥७३॥
नाम कुश्तियों में है पाया । किन्तु समय पर काम न आया ॥

'मल्ल' मान कर उस का गौरव। कौन न्याय से करें लोग सब ? ।।७४।।
'पहलवान' वह सच्चा होई! तन की उन्नति पूरी करई ।।
फिर सेवार्थ समर्पित जीवन। हनुमान सा विशुद्ध हो मन ।।७५।।
बैठक करे और' दण्ड निकाले। कुश्ती जीते, चने पचाले ।।
छोट बड़ों पै धौंस जमाये। व्यायामी के लक्षण नहिं ये ? ।।७६।।
सेवा का उपक्रम साधन को। करने जीवन के कामों को ।।
जो दे शक्ति वही तुम मानों। आवश्यक व्यायाम सभी को ।।७७।।

(दो.) **सिर्फ अखाडे में चले, वही नहीं व्यायाम।**
उत्पादन में मदद दें, वही श्रेष्ठ व्यायाम ।।७८।।
बैठक दंड से है भला, जल खींचन का काम।
पीसन, फोड़न, खोदना, स्वास्थ्यप्रद व्यायाम ।।७९।।

(चौ.) जीवन काल अमोल हि पाते। व्यर्थ के खेलों मेंहि गँवाते ।।
उस से सभी भाँति हैं उत्तम। शुभ फलदायी उचित परिश्रम ।।८०।।
करे कुटाई और पिसाई। है व्यायाम सही सुखदायी ।।
अधिक कार्य की क्षमता तन में। सत्व लाभ सोइ मिलता उस में ।।८१।।
कितनीं ही संपत्ति बचेगी। स्वदेश में श्रम शक्ति बढ़ेगी ।।
होगी पूर्ति सभी कामों की। इस पथ से गाँवों में नीकी ।।८२।।
होगी जनता की भी सेवा। होगा प्राप्त स्वास्थ्य का मेवा ।।
गाँव सभी सुख थाती पावे। अड़चन कहाँ कौन फिर आवे? ।।८३।।
अपनी खेती अपने श्रम से। उर्वर करें खाद मूत्रों से ।।
निष्ठायुत आदर्श किसानी। उत्पादन में कमी न होनी ।।८४।।
जब आबाल वृद्ध नर नारी। घर घर मेहनत करेंगें भारी ।।
सब ही सुख घर दुनिया के तब। पा सकते हैं निश्चित जन सब! ।।८५।।

(दो.) **फल पावें व्यायाम का, निज कामों में लोग।**
निसर्ग देवें स्वास्थ्य बल, हों सब ही नीरोग ।।८६।।
हरियाली के बीच में, सूर्य किरण अभिराम।
शुद्ध वायु में श्रम करें, देय लाभ हर काम ।।८७।।

सदाचार प्रभाव

(चौ.) गाँव शहर या हो फिर जो भी। रहे नहीं तहँ रोग नाम भी ।।
यह आचार करें यदि सब ही। मिल कर और एक एक भी ।।८८।।
आलस, व्यसन, दुराचारों से। दूर रहे सुख साधक इनसे ।।

ऐसा सुंदर घटक गाँव का । एक-एक हो शुभ सुभाव का ।।८९।।
जहाँ जहाँ सद्गुण दिखतें हों । उन सबका आचरण सहज हो ।।
व्यक्ति इसी से उन्नत होगा । गाँवों का जीवन सुधरेगा ।।९०।।
यदि हम चाहें उज्ज्वल जीवन । तो सब काम धाम हो पावन ।।
आगे भी जो करना चाहें । इसी सुपथ से उसे बढायें ।।९१।।
भोजन, निद्रा, उद्यम स्थल । सभा स्थान या उत्सव मंगल ।।
समय विशेष या आम जगह भी । बरतें हम सब सद्विचार ही ।।९२।।
सुसंस्कार अरु शुद्ध-बुद्धता । आरोग्यवानता अरु पवित्रता ।।
इन्हें ध्यान में रखें सदा हम । शोभायमान हो सात्विक जीवन ।।९३।।

(दो.) यदि हित दिनचर्या कही, शुभ आहार-विहार ।
गाँव करे आचरण यदि, हो जीवन-उद्धार ।।९४।।
एकेक काम ऐसा करें, हो सात्विक सौंदर्य ।
कह तुकड्या तब गाँव में, स्वर्गिक सुख माधुर्य ।।९५।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरु की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
अध्याय पंद्रहवाँ कहे गो वंश की महिमा सही ।।
गोरस तथा व्यायाम सेवन, दृष्टि अभिनव दी गयी ।।९६।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

* * *

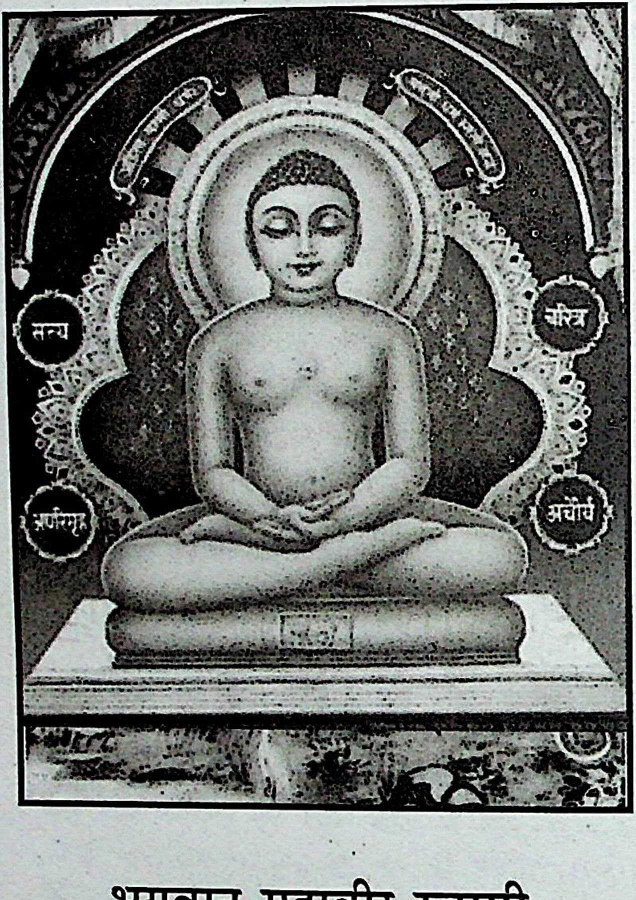

सत्य
चरित्र
अपरिग्रह
अचौर्य

भगवान महावीर स्वामी

सोलहवाँ अध्याय

वेष–वैभव

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

सात्विक जीवन का महत्त्व

(सवै.) **ईश्वर मान्य सुकार्य वही, गुरु सन्त गये जिस को बतला के ।**
आचरण ले उस का तब ही, सच जीवन–सुंदरता–सुख चाखे ।।१।।
सात्विक ही व्यवहार–आहार–विहार तथा हर संगति भाई!
सात्विक वाचन, गायन, दर्शन, सन्त जनप्रिय सात्विकता ही ।।२।।
सात्विक जीवन लेत बना, यह चिन्ह न निश्चय अन्ध मति का ।
प्रत्यय ले कहते विबुधोत्तम, कानुन सात्विकता प्रकृति का ।।३।।
स्वास्थ्य तथा सुख-शान्ति सभी, बन दास खपें, फल सात्विकता का ।
जीवन तो हर भाँति खिलें, फहरावत सुन्दरता की पताका ।।४।।

(चौ.) स्वैराचारी हीन विचारी । रजो–तमो आहार–विहारी ।।
दिनचर्या में ताल मेल नहिं । उनको सुखफल यहाँ वहाँ नहिं ।।५।।
चिवड़ा चाय चुरुट गुलामी । नाश करे तन मन धन स्वामी ।।
व्यक्ति समेत गाँव का जीवन । बिगाड़ती है, ख्याल रखें जन ।।६।।
सात्विक सीधा जीवन रखता । स्वस्थ पूर्ण सुन्दर वह दिखता ।।
करी वेष भूषा भी सात्विक । यह मानव को शोभा दायक ।।७।।
रहे वेष भूषा भड़कीली । कपड़ो पर परतें कपडों की ।।
ऊपर से सब बदन सजाते । भीतर ठठरी बनते जाते ।।८।।
सुकटा मुखडा, पिचकी छाती । गिनो पसलियाँ छिप नहिं पातीं ।।
गर्म रेशमी कपड़े ऊपर । क्या होगा इन बन ठन से पर ? ।।९।।
नाहक ठाठ बनाया सुंदर । चंदन इत्रक लेप भाल पर ।।
पौडर कंघी और आइना । राखे जेब चुरुट का बाना ।।१०।।

(दो.) **व्यसन करे मुँह सूखटा, फिर फिर तेल लगाय ।**
कहते सुन्दर हम भले, बहु विध बाल घुमाय ।।११।।
कान्ति हीन तनु जीर्ण सा, बढ़े गज कर्ण खाज ।
ढँक लेते सौंदर्य हित, भारी कपड़े साज ।।१२।।

(चौ.) यह सुन्दरता अरे! कहाँ की? सूर्य किरण जहाँ पहुँच न पाती ।।
ब्रह्मचर्य के भी चेतन कण । शरीर में नहिं दिखते शुभ गुण ।।१३।।

चलते वक्त लड़खडा जाते । अंगुली लगे झकोरा खाते ।।
बड़ी बड़ी बातें करते हैं । शौकीनी का दम भरते हैं ।।१४।।
शब्द निकलते सभी रुआँसे । शौच न होवे बिना दवा से ।।
किन्तु अँगुलियों बीच मुँदरियाँ । क्या शोभा हीरे की कणियाँ ? ।।१५।।
शव निस्तेज सजाया बाँका । खेत में ऊँचा खड़ा बिजूका ।।
चार जनों में अजब अकेला । न हो वेष भूषा से छैला ।।१६।।
अथवा जरी रेशमी कपड़े । पहने भी पर साफ नहिं किये ।।
फिर फिर कसे वही पीताम्बर । रहे 'सोवला' अन धोया पर ।।१७।।
क्यों यह व्यर्थ दिखना कौशल ? जो हास्यापद, बाधक केवल ।।
रहन सादगी होवे अपनी । सात्विक, साफ हैसियत जितनी ।।१८।।
गुण सौंदर्य के तन में भर लो । सुंदर सात्विक कपडे कर लो ।।
खादी ग्रामोद्योग वस्तुएं । अपने लिये उन्हें ही लेवे ।।१९।।
धुला वस्त्र हो स्वच्छ सदा ही । एक वसन से ढँक लो देही ।।
हवा-किरन भी लगे बदन में । निसर्ग देता है बल तन में ।।२०।।
धरे एक पर एक आवरण । ठंडे देशन अध अनुकरण ।।
सूरज किरनें लगती तन में । औषधि गुण जागते बदन में ।।२१।।

(दो.) **जर मोती स्वर्णादि सब, सुन्दरता के साज ।**
सब से सुंदर सौगुना, सदा स्वास्थ्य सरताज ।।२२।।
ब्रह्मचर्य हो ओजमय, तेज रक्त का शुद्ध ।
रहन चुस्त शुचि हर जगह, वह सौंदर्य विशुद्ध ।।२३।।

(चौ.) कला दिखाओ प्रबल रगों की । ऊँचे सीना तने बदन की ।।
सही स्वास्थ्य की, स्वाभिमान की । हर पहलू आदर्शवान की ।।२४।।
प्रतिस्पर्धा वेष भूषा की । अब अति बोझ बनी जीवन की ।।
चिन्ता गर्ज रोग बढ़ जाते । कहाँ बड़प्पन इसमें पातें ? ।।२५।।
बाहरी वस्तुओं का भड़कापन । आंतर कमियों काहि प्रदर्शन ।।
महत्व बाह्य आवरण बढ़ता । मानवता का मूल्य घटाता ।।२६।।
मानव हो मानवता शोभित । गांधी वेष देश धन लज्जित ।।
मोर मुकुट मुरली वन माला । हरि ने जगत मुग्ध कर डाला ।।२७।।
दिल में यही समझ हितकारी । बन सात्विक आहार विहारी ।।
देश, गाँव घर सेवा जिससे । सध जाती है सहज रीति से ।।२८।।
शुभ आदर्श जनों को मिलता । समानता का हर्ष उछलता ।।
ग्रामोद्याम उत्कर्ष गाँव में । होता आपहि आप संग में ।।२९।।

भ्रान्त स्पर्धा व द्रव्यासक्ति का पर्यवसान

(दो.) श्रोता जन शंका करे, ऋषि जीवन का सूत्र ।
ऊँची मति सादी रहन, अब न चले सर्वत्र ।।३०।।
भड़क रहन महँगे वसन, खाता रोब समाज ।
पड़ा रहे पिछड़ा रहे, सादा सात्विक आज ।।३१।।

(चौ.) देखा विष्णू का पीताम्बर । लक्ष्मी अर्पण कर दी सागर ।।
देख चीथड़े शंकर जी के । देत हलाहल, चलन आज के ।।३२।।
पैसा खर्च किये सब मिलता । न्याय मिले, सत्ता पद मिलता ।।
मान, कीर्ति अरु मिले बड़प्पन । अनुभव सब का, यही आज सुन ।।३३।।
मित्र यही तो भ्रामक अनुभव । कहता जन से 'धन ही माधव' ।।
इसी सूत्र वश सब दुख भाई! आज बढ़ गये जीवन माँही ।।३४।।
चलते यही समझ सब मन में । मानों होड़ लगी है जन में ।।
एक एक से ऐंठ दिखाते । अधिक पतन में गिरते जाते ।।३५।।
कपास जैसे वस्त्र श्वेत हों । सोने से पीले गहने हों ।।
चोटी पर पहुँची कृत्रिमता । हवस नित नई, कदम न थमता ।।३६।।
सही स्वच्छता अरु पवित्रता । भली शुद्धता, नैसर्गिकता ।।
कृत्रिमता इनसे अब प्यारी । शिक्षा उसी राह चल सारी ।।३७।।
बिना नहाये फुहार लेते । इत्र सींच कपड़े महकाते ।।
मैल भरे पर लगते सुंदर । हर पल कपड़े नये मनोहर ।।३८।।

(दो.) ठाठ बाट फैशन नई, चसका बढ़ता जाय ।
सिलाई कोट हज़ार हो, वैसी पैंट सुहाय ।।३९।।
ये गरजें बढ़ती जहाँ, क्या कुबेर का कोष ?
कामगार भी 'दीन' वह, क्यों कर लें सन्तोष ? ।।४०।।

(चौ.) कई छिपी रिश्वत लेते हैं । कई खुले डाके डाले हैं ।।
धन ख़ातिर हैं बढ़ते जाते । अनाचार अन्यायहु जन में ।।४१।।
सरल राह से चलते कोई । रौंदे जाते वे इस माँही ।।
बौराये फिर उनकी वृत्ति । बढ़ती चारों ओर अशांति ।।४२।।
कोई घर में भूखें सोते । बच्चों को नहिं दूध पिलाते ।।
किंतु बडप्पन को दिखलाते । बाहर बन ठन भली निभाते ।।४३।।
कोई कहते, इन बातों बिन । चले न धंधा, मिले नहीं धन ।।
किन्तु राज सबने यह जाना । एक दूसरे को पहिचाना ।।४४।।

फिर क्यों कर हठधर्मी करना ? सुपथ जान कर क्यों न सुधरना ?
पर धन का पागलपन इतना । सुपथ कौन परवाह किसे ना ।।४५।।
कहते-पैसों से सब होता । मिलता राज, मोक्ष भी पाता ।।
मिलते संत, कीर्ति भी मिलती । पूजा भी ईश्वर की होती ।।४६।।
किन्तु कथन यह है पागल सा । सगे पराये कर दे पैसा ।।
घमासान पैसा मित जग में । पैसा कारण गिरे नरक में ।।४७।।
पैसा मिलता जब नियमों से । खर्च होय सो जब विवेक से ।।
तभी सौख्य जीवन में देता । उन्नति मार्ग जीव चल पाता ।।४८।।

(दो.) **नीति हीन पैसा जहर, पल न देत सुख शांति ।**
नर को बंदर दे बना, चंचल मन की भ्रान्ति ।।४६।।
कमाई की चिन्ता लगे, पशु सम कष्ट अपार ।
तन मन जीवन दे जला, धुन अस होय सवार ।।५०।।

(चौ.) धन रक्षा की अति चिन्ता फिर । चोर, अग्नि इत्यादि सदा डर ।।
बढ़ जाती उपभोग लालसा । मानव बन जाता पशु जैसा ।।५१।।
बचा नजर आए जब पैसा । लगता 'खर्च करें अब कैसा ? ।।
दिल में बढ़ जाती आकुलता । नींद नहिं आवे, जिया मचलता ।।५२।।
पाया वेतन, जल्दी व्यय की । चलें सिनेमा या नौटंकी ।।
उस में से जो बचा पाता है । वह नहिं उचित राह जाता है ।।५३।।
शराब गांजा में धन उड़ता । या कुछ सट्टे में जा पड़ता ।।
कुछ ज़ाता व्यभिचार बाँट में । कुछ तो चलता बने ठाठ में ।।५४।।
कुछ तो हैं उन्माद नशे में । पथ पर उलझ पड़े झगड़े में ।।
वकील का घर भरते धन से । 'हम शरीफ' कहलाने जन से ।।५५।।
आया बेज़ा कुछ खाने में । चक्कर सर में शूल पेट में ।।
दौड़ धूप डाक्टर वैद्यों की । बरबादी इस में पैसों की ।।५६।।
कहीं बड़प्पन को दरसाते । इनाम, दावत, विदाई देते ।।
फँस जाते हैं हँसते-हँसते । बिना जरूरत चीज खरिदते ।।५७।।

(दो.) **खूब कमाई की मगर, पूरी पड़े न आय ।**
खर्च बढ़े ले कर्ज फिर, जानत धोखा खाय ।।५८।।
लेय कर्ज़ खर्चा करे, तस न आय पर ध्यान ।
फिर संकट घरबार पर, होय 'क्या करूँ ?' मान ।।५६।।

आगे दिल जलता घुटता है । समय न पीछे हो सकता है ।।
चंचल हो मति जाती मारी । करवाती सो चोर चपारी ।।६०।।

अक्ल नहीं है आमदानी की । समझ न आयव्यय मिलान की ।।
जीभ चटकती खान पान को । चोरी का पथ भाया मन को ।।६१।।
हुआ घराना सभी कलंकित । मातपिता की बदनामी नित ।।
ऐसे निकले पुत्र शत्रु सम । कौन क़हेगा उनको उत्तम ? ।।६२।।
धर्म छोड़ते ह़वस निभाने । करते उद्यम कई घिनौने ।।
व्याभिचारी नाना प्रकार के । कर्म कराते, करते कितने ।।६३।।
कई धनिक राक्षस ही होते । पैसे देय गुलाम बनाते ।
पग-पग पाप महा सो करते । औरों से भी सोइ कराते ।।६४।।
कई कपट से धनहि कमाते । सिर्फ स्वयं पर उसे उड़ाते ।।
उनकी होती अंत फजीहत । बहुतेरों की ऐसी कीरत ।।६५।।
अकड़ जवानी की मतवाली । दस-बारह शादियाँ रचाली ।।
धन भी उड़ा, प्रतिष्ठा खोई । अब आसरा न देता कोई ।।६६।।
फिर पत्नियाँ भी डसती रहतीं । 'पैसे कहीं से ला दो' कहतीं ।।
'सूने घर बैठे क्या खायें ? क्यों कर ऐसे ब्याह रचायें ? ।।६७।।

(दो.) कई चढ़ाने से चढ़े, तज आचार बिचार ।
वेश्या रख कर साथ में, सौंपा सब घर बार ।।६८।।
वे तो बन्दर ही बने, मुँह देखे नहिं कोय ।
हँसे बिरादर दूर से, करनी देखत सोय ।।६९।।

(चौ.) लालच से सुत दत्तक देते । झगड़ों में नहिं कौड़ी पाते ।।
बची खुची संपदा बेचारी । दत्तक-मित्र उड़ाते सारी ।।७०।।
कोई अद्भुत करे मनौती । हे प्रभु! यदि हो पुत्र संतती ।
तौल उसे सोना चाँदी से । अर्पण कर देंगे श्रद्धा से ।।७१।।
प्रथम पुत्र की अजीब खुशियाँ । गाँव-गाँव बाँटी मिठाइयाँ ।।
इसमें सब सम्पदा गँवाई । पुत्र-हर्ष ऐसा भी भाई ! ।।७२।।
जब दस-बीस हुईं संतानें । हाथ सीस धर लगते रोने ।।
बची नहीं अब कानी कौड़ी । भीख माँगने की मजबूरी ।।७३।।
कुछ सज्जन इस से तो बचे हैं । पर बच्चों के ब्याह रचे हैं ।।
उड़ा दिया है धन घर पर ही । आतिश बाजी, दावत तुरही ।।७४।।
मंगल मंडप भव्य बना है । नाप तौल, परवाह नहीं है ।।
लगातार पंगतें चल पडीं । लड्डू और जलेबी, रबडी ।।७५।।
देखा देखी करते कुछ नर । व्रत, पूजा, संस्कारहु सुंदर ।।
संचित धन सब ही खो देते । वर्ष-गाँठ पुत्रों कि मनाते ।।७३।।

पितृ पुण्य तिथि करता कोई । पूँजी सारी उस में खोई ।।
रोटी भी वह कैसे आखिर । देगा नाम पिता का लेकर ? ।।७७।।
(दो.) कुछ सज्जन इन से बचे, किन्तु किये त्योहार ।
दीवाली होली करे, बचा-खुचा धन छार ।।७८।।
कुछ सज्जन धन से कभी, बुरा न लेते काम ।
पर मरते सम्मान को, खरच गाँठ का दाम ।।७९।।
(चौ.) अपने खेत में डेल न तोडें । पर वे कोर्ट कचहरी दौड़े ।।
जायदाद को दाँव लगा कर । लड़े एक गाली के खातिर ।।८०।।
नाम कमाने कोई प्राणी । करते साहब की मेहमानी ।।
मिठाइयाँ, फल, कपड़े, गहने । देते चाहे सो नज़राने ।।८१।।
स्थापित अपन प्रतिष्ठा करने । बेची घर खेती कितनों ने ।।
आगे चल कर बने भिखारी । दुर्गत पहुँची संतति सारी ।८२।।
कुछ चुनाव का जंग लड़े हैं । गँवा के पैसा खाक हुए है ।।
शोक खरीदा, नाक गयी है । लोगों में अब हाल यही है ।।८३।।
कितनों ने ही बचे खेत घर । बंगले खड़े किये सड़कों पर ।।
शहरों में जा मौज उड़ाई । अन्त न अन्न पेट को भाई ।।८४।।
व्यापार हेतु भवन बनाया । ख़त्म हुई उस में सब माया ।।
फिर तो खाने के भी लाले । सूझें नहिं व्यापार की चालें ।।८५।।
कुछ तो देश विदेश निरखते । चीजें नई संग्रहित करते ।।
हुई फजीहत उन की ख़ातिर । बातें ही रह गयी बड़ी फिर ।।८६।।
(दो.) किसे साधु की लौ लगी, बस जोशी, घर आय ।
चमत्कार गुन गा सभी, पैसा खूब उड़ाय ।।८७।।
सेवा कर दे दक्षिणा, खिलाय बहु मिष्टान्न ।
वस्त्र पात्र दे दान में, अन्त भिखारी दीन ।।८८।।
(चौ.) पीछे पड़ फिर कह जोशी से । धन की जुगत बता दो मुझ से ।।
ठग की ठगसे गाँठ पड़ी है । अन्त निराशा हाथ चढ़ी है ।।८९।।
दान मिलें तो मीठा बोले । घटी दक्षिणा फिर घर भूले ।।
धन हीनों को कौन पूछता ? आखिर में तस विनाश होता ।।९०।।
भक्ति चमत्कारों के कारण । हुई फजीहत बडी अकारण ।।
घर निज पीछे लगा ले गया । ढोंगी जोशी लूटे दुनिया ।।९१।।
तीर्थ धाम को धनिक गये कुछ । साथ जमा पूँजी ली सब कुछ ।।
चोर डाकुओं ने आ पीटा । सब असबाव शौक से लूटा ।।९२।।

बेचारे विव्हल हो लौटे। भीख माँग पथ के दिन काटे ॥
इसी भाँति पैसों धेलों ने। कर दी दुर्गत, गिन लूँ कितने ? ॥९३॥

विचार धन व विवेकाचरण

(दो.) बिन सुविचार न धन कहीं, लागे अच्छे काम।
धन बढ़ते मन भी बढ़े, घटत न घट अरमान ॥९४॥
धन आवश्यक जगत में, शुरू करन हर काम।
पग पग चाहे मनुज धन, धन विचार नाकाम ॥९५॥

(चौ.) बिन विचार मानवता भूले। दुर्गुण सब जीवन में पाले ॥
मुँह पर लोग कहेंगे सज्जन। पीठ मुड़ी फिर धिक्कारें जन ।९६॥
निर्मल हो व्यवहार मनुज का। आदर मन में होता उस का ॥
एक दूसरे के हित को जो। अपनेपन से चला रहा हो ॥९७॥
मानव धर्म समझ सब करना। किन्तु भिखारीपन न बरतना ॥
जीवन हो कर्तव्य शील ही। कर सत्कर्म और कछु नहीं ॥९८॥
करे वही अच्छा जो टिकता। जो सज्जन को सुंदर दिखता ॥
करना ठीक नहीं कंजूसी। नहीं उडाऊगिरी उचित ही ॥९९॥
समझ सामर्थ्य करे आयोजन। अवसर आये बने कृपण न ॥
पर न ठीक धन व्यर्थ उड़ाना। अंत भीख की नौबत आना ॥१००॥
न हो भिखारी लोक लाज हित। पैर पसारो जितनी कुव्वत ॥
आयोजन बस उतना शोभे। असर टिकाऊ जिस से होवे ॥१०१॥
मनुज भावनावश हो जाता। बुद्धि विवेक सभी खो देता ॥
अजब दिखे सो करे दौड़ कर। 'मोल हविस को नहीं' सिद्ध कर ॥१०२॥
कर परवाह न परिणामों की। उदारता दिखलाय व्यर्थ की ॥
घर की सम्पति खतम होय जब। शौक की खातिर कर्ज लेय तब ॥१०३॥
फिर करता अपनी बरबादी। बच्चन माथे भीख लगा दी ॥
विकास इस में नही किसी का। ऐसा पथ किसके मतलब का ? ॥१०४॥
नित्य कमाओं मेहनत से धन। बचत करो रोजाना कण-कण ॥
घर कारज में उचित समय पर। खर्च करो, उस में से हितकर ॥१०५॥

(दो.) योग्य अतिथि, आदर करो, निज स्थिति अनुसार ॥
अपना भोजन बाँट हो, भावमयी ज्योनार ॥१०६॥
औरों को दुख से दुखी, सुख से हों सुख पूर।
सोच समझ कर उचित पर, रहें कमी कुछ दूर ॥१०७॥

बचत महिमा व सदाचार फल

(चौ.) आप कमावे आपहि खावें । शेष गाँव के काज न आवें ।।
खर्च करें कमसे कम भाई ! टीप टाप नहिं उचित सदा ही ।।१०८।।
सिर्फ कमाना नहिं श्रीमंती । करे बचत सोई सम्पत्ति ।।
बनते लोग समृद्ध इसी से । बढ़े गाँव-संपदा खुशी से ।।१०६।।
थोड़ा-थोड़ा भी भारी हो । थोड़े-थोड़े से संचय हो ।।
बूँद-बूँद से भर तलैया । मन को है वह शान्ति दिवैया ।।११०।।
तिल-तिल में ही तेल घना है । जीवन पल पल से हि बना है ।।
कण-कण से धन-धान्य बचेगा । आड़े वक्त वही सुख देगा ।।१११।।
अधिक न ले गर एक ग्रास भी । नौबत उपास आये न कभी ।।
अल्प कष्ट से विकास ज्यादा । इसी राह से अधिक फायदा ।।११२।।

(दो.) करें गाँव बर्ताव यह, रुके स्वार्थ की दौड़ ।
अनासक्ति क्रम से बढ़े, जैसा जिस का जोड़ ।।११३।।
संयत व्यय की रहन से, अमित बचेगा द्रव्य ।।
गाँव बनेगा सब तरह, फिर नंदन वन दिव्य ।।११४।।

(चौ.) गाँव आपने सत जुग लाओ । उसी के सुख को स्वर्ग बनाओं ।
अपनी इंद्रियों की आसक्ति । धीरे धीरे करें नियंत्रित ।।११५।।
आत्म रूप दर्शन फिर पा लें । नित्यानंद मगन हो खेलें ।
कृतार्थ होगा जीव तभी यह । अंत अमर पद पाय सुखी वह ।।११६।।
सम्यक ही आचार-विचारी । महादर्श जो संयम धारी ।।
जीत चुके जग को इस पथ से । महावीर मुनि संत अमित से ।।११७।।
शुद्धाचार विचारों का फल । व्यक्ति समेत गाँव भी उज्ज्वल ।।
बिहरें गे सुख निखिल गाँव में । तुकड्या कहे ज्ञात यह हमें ।।११८।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरुकी, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
अध्याय सोलहवाँ सुनो, सादी रहन की गूँज है ।
संयम-बचत महिमा सही, जिससे खिले सुखकुंज है ।।११६।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

❧❧

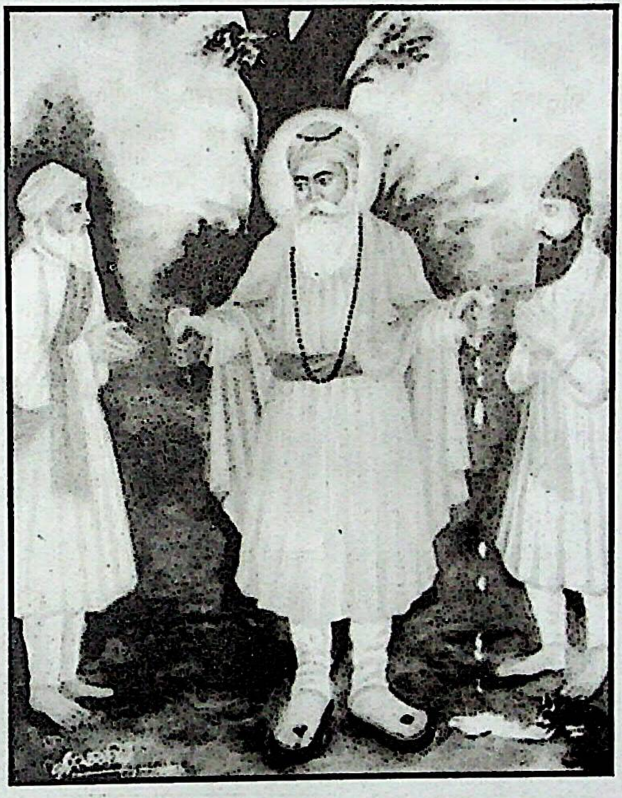

श्रीगुरु नानकदेव जी

सत्रहवाँ अध्याय

गरीबी–अमीरी

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

वर्गसंघर्ष की जड़

(हरि.) है श्रोतृगण का प्रश्न यह, धन तो भरा है गाँव में ।
पर बात कुछ ऐसी हुई, सुख ही नहीं मिलता हमें ।।१।।
फिर कार्य की उन्नति कहाँ? जन में विवाद बढ़ा जहाँ ।
झगड़ा गरीब-अमीर के, वर्गोंहि में चलता रहा ।।२।।
जन दो दलों में बँट गये, नहिं एक माने एक को ।
विश्वास ही है उठ गया, बैठे निजी ले टेक को ।।३।।
अब क्या करें हम योजना? समुझायँ किस की श्रेष्ठता ?
किस भाँति सुन्दर हो सके, यह ग्राम रचना ? दो बता ।।४।।

(चौ.) सुनो प्रश्न यह है महत्त्व का । अति आवश्यक निर्णय इस का ।।
इस के सिवा प्रगति नहिं होगी । गाँवों की तो नीव ढहेगी ।।५।।
अमीर गरीब विवाद बढ़ेगा । गाँवों को बरबाद करेगा।
यह कर्तव्य समझदारों का । निकाल होवे इस संकट का ।।६।।
प्रभु के घर से जीव एक ही । कोई न धनिक रंक नहिं कोई ।।
यह समाज रचना की खामी । मानव रचित भेद अन्यायी ।।७।।
नहीं मूल सिद्धान्त भेद का । सब ही खेल लोभ लालच का ।।
समझ आयगी जब दोनों में । दिखे भेद नहिं कुछ दुनिया में ।।८।।
पक्ष खेल के लिए बनाये । लड़ने लगे खेल विसराये ।।
आपस में वैमनस्य आया । अज्ञानहि सब काम नसाया ।।९।।
ताश में जीते पत्ते कोई । 'मैं मालिक; गर कह दे सोई ।।
फिर तो खेल थमे औरों का । लोभ एक का, धोखा सब का ।।१०।।

(दो.) यही चलन संसार में, हो घर, कुटुम समाज ।
लोभ और अज्ञान से, होंय फजीते आज ।।११।।
काम हेतु थी जाति पर, काम मूल अब जाति ।
वर्ण धर्म के नाम से, बनी जनम संपत्ति ।१२ ।।

(चौ.) अर्थ रचन का हुआ वही है । धन के हिस्सेदार सभी हैं ।।
होते थोड़े मालिक उस के । बाकी करते रहते फाके ।।१३।।

गरीब गुनबा कोई रह गया । बड़ा श्रीमंत कोइ बन गया ।।
पैरों में सबके यह बेड़ी । कारण अज्ञानहि रही पड़ीं ।।१४।।
रखी एक के पास अमानत । भोगी अविचारी सो संपत ।।
लगा कहन सो धीरे धीरे । कैस अमानत, किसकी ओ रे ।।१५।।
रखा पुजारी मंदिर सब ने । कब्जा निजी जमाया उसने ।।
बीबी बच्चों के ही खातिर । मंदिर का उपयोग करे फिर ।।१६।।
हुआ तीर्थ में सुभक्त कोई । सत्ता हुइ मन्दिर पर उसकी ।।
बच्चों ने अधिकार जमाया । जरिया धंधा उसे बनाया ।।१७।।
भूमि मिली सरकारी किस को । गांव बसाय बाँटने सबको ।।
पर गब्बर बन बैठा खुद ही । उन सब का शोषण कर भाई! ।।१८।।
धन के लिए रखा रखवाला । था मालिक कमजोरहि भोला ।।
पैसा हथिआया सब उस से । रखवाले ने छल अरु बल से ।।१९।।

(दो.) **ऐसे ही इस जगत में, बने गरीब अमीर ।**
हटा श्रमिक पैसा हड़प, सोई होय हुजूर ।।२०।।
नपी मजूरी श्रमिक को, हड़पे बाकी आप ।
उसे जताये न्याय हक, सचमुच है जो पाप ।।२१।।

(चौ.) झूठे को सच्चा जतला कर । पैसे से पैसे को बढ़ा कर ।
कहते पुरखों की संपति है । हक श्रमिकों का कोइ नहीं है ।।२२।।

दंभ व स्वार्थ की प्रतिक्रिया

करें कछू अब कोई न समझे । कौन कीर्तन भजन को पूछे ? ।।
बहुत हुआ, चींटी को शक्कर । कहते 'दान दिया' कण दे कर ।।२३।।
शोषण करें हजारों का वे । बढ़ें रोग अनगिनती उससे ।।
अस्पताल धर्मार्थ चलावे । ऊपर 'धर्म शील' कहलावे ।।२४।।
देखो हालत मजदूरों की । बूझे कभी नहिं आग पेट की ।।
निसि दिन उन से काम करायें । मालिक धर्म शील कहलाये ।।२५।।
मालिक का तो महल शहर में । थेटर बच्चे जाय कार में ।।
व्यसन विलास सीख कर चोरी । कर देहात लूट सो भारी ।।२६।।
कितनों ने तरकीब लड़ाई । जायदाद अनगिनत बढ़ाई ।।
कौड़ी एक नहीं खुद उन की । चूस कमाई सब श्रमिकों की ।।२७।।
भूखों मरें गाँव जन सारे । कहदे-'मरने दो बेचारे! ।।
आयु गयी तब कौन बचावे? पैसा-दवा झूठ कहलावे' ।।२८।।

ऐसे धन तिन बहुत जमाया । पर समाज के काम न आया ।।
वे तो धनिक 'चोर' निश्चय से । असामाजिक खुदगर्जी ऐसे ।।२९।।

(दो.) भूमि अधिक, पर दे न जो, श्रमिकों को भरपेट ।
भाग्यवान है वह कहाँ ? मक्खी चूस है ठेठ ।।३०।।
भव्य महल सूना पड़ा, इक नारी-संतान ।
नहिं पड़ोस मे ले किसे, धन्य कृपण की शान ! ।।३१।।

(चौ.) कर्तब कितनों का पशु सा ही । दबाव डाले तानाशाही ।।
धाक-धौंससे काम निकालें । घातक होगी अब ये चालें ।।३२।।
खुली घोषणा गरीब की अब ! हैं गुण्डे श्रीमंत यहाँ सब ।।
किन्तु बन्द है इनकी आँखें । कुछ भी करों न खुलती पलकें ।।३३।।
करें इसलिए उपाय कोई । इसके लिए मार्ग है दो ही ।।
धर्म मार्ग सेवाहि भाव हो । या अंकुश कानूनी ही हो ।।३४।।
गर नहिं मानें कोई इनसे । रोष भरे लोगों में उससे ! ।।
आवाहन हो रक्त क्रांति का । वातावरण अराजकता का ।।३५।।
कोई घर में सेंध लगावे । कोई लूटे डाका डाले ।।
कोई मौत के घाट उतारे । सब परिवारहि दिनहि दहाड़े ।।३६।।

सहकारी जीवन व परिश्रम मूल्य

(दो.) क्यों आने दें वक्त वह ? खोजो सत्पथ आज ।
धनिक रंक दोनों सुखी, ऐसा बने समाज ।।३७।।
बातचीत आपसी से, हिस्से हों सम तोल ।
राग द्वेष बिन ही सभी, गाँव मिटावे मूल ।।३८।।

(चौ.) पैसा तेरा मेहनत मेरी । प्रयत्न मेरा, बुद्धि तेरी ।।
अश्व एक का साज किसी का । ऐसा हो सहयोग सभी का ।।३९।।
रचना मूल यही जीवन की । काम एक का मदद बहुत की ।।
मिल कर सब ही काम करें जब । पाये गौरव अपन गाँव तब ।।४०।।
निभना कैसा अलग गाँव से । गरज निरंतर सब की सबसे ।।
मगर काम पूरा होने पर । इसे भूल भ्रम फैलाते नर ।।४१।।
बढ़ई उसके खम्भ बना दे । राज भली दीवार उठा दे ।।
कुम्हार दे खपरैल बना कर । तब छावन होती है सुंदर ।।४२।।
छड, कल, कीले लुहार द्वारा । मजदूर बनाये घर ओसारा ।।
ऐसा करे नहीं गर कोई । रहे कहाँ फिर ऐस गुँसाई ? ।।४३।।

किसे बना दें मोची जूते । कपड़ा बुन कर किसे पुराते ।।
टीप टाप से कपड़े सींकर । दर्जी वस्त्र बनाते सुन्दर ।।४४।।
कृषक नाज है सब उपजाता । प्याज, मिर्च, तिल, साग, पपीता ।।
सब के श्रम से घर सुख दाता । है वह अपने लिए सजाता ।।४५।।
सबके हाथ सभी को लगते । जीवन धागे सुन्दर बुनते ।।
गाँव में ऐसी समझ बरतता । बुद्धिवान् खरा सोइ होता ।।४६।।

(दो.) भाव बुरा लेकिन घुसा, किसे न माने कोय ।
कहते 'देत दाम हम, तभी काम यह होय' ।।४७।।
महत्त्व है श्रम का मगर, पैसा मानत कोइ ।
करता पैसा काम सब, कहे कौन जग सोइ ।।४८।।

(चौ.) मिट्टी खोदी पत्थर लाये । जिन तराश दीवार बनाए ।।
सम्पत्ति बने अस मिट्टी पत्थर । मान परस श्रम का ही पाकर ।।४९।।
होते बन में गोले, लकड़ी । श्रम बिन कहाँ महल या गाड़ी ।।
श्रम बिन अर्जित होय न कौड़ी । माया जो भी श्रम ने जोड़ी ।।५०।।

धनिक, शासक एवं संत का कर्तव्य

खरी विवेक बुद्धि उस की हो । सब की बात सहज समझे जो ।
योग क्षेम पूरा हो सब का । समुचित धर्म यही धनिकों का ।।५१।।
है जो भी निज गाँव धनिक जन । उनकी संपद सही ग्राम धन ।।
करें सभी व्यवहार समझ से । मदद करे मौके पर मन से ।।५२।।
अपने पास अधिक हो जो भी । खुशी खुशी दो पड़ोस को भी ।।
सब ही रहें एक जुट मिल कर । ग्राम धर्म का मर्म समझ कर ।।५३।।
खून गरीबों का है सब धन । समझ करें बरताव धनिक जन ।।
श्रम ही है गाँवों की दौलत । इस से करें उसे सम्मानित ।।५४।।

(दो.) ऐसा जब सब जन करें, श्रेणि भेद मिट जाय ।
साधु सन्त लें काम यह, ऐसी सुमति बनाय ।।५५।।
प्रेरक हो सरकार भी, जन मन अस व्यवहार ।
शिक्षण का अभियान हो, व्यापक होय प्रसार ।।५६।।

(चौ.) शुरू से छोटे बच्चों में भी । अमीर-गरीब भेद हो नहीं' ।।
'देखें समान हम सब को ही' । मिले सबक आचरण से ही ।।५७।।
होवे समता नहीं बात में । दिखे मान धन अरु शिक्षा में ।।
फूट डलावें इसमें जो भी । गाँव हकाले ऐसे भेदी ।।५८।।

नहीं मानते इस पर भी जो । बाँध नियम कानून से उन को ।।
कर ले रचना समता मूलक । नीव इमानहि की पुख्ता पर ।।५६।।
पुत्र समान बाप को जैसे । रंक धनिक शासक को वैसे ।।
है यह भेद मिटाना नीका । राज धर्म में काम उसी का ।।६०।।
होय पक्षपाती गर शासन । धधक उठे लोगों का जीवन ।।
किस को कौन पूछता है तहँ ? गढ़बड़ छाई हो चहु दिसि जहँ ।।६१।।
पक्षपाती स्वामी साधू भी । दान दक्षिणा के बन लोभी ।।
फिर तो टूट पड़ी चट्टानें । समाज पर पहाड़ की माने ।।६२।।
जनता का फिर नहीं सहारा । धधक उठे विद्रोह की ज्वाला ।।
हाहाकार मचे चहु दिसि ही । करदे भस्म मही सारी ही ।।६३।।
बंदी जनता सभी बनाई । या फिर मौत के घाट उतारी ।।
उपज बिना श्रम होय कहाँ से ? सभी मुसीबत पड़े तहाँ से ।।६४।।
पर हम ऐसा होने क्यों दें ? पहले से सब जागृत होंवे ।।
यथा शक्ति मति कार्य सँभालें । सभी गाँव आदर्श बना लें ।।६५।।

(दो.) कमायें शुभ व्यवहार से, खर्चे भी शुभ काज ।
कल्याण परस्पर-होय तस, शुभ व्यवहार समाज ।।६६।।
ऐसी कंजूसी न हो, डूबे ब्याज में गांव ।
विपद समय भी देय नहिं, साथ किसे किस भाव ।।६७।।

(चौ.) बिन सोचे धन नहीं उड़ाए । फाँस गरीबों को न कमाए ।।
दो राहें हैं लेना देना । सम समान जीवन में रखना ।।६८।।
रक्त क्रांति की घड़ी न आवे । सहनुभूति का घेर बढ़ावें ।।
जीवन व्यापी होवे सोई । विरोध इसका करें न कोई ।।६९।।
मिलकर रहें, करें सब काजा । अपने समझ प्रयासहु साझा ।।
धनिक गरीबी जीवन माँही । रहनी भेद दिखे कछु नाहीं ।।७०।।
रंक-अमीर दिखें तो गुण में । बुद्धि शक्ति में, कार्य करण में ।।
यद्यपि यों कुछ भेद रहेंगें । समता भाव नहीं छोडेंगें ।।७१।।
इस का शिक्षण समाज पावे । वही भाग्य का सुदिन कहावे ।।
व्यवस्था ऐसी भंग न होई । मिटै काल कल्पहु नहिं सोई ।।७२।।
खरे सोच के प्रमुख बढ़ें जब । होगी ऐसी क्रांति बड़ी तब ।।
भ्रांति अपने आप मिटेगी । गरीब अमीर के भेद भाव की ।।७३।।
वे ही ज्ञान समाज में देंगे । उसी से परिवर्तन शुभ होंगे ।।
धीरे-धीरे व्याप्ति बढ़ेगी । पावन भारत माता होगी ।।७४।।

अस सद्‌बुद्धि सभी में आवे । अमीर-गरीब भेद मिट जावें ।।
अगर नहीं, तो मानो निश्चित । भल समाज की आगे नहिं गति ।।७५।।

(दो.) यही ज़रूरी ज्ञान अब, यही समय की मांग ।
इंतज़ार सो नहिं करे, परिवर्तन का योग ।।७६।।
इसीलिये मैं कहूँ अब, बढ़ाय समता वृत्ति ।
लोगों का भूषण बने, सामूहिक सुप्रवृत्ति ।।७७।।

सही उपायः श्रम निष्ठा

(चौ.) धनिक सहायत भी गर देते । खरच भी लाखों रुपये करते ।।
भेद भाव का मानस फिर भी । बदल न पायेगा ऐसे ही ।।७८।।
हो सब की श्रम के प्रति निष्ठा । देवें उसको सही प्रतिष्ठा ।।
धनिक स्वयं ले हिस्सा श्रम में । श्रमिकों के कष्टों को जाने ।।७९।।
सब जन हों सब ही के पूरक । यही धर्म का सूत्र सुखात्मक ।।
सुजन, बताना होगा क्या यह । स्वयं सिद्ध है तुमको तो वह ? ।।८०।।
गाँव दशा बिगड़ी इसके बिन । पशु सम खटते कई रात दिन ।।
नाजुक बन कर कई बिचरते । टिड्डी दल में उड़ते फिरते ।।८१।।
कोई कहते धन कुबेर हम । कौन बात है क़हो यहाँ कम ?
अकुत कमाई है पहले की । नामी पुरखों के हाथों भी ।।८२।।
यह कहते सो महाअज्ञानी । तत्व की बात नहीं तिन जानी ।।
अब आगे जो श्रम न करेंगे । धन जमीन उनके न रहेंगे ।।८३।।
कामकाज जो कुछ नहिं करता । ऐसा कभी आराम न पाता ।
हिसाब कामगार अब लेंगे । सभी निठल्लों से ही आगे ।।८४।।

(दो.) श्रम करना तुम सीख लो, पराधीनता छोड़ ।
निज श्रम से जो मिले हक, चखो स्वाद बेजोड़ ।।८५।।
चले निठल्लों की अभी, कालि फजीहत होय ।
इसे समझ कर अभी से, चित उद्योग लगाय ।।८६।।

(चौ.) कला औ' कौशल सभी तरह के । सीख आचरें सुविवेक से ।।
तभी पेट भर खाने का हक । पाओगे सम्मानपूर्वक ।।८७।।
शिक्षित जब इस राह चलेंगे । वाक्-वाण श्रमिकों के रुकेंगे ।।
वरना उनको सदा सदा वे । बेईमानहि ठहरावेंगें ।।८८।।
बोलेंगे हम कष्ट उठाते । तुम सब ही आराम से रहते ।।
कहते हो 'बरतें समानता' । कौन कहे फिर तुमको नेता ? ।।८९।।

सब से है यदि प्रेम बराबर । नियम एक हो लागू सब पर ।।
करें परिश्रम सब ही मन से । अपनी अपनी शक्ति सुमति से ।।९०।।
एक सदा ही काम कर रहा । पर दूजा आराम कर रहा ।।
देश दृष्टि से निन्दनीय है । सीधा सीधा वह हराम है ।।९१।।
यह दुनिया हे मेहनतकश की । जो जो जोतें खेती उनकी ।।
काम करे हो दासी उनकी । लक्ष्मी, यह है रीति सदा की ।।९२।।
यही प्रवृति आज दुनिया की । यही जरूरत अब समाज की ।।
ऐसे में फिर विशिष्ट जन में । बाधा कौन इसे मानन में ? ।।९३।।

(दो.) **शिक्षित हो, विद्वान हो, महंत या धनवान ।**
स्वेच्छा से सब श्रम करें, यही बड़प्पन जान ।।९४।।
यह सुख कर सब के लिए, काम करें जी तोड़ ।
लाज रहे नहिं एक कण, धन से बना पहाड़ ।।९५।।

(चौ.) बुद्धिमान जब काम करेंगे । ज्ञान व्यवहारिक वे पायेंगे ।।
तब उन्नति खेती में होगी । देश-विकास दिशा संभलेगी ।।९६।।
मेहनत बिन उपभोग करे जो । मानवता पर कलंक है सो ।।
खाना पीना आलसियों को । देना महा पाप है देखो ।।९७।।
श्रम इस तन के लिए हीनता । ऐसा गर है कोई कहता ।।
समझो वह है देश का द्रोही । उपद्रवी अरु पाप सदेही ।।९८।।
करना अप्ना काम स्वयं ही । क्यों कर होवे लाज शरम ही ?
उलटे हो अभिमान स्वयं पर । अपना काम स्वयं करने पर ।।९९।।
विषय ज्ञान जिस का जैसा हो । कार्य नीति जिस की जैसी हो ।।
सोइ निपुणता हासिल करके । चले गाँव में अगुआ बन के ।।१००।।
काम सभी ही मूल्यवान हैं । उनका मूल्यहु समसमान है ।।
सिद्ध किया हरि उठाय जूठन । मुए ढोर ढोवे विठ्ठल तन ।।१०१।।

(दो.) **किसी की कम नहिं योग्यता, आवश्यक सब काम ।**
इसीलिए सामान्यतः सम सबके हों दाम ।।१०२।।
खेत मजदूर लुहार हो, बढ़ई,. रजक, कुम्हार ।
सब समान उपयुक्त हैं , राजा चर्महुकार ।।१०३।।

(चौ.) बाल्मीकि सो करे सफाई । वैद्य बना करता सेवा ही ।।
मन्दिर एक सुशील पुजारी । सम उपयुक्त, न हलके भारी ।।
कोऊ सुबुद्ध पुराण बतावे । या भूले को राह दिखावे ।।
जस योग्यता स्वभाविक जिस की । उसी ओर सहज गति उस की ।।१०५।।

आदर करें सभी सबका ही । अस व्यवहार होय जग माही ।।
ब्राह्मण कौन? कौन अत्यंज है? कम में एक सरीखे सब हैं ।।१०६।।
ऊँच नीच की बात काम में । कौन दिखा सकता चौड़े में ।।
अपनी अपनी जगह काम सब । महत्वपूर्ण होते हैं वे सब ।।१०७।।
सब कामों की सही जरूरत । रहे सहज ही समाज में नित ।।
पुर्जा कम हो अगर एक भी । दिखे अधूरा जग जहाज ही ।।१०८।।

(दो.) बोझ लकड़ियों का बँधा, ले संकल की डोर ।
कड़ी एक टूटे अगर, बिखरेगी चहुँ ओर ।।१०६।।
वही दशा है काम की, करें सभी निज काम ।
तभी चलेगा यह जगत, सम समान अभिराम ।।११०।।

(चौ.) कला, ज्ञान जिस का हो जो भी । देश के लिए लगा उसे को ही ।।
होइ चतुर जो जिसहि काम में । करइ योगदान सो उस में ।।१११।।
होइ बुद्धि, बल जिसका जैसा । करइ परिश्रम सोई तैसा ।।
जिनकी होय जरूरत जैसी । मिलैं वस्तु पूरी तिन तैसी ।।११२।।
श्रम ऐसे बिच गाँव करोगे । आत्माराम तभी पाओंगे ।।
शान्ति रूप निज धाम मिलेगा । वरना संकट वह न टलेगा ।।११३।।
उठो, उठो, उठो श्रीमंतो । अधिकारियों और पंडितो! ।।
साधुओ और सुशिक्षित जन भी । आयी है अब हांक क्रांति की ।।११४।।
गाँव-गाँव को अभी जगा दो । भेद भाव समूल मिटा दो ।।
दीप जलादो ग्रामोन्नति का । कहता तुकड्या मार्ग सुगति का ।।११५।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरु की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
अध्याय सत्रहवाँ कहे श्रम संपदा महिमा सही ।
जड संकटों की विषलता कट जाय, सुखमय हो नहीं ।।११६।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

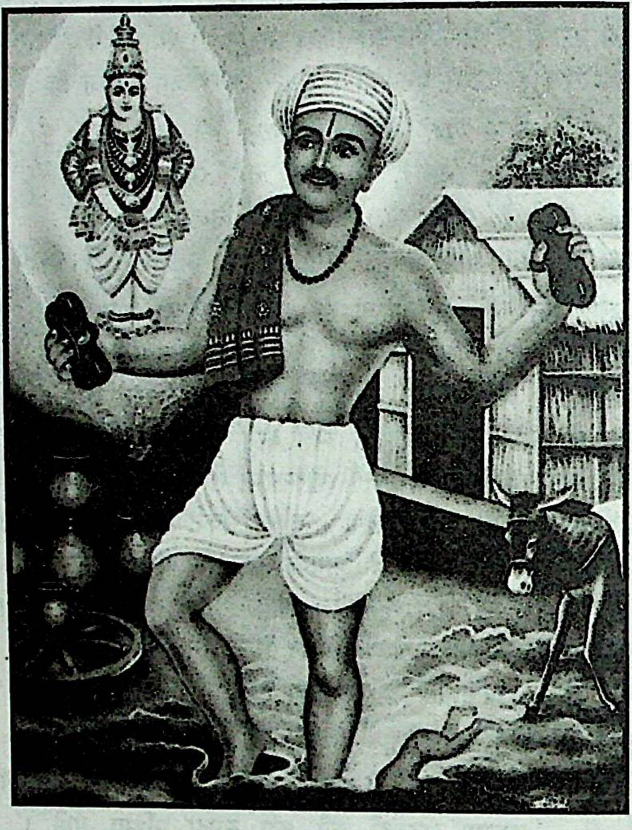

श्री संत गोरोबा महाराज

अठाहरवाँ अध्याय

श्रम सम्पदा

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

कर्ममयी सृष्टि व मानवीय परिश्रम

(मनहरण) प्रश्न पूछे रोता एक, गीता में सुना है यही,
किये बिना कर्म चले, सृष्टि कर्ममयी हैं ।।१।।
सब को ही लगे कर्म, कर्म ही तन का धर्म,
वहाँ 'करो काम' यह भाषा उलटी ही है ।।२।।
आप कहते हैं हम से 'परिश्रम करो
इससे तो अहंकार-पुष्टि होगी सही है ।।
सहज चले व्यवहार इस लोक में जो
वही है उचित, मान्यता हमारी यही है ।।३३।।

(चौ.) यह श्रोता की शंका नित ही । लोगों को भरमाती आयी ।।
नहीं भूमिका पर गीता की । जैसी शंका है श्रोता की ।।४।।
कर्म रूप तो विश्व सभी है । कर्म रहि नर एक नहीं है ।।
करता रहता है हर कोई । कोई न कोई काम सदा ही ।।५।।
किन्तु कर्म के भेद कई हैं । शुद्ध, निषिद्ध, मिश्र सब ही हैं ।।
कुछ विधि-युक्त, कछू मन भावन । हैं निष्काम कर्म कुछ पावन ।।६।।
इंद्रिय सुख के लिए हैं कोई । मन भावना से उपजें कोई ।।
कोई प्रखर विवेक बुद्धि से । प्रेरित कर्म हैं सुन्दर सब से ।।७।।
केवल अपने लिए कर्म कुछ । कुटुम्बियों के हित के हैं कुछ ।।
कुछ तो ग्राम जनों के हित में । सेवा धर्म रूप जो जग में ।।८।।
करे काम जो देह के अपने । किया महा धर्म क्या उसने ? ।।
वे सब तो बस नित्य कर्म हैं । सहजाहि जीवन में चलते हैं ।।९।।
तैसे ही अवसर विशेष पर । उत्सव आयोजित करते नर ।।
उनमें भी क्या विशेषता है ? नैमित्तिक वे सभी कर्म हैं ।।१०।।
नित्य कर्म हैं सहज निमित्तिक । पर उन को करना आवश्यक ।।
विन उन के न समाज टिकेगा । पर वह महा धर्म नहिं होगा ।।११।।

(दो.) पुण्य परिश्रम है नहीं, सिर्फ पेट का कर्म ।
शेष समय सेवा करे, वही कहावे धर्म ।।१२।।

मानवता का कर्म जो, जो दुसरे के काम ।
पशु पंछिहु अपने लिये, व्यस्त सदा कुछ काम ।।१३।।

'श्रम दान' ही गीता की सीख

(चौ.) निषिद्ध, सकाम कर्म भी जैसे । 'छोडे मैं-मेरा' भी तैसे ।।
करे जगत के लिए परिश्रम । हो ईशार्पण बुद्धि सदा सम ।।१४।।
गीता का है यही प्रबोधन । बार बार निश्चय से पूरण ।।
सर्वेश्वर का पूजक सम्यक् । सोई कर्म है गीता सम्मत ।।१५।।
यों तो कर्म रहित नहिं कोई । निःसंश्य कहना मेरा भी ।।
आज कर्म पर उसे कहें नहिं । अगर देश उत्पाद बढ़े नहिं ।।१६।।
जनता रूप जनार्दन की जो । सच्ची सेवा हो न सके तो ।।
ऐसे कर्म को मैं नहि देऊँ । 'गीता प्रिय' की पदवी कबहूँ ।।१७।।
हो भरपूर आज उत्पादन । जन सेवा का यह ही साधन ।।
इसके लिए जुटे जो कोई । मानों गीता फली है सोई ।।१८।।
नाक दबाते मन्दिर बैठे । इससे उठा राह के काँटे ।।
प्यासों को जल पिला प्रेम से । काम श्रेष्ठ सो तीर्थ-स्नान से ।।१९।।
जमीन खोदो एक हाथ भर । पूजन से यह पूजन सुंदर ।।
असर सैकड़ों व्याख्यानों से । होगा अधिक काम का ऐसे ।।२०।।
मिले श्रमिक को भोजन जिस से । श्रेष्ठ कर्म वह यज्ञ आदि से ।।
यहि तज, बता नाम गीता का । पक्ष रखो नहिं और बेतुका ।।२१।।

(दो.) सोया आलस में कहे, 'यही चाहिये देह' ।
केवल भोजन को उठे, युवक जाय फिर सोय ।।२२।।
घर में किसे सुहायगा ? बस खा कर विश्राम ।
करे ठिठोली तो कहे, 'यह भी तो इक काम' ।।२३।।

(चौ.) किसी का काम साहुकारी का । पैरोकार कोई झगड़ों का ।।
हर प्रकार के लोग बटोरे । महा उपद्रव कोई करावे ।।२४।।
ऐसे काम बन्द यदि होवे । उससे कोइ बिगाड़ न होवें ।।
जीवन यापन के उत्पादन । रुके अगर तो चले न जीवन ।।२५।।
इसीलिए सब काम करावें । जिससे गाँव का धन बढ़ जावे ।।
यहाँ गरीब-अमीर न कोई । काम में कोइ भेद न होई ।।२६।।
गोरा संत करें श्रम भारी । मिट्टी रौंदे तँह त्रिपुरारी ।।
गर श्रीमंत आलसी होवे । महा पाप का भागी होवे ।।२७।।

बेकारी की मनोवृत्ति व उत्पादन-समस्या

सवाल करे इस पर इक श्रोता । काम न अब मजूर भी पाता ।।
बढ़ता रेला बेकारों का । श्रीमंतो को काम कहाँ का ? ।।२८।।
श्रोता की यह शंका सारी । है भ्रम जनित और अविचारी ।।
सारा देश दीन अज्ञानी । काम दिखे नहिं, कैसे ज्ञानी ? ।।२६।।
फिर फिर लेय जनम मानव को । सुखी बनाने मातृ भूमि को, ।।
महपुरुषन की है यह बानी वाणी । काम दिखे नहिं, कैसे ज्ञानी ? ।।३०।।
पहाड़ काम का खड़ा देश में । दुख-दारिद्रय की फँसे बाढ़ में ।।
अध भूखे अध नंग अनगिनत । उनके दुख कैसे नहिं दिखत ? ।।३१।।
नही आज विश्राम समय है । देश के सम्मुख बड़ा काम है ।।
निकल कार्यकर्ता गाँवों से । करने काम नित्य निष्ठा से ।।३२।।

(दो.) बन साहब बिन काम के, चाहत जो आराम ।
कसै रोब जन पर सोई, है बेकार निकाम ।।३३।।
विद्या का उपयोग कर, करें प्रचार-प्रयोग ।
इसे छोड़ शिक्षित बने, जन जीवन में रोग ।।३४।।

(चौ.) एक ओर श्रीमंत अरु शिक्षित । दूसरे हुए मजूर अरु वंचित ।।
पर बसती दोनों घर माँही । समान आलस और ढिलाई ।।३५।।
जभी पेट में भूख लगेगी । खोज काम की घर-घर होगी ।।
नहीं तो फिकर बिना आलस में । पड़े रहेंगे झोपड़ियों में ।।३६।।
आठ बजे तक नहिं जग पावें । दस बजने पर काम को जावे ।।
फिर भी काम में दिल नहीं लागे । तेहि बिगाड़ लौट घर आवे ।।३७।।
उलटे श्रीमंतों को कहते । हानि कौन, क्या भीख माँगते? ।।
किया काम गर यह नहिं पूरा । क्या होगा नुकसान हमारा?' ।।३८।।
हाथ कामके लिए न चलता । मुख से हरदम बकझक करता ।।
मजदूरी का कटे जो पैसा । तब लोगों में करे तमाशा ।।३६।।
ऐसा करना गलत सरासर! लेंय काम के पैसे कसकर ।।
पर आलस बस काम टालना । कभी ठीक न मेरा मानना ।।४०।।

(दो.) मजदूर सुबह जल्दी उठे, नित्य कर्म निबटाय ।
पूरे घर के काम कर, तुरंत काम पर जाय ।।४१।।
घण्टा जैसे ही बजे, श्रमिक चले चहुँ बाट ।
हो ऐसा उद्योग सब, चलें तेज सरपाट ।।४२।।

(चौ.) मजदूरों पर ही उत्पादन । उत्पादन ही प्रमुख ग्राम धन ।।
करना टाल मटोल उसी में । समझो यह पागलपन जग में ।।४३।।
नहीं कार्य निष्ठा श्रमिकों में । बढ़े उधर आलस धनिकों में ।।
इसी से हुआ देश का जीवन । काँटों भरा दुःख से पूरण ।।४४।।
उत्पादन की गति धीमी है । उपभोगों की ललक बढ़ी है ।।
क्या कर सके भली भू माता । खेत परिश्रम जो नहिं होता ।।४५।।
इसके जिम्मेदार सभी हैं । बुद्धि, शक्ति, धन, प्रचार भी है ।।
एकहु इनमें नहीं ताल पर । इस से उजड़ा गाँव मनोहर ।।४६।।
अपना काम न लगे धनिक को । नेह उपज से नहिं गरीब को ।।
शिक्षित हेय परिश्रम मानत । घोर शिथिलता इससे उपजत ।।४७।।
ऐसा कुछ न हेय अब आगे । सोच सुधारें सब ही जागें ।।
इसीलिए है मेरी विनती । आग्रहपूर्वक सबके ही प्रति ।।४८।।
जो जो काम बन सके जिससे । करे उसे वह सेवा व्रत से ।।
निज हित में सो अच्छा होगा । गाँव लिये भी हितकर होगा ।।४९।।

(दो.) श्रम न करे जो पेट को, करे न उपज़-सुधार ।
करें विवेकी ग्रामजन, ऐसों का प्रतिकार ।।५०।।
सबमें अपनापन बढ़े, श्रम निष्ठा मन होय ।
उत्पादन बाढ़े गाँव में, सुप्रबंध अस होय ।।५१।।

ग्रामोद्योग से ग्रामराज्य

(चौ.) पैदावार बढ़ाने खातिर । नव निर्माण कराने खातिर ।
करें गाँव में क्या अरु कैसे ? प्रश्न बराबर उठते ऐसे ।।५२।।
प्रथम उपाय यही है उसका । नियत समय हो जो श्रमिकों का ।।
पूरा यदि उपयोग नहीं हो । सह-उद्योग दिलाये उन को ।।५३।।
और समय दूसरों का घर में । कितना जावे व्यर्थ गाँव में ।
काम में लायें सोच समझ कर । गाँव की पलटे काया अस कर ।।५४।।
कच्चा माल गाँव में होवे । उसका पूरा लाभ उठावें ।।
शोध करें अरु प्रयोग नाना । मिट्टी भी होवे सम सोना ।।५५।।
अन्य देश के युवकों में धुन । अनुसंधान तहाँ नित नूतन ।।
होय अखंडी धुन वैसी ही । गाँव के शिक्षित युव जन मांही ।।५६।।
कलावन्त जो निपुन गाँव में । उत्साह भरें हम उनके मन में ।।
नई नई वस्तुएं बनावे । जीवन में उपयोग जो आवें ।।५७।।

(दो.) भीख न लें परदेश से, उद्योगों के यंत्र ।
करें स्वयं निर्माण हम, उन्नति का यहि मंत्र ।५८।।
उद्यम चरखा-तकली के, धान्यहु अन्य प्रयोग ।
बनाये सब कुछ स्वयं ही, घर दरवाजे लोग ।।५९।।

(चौ.) सह-उद्योग चलें घर-घर में । नर अरु नारी लगे सब उन में ।।
विपति समस्याएं जीवन कर । करें इस तरह हल मिल जुल कर ।।६०।।
बनाय थैली निवार कोई । खादी बुनता घर में कोई ।।
चप्पल जूते कोइ बनाये । खाल मरे पशुअन निकलाये ।।६१।।
बुने चटाई आसन कोई । बना खिलौने, कुर्सी कोई ।।
तसले, गोने, पलंग कोई । साबुन घर बनवाते कोई ।।६२।।
सुघट सुराही गढ़ते कोई । फूल-पात्र या गमले कोई ।।
खपरैल बनावें सुंदर कोई । अस मजबूत न टूटे सोई ।।६३।।
कोई पक्की ईट बनायें । चौरस पत्थर टांक बनाये ।।
अपने अपने घर में सब ही । व्यस्त कार्य निज रुचि अनुसरही ।।६४।।
कोई साज करें बैलों का । प्रयोग करे कोई रंगों का ।।
सक्रिय हो हर कोई गाँव में । लगे रहे जिस किसी काम में ।।६५।।

(दो.) सह-उद्योगों से भरें, गाँव सभी इस तौर ।
कहीं जरा भी नहिं रहे, कसर किसी भी ठौर ।।६६।।
कला कुशल ऐसे बढ़े, घर-घर सह-उद्योग ।
जरा दिखे न फिर कहीं, 'बेकारी' का रोग ।।६७।।

(चौ.) यही कला कहता मैं सुन्दर । भवन बने घूड़ा ही नातर ।।
माँग चूँग जस होई सजाया । दूल्हा जब दरवाजे आया ।।६८।।
न हो गाँव में जो भी धंधा । प्रोत्साहित तेहि करो सर्वदा ।।
किंतु देख पहले से लेवें । हित कर गाँव के लिए सो होवे ।।६९।।
पिछड़े गये गावों के उद्यम । शिक्षण से फिर चमका दें हम ।।
उन्नति ऐसे होगी अपने । गाँव की सर्वांगीण हमारे ।।७०।।
चाही चीजें स्वयं बनाओ । वना न सको, बनाना सीखो ।।
हर घर में हो बात एक ही । बनी वस्तुएं अपन गाँव की ।।७१।।
जो जो अपने गाँव में होवे । सो सो हम उपयोग में लावें ।।
गाँव का धन तब रहे गाँव में । बढ़ती जाये शक्ति गाँव में ।।७२।।
गाँव का मोची भूखों मरता । शिक्षित शहर में ढूँढे जूता ।।
कितनी कदर गाँव के जन की ? धन्य अक्ल है पढ़े लिखों की ।।७३।।

बुनकर गाँव में करते फाँके । मलमल की धोती है तिन के ।।
वाह रे ! देश भक्ति है उन कर । मारे गाँव शौक के खातिर ।।७४।।

(दो.) **कोइ कहे 'पैसा मेरा' खरच करूँ जस चाहुँ ।**
दुश्मन गाँव का स्वार्थी, है साक्षात् सो राहु ।।७५।।
दस्तकार पिछड़े अगर, बिन खाये रहि जाइ ।
सजी बाहरी वस्तुए, दूषण, भूषण नाहिं ।।७६।।

(चौ.) एक देश के ताज महल से । मान न देश दशा का उससे ।।
घर-घर गर कंगाल जमाना । फिर वह किसका है पैमाना ? ।।७७।।
मल्ल गाँव में इक महान हो । अरु सब सींकी पहलवान हों ।।
शरीर बल सें पूर्ण गाँव वह । कह सकते क्या कभी कहो यह? ।।७८।।
कुछ थोड़े महान हो जाते । नाचीजहि बाकी रह जाते ।।
उस समाज की प्रगति हुई है । विवेक शील क्या कह सकता है ? ।।७९।।
उसके लिए सभी जन ज्ञानी । होवें स्वस्थ, समृद्ध उद्यमी ।।
तभी गाँव वह होगा जग में । आदर्श जीवंन उपमा सच में ।।८०।।
कहूँ गाँव में सब जन इस से । चीजें बरतें बनी गाँव में ।।
उन में उस से सुधरन होगी । उन्नति कारीगरों की होगी ।।८१।।
सब उद्योग अरु धंधे ऐसे । चलें गाँव में उत्साहहिं से ।।
खुशी खुशी अरु निज इच्छा से । जीवन सब का चले प्रेम से ।।८२।।

(दो.) **'प्रदर्शनी' हो गाँव में, रखें वहीं का माल ।**
कृषि उपकरणहु बीज अरु, सह उद्यम औज़ार ।।८३।।
बुनकर शिल्पी काम हो, संसारी सामानं ।
उत्तम चर्म कुम्हार की, वस्तु सुमंगलवान ।।८४।।

(चौ.) भवन बनाये एक मनोहर । उसमें विविध वस्तुएँ सुंदर ।।
हमने जो निर्माण किया हो । वही सिर्फ उस में रक्खा हो ।।८५।।
बने गाँव में जोभि वस्तु-धन । वही देखने आयें फिर जन ।।
उचित दाम पर ही उन सब को । बेचें चीजें भायी उन को ।।८६।।
होवे गाँव में 'उद्यम समिती' । सतत यत्नं जस उद्यम उन्नति ।।
सूत्रधार आर्थिक जीवन की । समस्या समाधान हो जन की ।।८७।।
गाँव के धनिकों की संपति । हिस्सा उससे ले यह समिति ।।
उपयोग करे इस धन का कोई । रात दिनहु जनहित जो होई ।।८८।।
जमींदार गांव में जो हो । अर्थकोष होवे जन का सो ।।
कारबार होवे उन का जो । सौंपे निश्चित मजदूरों को ।।८९।।

धनिक अगर नहिं होय सहायक । तो किसान, मजदूर होय इक ।।
उनकी अल्प बचत से भैया ! बूँद-बूँदसे भरे तलैया ।।६०।।
इक भंडार बनाये उस से । चीजें रखें जरूरी जिस में ।।
सब मिल एक दुकान चलायें । मिले जहाँ पर सभी वस्तुएँ ।।६१।।
मालिक उसके होंगे सब ही । चलायें तस किसान दक्ष ही ।।
व्यापार संगठन बने गांव में । सब की अनुमति और समझ से ।।६२।।

(दो.) एक 'धान्य भण्डार' हो, चले गाँव-व्यवहार ।
हिस्सा सब का होय सम, सब जन साझेदार ।।६३।।
नाज मिले आड़े समय, बढ़त जो सब को मान्य ।
सहमति से सब में बँटे, अन्त बढ़त का धान्य ।।६४।।

(चौ.) कमी पड़े तो श्रमिकों की भी । पूरी करें जरूरत जो भी ।।
उसकी बढ़त लगाय गांव में । ग्राम-सुधार योजनाओं में ।।६५।।
सवाया-ड्योढ़ा चले गाँव में । निश्चित रुकें प्रथायें इसमें ।।
ग्राम निधि जहाँ कहीं बढ़ेगी । साहूकारी ठंडी होगी ।।६६।।
जरूरी गांव में 'कोल्हू' घानी । शुद्ध तेल की वही निशानी ।।
करे गांव के काम गांव में । सब मिलकर उपयुक्त रीति से ।।६७।।
उद्यम हीनों को उद्यम दें । बेकारों को काम दिला दें ।।
पूरा गाँव सुखी पर तब ही । होंगे सम समान जब सब ही ।।६८।।
गाँव में जो भी काम करत है । भरना नेट, यह उसका हक है ।।
पर ईमान से लेवे उतना । होय जरूरी सचमुच जितना ।।६९।।
मिले काम कुछ नाहीं जिन को । देवें अपना नाम समिति को ।।
तभी ग्राम सेवा अधिकारी । काम देय अरु मिटे बेकारी ।।१००।।
देना काम काम ही उसका । जमा फंड हो, अलग गाँव का ।।
उस में से भुगतान काम का । पर उपयोगी काम ग्राम का ।।१०१।।

(दो.) सुख से बच्चे जी सकें, दे मजदूरी पूर्ण ।
उत्पादन अस गाँव में, होवे तस परिपूर्ण ।।१०२।।
तब ही सब को सुख मिले, मिटि जीवन से भूख ।
समृद्धी आर्थिक भी तहाँ, ग्राम राज्य अनूप ।।१०३।।

(चौ.) शिक्षित, धनिक तथा अधिकारी । श्रमिक, किसान, कलावान भी ।।
सब मिल ग्रामोद्योग बढ़ाये । उन्नति शिखर गाँव पहुचायें ।।१०४।।
शहरन ओर चले जो रेला । है आवश्यक उसे रोकना ।।
निर्वाह होय गाँवों में सब का । आयोजन हो ऐसा पक्का ।।१०५।।

शहरों का देहात पिता है । वह उपजाय शहर खता है ।।
लोग न दौड़ें शहर ओर अब । देहातों की ओर बढ़ें सब ।।१०६।।
करो गाँव की सेवा ऐसी । है हरि को प्रिय कर्म भी सोई !
कहता तुकड्या, मन में कोई । संशय इस बाबत नहिं होई ।।१०७।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरुकी, शास्त्रमत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
इस अष्टदश अध्याय में तत्त्वार्थ ग्रामोद्योग का ।
बल ग्राम राज्य बना सकें श्रमसंपदा-सहयोग का ।।१०८।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

ॐ ॐ

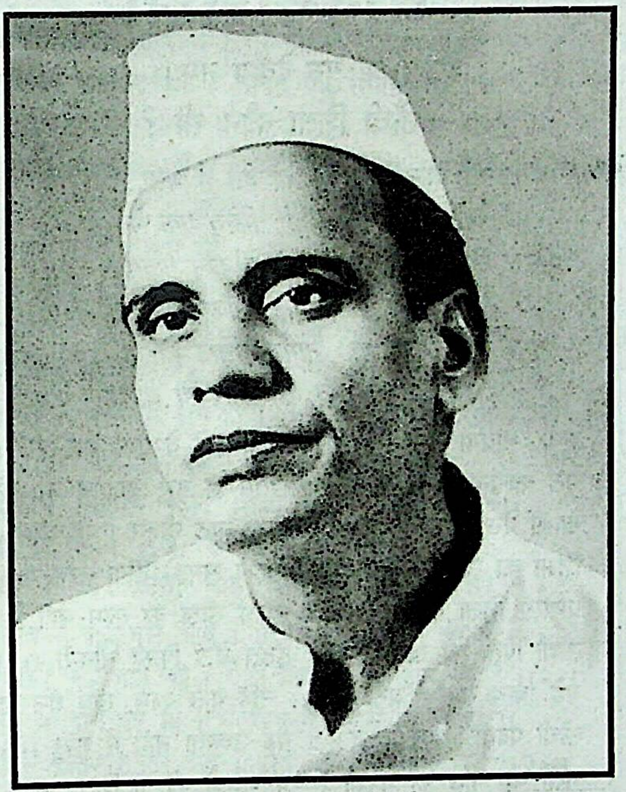

सन्तमूर्ति साने गुरुजी

उन्नीसवाँ अध्याय

जीवनशिक्षा

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

ऊँची शिक्षा कौन सी ?

(मनहरण) श्रोता करे प्रश्न, हम कह तो देते हैं भला,
गाँव शहरों के पिता', किन्तु एक भेद है ।।१।।
शहरों में शिक्षा ऊँची, देहातों में कौन पाता ?
आया पढ़ के भी यहाँ, गँवारु बना रहे ।।२।।
'नगर में बसे सो ही, 'नागर' बनेगा भाई !
इसीलिए तो छात्र को, शहर ही चाहिए ।।३।।

(चौ.) सुनो, भावना ऐसी जिन की । याद रखें वे एक बात की ।।
मूल कल्पना जो शिक्षा की । खतम हो गई, याद न उस की ।।४।।
खाली ऐंठ, दिखाऊ कपड़ा । ठाठा बाट नौकर पेशा का ।।
शिक्षा का उद्देश्य नहीं यह । पहले समझो ठीक तरह यह ।।५।।
प्रणाली शिक्षा की अजीब है । पिता सीख का काम नहीं है ।।
ऊँची पिता की खेती बारी । ढूंढत बेटा फिरइ नौकरी ।।६।।
बडे 'बाबु साहब' बन जाना । नहिं कुछ काम, खूब धन पाना ।।
ऊँची पदवी, रहन दिखाऊ । यह उच्चता नहीं मैं मानू ।।७।।
भूलो यह पीछे का नक्शा । पुत्र-पुत्रियों को दो शिक्षा ।।
जिस से सब से बढ कर वे सब । बने गाँव के भूषण गौरव ।।८।।
गलत सोच ऊँची शिक्षा का । बीता युग 'ऊँची शिक्षा' का ।।
भारत का सुपुत्र है सोई । परिश्रमी बलशाली जोई ।।९।।
कार्य जिन्दगी और पढ़ाई । खरा समन्वय दोनों का ही ।।
रहे न फिर चिन्ता भोजन की । चहूँ ओर भिक्षा माँगन की ।।१०।।

(दो.) गुण ऐसा सुत होय जो, पेट भर सके आप ।
होय न इस संसार में, फिर अड़चन की बात ।।११।।
जीवन यापन के लिये, हर साधन का ज्ञान ।
पूर्ण अर्जित कर सके, सोई शिक्षा मान ।।१२।।

(चौ.) तालाब, बावडी और नदी भी । तैर सके हर बिधि उनमें भी ।।
विपद पड़े तो दौड निकाले । शिक्षा में यह सब ही पा लें ।।१३।।
हो समुदाय भोज जब कोई । बना सकें सब ठीक रसोई ।।
बेटा-बेटी को सिखलाए । सब कामों में उन्हें लगाये ।।१४।।
यहा शिक्षा लगती साधारण । पर जीवन में महत्वपूरण ।।
अगर रसोई पका न पावे । जीवन पशु समान हो जावे ।।१५।।
कन्या बहुत पढ़ी शाला में । बनाये नहीं रसोई घर में ।।
क्या करना विद्या चतुराई ? काम बिना है वह लंगड़ी ही ।।१६।।
स्वयं पका कर खाय अशिक्षित । चने फाँकता रहे सुशिक्षित ।।
रस्सी गाँठ न बाँध सके सो । पराधीन है सभी तरह सो ।।१७।।
परसे पंगत में नहिं लड़का । भर न सके पानी भी घर का ।।
रहे अकड़ में बस अपनी ही । तब तो ज्ञान व्यर्थ वह सब ही! ।।१८।।
घर में जिस की कमी देख ले । लड़का दौड़ के पूरी कर ले ।।
साहस, लगन काम हों सब ही । शिक्षा हो उपयोगी तब ही ।।१९।।

(दो.) होय स्वतंत्र और निर्भयी, विनयी विद्यावान ।
जीवन-जय निश्चंय बढ़े, शिक्षा से गुणवान ।।२०।।
जीवन में सौंदर्य सुख, है शिक्षा का सार ।
दुर्बलता लाचारि अरु, नहिं शिक्षा संसार ।।२१।।

(चौ.) गुण्डे गाँव में जब घुस आवें । छात्र धड़ाधड़ द्वार लगावें ।।
आब उतारें बड़े बड़ों की । ऐसी शिक्षा कौन काम की ? ।।२२।।
इसीलिए बलवान पुत्र हों । मलखम-कुश्ती में प्रवीण हों ।।
हिम्मत से प्रतिकार करें जब । होवे शिक्षा उपयोगी तब ।।२३।।
ऋषिकालीन रीति थी यह ही! जीवन ज्ञानहु शिक्षा में ही ।।
इसीलिये उस समय व्यवस्था । थी आश्रम गुरुकुल की संस्था ।।२४।।
आयुर्वेद, मल्ल की विद्या । धनुर्वेद, शस्त्रास्त्रहु विद्या ।।
अति उत्तम चौदह विद्याएँ । गुरुकुल में आचार्य पढ़ायें ।।२५।।
कलाएँ चर्म, चित्र, रँगोली । इत्यादी हैं उत्तम सारी ।।
बँसोर, कुम्हार आदि की कृति भी । चौंसठ कला पूर्ण संस्कृति थी ।।२६।।
पाक शास्त्र, संगीत शास्त्र भी । गृह निर्माण का सुगढ़ तंत्र भी ।।
अश्व परीक्षा, रत्न परीक्षा । समग्र जीवन विद्या शिक्षा ।।२७।।
ऐसी थी प्राचीन प्रथा सब । उच्च ज्ञान ले आते हैं अब ।।
पर, गाँवों के साधन से ही । सुधरेगी गाँवों की खेती ।।२८।।

(दो.) **वैभव मय स्थान में, पढ़े न भावे गाँव ?**
ऊँची शिक्षा करे क्या, जन जीवन नहिं जान ।।२६।।
बदले इस के गाँव हों, ऊँचे विद्या धाम ।।
सजे ग्राम जीवन जनहि, अनुभव ज्ञान महान ।।३०।।

(चौ.) कला सिखाय विविध छात्रों को । चपल दक्ष अरु ध्येयनिष्ठ हो ।।
गाँव संभाल सकें वे अपना । ऐसी हो शिक्षा की रचना ।।३१।।
कैसे गाँव आदर्श बनावें । खास तौर शिक्षा तस देवें ।।
छात्र काम में सहभागी हों । दृष्टि शिक्षा में ऐसी हो ।।३२।।
सहयोगी भावना प्रबल हो । प्रमुख सूत्र शिक्षा का यह हो ।।
सहयोग भावना बिन शिक्षा का । मूल्य नहीं कौड़ी भिक्षा का ।।३३।।
बने परस्पर-पूरक मानव । यह शिक्षाक़ा सच्चा गौरव ।।
मानव जीवन में व्यक्ति निष्ठता । हे अभिशाप महा दुखदाता! ।।३४।।
प्रमाण पत्र हो जन सेवा का । है सर्वत्र महत्व उसी का ।।
कल का राष्ट्र आज के बच्चे । समझ बनाये उन की तैसे ।।३५।।

पुत्र धन व शिशु संगोपन

गाँव मुख्य धन है सन्तति ही । रक्षा हो तिन चरित्र धन की ।।
इससे बढ़े गाँव की गरिमा । चरित्र सम ही उज्ज्वल महिमा ।।३६।।

(दो) **गाँव चाह जैसा बने, तैसी शिक्षा देय ।**
व्यवस्था उसकी सुजन के, सौंप हाथ में देय ।।३७।।
बचपन ही शिक्षा सही, उमर बढ़े तो त्रास ।
चाहे भी बदले नहीं, इंद्रिय का अभ्यास ।।३८।।

(चौ.) रहत अँगूठा छाप है जोई । झाँसा उस को दे हर कोई ।।
जीवन भर वह कष्ट उठावे । अंधा सरिस न कछु कर पावे ।।३६।।
प्रगति के उसके द्वारा बंद अब । ढ़ोते बोझ आयु बीते सब ।।
किसान होकर भी नहिं जाने । कृषि विद्या की नवीन खोजें ।।४०।।
सुधार औजारों में नहिं हैं । उपज में कोई वृद्धि नहीं है ।।
जैसा कोल्हू बैल घसिटता । जीवन उस का दुख में कटता ।।४१।।
पुत्र पढ़ाये नहीं पिता जो । पाप में उसके भागी है सो ।।
कर्तव्य जनम देने का जैसे । शिक्षा उस से बढ़कर तैसे ।।४२।।
व्यवस्था अपनी न हो पाये । सामाजिक संस्था को सौंपे ।।

किन्तु बिना शिक्षा के उसमें । हीन भावना नहिं आने दें ।।४३।।

(दो.) रखें गोद ही नहिं सदा, शिशुओं को पितु मात ।
शिशु मन्दिर तिन सौंप दें, जो शुभ रक्षक तात ।।४४।।
जनम काम माँ-बाप का, विद्या गुरु का काम ।
करो पुत्र धन देश का, लाड़ से नहिं बेकाम ।।४५।।

(चौ.) अती प्यारे है माता पिता का । पूरा हठ करते शिशुओं का ।
होते अधिक लाड़ से बुद्धू । निपट आलसी हो जस कद्दू ।।४६।।
गुरुजी यह तो नहीं सहेंगे । नहीं शिक्षिकाएं दें चलने ।।
बच्चों को बहलाये किस विधि । मानस शास्त्र में उनकी ही गति ।।४७।।
सब गांव इसलिए साथ में आयें । 'शिशु संरक्षण केंद्र' बनाये ।।
बहन बंधु वह काम संभाले । पहले उचित प्रशिक्षण पा लें ।।४८।।
'विद्याभवन' गाँव में होवें । बालोद्यान विहार बनावें ।।
वहाँ रखें बच्चे बचपन में । संस्कार पड़ें उत्तम सब ही में ।।४६।।
मात पिता को है नहिं फुरसत । जाँय काम पर, होवे दिक्कत ।।
बच्चों की अनदेखी होती । विद्याश्रमहि करे तस पूर्ति ।।५०।।

शिक्षा, शिक्षक एवं छात्र

(दो.) शिक्षक शिक्षित होय कस, शिशु संरक्षण होय ?
करें सो बच्चे किस तरह, काम बताये जोय ? ।।५१।।
व्यसन-बुराई नहिं कहीं, बच्चों में आ जाय ।
गर आवे तुरतहि झिड़क, पालक शिक्षक देय ।।५२।।

(चौ.) अगर नहीं, तो शिक्षा ले कर । धंधा सिर्फ किया शिक्षा कर ।।
खुद तो फंसे, फँसाये औरहि । जन के बच्चे, होवे यह नहिं ।।५३।।
कहे 'काम मेरा शिक्षा का । पूज्य गुरू हूँ मैं बच्चों का' ।।
व्यसनों का अवतार होय पर । पश्चाताप करे नहिं पल भर ।।५४।।
छात्रन सदाचार सिखलावे । बीडी फूंकत दस बज जावे ।।
बात करे सो फिर गरमी से । रेलगाड़ी चलती हो जैसे ।।५५।।
गाँव कि जिम्मेदारी मान कर । करे काम शिक्षक जी भर कर ।।
स्वर्ग पुरी तब गाँव बनेगा । आवश्यक कुछ अन्य न होगा ।।५६।।
घर बाहर जो जो भी चाहे । सोई ज्ञान कौशल मिल जावे ।।
गुरुजन का आशीष फले तब । विकास काम पूरे होवें सब ।।५७।।

जीवन-विकास की शिक्षा के । साधन सब हों सुलभ गाँव में ।।
गाँव आपने की रचना का । सिखाय शोभन आयोजन का ।।५८।।

(दो.) **शाला हो सुन्दर जहाँ, बच्चे पावें ज्ञान ।**
निज हाथों से काम कर, अनुभव होय महान ।।५६।।
सुन्दर गाना बोलना, चुस्त रहन, घर माँहि ।
काम करे अपना स्वयं, शिक्षा ऐसी होइ ।।६०।।

(चौ.) ऐसा करने से हो प्रगति । बालक बनें श्रेष्ठ विद्यार्थी ।।
आगे चल कर वे ही सब ही । सीखें बड़े बड़े उद्यम भी ।।६१।।
शिक्षा हो आरम्भ कार्य से । गणित शास्त्र अध्ययन उसी से ।
शिक्षा सिर्फ, न पढ़ना लिखना । साथ में हाथ का काम होय ना ।।६२।।
इसीलिए पढ़ने के क्रम में । प्रबंध काम का होय साथ में ।।
बालक अपने स्वयं काम कर । जीवन सब का होय स्व-निर्भर ।।६३।।
खास रुचि हो किसी विषय में । पढ़ने देय अंत तक उस में ।।
उसी में आगे शोध कार्य भी । संभव करे असंभव को भी ।।६४।।

(दो.) **शिक्षा जीवन बीच अस, होय पूर्ण संबंध ।**
शुरूहि सर्वांगीण हो, शिक्षा संगति बोध ।।६५।।
जीवन का हर अंग है, शिक्षा बड़ उद्योग ।
काम करें अच्छी तरह, छात्रहि लाज न कोय ।।६६।।

(चौ.) लडका देखत लगे सुशिक्षित । कम करत ही लगे सुदीक्षित ।।
लाज काम की मानो उसमें । नहीं रही हो कभी जनम से ।।६७।।
जुताई, निराई करे खेत की । बउनि उड़ावन भी फसलों की ।।
गोबर आदि उठाने को भी । उत्सुक मन वह दिखे सदा ही ।।६८।।
सभी तरह का उद्यम-धंधा । करने लगता बच्चा कल का ।।
तैयार हो गया पुत्र गाँव का । बढ़े स्वांभिमान मन सब का ।।६६।।
ध्यान इस तरह से बच्चों पर । अबोध अवस्था से हि निरंतर ।।
उससे फिर उत्कर्ष सहज ही । होय गाँव का निश्चित मत ही ।।७०।।
हो विद्यार्जन इसी तरह का । बरस अठारह गर हर युव का ।।
स्थापित हो आदर्श गाँव का ।ऋण उतरे हज़ार पीढ़ी का ।।७१।।
जीवन के जो अंग है सुंदर । सीखें बालक तन्मय होकर ।।
जीवन की गुणवत्ता जैसी । गाँव में चाहे होगी वैसी ।।७२।।
आज के नन्हें नन्हें बालक । तरुण कार्यकर्ता होंगे काल ।।

वे सब अपने उच्च गुणों से । कर्ज गाँव का अदा करेंगे ।।७३।।

(दो.) कहूँ इसलिए ग्राम जन, शिशु धन रखो सहेज ।।
कौन कहे, प्रकटे कहाँ, कैसे रत्न सतेज ? ।।७४।।
प्रभु इच्छा से जन्म है, माता पिता निमित्त ।
गुरु की शिक्षा से फले, गाँव का भाग्य उदात्त ।।७५।।

(चौ.) शिशु-कलियों में इन कोमल सी । छिपे शिवाजी, रवींद्र, तुलसी ।।
प्रकटेंगे होते ही विकसित । महापुरुष समाज में शत-शत ।।७६।।
कितने होंगें सेवा भावी । होगें कितने कला वैभवी ।।
जो निज उद्यम-व्यवसायों से । गाँव सजा दे अपनेपन से ।।७७।।
कारखानें भी लगायें कितने । इतिहासकारहू होंगे कितने ।।
कितने होंगे विमर्श दाता । अपने देहातों में ज्ञाता ।।७८।।
कितने न्यायाधीश बनेंगे । काव्य सृष्टि के ईश बनेंगे ।।
लेंगें फसल खेतमें कितने । नई-नई खोजें अजमाने ।।७९।।
राजनीतिज्ञ भी कितने होंगे । कितने तत्त्वज्ञानी होंगे ।।
खेल-खिलाड़ी होंगे कितने । नाम गाँव का रोशन करने ।।८०।।
होंगे कोई सन्त-उपदेशक । होंगे कई वीर-संरक्षक ।।
कुछ व्यापार निपुण भी नामी । कुछ तो सेवक ही हर कामी ।।८१।।

(दो.) गाँव-समाज ऐसा सजे, सर्व गुणी आदर्श ।
होय कहीं नहिं गाँव में, बिन संस्कार विमर्ष ।।८२।।
चले न किसकी चातुरी, गाँव में गांव का राज ।
सब से बढ़ कर के हमी, हमर गांव सरताज ।।८३।।

(चौ.) सब ही सेवा करें प्रेम से । पावे लाभ गाँव सब जिस से ।।
फिर ऐसी क्या चीज रहेगी । देहातों में जो न मिलेगी? ।।८४।।
उपजे गाँव में ज्ञानेश्वर भी । कौन कमी थी बल-बुद्धि की ?
कृष्ण, महात्मा गांधी जैसे । संचालन सब किया गांव से ।।८५।।
मित्रो! सुनो, करो निश्चय इक । शिक्षित होंय गाँव के बालक ।।
जनम-जनम का ऋण चुक जाये । सभी लोग सुखिया हो जावे ।।८६।।

पिछड़ो को ज्ञान दान पुण्यप्रद!

कोई कहें 'मूर्ख है जाति । बच्चे चतुर होंय केहि भाँति ?
तेज जातियाँ कुछ पहले ही । शिक्षा में हुशियार हैं वेही ।।८७।।
यह कल्पना गलत है भाई! मूल में नहिं है भेद जरा ही ।।

फर्क पड़ा है परम्परा से । वातावरण योग है उस में ।।८८।।
पिता किसी के न्याय मूर्ति हों । चाचा प्राध्यापक सुकीर्ति हों ।।
मामा गायक कथाकार हो । बच्चा क्यों नहिं होशियार हो? ।।८६।।
चारों ओर ही पढ़े लिखे हैं । खाने को मेवा मावा है ।।
घर-बाहर संसर्ग बड़ों का । सहज विकास होय ऐसों का ।।६०।।
बाप लकड़हारा व गड़रिया । चाचा बेचे अँगियाँ-चुडियाँ ।।
मामा है सरकारी नौकर । कहीं सिपाही चपरासी पर ।।६१।।
खाने को है कनकी कोंडा । साथ ढोर-डँगरों का टाँडा ।।
ऐसे में पढ़ धीरे बढ़ता । अचरज इसमें क्यों कर होता ? ।।६२।।

(दो.) उसको उत्तम रहन दो, स्तर तर बढ़ जाय ।
उससे नया समाज तब, सुज्ञों का बन जाय ।।६३।।
हो शिक्षा ही इसलिए, बिन शिक्षा सब व्यर्थ ।
यह समझेंगे जन तभी, हों शिक्षित इक साथ ।।६४।।

(चौ.) नहीं तो अब पुरखों की करनी । सन्तानों को पड़े भुगतनी ।।
बिगड़ी बात न जल्दी सुधरे । दोष मढ़े सब कुल पर दूसरे ।।६५।।
करे पाप एक कुल माँही । भोगे फल पीढ़ी कितनी ही!
यही चल रहा है स्वभाव से । लोगों के भी मनोभाव से ।।६६।।
कलंक धोने विगत काल का । अर्जन करते नये पुण्य का ।।
तभी छूटती बदनामी सो । पीछा करती सदा सदा जो ।।६७।।
कुल में एक सद्गुणी होवें । उसका नाम दसो दिश होवें ।।
पुत्र होय बिगड़ैल बाद जब । कीर्ति मिटत नहिं एकाइक तब ।।६८।।
पूर्व नाम से सबही चलता । बात होय तो नाम उछलता ।।
देखो कीर्तिवान ये कैसे । उपजे खेत कंडुआ जैसे ।।६६।।
अधिक पाप पर होंय जो उसके । बजें नगाड़े दुष्कीर्ति को ।।
पहले की कोई बात न माने । क्या मतलब क्या किया किसी ने ।।१००।।
परंपरा आगे चल सोई । पुत्र-पौत्र गर खास करें नहिं ।।
इहि-लोक की नाम यात्रा का । चलता आया यही तरीका ।।१०१।।
एक उद्धारे इक्कीसहि कुल । एक डुबोये बयालीस कुल ।।
मतलब, जब कुछ विशेष घटता । तभी नाम है नया पलटता ।।१०२।।

(दो.) ब्रह्म कुलज रावण भला, राक्षस उस का वंश ।
विश्वमित्र राजर्षि से, हुए ब्रह्मर्षि विनंत ।।१०३।।

कृति विशेष का मूल्य यह, काम करो सविचार ।
अविरत शिक्षा दे करो, निज कुल ग्रामोद्धार ।।१०४।।

(चौ.) जो भी बालक गरीब जन में । शिक्षा देने शक्ति न जिन में ।।
उन्हें सौंप शासन-जनपद को । पाने दो शिक्षा-संपद को ।।१०५।।
भिखारियों के जो भी बालक । शिक्षा दे सब कर दो लायक ।।
होगा पुण्य गाँव को इससे । अच्छे दिन वे देखें जिससे ।।।१०६।।
धनिक-गरीब भेद नहिं लाओ । बच्चों को आगेहि बढाओ ।।
पढ़वाने बहु विध विद्याएँ । गाँव अधिक धन सदा लगायें ।।१०७।।
शिक्षा में व्यय करो खूब धन । पुरखों के भी नाम दान पुन ।
विद्यालय हों सुन्दर विकसित । होगा गाँव स्वर्गसा निश्चित ।।१०८।।
जब आदर्श छात्रगण होगा । सभी ग्राम-जीवन बदलेगा ।।
कहीं बचेगा नहिं गँवारपन । स्थायी इस पथ से परिवर्तन ।।१०९।।
विद्या वैभव यह बढ जावे । हाथ गाँव के सुभाग्य आवे ।।
कहता तुकड्यादास तत्त्व से । मूल मंत्र यह कभी न भूले ।।११०।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरुकी, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
उन्नीसवें अध्याय में, सर्वोन्नतिप्रद ज्ञान पथ ।
शिक्षा सही जीवन सहित, बालकं बढ़ दें देशरथ ।।१११।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

* * *

भक्तिमती श्री मंजुलादेवी

बीसवाँ अध्याय

महिलोन्नति

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

मातृगौरव व नारी-निषेध ?

(सवै.) आज की संतति देश बने कल, नीव समुन्नति की बस शिक्षा ।
गाँव कि देश बना सकते गुरु, जीवन हो जिन का शुभ नक्शा।।१।।
शिक्षक से भी बड़े शिशुओं पर, हैं उपकार सही जननीं के ।।
गर्भहि से संस्कार करे वह, बालक पै दिल से अति नीके ।।२।।

(चौ.) जिस के कर झूले की डोरी । वहीं उद्धरे दुनिया सारी ।।
माता की यों गायी महिमा । शत-शत गुरुओं से भी गरिमा ।।३।।
मातृ सुभाव पुत्र का गढ़ लें । रहन दीप्ति रत्नों से जड़ लें ।।
सदा तेज पर नारी के ही । निर्भर करती पुरुष बड़ाई ।।४।।
यद्यपि कहते 'पुत्र पिता सम' । पर माता का महत्त्व अनुपम ।।
चरित्र से जो बढ़े पुत्र धन । वह सब मातृ शक्ति के कारण ।।५।।
करता पुरुष काम तो सब ही । बँधा रहे पर घर बाहर ही ।।
घर सलाह ले करें आचरण । तभी शान्ति पाता उस का मन ।।६।।
उत्तम महिला इस में तत्पर । भाव समेत संभाले निज घर ।।
बच्चों को आदर्श बनावे । स्नेह सभी के साथ निभावे ।।७।।
इसीसे कहें 'मातृ देवो भव' । वेद ने किया प्रथम ही गौरव ।।
नर रत्नों की शुचि खदान है । मातृ जाति का श्रेष्ठ मान है ।।८।।
कयाधु थी प्रल्हाद की माई । शिव राजा की देवी जिजाई ।।
कौशल्या, देवकी आदि सब । ग्रंथ वंद्य माताएं दुर्लभ ।।९।।

(दो.) करो उपेक्षित नारी गण, कहते हैं कुछ ग्रंथ ।
वर्जन साधक के लिए, साधनहि पर्यन्त ।।१०।।
दो दृढ़ विरति वियोग से, मुड़े विषय से चित्त ।
निषिद्ध सब इंद्रिय रुचि, कर दी इसी निमित्त ।।११।।

(चौ.) विराग में न विषय निन्दा हो । साधन में न कहीं विपदा हो ।।
निदान नहीं होय कीर्ति में । बिन कह कमी रहइ साधन में ।।१२।।

इंद्रिय विषय दोष दर्शन भी ।देह विभत्सा, नश्वरपन भी ।।
यह वैराग्य हेतु सब वर्णन । नहीं व्यक्ति निन्दा को कारण ।।१३।।
मोहित हो मन जहाँ दौड़ता । साधक उस को शीध्र मोड़ता ।।
बालक के सम 'छी–छी' कह कर । लौटाता, नहिं दोष व्यक्ति पर ।।१४।।
कहा पुरुष से जो नारी प्रति । सो ही मति नारी नर के प्रति ।।
बात कौन यहँ नीची ऊँची? कहता शास्त्र विषय को 'छी–छी' ।।१५।।
'छी–छी' किन्तु सदैव चले गा । तो जीवन रथ ही बिगड़ेगा ।।
थम जाये संसार चक्र ही । निकलेंगे तब हीन मार्ग ही ।।१६।।
इससे कहा उचित विधि सेवन । विश्व न चलता महिला के बिन ।।
नर के करने से क्या होता? भूत निवासहि घर बन जाता ।।१७।।

(दो.) घर का उत्तम काम सब, स्त्री का यह स्वभाव ।
आया–गया, न आपदा, घर रहता सम भाव ।।१८।।
परिचर्या अति कष्ट से, मन से सब ही काम ।
करती निरलस लगन से, सन्महिला अविराम ।।१६।।

(चौ.) पुरुष हृदय चेतना न जितनी । नारी मन गहराई उतनी ।।
कीर्ति भाव गंगा की उस की । कह न सकूँ मैं पावन यश की ।।२०।।
सर्वांगीणी एकतानता । नारी में एकात्म, अवस्था ।।
वह माँ जो निश्चय कर लेगी । सर्वथैव कर दिखलायेगी ।।२१।।
नानाविध है जीव जगत में । सब के ज्ञात स्वभाव प्रकट में ।।
पर वात्सल्य भाव का गौरव । माता के सम कहीं न संभव ।।२२।।
निर्माण करी प्रभु ने यह अवनी । इसमें जीव जातियाँ कितनी ।।
स्नेह दीप्ति पर माँ के जैसी । मिलती नहीं कहीं भी ऐसी ।।२३।।
स्वभाव कर्म जो माता का है। जग में मानव धर्म वही है ।।
उत्कट प्रेम मातु वत् जैसी । श्रद्धा प्रभु में जन की तैसी ।।२४।।
लिया रूप सन्तों ने माँ का । पाये तभी देवपन बाँका ।
दौड़े ले बहु विधि साधन को । नहिं देवत्व मिला है उनको ।।२५।।

(दो.) स्वतः सिद्ध वह मातृपन, स्त्री सहजहि रूप ।
उसके पूर्ण विकास की, हो शिक्षा अनुरूप ।।२६।।
अद्भुत नारी दक्षता, जहाँ विफल नर–नैन ।
बच्चे उस से ज्ञान लें, तब जब में सुख चैन ।।२७।।

नारी–विशेषता व त्याग मर्यादा

(चौ.) पुरुष दृष्टि मोटी व्यावहारिक । नारी दक्ष और करुणात्मक ।।
मिले स्वभाव जहाँ दोनों का । जगत् बने बैकुण्ठ अनोखा ।।२८।।
उत्तम नर की उत्तम नारी । तिन संसार स्वर्ग सम होई ।।
सदा पुरुष से आगे जौ भर । रहती महिला कुछ तो ऊपर ।।२६।।
होता हे नर चिन्ताकुल जब । विमर्श देतीं गृह लक्ष्मी तब ।।
कितने ही घर अस मैं देखा । जब आया अवसर जाने का ।।३०।।
किया निरीक्षण जिस घर का भी । वहीं सरसता अनुभव आई ।।
महिलाओं में अधिक चातुरी । देखी मैंने परहितकारी ।।३१।।
समझहु मानव के स्वभाव की । अवसर पर होती है अनोखी ।।
अनुमान और दृष्टि आगे की । हो अनुभूति सहज नारी की ।।३२।।
स्त्रियों में भक्ति और ज्ञान भी । उन में संयम अरु विवेक भी ।।
संसार चक्र उस की इच्छा से । पूरा चले न संशय इस में ।।३३।।
कुछ भी नहीं पुरुष का ऐसा । कहने का मतलब नहिं तैसा ।।
सहज स्वभाव है जग में जोई । कहा विस्तार में मैने सोई ।।३४।।

(दो.) यह जो भी मैं ने कहा, भाव रूप है सोइ ।
नहिं अनुभव संसार के, सुख दुख कैसे मोहि ।।३५।।
नारी नर सब जगत में, माय बाप मैं जान ।
व्यवहार दृष्टि से समझ जो, सोई बोला जान ।।३६।।

(चौ.) समझें नारी विषय इक बाता । विविध रूप तस, कस संगतता ।।
कहाँ है उस से दूरी रखना । कहाँ मात सम पाँव पूजना ।।३७।।
संवाद कहाँ हो मित्र भाव से । देवी समझ कहाँ तस पूजे ।।
समझें किसे कहाँ जस वैरी । स्थानहु पात्र काल अनुसारी ।।३८।।
तत्त्व यही समझे न पुरुष जो । यदि भागे जंगल में भी सो ।।
ऐसे स्वांग करे क्या होवे । गर परिवर्तन मन नहिं होवे ।।३६।।
जिधर किधर भी वे दौडेंगे । नारी दिखेगी पीछे आगे ।।
अंदर बाहर का यह घेरा । है माया का खेल घनेरा ।।४०।।
केवल वृत्ति शुद्धि के हित ही । तत्त्व से स्त्री निंदा की थी ।।
दोष धरे माता पर कोई । पाप जोइ अस करै न कोई ।।४१।।
ले वैराग्य छोड़ नारी संग । ज्ञान साधन का अंतिम पग ।।
उस के बाद में संबोधन ही । बदले उस का सोउ मात ही ।।४२।।

स्त्री शक्ति की उपेक्षा में देश दुर्गति ?

(दो.) पर एकांगी होइ जो करइ अनास्था नारी ।
दुर्गति इससे ही हुई, समाज जीवन माँहि ।।४३।।
हीन-दीन नारी बने, बढ़ी प्रजा उस भाँति ।
क्यों न पाशवी जग बने ? पशुवत् नारी जाति ।।४४।।

(चौ.) भोग्य वस्तु ही समझ विलासी । रखते सजातीय गुड़िया सी ।।
जिस से घर घर कलि-मति पैठी । मातृ भूमि अबलां बन बैठी ।।४५।।
कहते-'नारी गुलाम ही है । उद्धरने हक उसे नहीं है ।।
स्वार्थ में अंधो की ये बातें । करते पण्डित भी न शोभते ।।४६।।
कहें नारी कार्य में रोड़ा । रोके उन्नति पथ सो उस का ।।
राह में ऐसे लोग जान कर । स्वयं खड़े कर लेते पत्थर ।।४७।।
दोनों ले संस्कार जनमते । निज प्रयत्न से उन्नति करते ।।
नारी के यह सत्य हाथ में । उस का है उद्धार अन्त में ।।४८।।
क्या देवों ने तजीं देवियाँ ? ऋषियन त्यागी कहाँ पत्नियाँ ? ।।
हुअी नारियाँ क्या न साध्विया । क्या सब कहे पुराण पोथियाँ ।।४६।।
स्त्री ने क्या लिखे वेद नहिं । किया है क्या तिन ब्रह्म वाद नहिं ?
नाना विद्या; कला; गुणों में । प्रवीण क्या न हुई स्वजनों में ? ।।५०।।
क्या न युद्ध में लड़ीं अंगना ? क्या पति सुत को दी न प्रेरणा ?
किये नहीं क्या प्राण निछावर । नारी ने सम्मान की खातिर ।।५१।।
फूलों से मृदु कई नारियाँ । बनी आन में राख ढेरियाँ ।।
करें प्रशंसा उनकी जितनी । थोड़ी ही होगी सब कथनी ।।५२।।

(दो.) नारी सम नहिं मोहनी, विरागिणी नहिं और ।
नारी सी कोमल नहीं, रण चण्डिका कठोर ।।५३।।
किधर ध्यान उस का मुड़े ? कौन पड़े संस्कार ?
यह संगति के हाथ है, जो सीखे तैयार ।।५४।।

(चौ.) विषय मोह संगति गर कर ली । हो जायेगी बौरी-पगली ।।
यदि वैराग तेज भर जावे । तब गुण्डों के हाथ न आवे ।।५५।।
जान देय नारी खुद अपनी । लालच भय से भ्रष्ट न होई ।।
देवे ऐसे विचार सुंदर । धीर पुरुष नारी को हित कर ।।५६।।
तैसहि वातावरण बनाये । संगति, शिक्षा और कलाए ।।

वैसे ही सब रिश्ते नाते । नारी के प्रति रहे निभाते ।।५७।।
संस्कार पड़ें बचपन से ही । उत्तम रहनी रीति रस्म की ।।
कार्य कुशल अरु जीवन जागृत । शिक्षा दे कर, करें समुन्नत ।।५८।।
शारीरिक शिक्षणहु लड़कियाँ । लड़कों से भी मार बाजियाँ ।।
क्या मजाल खल हाथ बढ़ा दें । छक्के गुण्डों के भी छुड़ा दें ।।५९।।
फिर क्यों हो नारी को परदा ? परावलम्बन की वह विपदा ।।
नारी सदा आत्म बल से ही । हुई समय पर असुर मर्दिनी ।।६०।।

समाज द्वारा अन्याय

(दो.) भेद मगर इसमें किया, बढ़ा लिया वर पक्ष ।
स्त्री जीवन नीरस बना, किया स्वारथी दक्ष ।।६१।।
बाँधी घर में ब्याह कर, बातहु की नहिं छूट ?।
'चूल्ह झूल की चाकरी, कहते यही अटूट ।।६२।।

(चौ.) कई कैद कर रखते घर में । दिखे नहीं बाहर जीवन में ।।
सूरज का गर दर्शन कर ले । मार मार सीधी कर डालें ।।६३।।
बेटी छिप कर रहें हमेशा । बेटा देखें गाँव तमाशा ।।
दुष्ट रूढियाँ हैं ये सब ही । हमें न जँचती तोड़ो अब ही ।।६४।।
जीवन उस का तुझ से सच्चा । समाज में भाषण दे अच्छा ।।
तुझे सुमति भी वह ही देवे । फिर पिछड़ी वह क्यों कर होवे? ।।६५।।
फिर भी रखें दबा कर उसको । इस युग में सोहे न किसी को ।।
पति पत्नी के हक समान हैं । यही हमारा संविधान है ।।६६।।
ईश्वर ने यह सूत्र बनाया । सम पवित्र दोउ को बिठाया ।।
लड़कों नेहि किया क्या ऐसा? जग में आगे रहे हमेशा ! ।।६७।।
निज निर्वाह राह कोई नहिं । विधवा होय तो फिर विवाह नहिं ।।
इज्जत के भी नियम अलग हैं । भेद बुद्धि यह किस कारण है?।।६८।।

(दो.) विधवा कोई होय जो, कर मुंडन विद्रूप ?
समझ न आवे कस सधे, व्रत सन्यस्त अनूप ?।।६९।।
अपनी दुर्बलता छिपा, थोपि विडम्बन अन्य ।
अमानुषी दुष्टता यह, है सो पाप जघन्य ।।७०।।

(चौ.) खुद सन्यास चाह विधवा जो । पठाय वन आश्रम में उस को ।
सेवा शिविरों में स्वेच्छा से । करने दो अभ्यास खुशी से ।।७१।।

हम सब खायें पहनें सुंदर । विधवा सहती दुःख जन्म भर ।।
इस चिन्ता से भली चिता थी । जो पति से सँग ही जल पाती ।।७२।।
विधवा रखें उदास भावना । करें सदा परमार्थ-साधना ।।
पर विरूप करें अपने को । कौन लाभ है इस में किस को ? ।।७३।।
समझे विधवा कोहि अमंगल । कन्या जन्म अभागा केवल ।।
समझे उम्र बढ़ी तो हीनहि । समाज की यह दुष्ट कल्पना ।।७४।।
पुरुष ब्रह्मचारी कहलावे । क्यों न कुमारी भी यश पावे ?
जहाँ काहीं अधिकार न्यूनता । सभी मिटा दें हम मलीनता ।।७५।।
नारी को सन्तान नियोजन । और पुरुष को नहिं कुछ बंधन ।।
ऐसा कहना निपट मूर्खता । मैं जानूँ यह जुल्म सर्वथा ।।७६।।

(दो.) नियम हो सब के लिए, उभय रखें अभ्यास ।
जन जन का दुख जान कर, करें विचार विकास ।।७७।।
जैसा आदर पुरुष का, नारिहु तस व्यवहार ।
होय वरन उन से अधिक, करे समाज विचार ।।७८।।

(चौ.) समाज ने की भूल यहीं पर । इसे बढ़ाया उसे दबा कर ।।
कई जगह इसका कडुआ फल । पड़ा भुगतान सब को केवल ।।७९।।
किन्तु उधर नहिं आज ध्यान है । शिक्षा सुलभ न कन्या को है ।।
घास हरी बढ़ने दे पशु हित । इसी लीक पर समाज स्थित ।।८०।।
अब इसमें हम उचित मोड़ दें । शिक्षा सुलभ हर जगह कर दें ।।
नारी का जीवन जब सुन्दर । तब ही ग्राम राज्य सम मंदिर ।।८१।।

यथोचित स्त्री शिक्षा व नारी संगठन

आगे भूलें सुजन यह नहीं । गाँव में सुविधा होय सब कही ।।
जिस से पुरुषों के समान ही । प्रगति होय महिलाओं की भी ।।८२।।
तभी दिखेगा गाँव सुशोभित । नर-नारी दो विभाग उन्नत ।।
विकास का जब कार्य बढ़ेगा । स्वर्ग गाँव में ही उतरेगा ।।८३।।
नारी के आंतरिक गुणों में । हो विशेष समृद्धि शिक्षा से ।।
अस आयोजन शुरु जो होई । भावी जग परिवर्तित होई ।।८४।।
महिलाओं की उच्चतम शिक्षा । शिक्षा में जीवन की शिक्षा ।।
जीवन में सम्मानित जीवन । दया शांति ममता भी पूरन ।।८५।।
प्रिया समाज का विकास जिस को । सो सिखलावें कन्याओं को ।।

लिखना पढ़ना बहुत जरूरी । लड़की को शिक्षा दो पूरी ।।८६।।
घर की उत्तम रहन सिखाओ । गायन, भाषण,चलन सिखाओ ।।
घर को देख सहज ही भासे । गुण घर की महिला के जिससे ।।८७।।
कन्याओं को रखना उत्तम । मातृ पितृ कर्तव्य महत्तम ।।
जिस से घर सन्तानों से ही । होय राष्ट्र की उन्नति सब ही ।।८८।।

(दो.) **कारीगर यंत्रज्ञ भी, पढ़ कर बनते पुत्र ।**
कन्या-शिक्षा में अभी, बहुत कमी सर्वत्र ।।८९।।
ऐसा हो न समाज अब, दोऊ पढ़ें समान ।
स्यानहु दोइ समान हों, दो सहयोगी जान ।।९०।।

(चौ.) विविध ज्ञान ऊँचा लड़कों को । वैसा ही हो कन्याओं को ।।
उनकी अवहेलना नहीं हो । समाज की अब दृष्टि सही हो ।।९१।।
कन्या शिक्षा चले विलग ही । नर नारी उद्योग अलग ही ।।
दोनों जहाँ कहीं मिल पाते । जटिल सवाल खड़े हो जाते ।।९२।।
बिचार में जो जो भी आवे । उसे योजना बद्ध करावें ।।
बिना विवेक मोह पथ जाते । वे पीछे फिर धोखा खाते ।।९३।।
इससे समझ बूझ शिक्षा दो । दो रथ चक्र समान बना दो ।।
शक्ति युक्ति से भर जायेगा । सुंदर अपना गाँव बनेगा ।।९४।।
किंतु सदैव अलग नर नारी । रखें अगर दिखला भय भारी ।।
पर स्वभाव को क्या कर सकते ? जब संयोग से दोनों मिलते ।।९५।।
नारी-नर की विकृत कल्पना । भरे उभय में भ्रान्त भावना ।।
शुभ संबंध बहन भाई का । बढ़े इसीसे यश हित सब का ।।९६।।
शिक्षा में हो यही व्यवस्था । बढ़े परस्पर नहीं अनास्था ।
शिक्षा नैतिकता दोनों ही । इससे हो अनन्य पूरक भी ।।९७।।
भावना दोनों पक्षों की जब । समझेंगे, नहिं हो अनर्थ तब ।।
रखो अन्यथा पिंजरों में भी ।। अलग, कशिश भरमावे तो भी ।।९८।।

(दो.) **सहपाठीत्व न वह बुरा, हो जब नैतिक भान ।**
शिक्षा में जागृति रखें, नेता पिता सुजान ।।९९।।
संभाल कर तन मन बना, कन्या को विद्वान ।
शौर्य रहे तस अंग में, रखने अपनी आन ।।१००।।

(चौ.) पतन पुरुष का है जब होता । सहन कामना नहिं कर पाता ।।
ऐसी स्थिति टाले पूरी । महिला संघटना है जरूरी ।।१०१।।
ज्यों युवकों की सुगठित सेना । महिलाओं की त्यों संघटना ।।
निज सुख दुःख भाव प्रकटावें । शुभ सम्मेलन-सभा बुलावें ।।१०२।।
सभागार जैसा पुरुषों का । वैसा प्रगति भवन तिरियों का ।
कथा, प्रार्थना, सभा आदि के । चले उपक्रम महिलाओं के ।।१०३।।
मिटाये जाति भाव आदिक भी । करें इकट्ठी महिला सब ही ।।
कुंकुम, तिल, सहभोजहु देवे । दुर्गा शरदोत्सवहु मनावें ।।१०४।।
उत्सव साध्वी-पतिव्रता के । पर्व जयन्ति पुण्यतिथि उन के ।।
वाचनालय महिला विभाग के । चलाये जहँ तहँ सोच समझ के ।।१०५।।
स्वतंत्र मेले महिलाओं के । प्रदर्शन होय कला कौशल के ।।
प्रतिकार करें किस तरह कहाँ पर । सब जानें इक इक अरु मिल कर ।।१०६।।

(दो.) मैं श्रोता गण से कहूँ, जो जो सुख नर पाय ।
नारी पावे सम वही, स्वतंत्रता सदुपाय ।।१०७।।
सब सुविधाएँ पुरुष को, नारी व्यथा समस्त ।।
कौनं शास्त्र अब यों कहें ? फेंको कर दो ध्वस्त ।।१०८।।

(चौ.) बढ़ा पुरुष ही उन्नति पथ पर । महिला को कुछ ज्ञान नहीं पर ।।
हुआ गाँव पूरा एकांगी । निगति त्रास बस यही बानगी ।।१०९।।
जीवन-रथ के पहिये हैं दो । इक सम कर मजबूत बनाओ ।।
घर-संसार की गाड़ी तब ही । सुख से बढ़े ग्राम जीवन की ।।११०।।
आदर्श मात-पिता के बच्चे । निश्चय ही आदर्श बनेंगे ।।
वे बैकुंठ बना दें भारत । कहता तुकड्या, यह सीधा पथ ।।१११।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरुकी, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
इस बीसवें अध्याय में, नारी-महत्ता हैं कही ।
ग्रामोद्धरण महिलोन्नति में, नीव दुनिया की यही ।।११२।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

ॐ ॐ

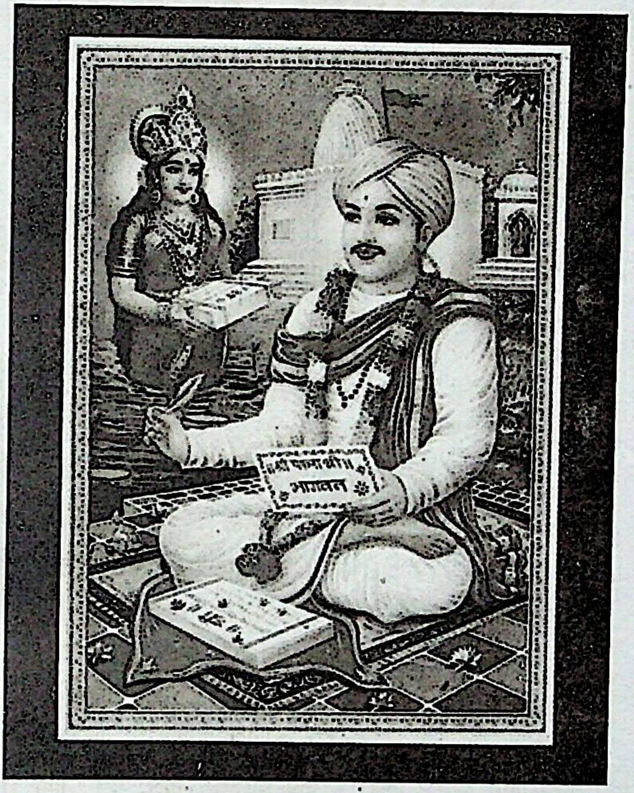

श्री सन्त एकनाथ महाराज

इक्कीसवाँ अध्याय

वैवाहिक-जीवन

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

रूढ विवाह संस्कार व आवश्यक विचार स्वातंत्र्य

(मनहरण) *ईश्वर की इच्छा पूर्ति दो ही घटकों से होती,*
चलाते हैं, सृष्टि चक्र महिला-पुरुष ही ।।१।।
चले जग का प्रवाह, प्रकृति गुण निर्वाह,
इसी से की धर्मज्ञों ने ब्याह-योजना सही ।।२।।
नारी-नर दो पहिये, परस्पर-पोषक ये,
ठीक चले भव-रथ, ग्राम हो आदर्श ही ।।३।।
किन्तु हुई है उपेक्षा, रूढि बनी ब्याह-दीक्षा,
यहीं से समाज दुःख प्रकटे सहस्र ही ।।४।।

(चौ.) पुरुषार्थहु मित विवाह-जीवन । समाज स्थिरता विवाह साधन ।।
बढ़ा किन्तु अज्ञान प्रलोभन । भइ समाज में भारी टूटन ।।५।।
कितनी ही कन्याएँ सुंदर । रही कुँवारी दहेज के डर ।।
कई जातियों में लड़कों की । हुई यही गति धन हीनों की ।।६।।
ऐसी बुरी प्रथा के कारण । बढ़े चले व्यभिचार दिनों दिन ।।
महा पाप जो इस रू खाते । हैं सब समाज के ही माथे ।।७।।
पिता लगा देते हैं शादी । देख प्रतिष्ठा, कुल, धन आदि ।।
पहले नहीं पूछते तिल भर । राजी हैं या नहीं, वधू वर ।।८।।
भिन्न सुभावों के दो प्राणी । बिसरा, बाँध करे मनमानी ।।
कैसे रुचि कर बने जिंदगी ? जब दोनों की नहीं, पसंदी ।।९।।

(दो.) रख न मान निज बड़न का, उजाड़ लें संसार ।
चाह बड़े बूढ़े रखें, क्या ऐसी बेकार ? ।।१०।।
विवाह पूर्व निहार लें, स्वयं वधू वर ठीक ।
विचार का स्वातंत्र्य दो, दोनों को निर्भीक ।।११।।

(चौ.) पिता देख ले बात एक ही । लगन् करे सो अंध न होई ।।
आगे चल कर पछतावे का । रहे न कोई कारण, धोखा ।।१२।।

दोनों एक भाव से बरतें । घर जीवन को सुख से भरते ।।१३।।
मेल विचारों में दोनों के । कार्य बढ़े सब विकास पा के ।।
अमित उमंग-शक्ति दोनों की । काम करे सेवा के जो भी ।।१४।।
उत्तम रहनी, उत्तम भाषण । शुभ सुंदरता, सात्विक भूषण ।।
सम विचार देवता तुल्य ही । शोभित हो चमकें घर माँही ।।१५।।
विवेक बिन जो भी करना फिर । होता वह लज्जास्पद आखिर ।।
बीते जुग की यही शिकायत । सुनते आये हैं हम दुर्गत ।।१६।।
की शादी गर भोग भाव से । चले गृहस्थी अंधेपन से ।।
साल भरे में ही भ्रम टूटे । विस्मित दोनों पथ जनु भूले ।।१७।।
एक दूसरे से नहिं बोले । संशय दोनों को मथ डाले ।।
पति-पत्नी संसार कहाँ का ? मिले यातना भोग वला का ।।१८।।
विषय विकार विवश शादी की । पहले की पहिचान नहीं थी ।।
इस कारण जीवन दोनों का । व्यर्थ हुआ है सब कुछ उन का ।।१६।।

(दो.) **ब्याह सिर्फ भोगार्थ ही, यह तो बड़ा विचित्र ।**
एक ठौर पशु रख दिये, क्या हित होगा मित्र? ।।२०।।
मानव जहँ एकत्र हों, मुट्ठी तिन सुख-स्वर्ग ।
निखरे तिन लावण्य भी, ऐसे सुख संयोग ।।२१।।

संतान धन, संमिश्र ब्याह, प्रौढ़ विवाह

(चौ.) होते हैं कुत्तों के बच्चे । पशुवत् महज शरीर भोग से ।।
गिरे पड़े रहते हैं वे सब । पिल्ले गली सड़क पर बेढ़ब ।।२२।।
मानव का तो वैसा नहिं है । जिम्मेदारी से रहना है ।।
भली एक सन्तान कामकी । चहुँ दिसि फैले कीर्ति नाम की ।।२३।।
होय देश मे भाँति भाँति धन । शिल्प विभव, वन धनहु ज्ञान धन ।।
द्रव्य-धन अरु खदान भी, गोधन । मूल्यवान सब उन्नति साधन ।।२४।।
सभी धनों में धन सुपुत्र-धन । करें राष्ट्र-गौरव संवर्धन ।।
इसीलिए वर-वधू खोज कर । ब्याह करें सब भाँति सोच कर ।।२५।।
मरियल पुत्र अन्यथा होवे । वंश घराना पूरा डूबे ।।
करे देश का नाम कलंकित । नहिं हो ऐसा सब का अनहित ।।२६।।
बढ़िया बीज उर्वरा भू ले । फिर तरु बढ़े गगन को छूले ।।

ऐसी ही सन्तान जनम ले । भीम सरिस उस का बल होवे ।।२७।।
अस सन्तान वंश चमका दे । इक्कीसों कुल-नाम जगा दे ।।
सुकर्तव्य से करे विभूषित । स्वदेश को हर भाँति समुन्नत ।।२८।।
पर पुत्रों की हो मर्यादा । स्वदेश में नहिं बढ़े आपदा ।।
शरीर-संपदा है गृहस्थ की । नहीं गँवा दें आभा उस की ।।२९।।

(दो.) लहू निरोगी, उचित गुण, शीलवान सन्तान ।
नहीं जाति-कुल-गोत्र पर, ये निर्भर सब जान ।।३०।।
भिन्न जाति के वर-वधू, विवाह प्रवण सुजान ।
अवश्य दो सम्मति उन्हें, यदि सुविचार समान ।।३१।।

(चौ.) गुण ही गुण की ओर दौड़ते । शास्त्र पुराणों में हम पढ़ते ।।
'बिगड़े' अन्तर्जाति ब्याह से' । व्यर्थ कथन मेरी निगाह से ।।३२।।
अन्तर्जाति विवाह न ऐसे । मढ़ लें गले बिना इच्छा से ।।
दो अवसर पूरे विचार को । प्रसन्न मन हो, लें दायित्व को ।।३३।।
जीवन के दो संग्रामी गर । हें 'करेंगे यही ब्याह हम' ।।
अटल रहें सुविवेकी प्रेमी । बिघ्न बीच डाले क्यों कोई ? ।।३४।।
गुण अधार विवाह कितनों ने । किये कृष्ण, अर्जुनहु आदि ने ।।
हुए प्रयोग न जाने कितने । तरह तरह के ब्याह रचाने ।।३५।।
जाति भिन्न पर गुण समान की । कहीं कसौटी वीर शूर की ।।
देश जमातों बीच दुश्मनी । मिटन हेतु रचना विवाह की ।।३६।।

विवाह में अनेक अनिष्ट रूढ़ियाँ

(दो.) तात्त्विक ब्याह अनेक अस, पर कुछ असुर विवाह ।
कई कारणें से जहाँ, जबरन होय विवाह ।।३७।।
ऐसी बातें छोड़ दें, करें न बचपन ब्याह ।
सोच-समझ कर ही रचें, शुभ संस्कार विवाह ।।३८।।

(चौ.) खुशी बड़ी कुछ मात पिता को । तीन बरस की मुन्नी देखो ।।
अथवा हो वह तीन मास की ! कर देते विवाह अविवेकी ।।३९।।
होतें जब वर-वधू सयाने । क्या व्यवहार मानवी जाने ?
रूढ़ि की वेदी पर बलि होते । दोनों प्राणी वे अनचीते ।।४०।।
आगे मिले न एक एक से । साँप-नेवला बने टेक से ।।

फिर पंचायत, नोटिस, कोरट । इसमें जीवन सभी सफाचट ।।४१।।
कई पुत्रियाँ विधवा होती । बचपन मे पति को खो देती ।।
आगे उनकी बढ़े फजीहत । ब्याह बिना जीवन असुरक्षित ।।४२।।
कहती रूढ़ि 'न फिर विवाह कर' । मन बावरा संभाले क्यों कर ?
लुक छिप पापचरण करे गर । होवे वह तो दुख का सागर ।।४३।।
बुरी रीतियाँ हैं ऐसी जो । त्यागो हाथों हाथ सभी को ।।
समाज नियमों का कालोचित । नव निर्माण करो अब निश्चित ।।४४।।

(दो.) **विधवा चाहे ब्याह जो, बडों को देय बताय ।**
जीव-धर्म को समझ कर, करें सो ब्याह उपाय ।।४५।।
जिस विधवा को चाह नहिं, छले उसे नहिं कोइ ।
मान सती संन्यासिनी, समाज सुरक्षा देइ ।।४६।।

(चौ.) यों चलने दो न्याय भाव से । मानव के प्राकृत स्वभाव से ।।
तभी हमें 'मानव' कहलाना । शोभा देगा, भूल न जाना ।।४७।।
कई पिता शादी कर देते । पर मनमाना दहेज लेते ।।
नहीं मेल बेमेल देखते । नजरें बस धन पर ही रखते ।।४८।।
कई नराधम ऐसे होते । अनाचार धन खातिर करते ।।
बूढ़ा हो या हो रोगी वर । देते वधू बालिका सुंदर ।।४९।।
लड़के-लड़की का ले पैसा । जीवन में भर देय निराशा ।।
भला प्रेम के माला कैसे । पड़ सकती हे गले मोल से ? ।।५०।।
लड़का-लड़की बोल न सकते । अपने मन की बातहि खुल के ।।
पर बेजोड़ विवाह रचाते । हम तो उन्हें कसाई कहते ।।५१।।
ऐसी जो जो मूढ़ रीतियाँ । उखाड़ फेंको वे प्रवृतियाँ ।।
दिल में प्रेम, सुपावन जीवन । समझो उसको ही अक्षय धन ।।५२।।
पैसा ले लड़का लड़की का । निषेध कर दे समाज उस का ।।
सभी दुराग्रह अस लोगों के । तभी खतम होंगे निश्चय से ।।५३।।
नहीं दहेज चढ़ावा कारण । बने कहीं मरघट जस जीवन ।।
लड़की लड़के कितने आखिर । राहत खोजत आत्मघात कर ।।५४।।
कितनी भाग घरों से जातीं । जन जीवन को गंदला करतीं ।।
तब भी नहिं तैयार सयाने । पैसे का वह लोभ त्यागने ।।५५।।
गाँव न इसे सुधारे जब तक । पाप-पहाड़ बढ़ेगे तब तक ।।

पूरा गाँव पाप का भागी । सब समझें तो पाप सिराही ।।५६।।

(दो.) बालिग कन्या-सुत जहाँ, शादी को तैयार ।
कुछ घर करते आपसी, 'अलट-पलट' व्यवहार ।।५७।।
मेल वधू वर में न कुछ, पर निज सुविधा देख ।
गाड़ी में देते जुता, माता पिता अनेक ।।५८।।

(चौ.) फिर आपस में झगड़े होते । बहू मायके नहीं भेजते ।।
अथवा करें त्याग दुल्हन का । नाश करे उसके जीवन का ।।५९।।
मान के खातिर कोई अपने । अत्याचार बहू पर ढ़ाते ।।
ऐसी कितनी बुरी प्रथाएँ । बढ़ी गाँव में, कौन बताये ? ।।६०।।
कई जातियों नें है परदा । मानो कांजी हौस का धंदा ।।
इससे पैदा होते झंझट । ब्याह बाद भी आते संकट ।।६१।।
देखी नहीं ठीक से लड़की । जब देखी तो निकली भेंडी ।।
कहते फिर यह तोड़ो शादी । दो तलाक, कर दो बरबादी ।।६२।।
परदे की इस बुरी प्रथा ने । किये सयानें भी दीवाने ।।
मेले में पति पीछे भूली । पड़ी हाथ गुण्डों के भोली ।।६३।।
दुर्जन कितनी भगा औरतें । बुरकों में ले जाय छिपाके ।।
किन्तु अभी भी नहिं खुल पाती । समाज की आँखें भरमाती ।।६४।।
परदा प्रथा दुखद बहु भांति । बड़े सामने बहू न जाती ।।
कर नहिं पायें इस से कितनी । सेवा अपने रोगी पति की ।।६५।।

(दो.) मेटो व्यथा समाज की , इन सब रूढ़िन तोड़ ।
टिकर दोष अन्याय का, एक के सिर नहिं फोड़ ।।६६।।
कई चढाते पुत्र को, कहते 'पुरुष स्वतंत्र' ।
मार कष्ट सहती बहू, चला आसुरी तंत्र ।।६७।।

(चौ.) हिमायती कन्या के कोई । 'हूँ' कहते घर करें चढ़ाई ।।
सीखें ऐसी गलत राह की । कारण घर में दुख बढ़ने की ।।६८।।
दंपति घर में घुले-मिले हैं । तुले मान पर किन्तु बड़े हैं ।।
रोक, विरोध, तलाक अकारण । उजाड़ते दोनों का जीवन ।।६९।।
कोई उसे खींच ले जाते । कोई नहिं ससुराल भेजते ।।
घर दामाद न आने देते । तमाशा सो जीवनहि बनाते ।।७०।।

विवाह पूर्व कुछ दोष छिपाते । जो आगे सब खुलते जाते ।।
फिर आजीवन कष्ट यातना । फल सब को ही पड़े भुगतना ।।७१।।
डींग हाँकते अपनी कोई । भेंट की खातिर रूठे कोई ।।
समधी हो संबंध न जाने । मिले न सुविधा लगत सताने ।।७२।।
लोभ किसी को है गहनों का । मूल्य न आँके भले गुणों का ।।
हो शिकार नकली वैभव का । नर्क बने जीवन कन्या का ।।७३।।
विवाह बजार में लड़का लड़की । शिक्षा, रूप, नौकरी उनकी ।।
कम ज्यादा का सौदा होता । जीवन मूल्य न कोइ जानता ।।७४।।
कई दलाल विवाह के होते । उसके बल पर मौज उड़ाते ।।
वर वधुओं के हलाल जीवन । करते हैं निज-स्वारथ कारण ।।७५।।
'कन्या बिके' यही कुछ तकते । नीति-अनीति ताक पर रखते ।।
ऐसी दुष्ट रूढ़ियों ने ही । लोक दशा लाचार बनाई ।।७६।।

(दो.) ज्योतिषि को दे दक्षिणा, गुण लेवें बढवाइ ।
विकट रूप पाखण्ड लें, नया नाम रखबाइ ।।७७।।

आदर्श विवाह पद्धति

ग्रह गुण देखत गगन के, जगत् दुराग्रह नाहिं ।
जीवन-विग्रह बढ़ई जस, दिखे सोउ तिन नाहिं ।।७८।।

(चौ.) कहते हैं 'वर-वधू सुलक्षण । मिलते इनके छत्तीसों गुण' ।।
मिलन मगर छत्तीसा होता । जीवन की बरबादी करता ।।७९।।
वधू और वर के उत्तम गुण । सही परस्पर के आभूषण ।।
उन बिन वैभवशाली शादी । घोर अमंगल, है बरबादी ।।८०।।
कहीं ब्याह है एक प्रदर्शन । पागल बन कर उछालते धन ।।
ऐसी रीति न उपयोगी जब । कोई क्यों आचरे उसे तब ।।८१।।
नेगचार अनगिनत ब्याह के । जीजा, बहन और मामा के ।।
बरात के हुरदंग तमाशे । कहें ब्याह हम इनको कैसे ? ।।८२।।
अस्त व्यस्तता और धांधली । दौड़ धूप, रस्में खर्चीली ।।
इसे कहें हम 'कार्य अमंगल' । व्यय पैसे का पूरा निष्फल ।।८३।।
करते कर्ज ब्याह के खातिर । उसका ब्याज चुकाय जन्म भर ।।
बने ब्याह से कोइ कलंदर । कौन देव कह गया धुरंधर ? ।।८४।।

(दो.) चार-पाँच दिन लग्न हो, उसमें नाना विघ्न ।
जान बूझ कर क्यों भला, मोल लेंय अपमान ।।८५।।
कितनी भी हों दिक्कतें, पर 'तिथि' हो संपन्न ।
वृत्ति व्यर्थ यह क्यों रखें, रूढ़ि-बद्ध अक्षुण्ण ? ।।८६।।

(चौ.) प्रसन्न हैं ऋतु और वायु जल । विवाह का वह मुहूर्त मंगल ।।
बाकी हैं सब फालतु बातें । मैं कहता क्यों झंझट पालें ? ।।८७।।
दिन जो सुविधा का सुंदर हो । सब अनुकूल हवा पानी हो ।।
सब के लिए समय हो सुखकर । ठीक वही तिथि मानो बेहतर ।।८८।।
विशाल मण्डप में न करो व्यय । निसर्ग का हो दृश्य निरामय ।।
या मंदिर का सुघड़ सभा ग्रह । करें सभी संपन्न ब्याह तँह ।।८९।।
समय, संपदा और परिश्रम । नेम करें अरु बचाय सब हम ।।
तजो जाति कुल वैभव का भ्रम । महत्त्व दो सुगुणों को उत्तम ।।९०।।
सभा स्थान सुंदर बनवा लो । सुचारुता से लोग बिठालो ।।
उच्चासन वर वधू विराजित । सूचक करे सूचना, स्वागत ।।९१।।
देवें वधू और वर परिचय । बतलायें सत्कार्य सुनिश्चय ।।
फिर मंगल अष्टक को गा कर । कार्य साध लें मंगल हित क· ।।९२।।
विवाह तत्व मंगल अष्टक में । होय बोध सही उपदेश में ।।
नाटकीयता कोइ अपावन । अपने नहिं दें अवसर पावन ।।९३।

(दो.) हो पवित्र मंडप सभा, धूम्रपान नहिं होय ।
ब्याह धर्म संस्कार कर, साक्षी अग्नि सोय ।।९४।।
बड़ जन का आशीष ले, मधुर वच आसन्न ।
सब से प्रेमादर रखे, ब्याह करे संपन्न ।।९५।।

(चौ.) दूल्हा-दुलहिन मोटी खादी । पहनें नई-पुरानी, सादी ।।
बरसें मंगल उन वसनों पर । शुभ अक्षत सो जुगल-सिरों पर ।।९६।।
कपड़े जो भी मिलें पहन लें । वर्ना सादे धुले वसन लें ।।
उपहारों के बिन ही आ कर । मिलें सभी जन सहर्ष सादर ।।९७।।
लग्न भेंट यदि देना चाहो । दंपति का संसार शुरू हो ।।
अथवा दूर अभाव गाँव का । होवे मकसद आयोजन का ।।९८।।
विवाह सार नें है संस्कारिक । पूर्ण करें तस विवेकपूर्वक ।।
समय, परिस्थिति देख भाल कर । सब कुछ करें, उचित अरु सुंदर ।।९९।।

विवाह का यह प्रसंग मंगल । करे विभूषित देश समुज्ज्वल ।।
अमर बना दें समाज-जीवन । कीर्ति गाँव की बढ़े चिरंतन ।।१००।।
है संस्कार यही विवाह का । ऊँचा सबसे महत्त्व उसका ।।
समाज-मन्दिर इसी नीव पर । इस से इसे बना लो सुंदर ।।१०१।।
इस से कहें वर वधू के गुण । नव निर्माण संकल्प की धुन ।।
समजा का सुखदुःख जता कर । मुक्त हुआ हूँ दिशा बता कर ।।१०२।।
नारी-नर दो पहिये उत्तम । बनें परस्पर पोषक हर दम ।।
तब तो गाँव स्वर्ग सुख पाकर । कहता तुकड्या, रहे निरंतर ।।१०३।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथकी एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरु की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
इक्कीसवें अध्याय में, संस्कार शुद्ध विवाह का ।
जो स्रोत ग्रामोद्धारका, तो अंत जीवन दाह का ।।१०४।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

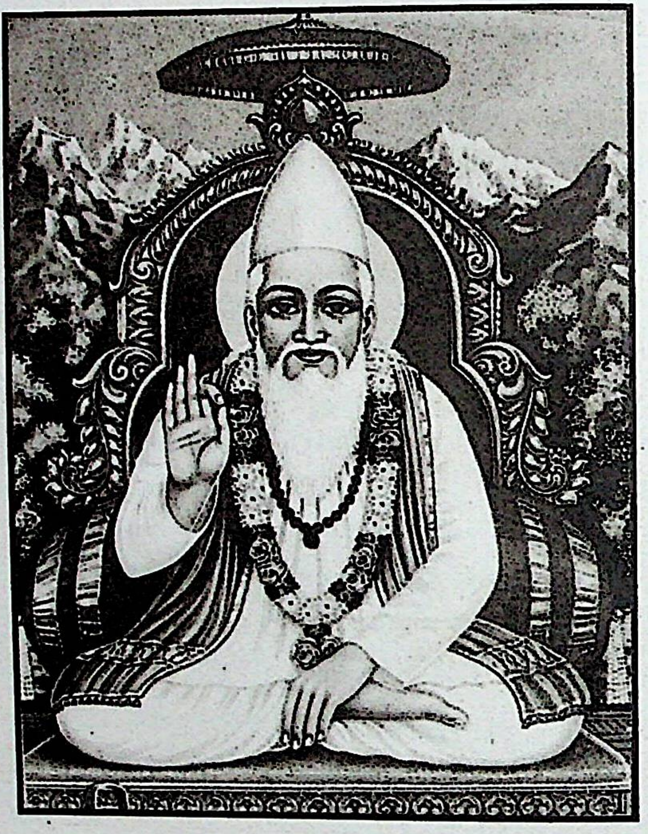

श्री संत कबीरदास जी

बाईसवाँ अध्याय

अंत्य संस्कार

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

विविध संस्कार व मृत्यु विचार

(मनहरण) विवाहादि आवश्यक, व्यय नहिं करो अधिक,
तात्त्विक स्वरूप जान संस्कार ये आचरो ।।१।।
छठी, दष्ठौन, जनेऊ, तीर्थों में कर्मकाण्ड,
गृहप्रवेश, वर्ष गाँठ, आडम्बर क्यों करो ? ।।२।।
मृत्यु संस्कार भी वैसे धर्म संस्कारों में एक,
ठाठ काहे अंत्येष्टि का ? लोक हित ही स्मरो ।।
मृतकों के नाम जीवितों का यह जीवन ही,
दूभर क्यों करें? दुष्ट रूढ़ियों सभी हरो ।।३।।

(चौ.) मृत्यु संस्कार तत्व एक यह । लोग समझते मृत्यु भयावह ।।
मै तो कहूँ, मृत्यु की नाई । उत्तम स्थिति कोई नाहीं ।।४।।
जैसे नदी मिले जा सागर । भेद भाव कष्टादि त्याग कर ।।
हेतु एक सब ही कामों का । सागर मिलन, मिलन सागर का ।।५।।
बहती सरिता सहज रूप ही । मिले शान्ति तस तीर बसत ही ।।
उस का पानी अंग लगावे । तृप्ति मनहु जीवन की पावें ।।६।।
पर महत्त्व उस में सागर का । वैसा ही है ढब मानव का ।।
जब आसक्ति पाश है कटता । आत्मा रूप की ओर दौड़ता ।।७।।
मगर वासना बची कार्य की । पीछा करती वही जीव कीं ।।
नया जन्म मिलन पर सो ही । साथ प्रकट होवे तैसी ही ।।८।।
काया मात्र नष्ट होती पर । दृढ़ संस्कार वासना भीतर ।।
होते प्रकट दूसरे तन में । मिले जन्म जब दूजा जग में ।।९।।
इसी जनम जो मोह मिटा लें । उत्तम संस्कारों को पा लें ।।
चक्कर सब ही जन्म मरण का । समझो खतम हो गया उनका ।।१०।।

(दो.) पाते कुछ ही हैं मगर, परम अचल वह धाम ।
आते-जाते मोह वश, अन्य जीव अविराम ।।११।।

बँधा इंद्रियासक्ति से, दौड़े मन अविराम ।
लोगों को भी प्रिय वही, निज अस्तित्व सकाम ।।१२।।

(चौ.) लेय जनम अरु बढ़े, हो भारी । अवस्थाएँ सोइ देह की सारी ।।
फूले फले छहों ऋतुओं से । क्षीण होय आखिर तरु जैसे ।।१३।।
तन की परिणति गयी शिखर पर । अंग हो जाँय शिथिल अरु जर्जर ।।
फिर तो देखे राह जीव मन । अपने मूल धाम की निसि दिन ।।१४।।
मोह पाश में बाँधे रहते । तरह तरह की दवाइ देते ।।
'इसे बचा लो' दुख से कहते । 'आय काम कुछ' इस ही नाते ।।१५।।

मृतक के प्रति कर्तव्य, छुतका आदि

मरणासन्न को जीवन देना । फिर से स्वस्थ उसे कर लेना ।।
यह मानव-कर्तव्य उचित ही । हम कहते, यह भला काम भी ।।१६।।
किन्तु बचे न यत्न करने पर । गया अन्त मे शरीर तज कर ।।
तब तो समझो जीव मिला ही । अपने प्रभु के स्वरूप माँही ।।१७।।
करो प्रार्थना ईश्वर से फिर । शांति-लाभ हो उसे निरंतर ।।
अरु उस को बाँधे नहिं कोई । सुख दुख की भावना हमारी ।।१८।।
कौन काम यहाँ रोने का । परम धाम वह है सब ही का ।।
हम भी देखेंगे उस को ही । देह की माटी यह छूटत ही ।।१६।।
इसीलिए मरणोत्तर रोदन । यह तो है अज्ञान-प्रदर्शन ।।
जानें सब यह क्यों दिखलाना । उदास मन से अब क्या पाना ? ।।२०।।

(दो.) **भोग मिले जिस का उसे, क्यों कर रोवे कोय ?**
कुछ करना है तो करे, तस सुकीर्ति जस होय ।।२१।।
शेष कार्य से हम करें, हो जिन से तस नाम ।
गौरव कुल का भी बढ़े, भूषण सोइ ललाम ।।२२।।

(चौ.) मानव का देहान्त होय जब । सब मिल उस को ले जाएं तब ।।
देखो नहीं जाति-परजाती । था वह कौनं भला किस भांति ।।२३।।
गुजरे का सम्मान बढ़ाओ । अरथी नहीं अभद्र बनाओ ।।
मिल कर सब गंभीर भाव से । चले साथ आत्मीय मान से ।।२४।।
आया वक्त ठीक निबटाओ । सब मिल अपने हाथ बँटाओ ।।
दिन अपना भी आयेगा जब । काम यही ही आयेगा तब ।।२५।।

‘मंगल मृत्यु’ समझ के मन में । दें सहयोग अंत्य यात्रा में ।।
भजन मंडली धुन से समुचित । करे प्रशस्त गतात्मा का पथ ।।२६।।
भद्दी अशुभ कुरूप पुरानी । प्रथा न कोई रहे घिनौनी ।
श्रद्धांजलि के भाषण दे कर । करें विभूषित उचित समय पर ।।२७।।
सुप्रबंध हो मरघट में भी । सुविधा वर्षा संकट में भी ।।
हो ‘संस्कार भवन’ सब के मित । वातावरण पवित्र यथोचित ।।२८।।
दहन पार्थिव शेष का करके । शुद्ध वायु मण्डल करवावे ।।
गाँव से ला संस्कार वस्तुएँ । उचित जगह पर सभी जमाएँ ।।२९।।

(दो.) **पीताम्बर शव के लिये, बेच दैंय घर कोइ ।**
जले जनम भर दुःख में, ऐसा करे न कोइ ।।३०।।
जैसा हो वैसा करे, धुला पुराना वस्त्र ।
लपेट कर शव ले चलें, गरीब नहिं हो त्रस्त्र ।।३१।।

(चौ.) ‘नये वस्त्र से ढंक दो काया’ । जदपि शास्त्र ने यही बताया ।।
किन्तु शास्त्र को ज्ञात नहीं है । कैसे हम घर चला रहे हैं ।।३२।।
‘घृत के बिना नहीं हो भोजन’ । शास्त्र कहाँ का ? है पागल पन ।।
फिर मृत तन पर घी चुपड़ाने । क्यों लगाता कोई शास्त्र बताने ? ।।३३।।
मौत हुई है उस के घर को । नहीं एक दिन खांने भर को ।।
केसे बैठें, ‘सूतक’ ले कर ? । बरतो आपद्धर्म वहाँ पर ।।३४।।
एक दिवस गर खाली जाये । उपास गरीब का सो हो जाये ।।
तुम्हीं बताओ सोई कैसे । उपास कर सके दस दिन जैसें ? ।।३५।।
पूरा कर संस्कार दाह फिर । स्नान आदि घर करें लौट कर ।।
मृत्यु स्थल पवित्र कर डालें । पूग संस्कार हुआ यह माने ।।३६।।
फिर वह जाये भले काम पर । सुख से जिये मजदूरी सो कर ।।
करें मनन उत्तम विचार का । ध्यान करें एकान्त प्रभू का ।।३७।।
सूतक की जो प्रथा चलायी । उससे शोक वृत्ति गहराई ।।
यों जो बंधन आड़े आये । शह से उन्हें हटाते जाये ।।३८।।
मूल हेतु सूतक का यह था । मृतक की सेवा में जो रहता ।।
बीमारी-कीटाणू उसके । लग न जाय छूने से उसके ।।३९।।
बाप मरा हो सौ कोसों पर । पुत्र रखे सूतक अपने घर ।।

अंध विश्वासहि दूर करें अब । मर्म रूढ़ि का सही समझ सब ।।४०।।

(दो.) नीम पत्र, गो मूत्र भी, तथा अग्नि संस्कार ।
असंसर्ग सूतक सभी, स्वास्थ्य हेतु ही सार ।।४१।।
स्नान शुद्ध जल से करो, स्वच्छ वसन परिधान ।
धोवें वस्त्र अरु पात्र भी, रोगी के सब आन ।।४२।।

(चौ.) यह पवित्रता है आवश्यक । कहते सही इसे ही सूतक ।।
वर्ना दस दिन शोक मनाना । जँचता हमें न रोना धोना ।।४३।।
शोक समाचारहु जानें सब । इसीसे लिखो एक बार खत ।।
समाज में यह सुधार लाओ । श्रम; धन; समय न वृथा गँवाओ ।।४४।।
होय विचारों की ही दृढ़ता । बना आधार सद्ग्रंथ पुख्ता ।।
पर छमास तक रोना धोना । महमानों के साथ न करना ।।४५।।
विवेक से भावना सँवारें । तेरहवीं प्रार्थना करायें ।।
साथ सभी लोगों को लेकर । भजनानंद चखो जी भर कर ।।४६।।
स्मृति पर्व संस्मरण सुनाओ । हो गर पास दान दे जाओ ।।
उस निमित्त कुछ दानहु दे दो । गर नहिं हो तो खेद न मानो ४७।।
करो नमन संकल्प खुले मन । 'सदाचरण बरतूँ आजीवन'।।
गत आत्मा की स्मृति में भी । सेवा कार्य उठाओ कोई ।।४८।।
किन्तु सोच लो अपनी हालत । जीवित उनकी न हो फजीहत ।।
दान-दक्षिणा में दीवाला । निकले, हो नहिं अस घोटाला ।।४९।।

(दो.) रूढ़ि के वश जन कर्ज ले, करते मृत-संस्कार ।
पंगत मृतकहि नाम से, जुटत समाज अपार ।।५०।।
पंच, ब्राह्मण, जोशी भी, दान रूप धन लेंय ।
छप्पन भोग गरीब की, तोड़ कमर ही देंय ।।५१।।

स्वर्ग साधना, पिण्डदान व श्राद्ध

(चौ.) कोई वैभवशाली है पर । पुत्र बिना है नरक वास डर ।।
'दत्तक' अंतिम समय बिठा ले । बचे हुओं को दुख में डाले ।।५२।।
दत्तक धन को कई उड़ाते । यां कि बाढ़ झगड़ों की लाते ।।
लगे बुराई के पथ पैसा । नरक वास फिर चूके कैसा ? ।।५३।।
जीव भोगता फल स्व कर्म के । तारे उसे कौन अरु कैसे ?

सत्कीर्ति से स्वर्ग सुहाता । पुत्र पौत्र से कभी न पाता ।।५४।।
स्वर्ग, मुक्ति अथवा अरु कोई । सद्गति से कछु अलग न होई ।।
सत्य ओर मन की गति होवे । जीवन-उद्धार की गति सो होवे ।।५५।।
धन मालिक असली जो होवे । उसे गांव के काम लगावे ।।
कुआँ, पाठशाला, छात्रालय । करके श्रद्धा से निज निश्चय ।।५६।।
अथवा अच्छी सड़क बना दें । जो जनता के कष्ट मिटा दे ।।
लालसा धन की जब तज देंगे । तभी स्वर्ग के द्वार खुलेंगे ।।
जो हों रिश्तेदार मृतक के । वे सत्कार्य हाथ लें चुन के ।।
उस की याद में उस के धन का । सद् उपयोग करें साधन का ।।५८।।
इससे उस की कीर्ति चिरंतन । स्वर्ग इसे ही कहते सज्जन ।।
बखाने मन से जन गुण उस के । स्वर्ग न होय अलावा इस के ।।५९।।

(दो.) अपयश जिसका फैलता, उसे कहाँ की मुक्ति ?
मरने पर जन नाम ले, जीवन हो इस भाँति ।।६०।।
इससे उत्तम ज्ञान लो, रहन भी उत्तम होय ।
सब के उत्तम कर्म कर, कीर्ति अमर तब होय ।।६१।।

(चौ.) कीर्ति है जिस की वही स्वर्ग है । अपयश तो विस्तार नरक है ।।
आज जगत में व्याप इन्हीं का । देख रहे हैं प्राणी नीका ।।६२।।
वर्ना स्वर्ग धाम भी जावे । कुकर्म से दुख इन्द्रहु पावे ।।
निन्यानवे यज्ञ करके भी । नहुष गर्व से हुआ नाग ही ।।६३।।
अपना कार्यहि स्वर्ग-नरक है । फल के लिए कर्म भ्रामक है ।।
भुला गये जन इस दुनिया की । माया मिथ्या में स्वार्थिन की ।।६४।।
कहते-'कौआ पिंड उठा ले । तब ही जीव स्वर्ग को पा ले ।।
रहे अन्यथा आत्मा अटका । समझो मृतक कहीं पर भटका' ।।६५।।
यह तो कथन हमें नहिं भाता । नहीं पिंड की कोई महत्ता ?
महत्त्व की बस सही क्रिया है । क्या पा मानव जन्म किया है? ।।६६।।
मरने पर दस रोज भरमता । जीव 'पिंड' पर स्वर्ग पहुँचता ।।
गिरे अन्यथा महानरक में । डालें अस बातेंहिं भरम में ।।६७।।
जिसने उत्तम कर्म कियें है । दिव्य धाम उसकेहिं लिए है ।।
गिरे अन्यथा अधम योनि में । स्वभाव गुण अनुसार जगत में ।।६८।।

(दो.) जीव निजी गुण कर्म से, भला बुरा फल पाय ।
पिंड-तिलांजलि से न कुछ, बने उपाय अपाय ।।६९।।
किया सुकर्म न कुछ मगर, पिंड उठाये लाख ।
जीवन क्या उस जीव का, हुआ समुन्नत पाक ? ।।७०।।

(चौ.) गऊ दान दी भिक्षुक के घर । क्या उस की ही पूँछ पकड़ कर ।।
गत जीवात्मा वैतरणी से । होगा पर पाप करनी से ? ।।७१।।
यह तो कर्म कांड का कौतुक । संबंधिन के मन का ही सुख ।।
पुत्र पौत्र की मानस पूर्ति । कल्पित समाधान की मूर्ति ।।७२।।
निंदा यह नहिं मृत्यु-ग्रंथ की । वह थी कोशिश मनःशांति की ।।
सार्थकता जीवनकी उस में । भाव वृथा यह, मानूँ अस मैं ।।७३।।
नाम गतात्मा का हो कायम । समाज हित दें तदर्थ कुछ हम ।।
सद् गुण गान करें हम उनका । विकास करने जन जीवन का ।।७४।।
हम ही सच्चा पिंड उठा लें । सुकर्तव्यों से जीव सजा लें ।।
उज्ज्वल कीर्ति सही इस से ही । पावे जीव सुगति सुख दायी ।।७५।।
सिर्फ मरा कोई तब रोना ।। जिंदा हो तब नहीं देखना ।।
यह तो जाल ढोंग का सारा । करे किसलिए समाज पूरा ? ।।७६।।

(दो.) जिंदे को रोटी न दे, मरे बजावे ढोल ।
पिंड काग को, दान पुन, क्या उस का उपयोग ? ।।७७।।
उलीच दे धन श्राद्ध में, लोक लाज के काज ।
बरते क्यों यह मूर्खता, तज कर तत्त्व समाज ? ।।७८।।

(चौ.) गया जीव नहिं रुकना जाने । बरस मास प्रति भोजन पाने ।।
पाप पुण्य फल स्वयं भुगतने । फिर फिर जीव जनम ले कितने ।।७९।।
फिर गत जीव जगत में आवे । सत्संगति से लाभ उठावे ।।
दोष पूर्व कृत सब मिट जावे । सुसंकल्प अस हम कर लेवें ।।८०।।
या फिर हम उस का गुण वैभव । श्रद्धापूर्वक याद करें सब ।।
श्रद्धांजली रूप आयोजन । अपूर्व होवे 'श्राद्ध' नियोजन ।।८१।।

दान, तीर्थ व स्मारक-विचार

रहे मृतक की कीर्ति जगत में । करें दान पुन तस स्मृति में ।।
काम करावें गाँव के भीतर । याद करें सब जिस की खातिर ।।८२।।

किसी रोग से गुजरा कोई । किसी और को ग्रसे न सोई ।।
इसीलिए ही तस स्मृति में । दो कुछ दान औषधालय में ।।८३।।

(दो.) धर्म मर्म यह भूल जन, ले ऋण जाते धाम ।
इससे चमके तीर्थ का, धर्म व्यापारहि काम ।।८४।।
ले जाते सज्जन कई, फूल राख भर तीर्थ ।
कहते 'मृत पातक हरे, गंगा नीर समर्थ' ।।८५।।

(चौ.) 'काशी में मरने से मुक्ती' । यह लोगों में फैली भ्रांति ।।
गंगा जल में कीड़े मरते । क्या वे सभी मुक्ति पा जाते ? ।।८६।।
कबीर जी काशी के होकर । समाधि लेने पहुँचे मगहर ।।
जोई नर्क-द्वार जग मानी । भई उद्धार-भूमि जग जांनी ।।८७।।
बुनता सूत रहा जीवन भर । देखा प्रकट जनार्दन जग भर ।।
भक्त कबीर की वह महिमा पर । जानें क्या गंगा के पत्थर ? ।।८८।।
किये जनम भर दोष-कर्म जब । नहीं ध्यान आई गंगा तब ।।
डाल हड्डियाँ अब उस माँही । कहते 'सुगति जीव ने पायी' ।।८६।।
ये कहने अरु करने वाले । पेट के खातिर धंधे वाले ।।
इससे सब करते मरणोत्तर । जीवित काल कहेंगे क्यों कर ? ।।६०।।
अरे! न जिसमें मन लगता है । वह तन करे, व्यर्थ जाता है ।।
फिर जिस में तन-मन दोनों ना । वहाँ कौन सा फल है पाना? ।।६१।।
पर पण्डे सगर्व बतलाते । 'पितरों' को हम स्वर्ग पठाते ।।
बोलो फिर इच्छा है कितनी । देन दक्षिणा स्वर्ग द्वार की ।।६२।।

(दो.) किसान भोला बापुरा, भावुक जन मजबूर ।
कहें-"कर्ज ले दक्षिणा, देंगे तुम्हें जरूर ।।६३।।
मगर हमारे पितर ये, कब भेजोगे स्वर्ग ?" ।
आँसू भर कर सिर नवा, लूटे पंडा वर्ग ।।६४।।

(चौ.) अंध भक्ति यह बढ़ा धूर्त ही । लेते अपना बना स्वार्थ ही ।।
यह अति पाप निकम्मों का है । यहाँ धर्म क्या ? सब धोखा है ।।६५।।
वास्तव में जब अवसर आवे । तब मौके से लाभ उठावें ।।
बनकर सच्चे लोक सुधारक । जुगत बतावें पण्डा भिक्षुक ।।६६।।
कह दें-"भाई! पुरखे तेरे । यदि तू चाहे स्वर्ग सिधारें ।।

तो इस हेतु भरी गंगा में । ले संकल्प चित्त को थामे ।।९७।।
कह दें, पुरखे स्वर्ग सिधारें । तदर्थ ये संकल्प हमारे ।।
शराब-गाँजा-अफीम सेवन । करूँ न अब से मै आजीवन ।।९८।।
दुर्व्यवहार करूँ नहिं कोई । न तो फँसाऊँ दीनों को ही ।
सब को सत्सेवा की खातिर । दूँगा मैं सहयोग निरंतर" ।।९९।।
पण्डे यदि वह कार्य करा लें । उदर पूर्ति को भी कुछ पा लें ।।
साथ लोग कल्याण सधेगा । मध्य मार्ग यह बुरा न होगा ।।१००।।

(दो.) पर पण्डा व्यसनी कुटिल, मुफ्त लूटने दक्ष ।
करे समाजोद्धार क्यों ? स्वास्थ्य जिस का लक्ष्य ।।१०१।।
फैलाने दो नहिं किसे, कर्म भक्ति यह अंध ।
समझ गाँव गंगा करो, अर्पण सब सानंद ।।१०२।।

(चौ.) शुद्ध गाँव का नदी-पोखरा । दीघी कुआँ देख कर प्यारा ।।
वहाँ करो, हो शुद्ध नहा कर । याद मृतक की प्रभू ध्यान कर ।।१०३।।
तस स्मृति में सुकर्म साधो । बाह्य तीर्थ की गरज हटा दो ।।
प्रभु तो हैं हर जगह सदा ही । ग्राम तीर्थ फिर क्यों नहिं भाई! ।।१०४।।
यह साधना राह ही बदलो । सभी काम में गाँव की सुधि लो ।।
श्रद्धा से सब करो गाँव में । यही मोड दो जन सुभाव में ।।१०५।।
कई बनाते मृतक-समाधि । व्यर्थ भूमि की यह बरबादी ।।
यही चले तो सारी धरती । इस में उलझ, पड़ेगी परती ।।१०६।।
बस्ती में तादाद घरों की । त्यों मृतकों की भी कबरों की ।।
कहाँ बचेगी जगह रिक्त फिर । औरों के जीवन की खातिर ? ।।१०७।।

(दो.) जीवित नर को घर नहीं, नहीं श्रमिक को खेत ।
समाधि-आडम्बर वहाँ, क्यों मृतकों के हेत ।।१०८।।
मृत तनु के लोभी न बन, दिला अग्नि संस्कार ।
पंच तत्त्व में दो मिला, यही सरल व्यवहार ।।१०९।।

(चौ.) स्मृति खातिर गाँव या घर में । अच्छी सी तसवीर लगावें ।।
याद करायें समय-समय पर । सद्गुणशाली व्यक्ति जान कर ।।११०।।
चाहे जिस की बने समाधि । वह तो है आसक्ति निशानी ।।
समाधियाँ यदि यों बनवा लो । क्या कुछ होता-जाता बोलो ? ।।१११।।

समाधि से जो दर्शन पावे । वही चित्र से मन में आवे ।।
महत्त्व है मन में आने का । सब में प्रमुख लाभ अवनी का ।।११२।।
चाहे उत्तम भवन बनाओ । शुभ जन शिक्षा कार्य चलाओ ।।
अर्पित कर दो सभी ग्राम को । चिरायु करने स्मरण नाम को ।।११३।।
सहज दशा तो यही सही है । करे विकृति क्यों वृथा नई है ? ।।
समजा सुस्थिति जिससे रहती । चलो बढ़ाते उसकी महती ।।११४।।
मानव हो या हो पशु पक्षी । क्यों हो उनकी कबरें साक्षी ?
जिंदा स्मारक समाज लख कर । कार्य करो सुस्थिति का सुंदर ।।११५।।
इस दृष्टि से समय-समय का । मूल्य समझ सब संस्कारों का ।।
करें कार्य सब ही समयोचित । ग्राम राज्य हो जिस से शोभित ।।११६।।
मृत्यु तथा जन्मादि महोत्सव । इनका सिर्फ करो नहिं गौरव ।।
धन को बच गाँव का वैभव । तुकड्या कहे बढ़ाओ अभिनव ।।११७।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरु की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
बाईसवां अध्याय में, सच्चा मृतक-संस्कार है ।।
स्मारक यही सत्कार्य है, जन रूढि का परिहार है ।।११८।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

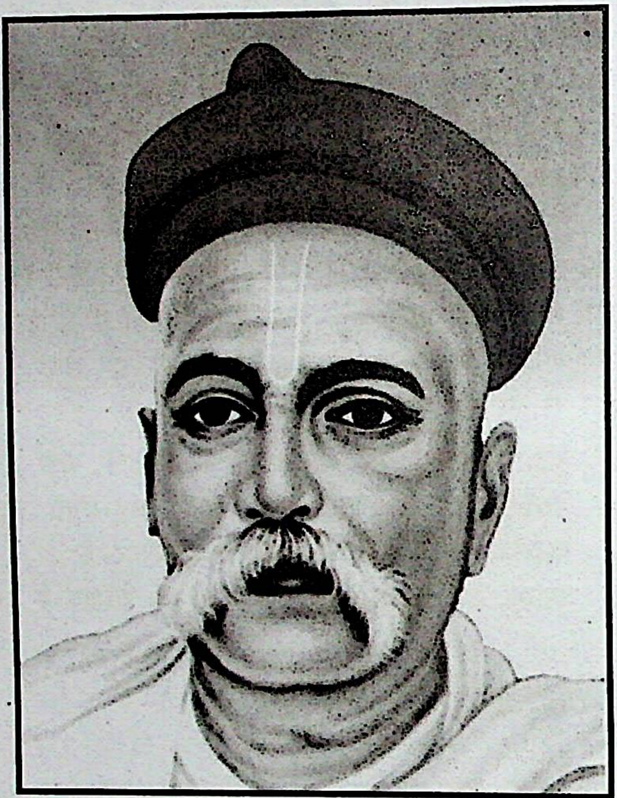

कर्मयोगी श्री लोकमान्य तिलक

तेईसवाँ अध्याय

उत्सव-त्योहार

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

उत्सव में संयम व आदर्शभाव हो !

(मनहरण) श्रोताओंने पूछा, जो कि ब्याह और अंत्य विधि
आप ने बताया, हमें लगा अभिराम है ।।१।।
किन्तु जन्मोत्सव -त्योहारादि देते आनंद ही,
स्फूर्ति गाँव-जीवन को, सब को विराम है ।।२।।
फिर भी तो आप उन्हें, निकृष्ट ही मानते हैं,
कारण बताने होंगे, इसके तमाम हैं ।।
श्रोताओं की बातें सुन लीं जिज्ञासा भरी,
देता हूँ जवाब, सुनो सत् का पैगाम है ।।३।।

(चौ.) यदि उत्सव-त्योहार करें सब । पूरेंगे न साल के दिन अब ।।
कई पुण्यतिथियाँ, जयंतियाँ । वर्ष गाँठ, कितनी हि रीतियाँ ।।४।।
यदि ये सभी मनाना चाहें । तो फिर धंधे सभी थमाए ।।
और सिर्फ इतना करने से । सब पूरा भी होगा कैसे ? ।।५।।
इस से छोटा-बड़ा देख लो । सोच समझ कर उचित मना लो ।।
देश-कला या प्रसंग देखो । फिर उस भाँति बरतना सीखो ।।६।।
जो कुछ करो समझ कर गुण भी । बता सको उस का कारण भी ।।
लड्डू-पेड़े सिर्फ उड़ाने । जयंति दिन नहिं चलो मनाने ।।७।।
पुरखों का उद्देश्य जान लो । उसे समझ कर राह बना लो ।।
उसी राह पर चलते जाओ । जब उत्सव-त्योहार मनाओ ।।८।।

(दो.) थी भारत की रीति यह, बहुत योजना बद्ध ।
जिसे मानकर जो चले, होय समाज समृद्ध ।।९।।
फिर से होवे बात वह, यही कथन का भाव ।
जीवन उत्सव गौण है, मेरा मत यह नाव ।।१०।।

(चौ.) है मानव स्वभाव उत्सव प्रिय । मुहूर्त त्योहारों में प्रभुवित ।।

कार्य विशेष देख दौड़ें वह । नवीनता नित लगे सुखावह ।।११।।
विशेष कोई कार्य करावे । ऐसा उसके मन आ जावे ।।
फिर न करे वह आनाकानी । पैसा खर्च करे मनमानी ।।१२।।
नाम 'उत्सव' का ले कर ऐसे । कोई नहीं उड़ाये पैसे ।।
अच्छे कार्य में उसे लगाना । 'बचत करो' है मेरा कहना ।।१३।।
मना रहे घर में दीवाली । मगर दिवाला लाने वाली ।।
लोग गाँव में खूब हँसेंगे । मदोन्मत्त नटराज कहेंगे ।।१४।।
वैसी होने दो न फजीहत । पर बैठो सब ही की संगत ।।
जीवन अपना मिले धूल में । करो न ऐसा कभी भूल से ।।१५।।
सज धज का त्योहार एक दिन । कष्ट पेरता फिर अनेक दिन ।।
गृहस्थ का यह धर्म कहाँ है ? कौन संत ने कहाँ कहा है ? ।।१६।।
त्योहार कई होंगे भविष्य में । सोचें समझें अपने मन में ।।
अवसर आवेंगे महान भी । करना होगा 'योग दान भी ।।१७।।
कुछ आकस्मिक प्रसंग के हित । रखो गाँठ धन कर के संचित ।।
अवसर ऐसे कुछ आ जावे । पूरी ताकत नहीं लगावे ।।१८।।

(दो.) अपनी सीमा ध्यान रख, करें पर्व-त्योहार ।
सजग संतुलित कदम ही, होय हर्ष आधार ।।१६।।
मिल जुल बैठें चार जन, जुटे पर्व-आनंद ।
नित्य पाठ बर्ताव के, लें उससे सुख कंद ।।२०।।

(चौ.) सीखें जीवन ज्ञान बढ़ाने । बढें न दुर्गुण किसी बहाने ।।
यही लक्ष्य ले कर निर्भय मन । उत्सव में शुभ करो आचरण ।।२१।।
कुछ त्योहार करो घर ही में । कुछ तो सार्वजनिक जगहों में ।।
सभी लोग शामिल तँह होवें । सब मिल व्यय का बोझ उठावें ।।२२।।
उत्सव का ही निमित्त लेकर । प्रबंध कर सहभोज मनोहर ।।
नेह पूर्ण बंधुत्व भावना । संवर्धित हो वही बरतना ।।२३।।
घर-घर से खाना ले आये । या सब मिल कर उसे बनाएँ ।।
एक जगह करने से भोजन । प्रेमानंद भरे सब के मन ।।२४।।
जितना भी हो प्रसाद पा लो । प्रसंग शोभित करो, मना लो ।।
किन्तु वक्त नहिं समाज का अब । खानें में ही चला जाय सब ।।२५।।

(दो.) रखो कथा कीर्तन भजन, क्रीडा मनोविनोद ।
जिस से मिले समाज को, शुभ आचार प्रबोध ।।२६।।

नित्य नैमित्तिक उत्सव-त्यौहारों में तत्त्वानुसंधान

नित्य कर्म उत्सव सही, वर विचार ही धर्म ।
रूढ़ि कर्म त्योहार के, चलें समझ के मर्म ।।२७।।

(चौ.) हनुमज्जन्म, राम नवमी हो । दत्त जन्म, गोकुलाष्टमी हो ।।
ऋषि पंचमी, आषाढ़ी, शिव दिन । निज निज रीति मनाये जब तिन ।।२८।।
सरस्वती दुर्गा, गौरी-व्रत । राखी, संक्रांती, बरसाइत ।।
जो भी महिला उत्सव आवे । उनको मिलकर सबहि मनावें ।।२६।।
उद्यम दिन, स्नेह सम्मेलन । बाल विकास प्रार्थना के दिन ।।
बुद्धि-विकास दिवस गीतोत्सव । आवश्यक ये पंच महोत्सव ।।३०।
सब जातियाँ-जमाते मिल सँग । दें तिलबा, सोना, कुंकुम, रँग ।।
करें राम-धुन-ग्राम-शुद्धि भी । प्रतियोगी भाषण योजना भी ।।३१।।
बैलों का भी जो उत्सव दिन । महत्त्वशाली है वह लेकिन ।।
प्रदर्शनी बैलों की लगाओ । कृषि वस्तुन भी उस में रक्खो ।।३२।।
बाँध बैल सुन्दर कतार में । धुला सजा कर शुभ सिंगार में ।।
जिन में सेवा झलके ऊँची । सब सम्मान करें उन का ही ।।३३।।
उत्तम जोड़ी रखी है किसने । खिलाया घर में अच्छा किसने ?
इनाम देय उनको अच्छे से । सभी ग्राम जन मिल जुल निज से ।।३४।।
किस की खेती पाती उत्तम ? मजदूरों को कौन रखे खुश ?
ऊँचे पर फिर उन्हें बिठाओ । यों बैलों का पर्व मनाओ ।।३५।।
घर-घर वे जोड़ियाँ घुमाओ । शोभा यात्रा कर घर लाओ ।।
मिल इनाम जो सब लोगों से । सेवक रक्खें उसे खुशी से ।।३६।।

(दो.) खेलें परिवार को जुआ, होता पतन समाज ।
कुछ जीते हारे कई, गये वस्त्र क्या लाज ? ।।३७।।
बंद करो ऐसी प्रथा, दंगलादि करवाय ।
सम्मान करें श्रम निष्ठ का, भुज बल को दर्शाय ।।३८।।

(चौ.) ऐसा ही त्योहार दशहरा । विजया दशमी उत्साह भरा ।।
उसमें शुभ स्नेह संगठन । बना गाँव में सकें सभी जन ।।३६।

शोभा यात्रा का आयोजन । श्रेष्ठ जनों का गौरव गायन ।।
गत ऋषियों का भी अभिनंदन । सब मिल करें राष्ट्र का वंदन ।।४०।।
शुभ संकल्प उसी दिन होवें । 'अपना वह सबका' मन लावें ।।
मतभेद बिसारें सब मिल जुल कर । इक दूजे को सोना देंकर ।।४१।।
उस दिन से दो छोड़ झगड़ना । सब जन सब की करें वंदना ।।
एक दूसरे से लें आशिष । भाई-भाई समझ अहर्निश ।।४२।।
मिलते जुलते लौटें सब घर । मन में सन्त देव वंदन कर ।।
वरद हस्त सिर पर वृद्धों का । पुलकित मन आशिष ले उन का ।।४३।।
नया कार्य संकल्प उठावें । उसे साल भर कृति में लावें ।।
ऐसा उत्सव सभी मनावें । सब को ही एकात्म बनावें ।।४४।।

(दो.) आये सब दीपावली, करें सभी त्योहार ।
पर भूखा है गाँव में, कौन ? अवश्य निहार ।।४५।।
न्योता दे उन को अवसि, मीठा भोजन देय ।
सब मिल कर के ही चलें, सबका वैभव होय ।।४६।।

(चौ.) हो एकत्रित लक्ष्मी पूजन । मंडप बड़े में हो आयोजन ।।
सब को तहँ जल-पान करावें । सब मिल कर ही भोजन पावें ।।४७।।
हर घर हो आनंद विहारी । सुख में गौ-बछड़े, नर नारी ।।
रिश्ता बढ़े बहन-भाई का । यही रूप हो दीवाली का ।।४८।।
बहन-भाइ के सुन्दर रिश्ते । अब कमजोर हुए हैं कितने ।।
पीढ़ी नई में उसे बढ़ाओ । भैय्या दूज तदर्थ मनाओ ।।४६।।
गौ-प्रदर्शनी हो आयोजित । कौन दुधारू गाय यथोचित ?
कौन सांड़ गुणशाली प्यारा? देखे सब जन ऊँचा पूरा ।।५०।।
सभी करें उनका अभिवादन । मिल कर हो इनाम आयोजन ।।
गोरू-गऊ की महिमा पूरी । सब जन को समझाय जरूरी ।।५१।।
अच्छी-अच्छी अपनी गायें । अगले सालहु फिर से लायें ।।
चारों ओर खबर फैलाए । इनाम की घोषणा करायें ।।५२।।

(दो.) नरकासुर उपलक्ष में, करें खाद-गुण गान ।
गोबर जैसे खाद का, दिखा महत्त्व महान ।।५३।।

खादामृत के बल फसल, बढ़े न बिगड़े खेत ।
गड्ढे खोद सँवार लें, उचित सभी इस हेत ॥५४॥

(चौ.) गोबर आदि खेत में डाले । तब धरती माता कुछ पा ले ॥
घर-घर जाकर समझाना यह । सही त्यौहार दीवाली वह ॥५५॥
जिस से लक्ष्मी बसे गाँव में । सब जन जिये आनंद-छाँह में ॥
जो अस करें यत्न-आयोजन । सही साध ले दीवाली जन ॥५६॥
बरस बाद दीवाली आयी । घर बाहर की हुई सफाई ॥
बरामदा-दीवाल-लिपाई । रंग-बिरंगी हुई पुताई ॥५७॥
अगले दिन नहिं चौक सिंचाई । झाड़ बुहार न कुछ भी भाई!
कूड़ा-कर्कट जिधर उधर है । सड़ाँद फैले, किसे फिकर है ? ॥५८॥
ऐसा दशरा या दीवाली । नसीब में दुख लानेवाली ॥
इस से बेहतर रोज सबेरे । उठना ही दीवाली प्यारे ॥५९॥
उत्सव अतर फुलेल नहाना । अन्य दिनों औंगन मल लेना ॥
कहो बुद्धिमानी हम ऐसी । सीखे कौन गुरू से कैसी ? ॥६०॥
जो भी करते रहें यथोचित । स्नान-ध्यान-पाठादि रोज नित ॥
घर-बाहर सौंदर्य बढाने । उचित परिश्रम, वही सयाने ॥६१॥
दीवाली का निमित्त लेके । पवित्रता, शुचिता सब सीखें ॥
धूरों को भी ठीक बनाकर । रखें स्वच्छता दीप जलाकर ॥६२॥
सदा रखें घर निर्मल सुंदर । करें परिश्रम सदा शक्ति भर ॥
ऐसा शुभ बर्ताव निरंतर । वही सही त्योहार मनोहर ॥६३॥

(दो.) करे सफाई जो सदा, सब उत्सव फल पाय ।
प्रभु-अर्पित कर प्रेम से, साग पात भी खाय ॥६४॥
खरा दीवाली-दशहरा, उसी व्रती का होय ।
नहीं तो जीवन समझ लो, पूरा होली होय ॥६५॥

(चौ.) आयी भली धुलेंडी होली । धिंगा धिंगी, मार, ठिठोली ॥
इज्जत, मान प्रतिष्ठा छोड़ें । जन पगलाय राह में दौड़ें ॥६६॥
यों ही बढ़ा विचित्र तमाशा । होली का मकसद नहिं ऐसा ॥
सार तत्व उसके भी भाई! समाज को ग्रहणीय सदा ही ॥६७॥

इस दिन ही प्रहलाद भक्त का। दाह रचा था दुष्ट होलिका ।।
पर थी हरि की भक्ति सचाई। बाल भक्त पर आँच न आयी ।।६८।।
जल कर मरी दुष्ट की आखिर। खुशी गाँव को इस ही खातिर ।।
कर उपहास लोग चिल्लायें। दुर्जनता पर ही झल्लाये ।।६९।।
नेत्र इसी दिन खोल तीसरा। शंकर जी ने काम जलाया ।।
तभी काम को धिक्कारें सब। कर कल्लोल भूत सेना तब ।।७०।।
इस वर्षान्त पूर्णिमा के दिन। वार्षिक यज्ञ मानते सज्जन ।।
पूरा गाँव साफ सुथरा कर। सहर्ष कूड़ा सब सुलगा कर ।।७१।।
उस प्रकाश में मिलकर सब जन। अपना दुष्कृत करें निवेदन ।।
'आगे वैसा कभी न होवे'। खेद जता संकल्पहु लेवें ।।७२।।
मन धीरज में कमी पड़े जब। सत्य उजागर करें अन्य तब ।।
ऐसे पाप गाँव के सारे। धुलते आये, गाँव सुधारे ।।७३।।

(दो.) देय परस्पर गालियाँ, यह उलटा व्यवहार।
कौन ग्रन्थ ऐसा कहें, कर अभद्र व्यवहार ।।७४।।
कहे 'एक दिन साल में, है गाली की छूट।
पर सज्जन है किसलिए ? यह दुर्जनता खूँट ।।७५।।

(चौ.) मुख्य फाग में 'धूलि वंदन'। ग्राम सफाई चिन्ह पुराना ।।
छूत-अछूत भेद नहिं इस दिन। धर्म ग्रंथ का कथन समीचिन ।।७६।।
प्रथम अग्नि पूजा सामूहिक। बुराई हो उस में जल खाक ।।
घूरे पर ले जायँ राख फिर। स्नान सामुदायिक तब आखिर ।।७७।।
यही आनंद ग्राम सेवा है। मिलन परस्पर तस सुगंध है ।।
होवे आल्हाद प्रकट मन का। आयोजनहु मनोरंजन का ।।७८।।
ठौर-ठौर पर गायन-वादन। रंग-गुलाल आदि का सिंचन ।।
प्रसन्न रखने मन मानव का। होली का त्योहार अनोखा ।।७९।।
दरबारों में रजवाड़ों के। हुए शृंगारिक रूप होलि के ।।
कान्हा जस पिचकारी साध कर। रँग हुड़दंग खेलते मिलकर ।।८०।।
गाँव में उलटा सभी हो गया। ग्राम शुद्धि का हेतु भुलाया ।।
गंद नालियों की ही लेकर। फेंकें कष्ट देने लोगों पर ।।८१।।
लाते चुरा किसी के लकड़े। होली में घर-चीजें, छकड़े ।।
रस्से, जीन, जलाते दरियाँ। मरघट से ले आते खटियाँ ।।८२।।

(दो.) **होली आते सनसनी, हो मसान जस गाँव ।**
सुजन करे आलोचना, लखि भद्दा बर्ताव ।।८३।।
अब इसको दो मोड़ शुभ, यह पागलपन रोक ।
गायन-वादन से भरो, शुचि सुंदर आलोक ।।८४।।

(चौ.) होली पर सब मिल नारी नर । करे कसरतें मैदानों पर ।।
ग्राम सुधार नाटिका सुंदर । आयोजित की जाय मनोहर ।।८५।।
होली माने ग्राम-शुद्धि-दिन । वैसे माता दिन, बालक दिन ।।
रखो श्रमिक दिन, मानवता दिन । स्वतंत्रता दिन आदि अमित दिन ।।८६।।
तैसेहि लघु त्योहार मनाओ । सार तत्व पर भूल न जाओ ।
बने बहाना सिर्फ अगल अब । खाने भर का तो बेमतलब ।।८७।।
प्रगति हेतु त्योहार मनाओ । कुछ तो एक जगह कर पाओ ।।
सब मिलकर सहयोग भाव से । उत्सवादि आचरो लगन से ।।८८।।
पहले घर-घर गणेश-उत्सव । थे नाना विध रूढ़ि-उपद्रव ।।
'लोकमान्य' ने महत्त्व लाया । रूप उसे राष्ट्रीय दिलाया ।।८९।।
होय गाँव में एकहि गणपति । बने उपक्रम सबही के प्रति ।।
बढ़ा सके जो राष्ट्र भावना । हो कार्यों में वही धारणा ।।९०।।

उत्सव-त्यौहारों का मौलिक सूत्र

(दो.) **वह उत्सव ही श्रेष्ठ जो, राष्ट्र भाव से लैस ।**
उस ही हेतु समाज को, सन्तों के उपदेश ।।९१।।
उत्सव प्रिय जनता सही, उस पथ सुगम सुधार ।
राष्ट्र भाव जिस से जगे, सो मनाय त्यौहार ।।९२।।

(चौ.) शुभ निमित्त ले हाये संगठित । सब मिल कार्य उठाए समुचित ।।
जिस से ज्यादा बोझ किसी पर । नहीं पड़े, वह मारग हित कर ।।९३।।
वर्ना मनोविनोद हमारा । उससे जाय दूसरा मारा ।।
ऐसा जो भी होवे उत्सव । वह तो हीन, जगत में रौरव ।।९४।।
सुखी पराये, हम भी सुख में । तत्पर आपस के जशनों में ।।
सबका ही बर्ताव रहे सम । सब के लिए स्नेहमय उत्तम ।।९५।।
भावना मानवता उपजाने । उत्सव रूप को गाँव में बदले ।।

जिससे पाठ मिले सब जन को । सँवारने नित ही जीवन को ।।९६।।
सब धर्मों में त्यौहारोत्सव । सब का इसी हेतु है उद्भव ।।
मन से कदर मनुज की भाई । मानव करता रहे सदा ही ।।९७।।
बढ़े सर्वत्र सामुदयिकता । मूल सूत्र यह त्योहारों का ।।
भाव सामुदायिक हो जिसमें । मानें उसको उत्सव सच में ।।९८।।
गाँव होय जिस रोज एक सा । अभिनव उत्सव वही नेकसा ।।
रंग–अमीर नहीं उत्सव में । जाँयें पहिचाने आपस में ।।९९।।

(दो.) बिगड़े को सीधा करो, न हो जहाँ, तहँ दान ।
गिरे हुओं को लो उठा, अपना उन को मान ।।१००।।
जन सुख में उत्सव लखे, यही सही औदार्य ।
इससे अपने गाँव में, नित उत्सव-सौंदर्य ।।१०१।।

(चौ.) गाँव में कामगार थे बारह । वैसे ही जातियाँ अठारह ।।
अवलम्बित थे सभी परस्पर । था सहकारी जीवन सुंदर ।।१०२।।
कहार जाला लिये पंधारे । सुनार मढ़ दे पुतली द्वारे ।।
नाई, धोबी, ग्वाला, सब जन । ले जाते थे नाज पर्व दिन ।।१०३।।
पर न आज वह रहा कायदा । मिलन सुदिन में यह नहिं धंधा ।।
तिथि त्योहार बताना किसका । यह व्यवसाय न गुज़र बसर का ।।१०४।।
यह सहयोग शुद्ध सेवा ही । मन का दीप जलाने भाई ।।
उदर भरण का सवाल कोई । कभी न लावें उत्सव माँही ।।१०५।।
काम धाम सब कर लें अपना । बचे समय तिथि पर्व बताना ।।
सब मिल मंडप आदि बनाना । दिन में सेवा भाव बढ़ाना ।।१०६।।
ऐसा कहना लगे निराला । करते और लोग घोटाला ।।
भ्रम में हैं भोले जन गिरते । तब नास्तिक सी बातें करते ।।१०७।।
पहले था श्रम का सुविभाजन । बढ़ी स्वार्थ रुचि फिर उस कारण ।।
जोशी, भिक्षु का वही सहारा । नाम डुबाया उनने कुल का ।।१०८।।
अगर सिर्फ कोई मारे फेरी । उसे गाँव दें सही चाकरी ।।
उदरभरण का प्रबंध पूरा । सदा परिश्रम के ही द्वारा ।।१०९।।
बेकारी न गाँव में रखना । हरगिज़ नहीं उड़ाऊ बनना ।।

उत्सव से उत्तम गति पावे । गाँव, वही सब करें-करावें ।।११०।।
उत्तम प्रगति वही शुभ उत्सव । वर्ना लिये खरीद उपद्रव ।।
ऐसा न हो, इसलिए संगठित । क्रियाशील कर रखो गाँव नित ।।१११।।
सधे कार्य-उत्साह सवाई । निःसंशय वह उत्सव भाई !
तुकड्या कहे, गाँव में धारा । बहने दो सुख शांति अपारा ।।११२।।

(हरि.) इति 'ग्रामगीता' ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरु की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
तेईसवें अध्याय में, है तत्त्व उत्सव का सही ।
त्यौहार जो जो मुख्य है मकसद उन्ही के सत्य ही ।।११३।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

* * *

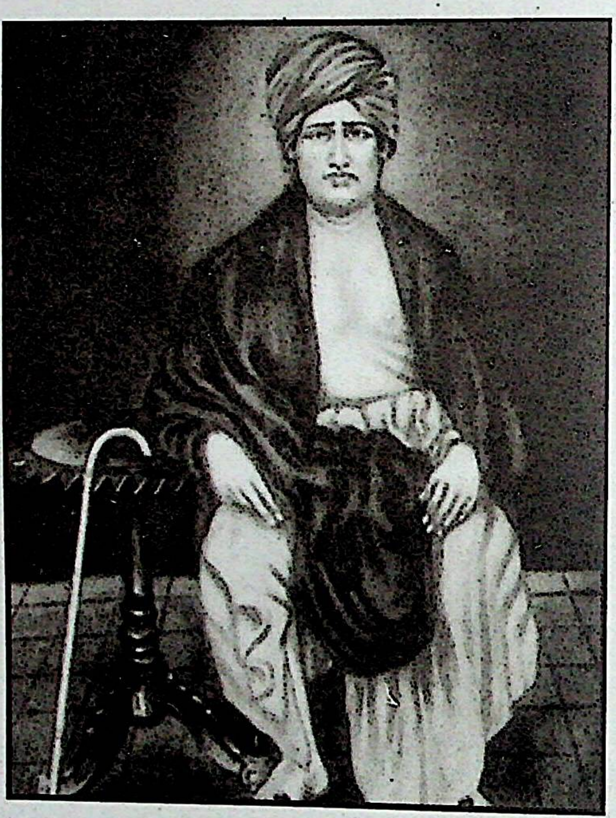

महर्षि दयानन्द सरस्वती

चौबीसवाँ अध्याय

तीर्थ-मेले

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

पंथीय प्रतिगामी उत्सव

(मनहरण) श्रोताओं ने पूछा प्रश्न, गाँव में हैं पंथ मित्र,
देव-धर्म-उत्सवादि सब के अलग हैं ।।१।।
अति खुले उत्सवों में , किन्तु भिन्नता ही जी में ;
स्वसंस्कृति मान जुदा डालते वे पग हैं ।।२।।
गुट्ट उनके निराले, मठ-मंदिर सजा लें,
मूर्ति पूजा-ठाठ कही, कही मूर्ति त्याग है ।।३।।
तीरथ को दौडे जाते, औरों को बढावा देते,
उजड़ा इधर गाँव, इन्हें नहीं जाग है ।।४।।
भिन्न सभी मत पंथ, भिन्न संत, भिन्न ग्रंथ,
परस्पर निंदा निजी गुटों में सुनाते हैं ।।५।।
शिष्य शाखाएँ विभिन्न, बहु भाँति गुरु जन,
एक से न एक मिले, उत्सव मनाते हैं ।।६।।
खरा-खोटा ज्ञान देते, अंध रूढ़ियाँ सिखते,
उप शाखाए शाखाओं में भी अपनी शान जताते हैं ।।७।।
ये न जब होंगे एक, कहाँ संगठन नेक?
इसका इलाज कौन? कहिये ये बातें है ।।८।।

(चौं) श्रोताओं का सवाल मार्मिक । जवाब एकहि सुन आवश्यक ।।
यहि गाँव से ले दुनिया तक । बात उपाय सोचनेलायक ।।९।।
भिन्न भिन्न गुट आज बने हैं ।अलग पक्ष भी खूब घने हैं ।।
रूग्ण संकुचित ऐसे ही मत । समाज को सिखलाते वे नित ।।१०।।
बाढ अंध श्रद्धा में लाते । जन में मिथ्याचार बढाते ।।
उन के उत्सव-प्रकार सारे । विचित्र ही होते है प्यारे ।।११।।
बरबादी है अपार धन की । है रोपनी अनिष्ट चलन की ।।
फूट डालते वे लोगों में । करनी कितनों की अस जग में ।।१२।।
ढोंगी साधू कई भेष धर । जीते एसी गुटबंदी पर ।।
सच्चा ज्ञान नही ये देते । जनता को, निज स्वार्थ साधते ।।१३।।

(दो.) ऐसा जब तक भी चले, भ्रम में डूबे गाँव ।
खड्डे खाई पड़े जस, सुधार पथ समभाव ।।१४।।
उपाय इस का एक है, हम न रखें अलगाव ।
उन में निर्भय जा मिलें, तभी सधे समुदाय ।।१५।।

पंथबाजी व ढोंग का निर्मूलन

(चौ.) किसका कोई रहे पंथ भी । हो कोई गुरु या महंत भी ।।
सबको अपना सदा समझ कर । सब से मिल जुल जावें खुल कर ।।१६।।
पंच महोत्सव महान अपने । मानें तुच्छ अन्य सब जितने ।।
हम ही अगर अलग पड़ जावें । फिर कैसी एकता निभावे ? ।।१७।।
इसीलिये फैसला सुनाता । सन्त-जयंति पुण्य दिन आता ।।
सब ही मिल कर उसे मनायें । सार्वजनिक स्थान सुहाये ।।१८।।
किसी पंथों का संत जो आये ।।'अलग' शब्द मुँह में नहि लायें ।।
संत सुजन नहिं जाति पंथ के । विश्व सखा वे सब दिगंत के ।।।१९।।
सब पंथों के करो महोत्सव । जिन में दिखे सत्य का गौरव ।।
उन के द्वारा विशालता के । भाव भरो मन में जनता के ।।२०।।
अलग-थलग की नहिं रहनी हो । घर में ही उत्सव न मनाओ ।।
लेना है सहयोग सभी का । यही मर्म हैं संघटना का ।।२१।।
उत्सव का परिणामहु जिससे । हों प्रभावी कार्यक्रम ऐसे ।।
उत्तम भजन, श्रेष्ठजन भाषण । रखो वहाँ प्रवचन संकीर्तन ।।२२।।
सन्तों का गुण गौरव करना । ओछे चमत्कार से बचना ।।
महान आचार्यों का सुंदर । प्रभाव डालो समाज मन पर ।।२३।।

(दो.) **नामदेव, ज्ञानेशजी, नाथ, तुका द्युतिमंत ।**
गाओ चोखा, साँवता, दामाजी सत्संत ।।२४।।
संताजी, सेना, सजन, गोरोबा, रविदास ।
वामन, श्रीधर, संतकवि, कृष्ण दयार्णव खास ।।२५।।

(चौ.) गाओ तुलसी दास गुँसाई । राम दास, कवि केशव भाई !
विष्णू दास सुंदर दासादि । संत कबीर सूरदासादि ।।२६।।
श्री शंकराचार्य, रामानुज । मध्व, वल्लभाचार्य यशोध्वज ।।
बसवाचार्य, चक्रधर स्वामी । हित हरिवंश, रमण ऋषि नामी ।।२७।।
गाओ गोरख, शहादत्तजी । श्री दयाल, गोविंदनाथजी ।।।
नरसी मेहता, रामतीर्थगुरु । तथा आडकोजी समर्थगुरु ।।२८।।

पैगंबर, मंसूर की सादी । शेख फरीद, कँवर रामादि ।।
स्मरो बुद्ध, जरश्तु तपस्वी । स्वामी विवेकानंद यशस्वी ।।२९।।
गुरु गोविंद सिंह, गुरु नानक । गौर, कृष्ण, चैतन्य अलौकिक ।।
परम हंस राम कृष्णहु ठाकुर । महावीर स्वामी जैनेश्वर ।।३०।।
तालस्ताय, महात्मा ईसा । निडर मार्क्स, सुकरात अनीसा ।।
राय राम मोहन, श्री गांधी । ज्ञान निधान दयानंदादि ।।३१।।
सुभक्त लल्ली, मुक्ता, मीरा । अक्क, जनाई, कान्होपात्रा ।।
रंगनायकी, निवेदिता ही । अनिबेसेंट, वेणु, बहिणाई ।।३२।।

(दो.) यों प्रभाव युत उचित जो, उनके चरित महान ।
उन की देन समाज को, बतलाओ शुभ ज्ञान ।।३३।।
करो पुण्य तिथि आदि भी, रखो प्रार्थना साथ ।
कहे सुवक्ता जीवनी, सुप्रभाव की बात ।।३४।।

(चौ.) संत-विशाल भाव समझाओ । समता पथ अनुसरण कराओ ।।
समाज भी वैसी ही प्रगति । करे इसलिए संत की स्मृति ।।३५।।
सन्त भिन्न हैं देहाकृति में । पर अभिन्न वे ध्येय-नीति में ।।
दिखे साधनों में बहुत्व है । समान पर सिद्धान्त तत्त्व हैं ।।३६।।
हो अभ्यासपूर्ण वर्णन जब । मिलन हो सके सब ही का तब ।।
फिर हर भांति के ढोगों का । होगा अंतहु तिन कुकर्म का ।।३७।।
वर्ना पंथो के दल बनते । सहयोगी आधार तोड़ते ।।
पेटू दंभी जन उस ही से । अपना पेट चलायँ सदा से ।।३८।।
भुलावे में निज भक्तन डालें । नाना उत्सव आयोजन लें ।।
जीवन अस अंधी श्रद्धा से । छिन्न-भिन्न हो गाँव गाँव में ।।३९।।

(दो.) छोटे घेरों को हटा, मिलें खुले मैदान ।
सत्य बात ही होय तँह, मंगल सर्व समान ।।४०।।
गाँव पधारे संत जो, खुला हो उनका मंच ।
उत्सव प्रवचन प्रार्थना, सहभाग सभी का टंच ।।४१।।

(चौ.) वहाँ चले नहिं भाँड कहानी । नही अनिष्ट प्रथा मनमानी ।।
सत्य ज्ञान का पथ जनता को । इससे मिले सहज में देखो ।।४२।।
धार ज्ञान की जब बहती है । भेद विशेष नहीं बचते हैं ।।
मिली जुली ही बहुविध बातें ।। सब पंथो के लोग बताते ।।४३।।
भेद भाव हो खत्म इसी से । फैले तत्व बोध जन उस से ।।

खतम पंथ बाजी करने का । उपाय यही अनमोल गठन का ।।४४।।
बैठें जन समभाव जहाँ पर । चर्चा चले यथार्थ वहाँ पर ।।
देवे; संत; धर्म का एका । धीरे धीरे सधे अनोखा ।।४५।।
बारम्बार इसीसे मौका । लाओ ऐस गाँव मिलन का ।।
भिन्न भिन्न पंथों के भी गुण । अमित जुटाए साधू सज्जन ।।४६।।
ऐक्य दृष्टि से ही संतोत्सव । गाँव गाँव हो सहर्ष अभिनव ।।
जिस से महा तीर्थ का गौरव । गाँव पा सकेगा हर संभव ।।४७।।

ग्राम तीर्थ व यात्रा नियोजन

तीर्थ में निर्मल साधू होते । तत्व विवेचन करते रहते ।।
तत्त्व बोध होवे जनता का । इससे होय महत्व तीर्थ का ।।४८।।

(दो.) **नहीं तो तेवर संत ही, बदलें गरज के साथ ।**
पाथर जल ही तीर्थ में, देवहि पैसा हाथ ।।४९।।
जिस तीरथ में बोध ही, पूरा मिले न आज ।
वहाँ दौड़ कर कौन सा, पावे लाभ समाज ? ।।५०।।

(चौ.) यात्रा जाये सेवा करने । विचार की ऊर्जा मन भरने ।।
जिससे ऐसा काम उठाये । तीर्थ स्वयं निज गाँव बनाये ।।५१।।
करे यात्रा चारों धाम की । माँगत फिरें, न करे काम ही ।।
पुण्य कर्म नहिं इसमें बनता । झूठा भ्रम, अभिमानहि बढ़ता ।।५२।।
भूखे बच्चे गाँव में छोड़े । व्यर्थ कुंभ मेले क्यों दौडे ?
ऐसा नहीं कि देव गाँव का । है छोटा, या बड़ा तीर्थ का ।।५३।।
परंतु लोग बलि बनने जाते । पंडाओ के जाल उलझते ।।
भेड़ो के जैसे सो चलते । दौड़ रूढ़ि के पीछे मरते ।।५४।।
पंढरपुर से छह कोसों पर । संत साँवता रहा जनम भर ।।
यात्रा नहिं कर कार्य उठाया । गाँव में अपने ही प्रभु पाया ।।५५।।
जनहि जनार्दन की सेवा का । काम करें गर सच्चा बाँका ।।
पंढरपुर का पुन प्रताप ही । दौड़ा आवे गाँव आप ही ।।५६।।

(दो.) **बसें संत सेवक जहाँ, रम्य तीर्थ वह ग्राम ।**
स्फूर्ति लेय तहँ से बने, भू-वैकुंठ स्वग्राम ।।५७।।
जहाँ प्रेम पावित्र्य हो, वही तीर्थ अरु क्षेत्र ।
जायें क्यों तीरथ जहाँ, हालत चित्र विचित्र ? ।।५८।।

(चौ.) सार्वजनिकं स्थान गाँव का । समझो तीर्थहि उसे गाँव का ।।

तन-मन-धन सब कुछहि वहीं पर । दानवीर का लगे निरंतर ।।५६।।
तीरथ कोई खर्च न करना । पहल गाँव की राह सुधरना ! ।।
दिव्य पुण्य भी तीर्थों के तब । मिलें गाँव सेवा से ही सब ।।६०।।
गाँव की सब सम्पत्ति बचाओ । पावन प्रतिमा गाँव बनाओ ।।
फिर बिन क्षेत्र-तीर्थ जाये ही । ग्रामोद्धार पुण्य दे भाई ! ।।६१।।
यज्ञ, उत्सव, सप्ताह आदि का । जमा होत है जो भी चंदा ।।
वह खरचो कुछ साल इसी से । ग्रामोन्नति कामों में मन से ।।६२।।
जयंति हो या होय पुण्यतिथि । सप्ताह होय या पंगत आहुति ।।
गाँव-राष्ट्र का हाल देख कर । वैसा पुण्य कर्म कर ले फिर ।।६३।।
सब पंथों के जन जुट जावें । सब के हित का कार्य उठावें ।।
अडियल बन कर हठ धर्मी से । काम करें नहिं उलटे सीधे ।।६४।।
नतरु चला कोई वन जाये । देवी कोई बलि चढ़ाये ।।
कोई भागवत बड़ा रचाये । पैसा फूंके जस मन आये ।।६५।।

(दो.) **कोई चंदा कर बड़ा, देवी पशु बलि पाँति ।**
ग्राम सफाई बिन मगर, रोग हटे केहि भाँति ।।६६।।
गाँव के मेले में कहीं, अमित बुरे लख काज ।
धन उडाय, सो जहर सम, व्यापे अंग समाज ।।६७।।

(चौ.) गठन करें 'मेला समिति' का । उत्सव, मेला क्षेत्र, हाट का ।।
करे सुधार ध्यान रख कर जो । राष्ट्र भाव का होय उचित जो ।।६८।।
कर लो ग्रामोन्नति-आयोजन । मति-बल राष्ट्र भाव का वर्धन ।।
दिग-दिगंत में तीर्थ धाम सम । कीर्ति गुंजा दें स्व गाँव की हम ।।६९।।
अपन गाँव या पास गाँव में । होंय जिस समय जात्रा मेले ।।
मिल कर जाए वहाँ सभी जन । सेवा करें स्वयं सेवक बन ।।७०।।
विशिष्टता भी तैसे अपने । गाँव की दुनिया में सब जाने ।।
उसके मित प्रदर्शनी मेले । गाँव में शुरू करें अपने से ।।७१।।
सुन्दर पथ सीधे अरु निर्मल । स्वच्छ पवित्र स्वास्थ्यदायी जल ।।
सरल आदर्श ग्राम रचना के । प्रस्तुत करें वहाँ बनवा के ।।७२।।
मूत्रालय शौचालय भी हों । वस्तुएँ श्रेणी वार लगी हों ।।
वैभव सोइ देश का होवे । ऊँचा स्थान जगत में पावे ।।७३।।
विविध मनोरंजन चलने दो । व्यसन तमाशे मत आने दो ।।
राष्ट्रीयता के प्रति लोगों की । होय प्रेरणा रुचि बढ़ने की ।।७४।।
उद्यम की आधार कलाएँ । वादनादि, व्यवहार कलाएँ ।।
मानवता आचार कलाएँ । मेले में निश्चित दिखलायें ।।७५।।

(दो.) मानव कैसे पथ चले, बोले अरु बैठाय ? ।
कैसा होवे आचरण, घर हो या समुदाय ? ।।७६।।
इनके सुंदर सबक दो, ऐक्य सिखाओ गाँव ।
यात्रा उत्सव से पड़े, सब में नया प्रभाव ।।७७।।

(चौ.) अनिष्ट रूढ़ियाँ खत्म करावे । सेवक निज जी जान लगावे ।।
क्षेत्र शुद्धि के उपाय सारे । करें, हाथ में लेवें सारे ।।७८।।
महाराज दयानन्द स्वामी । 'आर्य समाज' हुआ है नामी ।।
काम किये उनने भी कितने । भ्रमितों को सत राह बताने ।।७९।।
संत गाड़गे त्याग महर्षी । 'सेवा मण्डल' संस्था वैसी ।।
क्षेत्र शुद्धि कार्यों में तत्पर । भली भाँति वे रहे निरंतर ।।८०।।
उसी प्रकार गाँव के सज्जन । मिल कर कर लें पर्व नियोजन ।।
'यात्रा' का है अर्थ 'आ तरो' । जन में यह संदेश प्रसारो ।।८१।।
विशाल जन समुदाय जमायें । सदुपदेश उत्तम करवायें ।।
समझें-कहें संत अरु नेता । जनजीवन में सामाजिकता ।।८२।।
जुटे हजारों मेले में जन । बिगड़े किसी का स्वास्थ्य रंच न ।।
आयें जायें सभी सहज ही । प्रबंध ऐसा रखें सुगढ़ ही ।।८३।।
सुन कर जायें कथा-कीर्तन । जीवन का असबाब लिये जन ।।
मिले परस्पर वे सादर ही । लेन-देन चलती सुंदर ही ।।८४।।

(दो.) यही रूप-रेखा लिये, करो समितियाँ ठीक ।
सुधार होवे सहज ही, समाज में सटीक ।।८५।।
स्पर्धाएँ बहुविध रखो, प्रदर्शनी उपयुक्त ।
जन शिक्षा के हर तरह, साधन करो प्रयुक्त ।।८६।।

संत सम्मेलन की आवश्यकता

(चौ.) मेले के निमित्त से पावन । बहु विध पंथों के संमेलन ।।
संत-पंडितों के हों भाषण । जो दे निर्मल विचार-दर्शन ।।८७।।
दिल न दुखाते किसी पंथ का । सम्मान करो तिन सत्य तत्व का ।।
मूल एकता दिखा सत्य मय । समापनहि में करो समन्वय ।।८८।।
घुल मिल जावे जहाँ भिन्नता । नही तहाँ चलती दांभिकता ।।
विचित्रता वश अलग रहेगा । तो प्रवाह में विवश बहेगा ।।८९।।
हीरा और काँच निरखेंगे । सच्चा-झूठ लोग परखेंगे ।।
जाहिर होय विचार कसौटी । हो जावेगी वह परिपाटी ।।९०।।

(दो.) क्या मिथ्या क्या सत्य है ? कौन सुसंत-असंत?
यही जान लेंगे सभी, लोग समन्वय पंथ ।।९१।।
हाथी पूरा दिख गया, फिर कोई जन्मान्ध ।
जता अंग कह नहिं सके, 'अँग है वही गयंद' ।।९२।।

(चौ.) संत देव के जस नामों पर । पंथ जगत में बढ़ें बराबर ।।
घर-घर सत्संदेशहु उनका । पहुँचे, हो जावे जग एका ।।९३।।
पंचम गुरु ने किया संकलित । गुरू गोविंदसिंह स्थापित ।।
'आदि ग्रंथ' संतोक्ति संकलन । जिस से हुआ संगठन पोषण ।।९४।।
नामा जी महिपति की निष्ठा । ला कर संत-चरित्र इकट्ठा ।।
भावुक जन में स्नेह परस्पर । भरे, एकता सूत्र पिरो कर ।।९५।।
नामदेव ज्ञानेश्वर सेवा । पंढरपुर 'गोपाल कलेवा' ।।
सभी पंथ-सन्तों का गुच्छा । किया उन्होंने यही सदिच्छा ।।९६।।
वैसे सन्तों के सम्मेलन । सब सन्तों के भी स्मृति दिन ।।
यदि निज गाँव मनायेंगे हम । सधे सहज में शुभ जन-संगम ।।९७।।
नदियाँ सभी सिंधु में मिलकर । पाती हैं तीर्थत्व महत्तर ।।
वैसे पंथ एक हो जाते । तीर्थ रूप हैं गाँव बनाते ।।९८।।
करो कहीं सन्तों के उत्सव । पर न चमत्कारों का गौरव ।।
दो महत्व कर्तव्य सुपथ को । जगा उसी जीवन-स्मृति को ।।९९।।
चले गाँव में यों कार्योत्सव । वही पंढरी-काशी अभिनव ।।
प्रसन्न जिस भू पर नर-नारी । है कोई दुखिया न भिखारी ।।१००।।
किया न ऐसा निज ग्रामों में । आये घूम सभी तीर्थों में ।।
किंतु जीवन की मुक्ति न होगी । कहता तुकड्या वे भव रोगी ।।१०१।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
चौबीसवें अध्याय में तत्त्व तीर्थ क्षेत्र का ।
शुभ मर्म मेले-पर्व का, सब पंथ-मिलन पीठिका ।।१०२।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

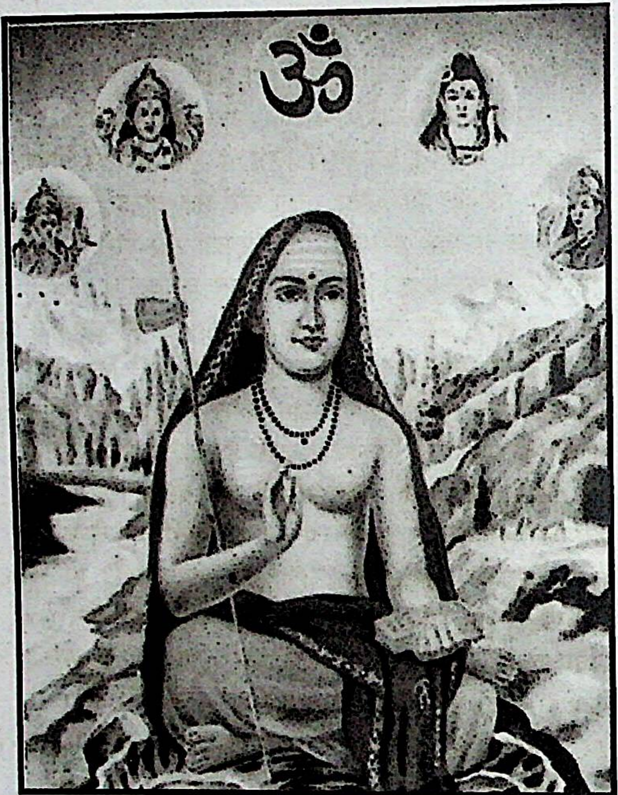

श्रीमत् आद्यशंकराचार्य

पचीसवाँ अध्याय

देव–देवल

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

भिन्न पंथीय उपासनाओं का पर्यवसान

(मनहरण) श्रेष्ठ साधु–सन्त विचारों के होते हैं उदार,
संचरे न भेद भाव किसी भाँति मन में ।।१।।
किन्तु पंथियों की चले अलग ही घुड़ दौड़,
उनके विभिन्न देव, मेल ही नहिं उनमें ।।२।।
भिन्न देव, भिन्न धर्म, भिन्न उपासना कर्म,
कैसे होगा भावना–संगम जन–जन में ? ।।३।।
किये संत–संमेलन, क्षणिक हुआ मिलन,
किन्तु भेद वृद्धि चले नित्य–उपासन में ।।४।।

(सवै.) जिस देव की लोग में ख्याति उड़ी, जिस देवल बाढ़ चली धन की।
भजते जन तो उस देवत को, कुछ राह चलें अपने मन की ।।५।।
कहिये सदुपाय प्रभाव भरा, चिर कालिक, जो सहजत्व लिये ।
एकात्मकता–संस्कार बढ़े, जिस से सब में अपनत्व लिये ।।६।।

(चौ.) श्रोताओं का सवाल मार्मिक । जो कि ग्राम हित में आवश्यक ।।
संतों के सम सब देवों का । ऐक्य हमें अब करना होगा ।।७।।
धर्म–कर्म देवादि अपने । लोग विशेष अलग ही समझें ।।
जिससे गाँव एक होकर भी । मनोभाव हो गये अलग ही ।।८।।
अपना अपना चिन्ह बनावे । वह पहिचान पंथ हो जावे ।।
लगें इसी से जस दुकानें । होंय सजाई निज पंथो ने ।।९।।
कहता कोई राम बड़ा है । दूजा कहता श्याम बड़ा है ।।
कहता तीजा सबसे ऊपर । है दुनिया का मालिक शंकर ।।१०।।
कोई कहता बड़ी देवियाँ । इतू, मरी माँ, सत्ती मैयाँ ।।
भैंसा बाबा, टोल्या भैरव । बढ़ चढ़ कर गाते हैं गौरव ।।११।।
कोई कहे श्रेष्ठ हैं हरि हर । वंद्य किसी को नाल्या हैदर ।।

कोई मुर्गे-बकरे देकर । पूजे नागेश्वर, बाघेश्वर ।।१२।।
सोने के सो देव बनाते । आड़े समय बेच कर खाते ।।
होत फजीहत है देवों की । ओर से अपने ही पूजक की ।।१३।।
कोइ देव को बलि दे जाते । देव के नाम मांस भी खाते ।।
करे कोइ मद पान निरंतर । देव चरण का अमृत कह कर ।।१४।।

(दो.) **पाथर देवी देवता, सोने का तिन पाट ।**
चोरन डर पहरा लगे, सांझहि बंद कपाट ।।१५।।
देवों पर देते चढ़ा, मन भावन सिंगार ।
नेत्र टिके सिंगार पर, कहाँ देव दीदार ? ।।१६।।

(चौ.) एक कहे गल माला सुन्दर । एक कहे मणि मुकुट मनोहर ।।
एक कहे स्वर्णिम आराइश । शोभित हुई देव के चहुँ दिश ।।१७।।
एक फिदा शुभ सिंहासन पर । एक कहे भर ज़री पटम्बर ।।
अरु नव-रत्न कंठ आभूषण । केसर-कस्तूरी का लेपन ।।१८।।
कोई कहते देव जगे हैं । अब बैठे, अब भोग लगे हैं ।।
अब विश्राम चला सुन बाजे । बीड़ा ले एकान्त बिराजे ।।१९।।
प्रभु को सोने दो मखमल पर । द्वार सभी उढ़का दो बाहर ।।
कोमल कर पग बिना दबाये । प्रभु को नींद कहा से आये ।।२०।।
मतलब जो जो हम को भावे । प्रभु को वह सप्रेम दिलावे ।।
प्रसन्नता तब होगी उसकी । यही मान्यता है बहुतों की ।।२१।।
फिर वे दुर्गुण हैं या सद्गुण । सोचे कौन इसे भावुक जन?
अंध श्रद्धा के प्रवाह में मिल । चलते जाते पर बिन मंजिल ।।२२।।
पद सेवन, अर्चन या वंदन । दास्य, साख्य या आत्म निवेदन ।।
इन का ले बहिरंग अर्थ जन । करते भक्तिकाहि विडम्बन ।।२३।।

(दो.) **विरह भक्ति कोई रँगे, संग माधुर्य कोइ ।**
आत्म भक्ति की स्तुति, करत मगन रह कोइ ।।२४।।
'राम बडा' 'अल्ला बड़ा' होत वितंडवाद ।
मूर्ति धड़ाधड़ टूटतीं, धधकन लगे विवाद ।।२५।।

(चौ.) यीशु-भक्त कर निन्दा भारी । देव हिन्दुओं के व्यभिचारी ।।
सोलह सहस औरतें बरता । देव बने वह कैसे फिरता ? ।।२६।।

जो करना वह करे न कोई । घर-घर होती रहे लड़ाई ।।
वाह! मूर्ति पूजा की महिमा । भली जान ली सबने गरिमा ! ।।२७।।
होंय देव के कारण झगड़े । अदालतों में पहुँचे सगरे ।।
'सत्य कहूँ मैं, सौंह उठाई । देव आदि की देत दुहाई ।।२८।।
अस असत्य हर कोइ आचरे । लोग नास्तिक होवें सगरे ।।
कहें 'देव से क्या पड़ता बन ? । कितनों का भी कर लो पूजन ।।२९।।
दृष्टि समझने की न रही है । कहें देव की शान गयी है ।।
जब चूहे ने की लघु-शंका । देव-मूर्ति पर बैठ आशंका ।।३०।।

भाव में देव पूजकों में भेद

उलटे कहे देव है जागृत । मिले तुरंत भाव के आवत ।।
सो कहता वह भाव स्वयं ही । साक्षात देव है संशय नाहीं ? ।।३१।।
एक जगह दैवत जागृत है । और जगह क्या खड़े भूत हैं ?
कैसी उलटी समझ हमारी । प्रभु-व्यापकता भूले सारी ।।३२।।
जन में भेदभाव जो छाया । पण्डाबाजी की यह माया ।।
शास्त्रों का आधार खड़ा कर । समाज को ले गये अधस्तर ।।३३।।
देव पूजा सोई अस मानी । कहत पुजारी जो जो जाई ।
अस करना मति गिरवी रखना । कहाँ सत्य तहँ देव भावना ? ।।३४।।

(दो.) जैसी जिस की भावना, तैसा जाने देव ।
इस से दिखता सहज ही, प्रमुख भावना भेद ।।३५।।
जान मर्म यह, संत जो, रचे देव स्थान ।
उसका गौरव देख जन, करे देव-सम्मान ।।३६।।

(चौ.) कर इक सज्जन पत्थर पूजा । औरों को फिर देव न दूजा ।।
उसी देव का प्रचार बढ़ता । वहीं लगे फिर मेला यात्रा ।।३७।।
ज्ञानदेव पंढर नहिं जाते । नामदेव मेला न सजाते ।।
कहो कहाँ फिर लाख-लाख जन । जा कर करते विठ्ठल-पूजन?।।३८।।
सभी जगह है देव सरीखा । बने पर संगति से प्रिय सखा ।।
श्रेष्ठ देव भी बने उपेक्षित । लोभी, पंडे जहँ जहँ पहुँचत ।।३९।।
हम लोगों में यही हुआ है । भाव दूसरा यहाँ बढ़ा है ।।
रही न चाहत देव-भजन की । चढ़ी नजर में कीमत धन की ।।४०।।

धन संपन्न बड़ा देवालय । गूँजे वहीं बड़प्पन की जय ।।
उपासना में खरचो अति धन । कहते 'होंगे प्रसन्न भगवन' ।।४१।।
देव बड़ा न हो श्रृंगार से । देव न बड़ा भव्य मंदिर से ।।
घण्टे बजतें रहें रात दिन । नहिं इस में है देव बडप्पन ।।४२।।
देव बड़ा न दीप माला से । देव बड़ा न यज्ञ-शाला से ।।
पर्वत तुल्य विशाल पिंडिका । यह न देव-गौरव का डंका ।।४३।।
देव न बड़ा प्रकृति-शोभा से । या असीम मेला लगने से ।।
विभव प्रतिष्ठाशाली पूजक । यह न देव-गरिमा का सूचक ।।४४।।

(दो.) देव भाव ही से बड़ा, उच्च भाव अनुरूप ।
अंतर मन की उपासना, है सब की सम रूप ।।४५।।
फिर वह कोई देव हो, वहाँ भेद सब व्यर्थ ।
ढ़ले एक चैतन्य के, अलंकार जगतार्थ ।।४६।।

स्वरूपतः व कार्यतः देवों की एकता

(चौ.) हुआ अनेक एक प्रभु होकर । बना अनंत रूप नट नागर ।।
देखें उसे गौर से फिर से । दिखे एक ही कार्य रूप से ।।४७।।
भेद नहीं है कुछ हरि-हर में । बसें सो इक दूजे के मन में ।।
राम-रहीम एक ही सम्यक । देवी-देव सभी एकात्मक ।।४८।।
धरा धनुष तो राम हुआ है । धर मुरली घनश्याम हुआ है ।।
कटि कर रखे कहावे विट्ठल । परंब्रह्म वह सगुण सुनिर्मल ।।४६।।
सभी देव तो एक मूल में । स्मरण साधना भेद स्थूल में ।।
विभिन्न रूप धरे कितना ही । किन्तु तत्त्व से एक तना ही ।।५०।।
व्याप्ति एक ही दीप्ति एक ही । रूप अन्य प्रसंगवश धरही ।।
लक्ष्य देव सबहि इक पाने । तत्पर तेहि हित प्राण गँवाने ।।५१।।
सज्जन दुख कोई न उठावे । भूखा-दीन न कोइ रहावे ।।
इसके लिए करे प्राणार्पण । समय पड़न पर, यही देव गुण ।।५२।।

(दो.) स्वयं जिन्होंने यों किया, बलि हो गये जनार्थ ।
हुए वेहि इस लोक में, देव-देवता सार्थ ।।५३।।
परित्राण सुजनादि का, कंटकान्त अनिवार्य ।
रक्षा सत्, गुण, न्याय की, सब देवों के कार्य ।।५४।।

(चौ.) छोड़ तत्त्व यह, वाद बढाना । व्यर्थ देव से देव लड़ाना ।।
अपनी हवस-बड़ाई खातिर । देव-चरित्र डुबो दे क्यों फिर?।।५५।।
सुजन टाल दें ऐसी दुर्मति । दें आदर अवश्य सब के प्रति ।।
किसी पंथ को दूर धरें ना । सबहि एक, यह अबसि बताना ।।५६।।
सब को मूल तत्त्व मंदिर का । उपासना का मर्म अनोखा ।।
समझा देना सही देवपन । कौन कार्य में होय चिरंतन ? ।।५७।।
इससे निरसे भेद कल्पना । यथार्थ मिलती भक्ति भावना ।।
निज-निज देवालय ही बेशक । मूल तत्त्व सब होंगे सार्थक ।।५८।।

मन्दिर यानी संस्कार केंद्र और उनकी विकृतियाँ

(हरि.) है प्रश्न इस पर एकका, क्या तत्त्व मंदिर का सही ?
मंदिर बने जो भिन्न ये, जड़ पंथ भेदों की यही ।।५९।।
इन पर चले डोजर अगर, सब एक मय हो जायेंगे ।
मंदिर बिना शुभ भक्ति में क्या, फर्क कुछ आ जायेंगे ?।।६०।।

(दो.) सुनो, होय नहिं एकता, अगर दुखाओ भाव ।
तत्त्व ज्ञान मंदिर उचित, उजरे यही उपाव ।।६१।।
गोद सुरम्य निसर्ग की, साधे प्रभु का भजन ।
मठ मंदिर बिन भी तहाँ, रमे निकट प्रभू मन ।।६२।।

(चौ.) पर मठ मंदिर, समाधि के स्थल । देहर देव स्मारक उज्ज्वल ।।
वहाँ, स्थान महिमा के कारण । स्फुरते दिव्य भाव सब के मन ।।६३।।
इससे नीव रखी सन्तों ने । चरित नीति लोगों में बढ़ने ।।
साधक को एकान्त मिल सके । ऐसे मन्दिर के होने से ।।६४।।
परेशान नर काम काज में । झगडे कहीं पुत्र-पौत्रों में ।।
शान्ति न मिले कहीं भी पल भर । हेतु विचार न कोई अवसर ।।६५।।
भक्ति स्थल ऐसे में जाना । स्मरण महापुरुषों का करना ।।
उनके धीरज का कर चिंतन । समाधान पाना अपने मन ।।६६।।
तत्त्व बिसारे बारबार मति । मन्दिर दें विवेक की स्मृति ।।
सच्ची सत्कर्तव्य भावना । ऐसे स्थल जगायें कामना ।।६७।।
वार्षिक उत्सव, पुण्यस्मृति दिन । जयंति, चातुर्मास्य, पर्व जन ।।
मंदिर में सामूहिकता से । सभी मनाते प्रसन्नता से ।।६८।।

सामुदायिकता के ये साधन । गाँवों के आनन्द आयतन ।।
पवित्रता के उद्गम सुंदर । मंदिरादि छोटे स्थल वर ।।६६।।
मंदिर सच में उत्तम शाला । जन-शिक्षण जहाँ चले निराला ।।
जितनी भी निधि हो एकत्रित । इसी कार्य में खरचो निश्चित ।।७०।।
गाँव करें सांस्कृतिक उन्नयन । सब में प्रीति, नीति, संवर्धन ।।
इन कामों के केंद्र महत्तम । हैं सब मठ, मंदिर या आश्रम ।।७१।।

(दो.) प्रेम भाव हर जीव में, गुण-गौरव बढ़ि जाय ।
गाँव-गाँव ने इसलिए, मंदिर लिये बनाय ।।७२।।
मंदिर संस्थापित हुए, उच्च भाव की नीव ।
पर अब तो विपरीत ही, चले खेल निर्जीव ।।७३।।

(चौ.) मंदिर, तीरथ, हुए दुकानें । हुआ कमाई पूजा माने ।।
दान पात्र आगे बढ़ जाते । सभी पेट के हित ललचाते ।।७४।।
मंदिर बंधी गाय अरु भैंसें । जहँ-तहँ थल रहते गंदे से ।।
धूप दीप-अर्चना कहाँ है ? सारा धुआँ तम्बाकू का है ।।७५।।
वहाँ पुजारी चौपड़ खेले । गणिका गाना कराते छैले ।।
नौटंकी या रास-भँडौआ । खुला चले मंदिर में जूआ ।।७६।।
मंदिर का वह विशाल बाड़ा । गुण्डों का बन गया अखाड़ा ।।
उस में कोई सवाल उठाने । घबराते हैं बड़े सयाने ।।७७।।
मंदिर कुछ महिलाएँ जातीं । अंध भक्ति से सुनती पोथी ।।
सब का ध्यान मनोरंजन में । रुचि कोई नहिं सार तत्व में ।।७८।।
कदम-कदम पर झगड़ें होवें । फजिहत भोले भक्त की होवे ।।
धन हित खींचातानी सारी । करते पंडे और पुजारी ।।७६।।

भेद भ्रान्ति निवारण व विकास साधन

समाधान इसका आवश्यक । सब मिली कदम लेय निर्णायक ।।
जितना भी धन देवल आवे । लोक कार्य में उसे लगावे ।।८०।।

(दो.) बने पुजारी बेतुके, सुने न किसकी बात ।
सभी गांव कर संगठन, बदले उन की चाल ।।८१।।
सुधार मंदिर योजना, जन शिक्षा आरंभ ।
सद् विचार फैलें तहाँ । हो गंभीर प्रसंग ।।८२।।

(चौ.) मंदिर नये नहीं बनवायें । पुराने सुंदर स्वच्छ करायें ।।
जो हैं उनसे लाभ उठायें । सत्कार्यों में फिर जुट जायें ।।८३।।
गंद पँसारा सभी सँवारे । कर लें निर्मल देव-दुआरे ।।
प्रसन्न पवन, पुष्प, तरु पौधे । उपासकों को शान्ति भाव दें ।।८४।।
खोलो मंदिर में ग्रंथालय । औषधालय, योग विद्यालय ।।
उपासना की सुंदर सुविधा । सब के लिए होय बिन दुविधा ।।८५।।
'अपने अपने मंदिर जाना । गैरों को नजदीक न लाना ।।
चूँकि देव बिगड़ेगा उनसे' ।। पागलपन है कहना ऐसे? ।।८६।।
इक़ का देव और को छू ले । भारी पाप होय बिन बोले ।।
अतः देव जिस का वह पूजें । कहते जन 'मानो मत दूजे' ।।८७।।
ऐसा कथन सांप्रदायिक का । अल्प बुद्धि या व्यापारी का ।।
मेरे मत में यह विकास की । नहीं धारणा जन जीवन की ।।८८।।
तज दो यह बर्ताव संकुचित । जो हो देवल रखो शुद्ध नित ।।
सब लोगों के लिए खुला ही । रखो स्थान दर्शन को भाई !।।८९।।

(दो.) देव पतित पावन भगे, क्या पतितों को देख ?
समान बालक सब उसे, उसही के हर एक ।।९०।।
जाति न कोई देव की, देव भक्त की जाति ।।
खतम करें अभक्त का, पंथहि देवल माँहि ।।९१।।

(चौ.) देव धेड,मातग, महार है । बंजारा, माड़्या, वड़ार है ।।
बम्मन, मेहतर, कुम्हार, माली । सब ही जाति देव वनमाली ।।९२।।
क्षत्रिय, वैश्य देव है ग्वाला । सब जग व्यापक देव निराला ।।
भरा देव ही देव सगर है । भूमण्डल में एकमेव है ।।९३।।
इस से सब ही का हो मंदिर । ब्राह्मण अथवा रहे डोम फिर ।।
जो भी होवे शुद्धाचारी । मंदिर का बस वह अधिकारी ।।९४।।
पंच गाँव ही देवल का है । हर मानव जो गाँव सखा है ।।
देवल से मानव का गौरव । बढ़े, वही हो प्रचार अभिनव ।।९५।।
सब मिल एक समय ठहरावें । सामूहिक प्रार्थना करावें ।।
उत्सव या प्रार्थनादि में जन । देते रहें समन्वय भाषण ।।९६।।
कुछ तो बोल सके हर कोई । यह अभ्यास करो सब भाई!

अपना सुख दुख भी भाषण में । प्रकट कर सको सुयोग्य जन में ।।९७।।
प्रवचन भी रख लो इस माफिक । जो राष्ट्रीय भावनावर्धक ।।
हो मानव पूरक मानव का । आदर्शहि मानव समाज का ।।९८।।

(दो.) प्रमाण दो ऋषि सन्त के, स्मरण कर इतिहास ।
उचित धारणा भविष की, भाषण में दो खास ।।९९।।
उत्सव, कीर्तन आदि में, केवल रंजन बाद ।
चमके जीवन गाँव का, वही उपक्रम साध ।।१००।।

(चौ.) अस सब मंदिर ठीक सजा लो । उपद्रवी को जाय निकालो ।।
देवस्थानों का भर देवें । सद् बुद्धि से, सत्कीर्ति से ।।१०१।।
केन्द्र मानवता विकास का । आगर सात्विक सम्पत्ती का ।।
ऐसा रखो गाँव के मंदिर । होय ग्राम संस्कृति का निर्झर ।।१०२।।
विशुद्ध प्रेम बढ़े सब में ही । तदर्थ मंदिर उपासना ही ।।
उपासना सक्रिय करने में । लगें सभी जन गाँव गाँव में ।।१०३।।
पंथ भेद पर नहीं ध्यान दो । गड़े विवाद न व्यर्थ कुरेदो ।।
मंदिरादि का हेतु शुद्धतर । आवे मानव निकट परस्पर ।।१०४।।
बीच जगह इससे देवों की । वैसे तो दुनिया हीं उन की ।।
जानकर जन लाभ उठायें । वर्ना सब कुछ स्वयं लुटायें ।।१०५।।
यही ज्ञान देने देव स्थल । बनवाये संतों ने निर्मल ।।
'जगत् जनार्दन' सूत्र मनोहर । वहाँ सीखना है अति सुंदर ।।१०६।।

(दो.) हर देवल में जा लखो, निज उपास्य चैतन्य ।
एक तत्त्व हर रूप में, निष्ठा यही अनन्य ।।१०७।।
आदर हो हर देव का, सात्विक पूजन देख ।
बने दिव्य गुण कर्म से, देव व्यक्ति हर एक ।।१०८।।

(चौ.) क्यों कर वहाँ भेद हम मानें ? कोई भजें किसे जस चाहें ।।
ज्ञात 'भाव ही देव' हुआ जब । एक वही थाती पाते सब ।।१०९।।
करे शंकराचार्य संगठन । सिखा देव-पंचक का अर्चन ।।
इष्ट देव सह अर्चा सब की । फिर गुँजाइश कहाँ कलह की ?।।११०।।
विरोधी देवों का फिर क्यों है । सब जीवों में एक देव है ।।
जीवों मेंहु भेद तो नाही । इसीलिये कर प्रेम सदा ही ।।१११।।

करो सुखी-संपन्न गाँव सब । खर्चे मंदिर निधि तेहि हित अब ।।
प्रभु को प्यारी यह सेवा ही । जीवों की उस के अपने ही ।।११२।।
तत्त्व जीव सेवा का जितना । किसी काम का महत्त्व उतना ।।
सब देवों के अस स्वरूप का । हो दिव्यत्व समान मान का ।।११३।।
यही धारणा समानता की । धर दिल बरतें सब जन एकी ।।
तब मठ मंदिर पंथ भेद कुछ । अड़ा न सकते विकास सचमुच ।।११४।।
हर देवालय होगा साधन । अधिक बढ़ाने ऐक्य संगठन ।।
कहता तुकड्या, जब कर ले जन । शुद्ध तत्त्वमय पुनरुज्जीवन ।।११५।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
पच्चीसवे अध्याय में प्रभु-मंदिरों का तत्त्व है ।
है मर्म निष्ठा का सही, देवादि का देवत्व है ।।११६।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

❦

स्वामी रामकृष्ण परमहंस

छब्बीसवाँ अध्याय

मूर्ति–उपासना

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

मूर्तिपूजा का मूलतत्त्व तथा घोर विडम्बन

(मनहरण) ईश्वर सभी में भरा, बँटा है न पंथादि में,
कमी बेशी फिर किसे क्यों कर कहेंगे हम? ।।१।।
सुन यह निरूपण, श्रोता एक पूछे प्रश्न,
व्यापक है देव तो फिर मूर्ति का क्यों उपक्रम? ।।२।।
किसी धर्म का हो चिन्ह, किन्तु मूर्ति लोक-जन्य,
देवत्व कहाँ का वहाँ ? उस की पूजा ही भ्रम ।।३।।
लेता न किसी की पूजा देव ऐसी झूठ मूठ,
'शुद्ध प्रेम चाहूँ' बोला भक्त से प्रभु स्वयम ।।४।।

(चौ.) सुन लो इस शंका का उत्तर । प्रेम जमाओ एक मूर्ति पर ।।
क्रम से विश्वाकार करो वह । पूजन का यह हेतु सुखावह ।।५।।
स्मरण करें प्रभु मूर्ति देख कर । उस के जीवन कार्य ध्यान कर ।।
तब मानस संयोग वही फिर । मन में देता दिव्य शक्ति भर ।।६।।
मन हो तत्पर करने चिंतन । बढ़े सत्य पथ का आकर्षण ।।
इसी हेतु से प्रतिमा पूजन । प्रयुक्त करते गये संत जन ।।७।।
मन को कुछ आधार चाहिए । प्रथम लिया साकार इसलिए ।।
प्रभु तो व्यापक सभी चराचर । होय मूर्ति तद्रूप न क्यों कर ।?।।८।।
पर जो हो सिद्धान्त परायण । जन जन में देखे नारायण ।।
भोलेपन से करते हैं जन । उसकी भी प्रतिमा का पूजन ।।९।।
व्यक्ति-मूर्ति की पूजा चलती । मैं न इसे भी मानूँ गलती ।।
पर सिद्धान्त चलाते झूठे । निपट मूर्खता यह जग लूटे ।।१०।।
राह बता दी सुखका पाने । नक्शा दिया मकान उठाने ।।
पर जो नक्शा रखे रहेगा । अन्त निराशा सो पायेगा ।।११।।
मिले न घर उसको बसने को । वैसहि रख छोड़े नक्शे को ।।

टूटा सपना उसका घर का । अब अहसास हुआ गलती का ।।१२।।
हुआ मूर्ति पूजा का सो ही । दिखते पंथ आज तो कोई ।।
उनका साधक थाह न देखे । क्या है बाद मूर्ति पूजा के ।।१३।।

(दो.) **बैठा लेकर मूर्ति ही, मूरख ज्ञानिन मान ।**
कहें मूर्ति पूजा बिना, हुए भ्रष्ट सब जान ।।१४।।
जान सका नहिं धर्म वह, नहीं मूर्ति का मर्म ।।
व्यर्थ बिचारे ने लिया, भ्रम मन में निज कर्म ।।१५।।

(चौ.) देव-पुजारी घर में कट्टर । बाज़ार में असत्य व मक्कर ।।
जिससे जो व्यवहार करे जब । उसीका ही वह शत्रु बने तब ।।१६।।
मंदिर में तो कान पकड़ता । साँस रोक कर नाक रगड़ता ।।
बाहर आ गालियाँ सुनाता । उलझ किसी से भी दहाड़ता ।।१७।।
हवन करे मंदिर के द्वारे । भिखारियों को बाहर मारे ।।
कभी पेट को बेसन रोटी । भूखों को दे सके न छोटी ।।१८।।
'सच ही बोले देव हमारा । मुझ को मगर झूठ ही प्यारा ।।
इतने पर भी भक्त सही हम' । करते दावा ऐसा हरदम ।।१९।।
'राम भक्त हम' स्वयं कहावें । पर न एक पत्नी व्रत भावे ।।
करता नित्य मारुती पूजन । बना व्यसन से ठठरी जस तन ।।२०।।
देव दलन दुष्टों का करता । कष्ट उठा भक्तन घर जाता ।।
किन्तु 'भक्त' देखो व्यभिचारी । घर पसरे हैं आलस भारी ।।२१।।
देव कहे 'मैं हूँ सब माँही । दीन रंक मेरे सुत दोई !' ।।
तिनहि उपासक सदा पेरते । करके शोषण चैन मनाते ।।२२।।
'प्रभु मेरे पतितों के पावन' । ऊँचे स्वर यह करता गायन ।।
मानव को अस्पृश्य हीन भी । मान करे अक्षम्य पाप ही ।।२३।।
देव मूर्ति के लिए मुकुट में । जड़ दे रत्न स्वर्ण मय पट में ।।
लंगोटी न श्रमिक को देगा । बनते मंदिर सोइ मरेगा ।।२४।।

(दो.) **यह क्या पूजन देव का? मूर्ति भक्ति का स्वाँग !**
कितनी घोर विमूढ़ता, व्यापी है सर्वांग ।।२५।।
देवल में करता भजन, बाहर झूठ बखान ।।
ऐसे पूजक को कहो, पूछे कौन सुजान? ।।२६।।

उपासना का विकास क्रम

(चौ.) इससे सभी बुराइ भुलाओ । पूज्यहि पूजा में पहिचानो ।।
सदभ्यास का व्रत सब लेओ । आगे कदम बढ़ाते जाओ ।।२७।।
रहे भावना जिसकी जैसी । देव दीप्ति वह मानें वैसी ।
चूके नहिं पर एक बात में । सत्कर्मों की उपासना में ।।२८।।
मूर्ति भक्ति का अर्थ एक ही । सम्यक होंय मूर्ति सम हम भी ।।
सदभ्यास से सबही वैसा ।। करें आचरण देवहि जैसा ।।२९।।
उपासते हैं मूरत जिस की । चरित्र गाथा पढ़ लें उस की ।।
आगे चल कर स्वयं कार्य भी । उसके जैसे करें हम सभी ।।३०।।
क्या कुछ किया देव ने मेरे? । जरा नहीं है मन में मेरे ।।
पकड़ रखी बस सिर्फ मूर्ति ही । सिवा पगलई कछू न होई ।।३१।।
ईश उपासन ऐसी होवे । नित्य भान कर्तव्य बढ़ावे ।।
कर्तव्य पूर्ति से मिले उच्चता । ईश ध्यान के साथ नम्रता ।।३२।।
आये संकट किसी काम में । चिंतन देव चरित का मन में ।।
दीप्ति बढ़ाये उस की निशि दिन । कर अभ्यास वृत्ति का वर्धन ।।३३।।

(दो.) गलती हो तो पूछ लो, संत से करो सुधार ।
कर जो निज बल हो सके, सब जीवन सुखकार ।।३४।।
स्थापित की मूर्तियाँ, ठौर ठौर इस हेत ।
याद साधको को रहे, निज पथ का संकेत ।।३५।।

(चौ.) पग-पग पर हो वृत्ति सुपावन । जगह जगह किया मूर्ति-स्थापन ।।
तरु, पशु, पक्षी में विभूति भी । मानी गई इसी कारण ही ।।३६।।
श्रद्धा से हो मूर्ति का पूजन । श्रवण, नमन, चिंतन, संकीर्तन ।।
मूर्ति देव सम, हों हम से भी । सेवा कार्य शुद्ध निर्लोभी ।।३७।।
सभी छोड़ कर भेद भावना । भाव हृदय बस इक उपासना ।।
जिस से होवे सुप्रसन्न मन । वही समझ लो श्रेष्ठ उपासना ।।३८।।
समाधान जहाँ मन पावे । सोई स्रोत शक्ति का होवे ।।
वही शक्ति अस काम लगावें । जिससे सद्गुण बढ़ते जावें ।।३९।।
सच्चे भाव करें सब पूजन । विनम्रता भर निज काया मन ।।
निर्मल वातावरण निरंतर । रहे, ध्यान में लाने ईश्वर ।।४०।।

मानस पूजन का महत्व है । विचार बल ही मूल तत्व है ।।
सब जीवों को निज प्रयत्न से । पद ईश्वरत्व मिले उसी से ।।४१।।
जीव हि मूल तत्व पहिचाने । आत्मन् रूप भूत सब जाने ।।
महात्म्य यही पूजन का जग में । गावें जिसे संत निज मुख से ।।४२।।

नाम जप का सही उद्देश्य

(दो.) **सन्त कहे, हरि नाम लो, यह साधन भी नीक ।**
अर्थ समझ जप हो मगर, तभी साधन ठीक ।।४३।।
शुद्ध मूर्ति प्रभु नाम की, जपत नाम मिल मोक्ष ।
'यज्ञोत्तम जप यज्ञ ही', जग जाने प्रभु साक्ष ।।४४।।

(चौ.) पर किस लिए नाम जपना है ? कार्य साधना क्या अपना है ?
मंजिल जाने बिना काम की । करनि निरर्थक सब जग जानी ।।४५।।
रटते नाम लोक हैं कितने । माला मणिक फिराते रहते ।।
किन्तु राम के रंग नहिं रंगती । पल भर को भी उन की बुद्धि ।।४६।।
मुख से नामोच्चारण करते । व्यवहार अधोगामी करते ।।
करते पाप सौंह भी खाते । देव धर्म का हलफ उठाते ।।४७।।
है यह नाम-स्मरण कहाँ का? देइ स्वार्थ वश दुसरन धोखा ।।
नहीं छूटती आशा तृष्णा । इंद्रिय विषयों की नहिं गणना ।।४८।।
रखें संगत व्यवहार यहाँ पर । करें नाम जप व्रतस्थ होकर ।।
स्थान मिले तब ही जीवन में । सुख साधक संतोषहु मन में ।।४९।।
मुख में नाम हृदय में चिंतन । सेवा कार्य हाथ में अनु दिन ।।
चरित्र संपादन कर लेता । वही धर्म का भक्त प्रणेता ।।५०।।
आती शक्ति नाम से तन में । संकट हरण करे जो क्षण में ।।
प्रबल रहे पुरुषार्थ किंतु जब । तभी फलेगी नाम शक्ति सब ।।५१।।

(दो.) **सुजन विरोध दुराचरण, इन दोषों से बाध ।**
नाम सफल तब जब तजे, तन मन वच अपराध ।।५२।।
हो मंदिर में नाम-जप, अथवा हो वन खेत ।
चलते हिलते जो स्मरे, वह ही यज्ञ सचेत ।।५३।।

(चौ.) अधिष्ठान हो मुख्य नाम का । हम लें बीड़ा उठा काम का ।।
यही सधाने सभी संत जन । बतला रहे नाम जप चिंतन ।।५४।।

तज पुरुषार्थ नाम ही गाये । वह आराम कहाँ से पाये?
यह तो काम हुआ अंधे का । घूमा पर प्रभु द्वार न देखा ।।५५।।
काम कर रहे राम हमारे । माँग रहे हम रोटी द्वारे ।।
हम बन कर घूमते भिखारी । भक्ति कहाँ की यह बेचारी ? ।।५६।।
राम करें असुरों का मर्दन । पूजन मात्र हमर अवलंबन ।।
शरण माँगते दिखा लचारी । भक्ति कहाँ की यह बेचारी ? ।।५७।।
होय विभक्त न, भक्त वही है । एक रूप बन जाय सही है ।।
देव जगत् का दुःख मिटावे । 'देव-देव' हम क्यों रट गावें ? ।।५८।।
ऐसा जप-तप जो भी करता । सिद्ध अन्त में मूरख होता ।।
ऐसे में फिर देव-दैव पर । मतलब कौन दोष भी मढ़ कर ? ।।५६।।
धोने पाप नाम जप लेना । फिर पातक करते ही जाना ।।
किस ने कहा धर्म यह बोलो? शुभाचरण का सत्पथ खोलो ।।६०।।
ऐसी है जिन की भी हालत । 'नाम जपी' सो हैं कहलावत ।।
मैं तो कहूँ, कलंक लगाते । वे सब नाम आदि के माथे ।।६१।।
इस से अच्छा जपें नाम ना । उत्तम रहनी सदैव रखना ।।
दे हरगिज नहिं दुःख किसी को । मिले नाम-फल सही उसी को ।।६२।।

(दो.) मेहनत से निज काम कर, उद्यम से धन पाय ।
सदा रहे प्रसन्न सो, देय सप्रेम सहाय ।।६३।।
विपति पड़े को साथ दे, भला बुरा नहिं कोइ ।
सुख दुख सब का आप सम, जाने 'सज्जन' सोइ ।।६४।।

(चौ.) यही सीखना सही सुजनता । कही नाम जप की महानता ।।
रहन भली मुख नित्य मधुरता । सब के साथ प्रेम का नाता ।।६५।।
पहला नाम, दूसरा चिंतन । तीजा दृढ़-प्रतिज्ञ होवे मन ।।
फिर हो कर सत्कार्य परायण । समाज सेवा साधो पावन ।।६६।।
यदि सत्कर्म न ये कर पावे । सद् गुण छोड़ नाम ही गावे ।।
आत्मोन्नति की सही पूर्णता । तब तो वह न कभी न पा सकता ।।६७।।
इसलिए संत वचनों पर । रखो धारणा खूब गौर कर ।।
तब ही ग्रंथ कथित अनुभूती । राम नाम की मिले सबूती ।।६८।।
प्रभुने कहा-'काम सव करना । निर्भय होकर देश बिचरना ।

सब दुनिया है देव पसारा । सेवा भाव साध लो प्यारा ।।६९।।
जनता देव रूप जो जाने । भक्ति उसी को प्रभु भी माने ।।
गहराए साक्षात्भाव जस । हो विश्वात्मभाव मुखरित तस ।।७०।।

(दो.) कहा 'नाम' इस हेतु ही, पावे जीव विराम ।
भ्रम अज्ञान को तोड़ने, दुःख मूल तेहि जान ।।७१।।
आप तरो तारो जगत् भरें शक्ति जग देश ।
सजाओ जन को नाम से, यही सन्त आदेश ।।७२।।

(चौ.) संत मुकुट मणि तुकाराम ने । अभंग गाये सुगम सलोने ।।
भोले भाले लोगों लायक । राह बताई सच व्यवहारिक ।।७३।।
गरजी तस अति सादी वाणी । भेदि रहस्य वेद वेदांगी ।।
भ्रांति निवारण की क्षण माँही । अज्ञानी जीवों की भाई! ।।७४।।
सहस मुखों में से वह गर्जा । 'वेद-मर्म हम नेही बूझा' ।।
पंढरीश रज शीश लगाये । शास्त्र गुह्य सब कुछ सो पाये ।।७५।।
कहे 'चाह नहिं ब्रह्म ज्ञान की । आत्मा भान के गौरव की भी ।।
भक्त अनन्य रहूँ मैं तेरा । देखूँ चहु दिसि तेरहि घेरा ।।७६।।
'हम पांडित्य कहाँ से लाये'? सेवा कर्महि हाथ उठायें ।।
करते काम नाम गायेंगे । पंढरीश तबही पायेंगे' ।।७७।।
प्रभु रीझा उन की सेवा पर । दुख में दौडा पुकार सुन कर ।।
लोग शब्द मात्र से तरते । चमत्कार हरि ऐसा करते ।।७८।।
हुए सन्त ऐसे कितने ही । मूर्ति-उपासक-नाम सनेही ।।
बने सेव्य ही सेवक होकर । महावीर हनुमंत तुल्य नर ।।७९।।

सभी भक्ति प्रथाओं का इत्यर्थ व पूजा का लक्ष्य

(दो.) भक्ति रीति हर पंथ की, तत्त्व सधे तो सार ।
यही समन्वय शुभ किया, 'परम हंस' आचार ।।८०।।
मूर्ति पूजा जप नाम ही, देव बने भज देव ।
लगे पूजने भेद तज, नर नारी जग देव ।।८१।।

(चौ.) मूर्ति-अर्चना, जप, तप कोई । तत्त्व साधना बाधक नाहीं ।।
संत जनों ने किया प्रमाणित । यह सब अनुभव द्वारा निश्चित ।।८२।।

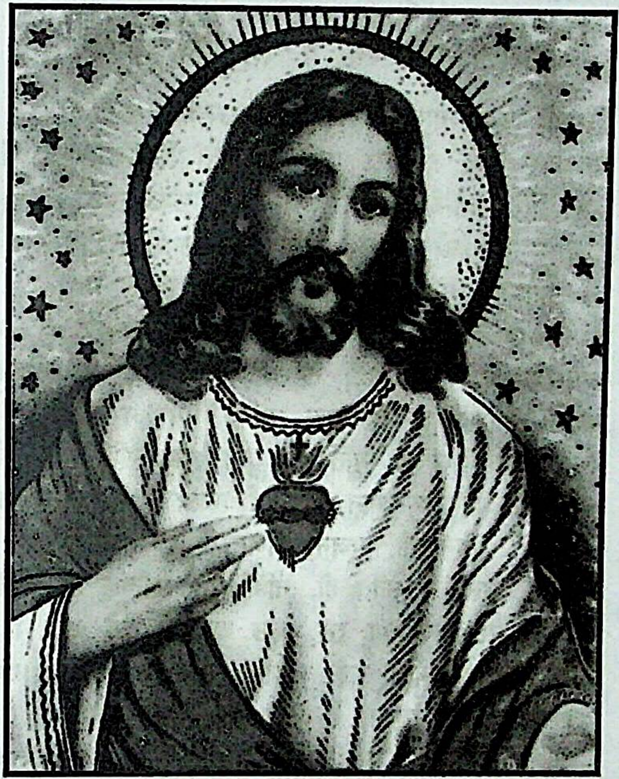

प्रेममूर्ति प्रभु ईसा मसीह

सत्ताईसवाँ अध्याय

सामुदायिक प्रार्थना

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

उपासना विडम्बन व सामूहिक प्रार्थना

(हरि.) है मूर्ति पूजा, नाम जप के तत्त्व उज्ज्वल मूल में ।।
पर कर लिया इन का जनों ने अति विडम्बन भूल में ।।१।।
चहुँ ओर देवी-देव दिखते ज्यों गली कंकर पड़े ।
कोई न उन को देखने या पूजने रुचि से बढ़े ।।२।।
जो सुप्रभावी मूर्ति निश्चित, देखते ही स्फूर्ति दे ।
वह तो कहीं शायद मिले, जो तत्त्व की परिपूर्ति दे ।।३।।
अतिरेक श्रद्धा का वहाँ, नास्तिक बना दे विबुध को ।
कहते-'तमाशा यह विघातक, भक्ति नाम न यों रखो' ।।४।।
स्मृति रूप जिस की मूर्ति, उस को भूख नहिं गुण कर्म की ।
जन मूर्ति ही प्रभु मान, पगलाई बरतते शर्म की ।।५।।
पंचारती, शयनारती, पूजन, भजन, पोथी चले ।
गांभीर्य, शिस्त न शांति ही, नहिं वृत्ति सात्विक ही खिले ।।६।।
इक जा रहा इक आ रहा, कुछ बीच में टेढ़े खड़े ।
सुन, मंत्र पुष्पांजलि कई, पुष्पादि झोंक चले बढ़े ।।७।।
बजता नगारा, बेतुका, है झाँझ-घण्टों का गजब ।
क्या तालियाँ ? ओले गिरे ! लगता तमाशा ही अजब ।।८।।

(चौ.) यह बाजार! कहाँ अनुशासन? किस विधि सधता तत्त्व उपासन ?
शिस्त, शांति, सात्त्विकता आवे । सही लाभ तब ही सब पावें ।।९।।
इसीलिए 'समुदाय प्रार्थना' । सही राह जन को दिखलाना ।।
प्रमुख आज की उपासना यह । सब ही को हितकारी है वह ।।१०।।

(दो.) पंथ भेद किस विधि मिटें ? था श्रोता का प्रश्न ।
रहे ग्राम जीवन सदा, किस विधि सुगढ़ अभिन्न ? ।।११।।
भिन्न भजक, वैष्णव, यति, अमित पंथ हैं गाँव ।
जाति पाँति भी कब करें, एक रूप बर्ताव? ।।१२।।

(चौ.) इस का भी समुदाय प्रार्थना । एक उपाय यही है जाना ।।
धर्म पंथ के संत देव सब । तहँ बिराज आसन इक ही पर ।।१३।।
रहे विशुद्ध नित्य यह निर्झर । तभी गाँव रह सुबुद्ध हो कर ।।
समृद्ध जन में हरभांति । सामूहिकता से खिल पाती ।।१४।।

समुदाय का उपास्य

प्रश्न किया फिर इक श्रोता ने । कस समुदाय प्रार्थना होवे?
गाँव सामुदायिकता जिस से । प्राप्त कर सके स्नेह भाव से ।।१५।।
सुभाव पूर्वक सभी ग्राम जन । कैसे हो कर स्वयं एक मन ।।
कार्य करें आगे कस, जिस से । हो समूह प्रार्थना गाँव में ? ।।१६।।
लेंवें कौन देव प्रार्थन में । मान्य बराबर होय जो सब में ।।
होय गाँव में जैस समन्वय । कौन पाठ हम रखें निरामय ?।।१७।।

(दो.) **मित्र! सुने अब प्रश्न ये, जिन में सोच-सुझाव ।**
सिर्फ पृथकता की सही, दिक्कत है हर गाँव ।।१८।।
छोटे देवल छोड़ कर देख प्रशान्त विशाल ।
मंदिर एक मिलें सभी, श्रद्धा से इक काल ।।१९।।

(चौ.) विभिन्नता अपनी बिसरा कर । उपासना सब करें वहाँ पर ।।
लोगों के मन पर नहिं आवे । 'श्रेष्ठ वही' जो हम बतलावें ।।२०।।
अनेक मंदिर अमित देवता । जन विचार में नहीं एकता ।।
कौन एक उन में से चुन लें ? प्रश्न यही पथ रोके पहले ।।२१।।
यही प्रश्न सम्मुख संतों के । था, जब थे झगड़े पंथों के ।।
ब्रह्म मूर्ति विट्ठल ने इस से । आगे रखा प्रश्न यह सब के ।।२२।।
संतो ने पंथो के सब ही । एका किया स्थान पर उस ही ।।
ज्ञान प्रेम की ज्योति जगायी । महाराष्ट्र की धरती पर ही ! ।।२३।।
तामस भक्ति प्रथाहु बंग में । सुधार रत चैतन्य प्रभू ने ।।
कृष्ण कथा से भावुक पंडित । विविध पंथ के किये एक मत ।।२४।।
देखा काल, संघर्ष का जब । उपास्य बदले संतों ने तब ।।
तुलसि दास अरु रामदास ने । राम धनुर्धर रखा सामने ।।२५।।

(दो.) **चुने संगठन केंद्र यों, देश काल लख पात्र ।**
कौन रूप फिर आज लें, जोड़न जनमन सूत्र? ।।२६।।

गुरुदेव का स्वरूप

सोचा इस पर बहुत मैं, अनुभव सहित सदैव ।
रास्ता आखिर चुन लिया, मेरा 'श्री गुरु देव' ।।२७।।

(चौ.) 'मेरा श्री गुरुदेव' कहा है। पर मेरा ही वह न रहा है ।।
वह तो प्राणि मात्र का सारे । है कल्याण विधायक प्यारे! ।।२८।।
पंथ-पक्ष नहिं कोई उस का । सब देशों में साक्षी सब का ।।
है अध्यक्ष सभी देवों का । सद् गुरुराज दिव्य भावों का ।।२९।।
सब ही मानव सखा उसी के । देश-विदेशहु सभी सरीखे ।।
उन के धर्म भिन्न नहिं सच में । एक सत्य शुभ ही है सब में ।।३०।।
अलग हुआ नहिं आत्मा जैसा । श्री गुरु देव भरा है वैसा ।।
खण्ड हुआ आकाश कभी क्या? संभ-असंभव किन कर पाया? ।।३१।।
सत्य होय सो रहे सत्य ही । असत्य तो बस है असत्य ही ।।
वैसा ही गुरु देव सभी का । रहे सर्वथा एक अनोखा ।।३२।।
वैदिक हो या हो वेदोत्तर । सर्व पंथ गुरुदेवक आदर ।।
मुसलिम ईसाई, धर्मादि । में भी हैं गुरु देव कि भक्ति ।।३३।।

(दो.) पंथ प्रचारक गुरु अलग, होय द्वैत का भाव ।
स्वतंत्र अनुभव का गुरू, ज्ञान योग से पाय ।।३४।।
हाड़-चाम का गुरु नहीं, गुरु न जाति या पंथ ।
ज्ञान तत्त्व अनुभूति का, गुरु है विमल प्रशांत ।।३५।।

(चौ.) पाया जिसने यही ज्ञान धन । विश्वाकार हुआ जिस का मन ।।
धर्म, पक्ष, संप्रदाय सारे । हुए विसर्जित जिस में प्यारे ! ।।३६।।
वह सब का ही हुआ सखा है । पक्षकार हर मानव का है ।।
हर भाषी या भाषा विरहित । सभी उसे पा सकते निश्चित ।।३७।।
वह सद्भावों को उपजाता । दीन दुःखी का पालन करता ।।
गलत मार्ग का करता खंडन । लगा समूचा तन वाचा मन ।।३८।।
इस से ज्ञानी का कहना है । गुरु ही ब्रह्मा विष्णु हुआ है ।।
कहलाता गुरु वही महेश्वर । ऐसा हीं सामर्थ्य दिखा कर ।।३९।।
गुरु ही स्वयं ब्रह्म कहलावे । सब में व्याप्त शेष बच जावे ।।
उस प्रभु की प्रार्थना सही है । मेरा तो 'गुरु देव वही है ।।४०।।

महा पुरुष जो अलग अलग है । हुए गुरुत्व बोध से गुरु हैं ।।
व्यक्ति तत्व धर्मत्व न न्यारे । घुले रूप में गुरु के सारे ।।४१।।
चंदन से न बने गुरु पूजन । विशाल उस का मंदिर-प्रांगण ।।
विशालता की भी है सीमा । अनन्त है पर गुरु की गरिमा ।।४२।।
क्षेत्र पूर्ण जिस का भू मंडल । समस्त पृथ्वी आसन निर्मल ।।
सूर्य चंद्रमा नन्हा दीपक । वह गुरु देव विश्व में व्यापक ।।४३।।
धर्म-पंथ सब उस में स्थित । ब्रह्मांड पूर्ण है उस में वेष्टित ।।
उस के बिन खाली न जगह है । सभी जगह बस वह ही वह है ।।४४।।
जब हो ज्ञान जीव को उस का । ठौर न ईर्षा कहल द्वेष का ।।
सभी जगह संपूर्ण विश्व में । शांति मिले सब को निज मन में ।।४५।।

(दो.) विशाल हृदय से पथ रचा, पाने वह शुभ ज्ञान ।
समुदायिकता के लिए, चुने प्रार्थना-स्थान ।।४६।।
स्वर सामूहिक हो वहाँ, सभी कार्य में देव ।
देखो विश्वाकार फिर, मेरा श्री गुरुदेव ।।४७।।

सामुदायिक प्रार्थना का प्रबंध

(चौ.) है यह वर्णन गुरुदेव का । साधन अब सुनो प्रार्थना का ।।
उन्नत करने गाँव समूचा । स्थल खोजो त्यों गुण से ऊँचा ।।४८।।
विशाल मठ, गुरुदेव-चौक हो । जहाँ किसी जन को न रोक हो ।।
श्रद्धा से बालक, नारी नर । बैठें शान्त शाम सब आ कर ।।४९।।
पहले ही सेवक-अधिकारी । सभी उठा लें हाथ बुहारी ।।
शीघ्र करें मैदान सुनिर्मल । समुदाय प्रार्थना का जो स्थल ।।५०।।
चाहो तो गुरुवार नियत कर । कुछ सेवक घूमें जा घर-घर ।।
सब जनता को करें निमंत्रित । प्रार्थना-स्थल जहाँ हो निश्चित ।।५१।।
माँ बहनें, अरु वृद्ध युवक भी । सभी सुजन, कन्या बालक भी ।।
स्नेह निमंत्रण देकर सब को । शामिल करें प्रार्थना उन को ।।५२।।
दो संदेश गाँव में सब को । लायें उस में सब सबही को ।।
सब कंबल या बोरा लावें । अपने-अपने लिए बिछावें ।।५३।।
या सब मिलकर दरी बिछा लें । पंक्ति-बद्ध सब को हि बिठालें ।।
सद्भावना बढ़े सब के दिल । अस प्रार्थना रूप ले मंगल ।।५४।।

होवे वातावरण सात्विक । पूर्ण शांति गंभीर तात्त्विक ।।
बंद रखे संभाषण सारे । तज दें व्यसन, किसे न पुकारें ।।५५।।

(दो.) 'अधिष्ठान' आगे धरा, रख आसन शुभ वर्ण ।
खादी मय, निज गाँव में, बना कलात्मक पूर्ण ।।५६।।
तकिया रखा सुहावना, मानों प्रभु ले टेक ।
सात्विकता का ठ़ाठ सब, मुग्ध होय मन देख ।।५७।।

(चौ.) निकट बिठा दें सूचक, गायक । तीजे थल पर वक्ता लायक ।।
बाईं तरफ पुजारी, पाठक । मधुर नाम धुन गाने सम्यक ।।५८।।
मंच प्रार्थना का यह साजे । चहुँ दिसि सेवक वृंद बिराजे ।।
पीछे संरक्षक हो ठाढ़ा । कहीं न कोई आड़ा टेढ़ा ।।५९।।
उन का काम शांतता रखना । गड़बड होवे तुरत रोकना ।।
कोमलता से अनुशासन में । सब को चले बिठाता पल में ।।६०।।
जो जैसा पीछे से आवे । क्रम से ही वह पंक्ति बिठावे ।।
विशिष्ट सेवक ठीक समय पर । दो ठोके मारे घण्टी पर ।।६१।।
अधिष्ठान सम्मुख तब पूजक । देकर धूप जला दे दीपक ।।
खड़ा शान्ति से फिर हो सूचक । दे प्रार्थना सूचना सम्यक ।।६२।।
'पाठ' कहें सब एक साथ ही । शांति भरे स्वर एक्य तुरत ही ।।
सुरुचि बढ़ाय प्रार्थना ऐसी । करे विमुग्ध हृदय को जैसी ।।६३।।
करे सहज ही ध्यानाकर्षण । ऐसा चले प्रार्थना गायन ।।
आगे नाम स्मरण सुमंगल । भजें नाम गुरुदेव का निर्मल ।।६४।।

(दो.) करें सभी के नाम का, संकीर्तन, तज भेद ।
सब धर्मों में भाव सम, सब का रहे अभेद ।।६५।।
फिर दे भाषण-सूचना, सूचक कर अनुरोध ।
योग्य पुरुष वक्तव्य दें, भाव युक्त सद्बोध ।।६६।।

(चौ.) 'मित्रो ! एक रूप है सब हम । फिर क्यों रखें भिन्नता का भ्रम ?
सब को दो सहयोग निरंतर । सभी एक परिवार समझ कर ।।६७।।
मानव विश्व कुटुंब-घटक है । यही समझ बरतें सम्यक हैं ।।
तदर्थ करने शक्ति-अर्जना । शक्तीश्वर से करो प्रार्थना ।।६८।।
एक रूप ही संत सभी हैं । जुदा हुए नहिं देव कभी हैं ।।

सुनने से संदेश सभी के । पाते तत्त्व एक ही नीके ।।६६।।
इसीलिए सहकार्य करें सब । जिससे जो बनता हो कर्तब ।।
जग को स्वर्ग समान बना दें । जितना बने योग अपना दें ।।७०।।
कहना यही प्रार्थनोत्तर है । सेवा यह चाहे ईश्वर है ।।
नहिं परमार्थ जुगत भी कोई । इसके सिवा अन्य है भाई!" ।।७१।।

(दो.) यों 'भाषण' की पूर्ति पर, 'शान्ति पाठ' कर गान ।
करें एक निष्ठा 'नमन', एक प्रणाली मान ।।७२।।
सूचक देवे सूचना, खड़े होंय जन वृंद ।
व्योम निनादित जो करे, हो 'जय घोष' बलंद ।।७३।।

(चौ.) गुरूदेव की जय ध्वनि में ही । सब देवों को प्रणाम भाई!
सुंदर तत्त्व प्रार्थना का यह । तुम्हें बताया जगत् हितावह ।।७४।।
खत्म हुई समुदाय प्रार्थना । अपना कंबल, अपना गोना ।।
सभी उठाकर ले जायें घर । सेवा जगत्-इश पूरी कर ।।७५।।
यहाँ 'प्रार्थना पाठ' न गाया । अन्य ग्रंथ में है वह आया ।।
दिया न ब्यौरा अधिक यहाँ पर । 'सक्रिय पाठ' देख लो सुंदर ।।७६।।

सामुदायिक प्रार्थना की महानता

मित्रों! वचन मेरा सुन जाओ । यदि कल्याण गाँव का चाहो ।।
तो समुदाय प्रार्थना साधन । कभी न छोड़ो, करो यही प्रण ।।७७।।
अनुभव से बतला दूँ इतना । गाँव की दौलत यही प्रार्थना ।।
स्वर्ग मोक्ष भी मिले इसी से । समाज अपना खिले इसी से ।।७८।।
स्थित समाज में देव हमारा । समाजार्थ ही सक्रिय प्यारा ।।
यद्यपि व्यापित रहे चराचर । किन्तु विशेष प्रार्थनासन पर ।।७६।।

(दो.) मिलता प्रभु जन-कार्य से, करी प्रार्थना आज ।।
भरी भावना आत्म में, सुगम होय सो काज ।।८०।।
प्रश्न किया था आप ने, उस से यह विस्तार ।
दिखे प्रार्थना-निरत को, देव विशाल अपार ।।८१।।

(चौ.) अनुभव जो उस मूलतत्त्व का । ज्ञान गम्य विश्वात्म देव का ।।
प्रार्थना रूप में उसको ही । मान गुरु देव विश्व रूप ही ।।८२।।
गुरू देव के अधिष्ठान पर । चाहो यदि हो मूर्ति मनोहर ।।

तो हर कोई अपनी इच्छित । मूर्ति देव तय कर लें कल्पित ।।८३।।
देव सभी गुरु देव समाये । भक्त प्रार्थना इक न कराये ।।
इसी रूप से जग में सुंदर । बनता मानवता का मंदिर ।।८४।।
मिलाय इक प्रार्थना अनेका । तस प्रार्थन में कला 'अनंता' ।।
उन अनंत में तत्त्व एकता । पाना ही प्रार्थना महत्ता ।।८५।।
मार्ग लिया यह यही समझ कर । मत पंथों को देने आदर ।।
सब सन्तों को पूजनीय ही । है मानना प्रार्थना माँही ।।८६।।
व्यापक यों प्रार्थना बनाई । उपासकों की लता गुथाई ।।
मूल तत्व जो सब धर्मों के । खोजें अपने भीतर मन में ।।८७।।

(दो.) वेद श्रुति की प्रार्थना, 'रहें सुखी सब जीव' ।
सर्वोन्नति की धारणा, डाली ऋषियन नींव ।।८८।।
मसीह ने की प्रार्थना, मित सबके ही शान्ति ।
सहन शक्ति का देवता, हुआ जगत हर भाँति ।।८९।।

(चौ.) की प्रार्थना महंमद जी ने । बिखरे मुस्लिम बने सयाने ।।
निज लोगों को किया संगठित । सोच विचार उस समय की स्थिति ।।९०।।
पवित्रता जरदुस्त सिखावे । महावीर संयम बतलावे ।।
बुद्ध बढ़ाया संघ अहिंसक । साधन रूप प्रार्थना व्यापक ।।९१।।
संत नाम संकीर्तन करते । तस समुदाय प्रार्थना जाने ।।
उस में स्तवन सभी देवों का । ज्ञान दिया जन को संगठन का ।।९२।।
महिमा कलियुग में भक्ति की । नाम कीर्तन और भजन की ।।
यज्ञों में जप यज्ञ श्रेष्ठ है । निहित प्रार्थना में पर सब हैं ।।९३।।
मूर्ति उपासन और ध्यान भी । नव विध भक्ति सार तत्व भी ।
सबहि प्रार्थना में सध जावे । निज साधन अनुसार सबों के ।।९४।।
शिस्त, शांति, गांभीर्य गुणादि । बैठन, उठन, बात की बुद्धि ।।
अरु शिक्षा मानवता की भी । मिले प्रार्थना में सब को ही ।।९५।।
शाला मानवता की प्रार्थना । ग्राम सांस्कृतिक मूल चेतना ।।
जाय रसातल भेद कल्पना । जहां होय गुरु देव प्रार्थना ।।९६।।

(दो.) 'हम हैं सारे बंधु जन', बढ़े यही दिल भाव ।
निर्भर इस पर ही सही, स्वर्ग बनाना गाँव ।।९७।।

संदेश महा इस तत्व का, देंय प्रार्थना अन्त ।
प्रथा तत्व संदेश की, रखे गाँव जीवन्त ॥९८॥

(चौ.) रहे गाँव में प्रार्थना जागृत । तभी ग्राम संस्कृति भी जीवित ॥
ज्योति सामुदायिकता की फिर । प्रकाशवान हो यहाँ निरंतर ॥९९॥
विश्व शान्ति पा सके इसी से । गाँव सुखी फिर नहिं हो कैसे ?
यही प्रार्थना लोक संगठन । कर दें, तुकड्या कहे, चिरंतन ॥१००॥

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरूकी, शास्त्रमत, आत्मानुभव-संमत भली ॥
अध्याय सत्ताईसवाँ दे, ग्राम का उद्धार पथ ।
जहँ 'सामुदायिक प्रार्थना' का रूप ले 'गुरुदेव' रथ ॥१०१॥

॥ सद्गुरुनाथ महाराज की जय ॥

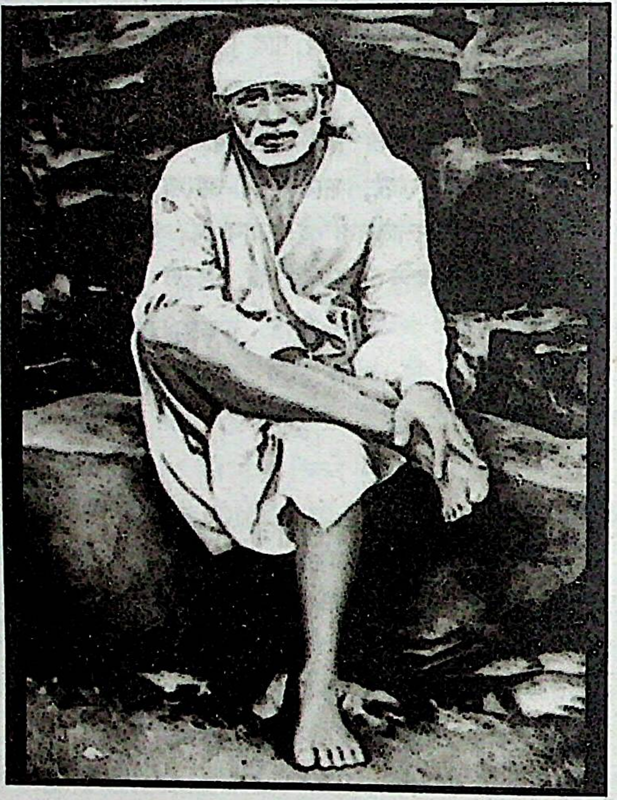

श्री संत साई बाबा

अट्ठाईसवाँ अध्याय

प्रार्थना और विश्वधर्म

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

धर्म भ्रष्टता की भ्रान्ति

(मनहरण) सर्व धर्म समन्वय, विश्व शान्ति का उपाय,
लोकोन्नति का विद्यालय है सामूहिक प्रार्थना ।।१।।
हुआ ऐसा विवेचन, किन्तु मेरा सुनो प्रश्न,
धर्मों का प्रार्थनाएँ भिन्न, होंगे कोई एक ना ।।२।।
कैसे भावे एक 'पाठ', हरेक की भिन्न बाट,
एक में बैठेंगे कैसे ? भिन्न देव-भावना ।।३।।
बैठना अन्य धर्मियों में, राह धर्म भ्रष्टता की
सामूहिकता कैसे फिर, उपाय कौन है बताओ ना ? ।।४।।

(चौ.) सवाल सुन कर यह श्रोता का । संक्षिप्त उपाय कहूँ इस का ।।
तत्वज्ञान नाना धर्मों के । रखें सामने सब लोगों के ।।५।।
दिखते जग में भिन्न धर्म है । पर सब ही का मर्म एक है ।।
विश्व-व्यवस्था का उत्तम पथ । वही सही 'सद्धर्म' सुनिश्चित ।।६।।
विश्व-व्यवस्था हो सुखदायी । शान्ति मिले जन को जब भाई!
यही एक उद्देश्य साधने । किये प्रयत्न नाना धर्मों ने ।।७।।
"सर्व विश्व हम आर्य करेंगे' । हर्ष से 'तीनों लोक भरेंगे" ।।
ऋषि सन्तों का भ्रातृ भाव यह । विशाल था, नहिं स्वार्थ हेतु वह ।।८।।
'रहे न कोई प्रतिमा पूजक । एकेश्वर के बने उपासक' ।।
यह उपदेश मुहम्मद का भी । एक देश के लिए था नहीं ।।९।।
प्रेम पाठ दे गया मसीहा । प्रण के लिए प्राण कर स्वाहा ।।
ईश की रेवड़ से पर नाहीं । रखा अलग कोई मानव ही ।।१०।।
गौतम बुद्ध, महवीरादि । कृष्ण देव या जरदुस्तादि ।।
इन को भी चिन्ता सब ही की । 'विश्व सुखी सब होय' यही थी ।।११।।
सब ही देश धर्म के संतन । व्यापक वृत्ति यही की धारण ।।
विशाल मानव समाज के प्रति । अपनी सेवा करी समर्पित ।।१२।।

(दो.) अन्य देश भाषादि के, हुए हो रहे संत ।
उनके गौरव में लिखे, उन संतों ने ग्रंथ ।।१३।।
धर्माचार्यों में न था, 'धर्म भ्रष्ट' का भाव ।
चिन्ता भी सब विश्व की, उन को सम, न दुराव ।।१४।।

विश्व का देव एक, मानवों का धर्म एक !

(चौ.) सभी विश्व का एक देव है । उस के बालक सभी जीव हैं ।।
यद्यपि नाम अलग दे डारे । भाव परंतु न उन के न्यारे ।।१५।।
'हिंदू वाला देव हिन्दु का । मुस्लिम वाला मुसलमान का ।।
'ईसा ईसाई को तारे' । ऐसे कथन संकुचित सारे ।।१६।।
जगत् नियंता की सुकल्पना । सबसे ऊँची वही भावना ।।
वहाँ भिन्नता शेष कहाँ है? अपना-दूजा कौन रहा है? ।।१७।।
भिन्न पंथ पंथी भी होंगे । देव तत्त्व पर भिन्न न होंगे ।।
सब धर्मों की मूल चेतना । है समान, नहिं कोई भिन्नता ।।१८।।
कहते सभी "जगत् यह सारा । बना हमारे ईश्वर द्वारा
हमें मिला आदेश धर्म का । श्रेष्ठों के जरिये सुकर्म का' ।।१९।।
सब के ऐसे स्वामी ईश्वर । होंगे क्या जग में सौ-सौ भर ?
'एक जगत चालक परमेश्वर । सब का वही' यही तय आखिर ।।२०।।
अल्लाह, गॉड, देव, अर्हत भी । शिव, निर्वाण, अहूरमजद भी ।।
प्रभु के रख दो नाम अपारा । एक वही 'गुरु देव' हमारा ।।२१।।

(दो.) सुखी-समुन्नत जग रहे, प्रभु इच्छा यहि होय ।
धर्म रूप इस से अलग, कैसे संभव होय? ।।२२।।
सब सुख दुख आप सम, जान करें हित काज ।
सब धर्मों में एक ही, गूँजे यह आवाज ।।२३।।

(चौ.) लगे सोचने इस को हम जब । धर्म पंथ और' भक्ति भेद तब ।।
एक तत्त्वमय ही सब जाने । भेद भक्त जन क्यों कर मानें? ।।२४।।
बुद्धि आपनी जिन के नाही । बना घरौंदा दें घर का ही ।।
वास्तव में संसार सकल ही । सिर्फ एक है मानव दल ही ।।२५।।
सब के खातिर भूमि एक ही । एक वायु जल दुःख सौख्य ही ।।
पंच भूत आधार सभी के । देह बनी सब की ही उन से ।।२६।।

जीवन का है मूल एक ही । अंत समय की धूल एक ही ।।
सेवा धर्म एक ही निर्मल । यद्यपि रूप अनेक चलाचल ।।२७।।
ज्योति एक सब की आँखों में । शक्ति एक सब के अंगों में ।।
व्याप्ति एक ही की सब माँही । गैर कौन फिर आये भाई?।।२८।।

(दो.) **मुस्लिम, ईसाई कहीं, नभ से उतरे नाहिं ।**
धरती पर कब से मनुज, अन्दाजा कोई नाहिं ।।२९।।
प्रभु बनाय जग एक का, औरों का शैतान ।
यह मानों तो ही दिखें, धर्म पंथ असमान ।।३०।।

(चौ.) नहीं धर्म में हिंदू मुस्लिम । नहीं पारसी ईसाई तिम ।।
नहीं धर्म में सिक्ख जैन हैं । मूल रूप गर देख लिये हैं ।।३१।।
भूले लोग धर्म की व्याख्या । हिंदू मुस्लिम फर्क बढ़ गया ।
मूल रूप मानवता अपनी । बैठे गवाँ, चढ़ा भ्रम कफनी ।।३२।।
बुरके ओढ़ देश भाषा के । भिन्न रिवाज वायु-जल पा के ।।
ऐसी लख बहिरंग निशानी । 'धर्म' उसे कहते लघु ग्यानीं ।।३३।।
आब हवा जस देस देस की । रहन सहन वैसी ही उनकी ।।
उपज जहाँ पर होवे जैसी । होय व्यवस्था भोजन तैसी ।।३४।।
पर क्या मानव तत्व बदलता? सत सिध्दान्त में अंतर पड़ता ?
उचित होय क्यों पाप, दुःख भी? उलटा मत क्या चला कभी भी? ।।३५।।
यह तो बात जँचे नहिं मुझ को । एक समझता हूँ मै सब को ।।
मानवता! सर्वत्र आदि में । पंथ भेद का स्थान बाद में ।।३६।।

(दो.) **भिन्न रहन या उपासना, मानवता क्या भिन्न ?**
भिन्न रीति की प्रार्थना, यह न द्वेष का चिन्ह ।।३७।।
भाप एक ही सिंधु की, बन आयी जल रूप ।।
इक थल पहुँचत अन्त जल, जग करि काम अनन्त ।।३८।।

(चौ.) है मानव का भी ऐसा ही । किसी धर्म का मानव होई!
परंतु करने समाज-रचना । महत्त्व सम ही सब का अपना ।।३९।।
सभी एक हैं आदि अंत में । समाज सेवा खेल मध्य में ।।।
उसका भी सम मूल्य सदा ही । मानव धर्म दृष्टि से भाई! ।।४०।।
धर्म कहे तुम बनो पुजारी । धर्म कहे हो झाडू धारी ।।

धर्म कहे तुम नाचो-गाओ । जीवन सब के लिए लगाओ ।।४१।।
भिन्न भिन्न सब कर्म अवसि हैं । अपन पराया भाव नहीं है ।।
मिल कर जन हो जाँय एक सब । समझो वही धर्म सच्चा शुभ ।।४२।।
ये सब काम धर्म में आते । पर संगति होने के नाते ।।
घातक पर जो मानव को है । नहीं करें, यह धर्म वचन है ।।४३।।
नीव धर्म की है मानवता । मानवता के लिए व्यवस्था ।।
होय जहाँ कहीं अव्यवस्था । पहुँचे तुरत, यही धार्मिकता ।।४४।।

संकुचित धर्म एवं धर्म युद्ध की अधार्मिकता

(दो.) जहाँ व्यवस्था की कमी, गुटबंदी हो जाय ।
बढ़े प्रलोभन सौ तरह, व्यक्तिवाद से भाय ।।४५।।
जग के टुकडे अस हुए, कोई किधर भी जाय ।
नाम रूप धरि मन गढ़े, धर्म नाश हो जाय ।।४६।।

(चौ.) देश काल का भेद निरख कर । नये निकाले साधन सुंदर ।।
उन शाखों को धर्म वृक्ष ही । समझ, बनाये नये पक्ष ही ।।४७।।
इस से नाम विभिन्न चले हैं । ख्रिश्चन मुस्लिम धर्म खिले हैं ।।
बौद्ध, पारसी, जिन, सत्नामी । महानुभाव, शैव या ब्राह्मी ।।४८।।
अभी समाप्त हुई नहिं संख्या । पंथ-सम्प्रदायन नव व्याख्या ।।
आगे चल कर उन सब को ही । पदवि 'धर्म' की मिले अवसि ही ।।४९।।
लगता घर घर अलग धर्म है । धर्म निजी व्यवहार कर्म हैं ।।
'हम जीयें' बस सत्य तत्त्व यह । ऐसी फैली भ्रान्ति दुराग्रह ।।५०।।
ऐसी जब से रीति चली है । तब से सब की व्यथा बढ़ी है ।।
फिर आवश्यक हुआ नियंत्रण । धर्म विरोधी पथ पर शासन ।।५१।।
सत्ता बनी इसी के खातिर । साम दाम दँड भेद नीति पर ।।
राज धर्म है यह लोगों का । मार्ग व्यवस्था में सुधार का ।।५२।।

(दो.) हुए संगठित धर्म से, शुरू न्याय व्यवहार ।
हुई स्थापना राज्य की, निज स्थिति अनुसार ।।५३।।
बने धर्म हित राज्य, पर, पढ़ा पाठ उपभोग ।
अहं भाव आसक्ति का, हुआ अमंगल योग ।।५४।।

(चौ.) वहाँ धर्म ही खतम हो गया । राज़नीति ही धर्म बन गया ।।
फैली सोई उसके कारण । सब देशों में भारी गड़बड़ ।।५५।।
सेवा का संकल्प भुलाया । राज काज सर्वोच्च हो गया ।।
एक व्यक्ति भी पूरे जन का । मनमाना शोषण कर सकता ।।५६।।
संकट समय मनुज औरन की । चढ़ावें बलि खोज निज सुख की ।।
ऐसा चलन हुआ लोगों में । जेहि से फैला अनरथ जग में ।।५७।।
गया प्रेम का सब समझाना । शुरू हुआ तलवार पजाना ।।
हिंसा में जो होय अग्रणी । ठहरे धर्मवान सो विजयी ।।५८।।
सत्ता, संख्या का बल जिस का । धर्म प्रबल ठहरे उस ही का ।।
शक्ति चलाय धर्म का काँटा । सत्य का सचमुच नसीब फूटा ।।५९।।

(दो.) धर्म हुआ हथियार पर , युद्ध चले धर्मार्थ ।
धर्म युद्ध गौरव बढ़ा, जग में बढ़ा अनर्थ ।।६०।।
सत्ता, त्याग, सेवा कहाँ ? मतामतों का शोर ।
धींगा मुश्ती कर रहे, पृथ्वी पर बरजोर ।।६१।।

(चौ.) बिगड़ गयी जब रीति धर्म की । बात रही नहिं किस के बस की ।।
देव आदि को तभी अंत में । शास्त्र उठाने पड़े हाथ में ।।६२।।
पर वह धर्म युद्ध था न्यायी । वहाँ न था उन्माद जरा ही ।।
'सत्य शक्ति ही' जैसी बातें । करना अधर्म जस था उस में ।।६३।।
न्याय में द्वेष, पाप नहिं होवे । पर आसक्ति देश की घेरे ।।
तब मानव की बुद्धि बिनसती । द्वेष-पाप में जा कर फँसती ।।६४।।
युद्ध होय फिर, मान राष्ट्र का । चले कुटिल षडयंत्र धृष्टता ।।
युद्ध जरा भी गर अन्यायी । अधर्म है सो, कोइ न युक्ति ।।६५।।
मानव मानव को ही मारे । बिन अपराध दमन कर डारे ।।
युद्ध धर्म का भी हो ऐसा । शास्त्र कहे वह पातक जैसा ।।६६।।

(दो.) युद्ध रुकेंगे तभी जब, जानें जन यह न्याय ।
मानवता होय समाज में, साक्षात् देव तहँ न्याय ।।६७।।
युद्ध में जो झगड़ा सोई, सोई कलह परिवार ।
रूप सभी अज्ञान के, ये सब विविध प्रकार ।।६८।।

(चौ.) धर्म, पंथ अरु पक्ष, देश भी । नशा इन्हीं का अरु सुरूर ही ।।
मानव को धर्मान्ध बना कर । नहिं चलने दे न्याय मार्ग पर ।।६९।।
मुसलमान राजा जब होये । मसजिद मंदिर तोड़ बनवाये ।।
'हम ही सच्चे' इस सँदेश का । पिटवाता वह जग में डंका ।।७०।।
उसकी सत्ता खत्म होय जब । ढ़हवा दे हिंदू मसजिद तब ।।
अपने मन से चाहे जैसी । जगह बनाये अन्य पंथ की ।।७१।।
क्रिश्चन का जब उठा बवंडर । कितने बढ़े यहाँ गिरजा घर ।।
फैल दिया जाल ही अपना । सत्ता के बल पर मनमाना ।।७२।।
राग, द्वेष के समाधान को । मन की गहरी अभिलाषा को ।।
होते रहे अनादि काल से । युद्ध विश्व में, दमन देश में ।।७३।।
यह विचार है नहीं धर्म का । यह तो है आचार शक्ति का ।।
हिंसा निरपराध मानव की । कभी धर्म ने नहीं मान्य की ।।७४।।

(दो.) व्यवस्था है शुभ धर्म में, शांति, बुद्धि अरु न्याय ।
समझाइश हिंसा बिना, श्रेष्ठ धर्म कहलाय ।।७५।।
मानव हित मानव खटे, परमुख सुखिया श्रेष्ठ ।
मानव मानव को हने, अधरम यही निकृष्ट ।।७६।।

महा मानवों का हृद्गत व प्रार्थना की विशालता

(चौ.) दिल में यही जिन्होंने जाना । उन्हें महा मानव है माना ।।
फिर हों किन्हीं धर्म पंथों के । वे सब हम को लगते चोखे ।।७७।।
सब ही देव धर्म पंथों के । धर्म प्रवर्तक महमानव थे ।।
उन के दिल में भाव एक ही । सब मानव हों सुखी सनेही ।।७८।।
जग में हो सुख शांति बिराजित । बरतें सब भाई चारा नित ।।
भिड़े इसी के लिए रहे जे । महा पुरुष बिन भेद भाव से ।।७९।।
लक्ष्य विशाल यही मन भाये । कालोचित ही पंथ बनाये ।।।
उपदेश दिये सब पक्ष बताये । लिखे ग्रंथ सब पर मनभाये ।।।८०।।
इसी हेतु अब तक के निश्चित । हुए कुरान, पुराण धर्म मत ।।
पर अब तक भी नहीं आकलन । कर पाये हैं उन का सब जन ।।८१।।
यत्न शुरू से चलते आये । करत विरोध ना समझ आये ।।
उसी राह से जतन आज भी । चले, बनाने सम समाज भी ।।८२।।

(दो.) प्रयत्न शील हैं हम सभी, माने देव विशाल ।
सुमति प्रसारन हेतु ही, है प्रार्थना मशाल ।।८३।।
नई न कुछ कहनी मेरी, सब धर्मन का सार ।
किया इकट्ठा उसी को, नया रूप आकार ।।८४।।

(चौ.) श्रेष्ठ विचार सभी श्रेष्ठों के । सार तत्व सब प्रणालियों के ।।
लेकर गुलदस्ताहि सजाया । समाज सम्मुख उस को लाया ।।८५।।
समाधान जिस में आपस का । जीवन सुंदर जिस से सब का ।।
होवे कैसे इस का चिंतन । करें प्रार्थना में नित नूतन ।।८६।।
'है प्रार्थना समन्वयकारी । नहिं फौलादी चौखट न्यारी ।।
सब को यहाँ सही है मौका । पुष्प पिरोने स्वयं अनोखा ।।८७।।
सब ही जगह तत्व को मानो । व्यर्थ टाँग मत कभी अड़ाओ ।
सब का जिस में समाधान हो । सहनशील व्यवहार सदा हो ।।८८।।
सही प्रार्थना शांति प्रभावी । शांती हेतु विशाल स्वभावी ।।
विशालता है तब ही संभव । समोद होवे आपस में जब ।।८९।।
इक दूजे का मन छूने से । मिलन होय आत्मीय भाव से ।।
उस से प्रेम विश्व को जीते । मिले शान्ति सुख तब ही सब को ।।९०।।
झगड़े धर्म पंथ देशों के । नहीं रुके बिन ऐक्य प्रेम के ।।
वही साधने प्रेम अनोखा । प्रार्थना जस साधन नहिं चोखा ।।९१।।
सभी धर्म प्रार्थना रमी है । सात्त्विकता की अमर कड़ी है ।।
महत्त्व इस का समझ-बूझ कर । लाओ सब को एक ठौर पर ।।९२।।

(दो.) संबंध नहीं था आपसी, उस से पद्धति भेद ।
पर अब लाने में निकट, कौन पाप या खेद ? ।।९३।।
एक प्रार्थना विश्व की, एक विश्व की शान ।
सभी विश्व में एकता, आवे क्यों न महान ?।।९४।।

(चौ.) नहिं आने का कारण निश्चित । ज्ञान हमारा अभी संकुचित ।।
इस से व्याख्या निज निज मति से । करी धर्म की भिन्न रीति से ।।९५।।
ऐक्य भान हो देव निकट ही । विशाल मन होवे उस से ही ।।
अल्प ज्ञानियों की हो संगत । पावे मानव धर्म फजीहत ।।९६।।
ऐक्य मानते भ्रष्ट रूप जो । नीच अन्य अरु महान निज को ।
ऐसे लोगों ने अपना भी । धर्म विचार किया कुछ नाहीं ।।९७।।

गुट्‌ट प्रार्थना में बन जाते । समाप्ति पर सो लड़ने लगते ।।
कौन कहेंगे उन को प्रार्थी ? वे तो हैं पिंडारी स्वार्थी ।।९८।।
टूटत लोग स्वार्थ वश जाते । आपस में लड़ते ही रहते ।।
उपासना में बढ़े निकटता । गहराये तब सामाजिकता ।।९९।।
ज्ञान इसलिए उन्हें दिलाओ । धर्मो में सम भाव सिखाओ ।।
जँचे न तब तक स्व धर्म ही की । नित प्रार्थना कराओ नीकी ।।१००।।
प्रार्थना सर्व धर्म करवावें । पर प्रार्थना तत्त्व समझावें ।।
तब ही आदर भाव बढ़ेगा । समता का भी रंग चढ़ेगा ।।१०१।।
तैयार होय अनुकूल भूमिका । लगें धर्म सब अपन सरीखा' ।।
इसी धारणा से एकात्मक । होकार पावे विश्व शांति सुख ।।१०२।।

(दो.) यह सामूहिक प्रार्थना, है उस के ही हेतु ।।
समुदयिक भव धारणा, पहला सात्विक सेतु ।।१०३।।
ईश्वर की यह कामना, एक से होय अनेक ।
अनेक में एकत्व का, भाव इसी में पेख ।।१०४।।

(चौ.) यत्न करें सब चहूँ ओर से । निकट आय चलि अपन ठौर से ।।
गौरव गाथा सिद्धान्तों की । गहराय भावना एक़पने की ।।१०५।।
तत्त्व ज्ञान सिद्धांत रूप जो । रमे न जब तक जन मन में सो ।।
तब तक पंथ बैर का विघटन ।हो न सकेगा कभी चिरंतन ।।१०६।।
सामूहिक प्रार्थना रूप से । सुगम तत्त्व का रोपण ऐसे ।।
इस से सारी शक्ति जुटाओ । गाँव-गाँव यह काम उठाओ ।।१०७।।
समभाव धर्म हो गाँव-गाँव में । फैलेगा सुख स्वयं विश्व में ।।
फिर पृथ्वी यह पावे अभिनव । तुकड्या कहे, स्वर्ग का गौरव ।।१०८।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरु की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
अध्याय अट्ठाईसवाँ, कर दे समन्वय विश्व का ।
धर्मादि की एकात्मता, दे प्रार्थना सुख पथ नीका ।।१०९।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

ॐ ॐ

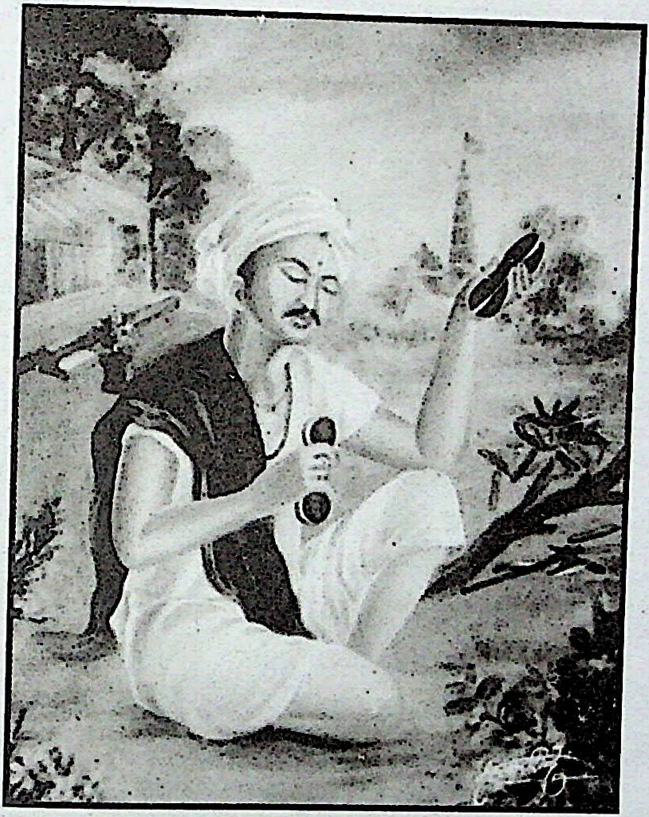

श्री संत चोखोबा महाराज

उन्तीसवाँ अध्याय

दलित-सेवा

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

'परधर्मों भयावहः के माने

(सवै.) अब शंकित हो जन पूछ रहे, सब धर्म समान' कहा सच ही ।
'पर धर्म भयावह' घोष मगर, गीता करती, प्रभु का वच ही ।।१।।
'निज धर्म में मौत भी श्रेयवती' पर है पर धर्म भयावह सा' ।
फिर धर्म-समन्वय हो किस भाँति ? जँचे न विचार हमें सहसा ।।२।।

(चौ.) ग्रंथ मर्म सुन लो सुजनों ! यह । यद्यपि है 'पर धर्म भयावह ।।
पर तस अर्थ अलग जानत है । श्रोता गण जो होत सजग हैं ।।३।।
हिंदू, मुस्लिम, जैन, इसाई । सिंतो, बद्ध, पारसी भाई! ।।
थे नहिं ये अभिधान धर्म को । जब गीता ने कहा मर्म को ।।४।।
बहु धर्मों का जन्म नहीं था । फिर 'पर धर्म' कहे क्यों गीता ?
यहाँ भेद कर्तव्य-धर्म का । थी जिस के बारे में शंका ।।५।।
स्वभाव प्रकृति एक व्यक्ति की । जैसे गुण की जिस कारज की ।।
वे गुण कार्य किसी दूसरे को । कैसे सधें स्वभाव भिन्न को ? ।।६।।
शक्ति किसी में, युक्ति किसी में । ज्ञानहि सेवा वृत्ति किसी में ।।
जिस के पास जुटें साधन जस । जन-जनार्दन की भक्ति करें तस ।।७।।
निज स्वभाव जैसा हो उससे । करें राष्ट्र की सेवा सुख से ।।
औरों का कर्तव्य लिया सिर । विनाश ही उस का होता फिर ।।८।।
इसीलिए 'पर धर्म भयावह'। निस्संदेह कहा है साग्रह ।।
यद्यपि घी है उत्तम जल से । पर मछली जीती नहिं उससे ।।९।।

(दो.) 'स्व धर्म' अर्थ है आत्म का, स्वभाव सत्, चित्, प्रेम ।
तदर्थ जीवन होम कर, इस में सब का क्षेम ।।१०।।
असत्, बैर, अज्ञान या, दुराचार, अन्याय ।
अनात्म धर्म है यह दुखद, भय 'पर धर्म' अपाय ।।११।।

(चौ.) रहे आत्म वश तभी मिले सुख । पर वश या पर तंत्र वहीं दुख ।।
ऐसा कई धर्म ग्रंथों ने । कहा सदैव महा संतों ने ।।१२।।

है परधर्म विकास अंधता । है स्वधर्म सच न्याय सिद्धता ।।
यही समझने तत्त्व हाथ में । है संतों ने दिया जगत में ।।१३।।
अपना मतलब 'मन में रखना' । पर का मतलब दूर हटाना ।।
ऐसी गडबड कहीं किसी ने । करी नहीं है ऋषि मुनियों ने ।।१४।।
मुसलमान का अर्थ 'मारना' । इसाइ मतलब 'देय भगाना' ।।
निज पापी भी हृदय लगाना । 'स्व धर्म' का तो यह मतलब ना ।।१५।।
कोई कहते हैं हिंदू हम । कट्टर शत्रु हमारे मुस्लिम ।।
हो सकते न कभी ईसाई । हम लोगों के बंधू भाई? ।।१६।।
मैं कहता, गुण वंदनीय हैं । जाति धर्म से काम नहीं है ।
पाप कर्म यदि हिंदू करवे । मान उसे क्यों कोई देवे ।।१७।।
मुस्लिम का आचार शुद्ध है । पर वह निंद्य, क्योंकि मुस्लिम है ?
न्याय हुआ यह किस के द्वारा । सुने कहें श्रोता गण सारा ।।१८।।

(दो.) विदेश से आ क्रिश्चियन, सेवा कर मर जाय ।
धर्म तुम्हारा वह जरा, नहीं बिगाड़न पाय ।।१९।।
फिर भी दो दुत्कार तुम, यह नहिं हमें पसंद ।
बंधु सखा वह आपना, समझ रखो सानंद ।।२०।।

(चौ.) जो कोई होय सत्य सिद्धांती । प्रीति बुद्धि जिसकी जग व्यापी ।।
वह हो किसी धर्म या दल में । समझो उसको अपना मन में ।।२१।।
मानवता ही धर्म निरंतर । मानवता खोजते न्याय पर ।।
न्याय सही गर हो किस के प्रति । रहे सदा सर्वत्र एक गति ।।२२।।
किन्तु हुई कमजोर यह दृष्टि । बढ़ी भावना तेरी मेरी ।।
धर्म पंथ में फूट पड गई । आत्मीयता न दिखे कहीं भी ।।२३।।
मूल तत्त्व का लोप हो गया । महंत-जोशी जोर बढ़ गया ।।
आग सांप्रदायिकता की फैली । हुई अज्ञानहि से मति मैली ।।२४।।
जैसे चलन बढ़ा यह जग में । असली धर्म मिला मिट्टी में ।।
अब उस सच्चे धर्म का उठना । कठिन हो गया, जैसे सपना ।।२५।।

(दो.) लोप हुआ गुण कर्म का, क्या स्व धर्म पर धर्म ?।।
भेद भ्रांति से गर्त में, गये लोग तज मर्म ।।२५।।
स्वधर्म है जग विष्णुमय', संत कथन यह गूढ़ ।।
किंतु अमंगल भेद भ्रम नहिं तजते हम मूढ़ ।।२७।।

(चौ.) नाम हमारा जब 'मानव' है। 'मानव धर्म ' स्वधर्म अर्थ है ॥
सही बात यह रख लो मन में। क़ही यहाँ जो सरल शब्द में ॥२८॥
हम सब हैं मानव, हाँ मानव। बढ़ायें मानवता का गौरव ॥
सब आबाल वृद्ध सुख पावें। वही कार्य अपना कर जावें ॥२९॥
कहता 'धर्म' न्याय अरु नीति। शुद्ध चरित्र अरु प्रेम स्फूर्ति ॥
करे व्यवस्थित समाज को जो। साम्यभाव से रत जन हित हो ॥३०॥
जब तक न इस मर्म को जाने। तब तक जो भी धर्म बखाने ॥
समझूँ मैं अपूर्ण ही उस को। कथन धर्म का लक्षण सब को ॥३१॥
लेंय कथन गर किसी ग्रंथ का। इस से तत्त्व भिन्न नहिं उस का ॥
मानवता का सार तत्त्व यह। सर्वधर्मसमभाव समन्वय ॥३२॥
जिन धर्मो में है मानवता। उन सब में है तत्त्व एकता ॥
गीता नहिं इसके विरुद्ध है। कृष्ण स्वयं समतावादी हैं ॥३३॥

(दो.) कृष्ण कहे 'समं हि ब्रह्म', समता दैवी धर्म।
पंडित समदर्शी सही, 'समत्व योग का मर्म' ॥३४॥
वासुदेव सब जगह हैं, भाव अपितु अनुभूति।
बिन महात्म दुर्लभ जगत, गीता में प्रभु उक्ति ॥३५॥

(चौ.) सब धर्मो का परित्याग कर। एक देव की शरण गहे नर।
माने उस को ही जग व्यापक। यह उद्धार तत्त्व ही सम्यक ॥३६॥
सब विषयों का एक भाव है। वासुदेव मय सर्व भूत है ॥
यह जाने वह सच्चा मानव। धर्म यही है उस का संभव ॥३७॥
इसी दृष्टि से करता जो कुछ। सर्वेश्वर की पूजा वह सच ॥
जहाँ आप-पर भेद न कोई। चित समन्वयी होवे भाई! ॥३८॥
वह चाहे हो किसी जाति का। पंथ, धर्म अथवा जमात का ॥
सच्चा स्व-धर्मी और सखा। मानें उस को हम सभी सदा ॥३९॥

क्या धर्मान्तर उचित है ?

(हरि.) श्रोता यहाँ पूछे, कही सब धर्म-समता आपने।
पर लाभ इस से ही उठाये, कुटिल लोगों ने घने ॥४०॥
कर युद्ध कोई जीत, छल बल से धरम में खींच ले ॥
कोई प्रलोभन मुग्ध कर लें, आपको क्या यह चले? ॥४१॥
कुछ दूर देशों ने मनुज, आ पैठते सेवा दिखा।

भोले जनों को लूटते, कर मुग्ध, धर्मान्तर सिखा ।।४२।।
तादाद अपनों की बढ़ा, सत्तार्थ हलचल दें मचा ।
सब दाँव अपना ये विधर्मी, साधते सेवा रचा ।।४३।।

(दो.) **'सभी धर्म सम' वचन से, धर्मान्तर बल पाय ।**
राष्ट्र-नाव को दें डुबा, इस में कहो उपाय ।।४४।।
सुन लो, धर्मान्तर तथा, सर्वधर्मसमभाव ।
इन में अंतर बहुत है, एक कहीं नहिं भाव ।।४५।।

(चौ.) धर्मान्तर पर कर विचार गर । उचित सिर्फ ज्ञाता धर्मान्तर ।।
सार-असार तत्व जो समझे । तस धर्मान्तर होय किस लिए ? ।।४६।।
जानी सब धर्मो में समता । कहाँ बाहरी भेद महत्ता ?
तब तो रह कर स्वधर्म में ही । कर आचरण तत्त्व का सब ही ।।४७।।
किसी से न बरजोर करेगा । नहिं आधीन किसी के होगा ।।
बदले धर्म लोभ भय कारन । अधःपतन उस का माने जन ।।४८।।
छल कर अगर अन्य धर्मों से । 'धर्म-सेवा' नाम देय उसे ।।
कहा महा पातक निश्चय ही । पुरखों ने भी इसे सदा ही ।।४९।।
अज्ञानी समाज तैसे ही । धर्म अन्य वश हों बन लोभी ।।
इससे उन्नति कहाँ अरु कैसे? बहुरुपिया जस स्वांग करन से ।।५०।।
मनुज-सुभाव प्रेम का भूखा । गरज पड़े हो जाय निकटता ।।
ऐसे में उस से मनमाना । उचित नहीं यो लाभ उठाना ।।५१।।

(दो.) **सेवा हक सब का, मगर, जन संख्या के हेतु ।**
धर्मान्तर जो होत है, सो राजनीति का केतु ।।५२।।
धर्म-मर्म तो एक पर, संख्या का यह खेल ।
राजनीति कारण बढ़े, लोक बैर विष-बेल ।।५३।।

(चौ.) नाम धर्म के प्रचार का ले । राजनीति भीतर जो पाले ।।
समझो भ्रष्ट जाति ही उस की । वह नहिं किसी धर्म के बस की ।।५४।।
वह तो किसी धर्म का नाहीं । उस का धर्म स्वार्थ पाना ही ।।।
दो दुत्कार उसे, हो कोई । दिलो जान से मित्र भले ही ।।५५।।
वैसे, अपने गुण नहिं जाने । पर औरों का महत्त्व माने ।।
दौड़ें दूसर धर्म अकारण । ठौर कहाँ पाते ऐसे जन ? ।।५६।।
मिलो सभी से तत्व समझ कर । तज न पेट के लिए धर्म पर ।।

आत्म मार्ग के बिन जाने ही! बातें अन्य करें क्यों सारी ? ।।५७।।
होवे जहाँ जहाँ भी ऐसा । उसे कलंक लगा तहँ तैसा ।।
समझदार गर देखे कोई । देख सके आजहु सो सोई ।।५८।।

आत्म सुधार व दलित सेवा

(दो.) हम भी हैं कारण यहाँ, याद यहू रखि लेंय ।
सक्रिय ज्ञान सुधर्म का, कौन दीन को देय? ।।५९।।
धर्म-धर्म कहते सभी, विपद न आते काम ।
अपनों का दुख देखते, संचय कर धन-धाम ।।६०।।

(चौ.) बड़े धर्म के हैं अभिमानी । धर्म बंधुओं को नहिं पानी ।
बिल्ली-कुत्तन नेह ज़तावे । ढोंग रूप बिन तत्त्वहि जाने ।।६१।।
मानव का छूनाभि पाप है । मानत, तिन अति दुखी करता हैं ।।
धर्म बदल कर वे जब आते । बाप मान तिन सीस नवाते ।।६२।।
भूख प्यास दींनो-दलितों की । सुख दुख, अभिलाषा भी उन की ।।
समझें नहीं मूर्ख अभिमानी । गावें गौरव स्व धर्म बानी वाणी ।।६३।।
'सबमें ब्रह्म व्याप्त' की बानी वाणी । कर्म परंतु मूढ़ मति मानी ।।
नहीं धर्म का मतलब ऐसा । सब संतों का मत इक जैसा ।।६४।।
पर उपदेश कहाँ हैं ऐसे ? कह समाज-हित बातें जन से? ।।
वे सब ही तो धर्म बहाने । लगे पेट-पूजा में अपने ।।६५।।

(दो.) पेट-पुजारी स्वार्थ से, करते भ्रान्त प्रचार ।
डालें मानव बीच वे, निज सुख हेतु दरार ।।६६।।
यह नासमझी मनुज की, जब लौ दूर न होय ।
तब लौं पूरी उन्नति, जग की कठिनहि होय ।।६७।।

(चौ.) इस के लिए एक ही कर लो । धर्म क्षेत्र अपने सुधार लो ।।
तत्त्वज्ञान सब को सब ही का । समझाए मानव जीवन का ।।६८।।
धर्म-जाति की बात बनाते । वे ही सुख संपति अब पाते ।।
इससे समझदार लोगों को । करने होंगे यत्न अनेकों ।।६९।।
लगें आदिवासी विकास में । जायें कुछ जंगल गांवों में ।।
देखें वहाँ गरीब जनों की । कुटिया कैसी है रहने की ।।७०।।
आदिम जन की कई जातियाँ । अब भी पहले खाल-पत्तियाँ ।।
कितनी बना कुठी पत्तों की । रहतीं हैं बस पेड़ तले ही ।।७१।।

बोली उन की समझ न आवे । हमें देख डर से भग जावें ।।
प्रेम लगा कर उन लोगों से । बनाय सब को अपना जैसे ।।७२।।
दवा आदि उन को पहुँचायें । लिखना-पढ़ना सभी सिखायें ।।
उत्सव, सह भोजों में जायें । अरु अपनों में उन्हें बुलाये ।। ७३।।

(दो.) **जन, भोजन, मंदिर कहीं, छुआ छूत नहिं शेष ।**
सबका सब विधि एक हो, स्थान, मान, सुख, क्लेश ।।७४।।
निर्व्यसनी शुचि रहन की, सम रस हो दो सीख ।
जूदा देख के दूर से, कहना तुच्छ न ठीक ।।७५।।

(चौ.) अड़चन उन की दूर करा दें । नये विचारों को फैलायें ।।
सम गुणवान समाज सभी हों । प्रयत्न नाना विधि निश्चित हों ।।७६।।
अब तक उनकी हुई उपेक्षा । ले प्रायश्चित जस यह दीक्षा ।।
सद्भावना से संग देंय सब । उन की स्थिती सुधरेगी तब ।।७७।।

उपेक्षित मानवी मूर्तियों की सेवा में ही देवत्व

जो कोई भी अड़े-पड़े हों । रोगी, उजड़े या किस दुखी हों ।।
उन के लिए सुधाम बनावे । जिस में स्वास्थ्य, शांति सुख पावें ।।७८।।
तपेदिक अरु कुष्ट रोग को । मानों दैव भोग नहिं इन को ।।
करने को उन का निर्मलून । गाँव-गाँव में हो आयोजन ।।७९।।
टूट गई जो मानव मूर्ति । उस की सेवा ही प्रभु-भक्ति ।।
दिये बिना दुखियों को शांति । माँगे भी न मिलेगी मुक्ति ।।८०।।
जीवन में जो दबे और कुचले । उन को मन से गले लगा लें ।।
अनाथ के हित कष्ट उठाते । वे ही देव धर्म को भाते ।।८१।।

(दो.) **अंध पंगु गूँगे बधिर, अबल अनाथ भ्रमिष्ट ।**
रँग दें ये प्रभु-चित्र शुभ, धर्म शील वे श्रेष्ठ ।।८२।।
अन्य धर्म यह काम कर, पाते जन की प्रीति ।
हम आलस घिन से भरे, यह तो पतन अनीति ।।८३।।

(चौ.) यह स्वभाव हम आज त्याग दें । सेवा में जी-जान लगादें ।।
दलित जनोंको देव समझ कर । सेवा करें, धर्म यह सुखकर ।।८४।।
यही धर्म संतों का जीवन । देखा जिन जन मेंहि जनार्दन ।।
सज लिया निष्काम प्रेम से । सभी विश्व-उद्यान धर्म से ।।८५।।

राम कृष्ण धर्मावतार पर । किया जटा से साफ डोम-घर ।।
एकनाथ पा अछूत-भोजन । बालक गोद लिये तस आंगन ।।८६।।
श्री चैतन्य संत पंडित भी । गले लगाये रुग्ण-दलित भी ।।
गांधी-ईसा ने सेवा कर । दिया कुष्टियों को सुख जी भर ।।८७।।
अनाथ बेवा अपंग खिदमत । पुण्य कोष यह पैगम्बर-मत ।।
तोड़े घेरे जाति भेद के । दया की मूर्ति बुद्ध गौतम ने ।।८८।।
बेर खाय शबरी के रघुवर । गले मिले गुह से प्रेमातुर ।।
मीत आदिवासी वानर गण । कर दी पतित अहिल्या पावन ।।८९।।

(दो.) **ग्वालवाल में कृष्ण रम, स्त्री-शूद्रन के साथ ।**
ब्याह किया गिरिजन-सुता, जांबुवती से नाथ ।।९०।।
भीष्म शांतनु का रचे, कोलि-सुता से ब्याह ।
प्रमाण ऐसे सैकड़ों, लो ग्रंथों की थाह ।।९१।।

(चौ.) कर्ण, कबीर, शकुंतला, सीता । अनाथ ऐसे सुत या दुहिता ।।
धन्य हुए ऋषि जन भी कितने । पाला पोसा जब समाज ने ।।९२।।
नामदेव-ज्ञानेश संत गण । प्रेम से भेंटे सभी दलित जन ।।
जिस से सभी समाजों में से । प्रकटे भक्त कई तव वैसे ।।९३।।
चोखा संत समूचा ही घर । बना भक्ति का मंदिर सुंदर ।।
उपेक्षितहु समाज से ऐसे । देवत्व खिले सुसंस्कार से ।।९४।।
सजन बधिक, रविदास चर्मकर । दादू धुनिया, गोरा कुम्हार ।।
कान्हू पात्रा, बंकाहु जनाई । उदित हुए ऐसे कितने ही ।।९५।।
पैदा अब भी घर-घर होंगे । नारी-नर बहु ख्याति लहेंगे ।।
एहि हित उन्नति करनी होगी । शोषित-उत्पीड़ित समाज की ।।९६।।
गांधी बाबा, फुले ज्योतिबा । जान मर्म जनकी प्रतिभा का ।।
कार्य किया दलितोन्नति का सब । आज सभी का है वह कर्तब ।।९७।।

समत्व भाव से धर्म शिक्षा दो !

(दो.) **मनुज मनुज को समझ सम, करे प्रगति अन्योन्य ।**
भर दे जग आनंद से, सुधर्म-सेवा धन्य! ।।९८।।
कष्ट न दें कोई किसे, कोउ न किसे फँसाय ।
नहीं दुरदुराए किसे, सब ही अपन जनाय ।।९९।।

(चौ.) देखो सुख सुविधाएं इन की । रिश्ते न्याय पूर्ण सब से ही ।।
नाम नहीं हो भेद भाव का । ऐसा जीवन बने जगत का ।।१००।।
फिर उन का विश्वास जमेगा । स्वभाव अपना भला लगेगा ।।
आकर्षित कर मन को उन के । मोड़ सकोगे चाहे जैसे ।।१०१।।
यही धर्म सेवा है उत्तम । सद्भावना हो, करें इसे हम ।।
पिछड़े हुए भाइयों को हम । देयँ समझ जग की भाई सम ।।१०२।।
ऊसर को जरखेज बनाये । फल फूलों की बहार आये ।।
किसी को भी किसी के बस में । नहिं पड़ने दें अनजाने में ।।१०३।।
वितंडवाद अन्य धर्मों से । मढ़े अनर्गल दोष किसी से ।।
ऐसी स्वार्थ बुद्धि से बचने । सभी सेवकों को चेतायें ।।१०४।।
पिता हमारे हमें वंद्य हैं । पर औरों के नहीं निंद्य हैं ।।
आदि सूत्र है यही धर्म का । सर्ब धर्म समभाव रूप का ।।१०५।।

(दो.) मानवता जन में बढ़े, सब को दो यह दृष्टि ।
फिर न बचेगी गाँव में, धर्म भेद की भ्रान्ति ।।१०६।।
साधन सब से श्रेष्ठ यह, मन संस्कारित होय ।
सबके मन को जीतना, सेवा से ही होय ।।१०७।।

(चौ.) कला पथक, प्रवचन, संकीर्तन । पुराण, तुमड़ी आल्हा गायन ।।
नाटक आदि सभी ये साधन । इसी के खातिर ही आयोजन ।।१०८।।
जो जो जिस को मालुम होवे । सो सो सो सिखलाता जावो ।।
लाभ मिले उस का सब जन को । समझो मानव धर्म इसी को ।।१०९।।
सही धर्म जानेंगे सब जन । तब अनेक में दिखे एक पन ।।
स्वारथ भाव पराये पन की । मेख गाड़ नहिं पाये कोई ।।११०।।
इस के लिए भजन-संकीर्तन । श्रेष्ठ लोक-शिक्षा का साधन ।।
ज्ञान धर्म का अरु परमारथ । गृही धर्म यह सबहि सिखावत ।।१११।।
गाँव अपन का कोई प्राणी । रहे जरा भी नहिं अज्ञानी ।।
सच्ची शानहि यही गाँव की । होवे आन सही सेवक की ।।११२।।
लहरावे सद्धर्म सिंधु जब । होगी एक धर्म नदियाँ सब ।।
फिर हैं कहाँ धर्म, धर्मान्तर ? संस्कार यही जावे सब में भर ।।११३।।
भ्रान्त रूढ़ि कल्पना जाल से । अब धर्म मुक्त हो, सबल बने ।।

तस हित भजन आदि करवाओ । कहता तुकड्या, लोग जगाओ ।।११४।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
उन्तीसवाँ, अध्याय यह, निज धर्म, धर्मान्तर बता ।
दे दलित सेवा दृष्टि शुभ, जिससे खिले मानव-लता ।।११५।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

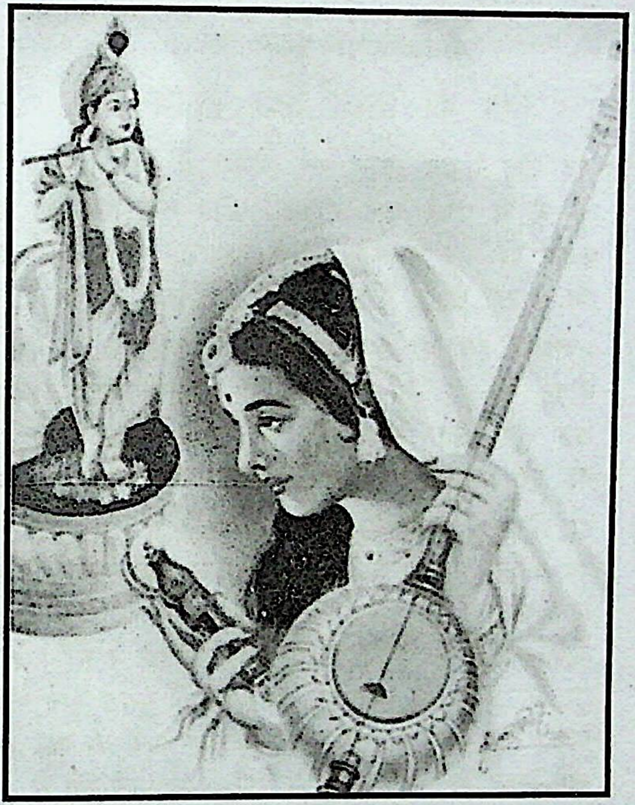

भक्तिमती सन्त मीराबाई

तीसवाँ अध्याय

भजन–प्रभाव

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

संतो का भजन तथा समाज–जीवन

(सवै.) अब श्रोतृ समाज सवाल करे, भजनों में प्रभु गुण–घोष रहे ।
जब वे ही प्रचार कला में ढले, पवित्र कहाँ फिर शेष रहें? ।।१।।
भजनों को नया यह मोड दिला, शुभ राह को आप बिगाड़ रहे ।।
उन से सब लौकिक सीख मिले, नाहिं धार्मिक को जँचता सब ये ।।२।।

(दो.) समाधान इस का सुनो, धर्म–धारणा ठीक ।
जीवन के हर अंग की, उस में समुचित सीख ।।३।।
कल जुग कीर्तन–भजन में, कही गयी अति शक्ति ।
वह इस तरफा उक्ति नहिं, केवल पाने मुक्ति ।।४।।

(चौ.) हम लोगों का समग्र जीवन । सुधार सकत हैं भजन–कीर्तन ।।
वेद, शास्त्र, स्मृतियाँ सारी । इसी हेतु जन्मी हितकारी ।।५।।
ग्राम व्यवस्था, समाज रचना । विवाहादि विधि, राज्य योजना ।।
कृषि, औषधि या विविध कलाएँ । वेद स्मृतियों ने सब गाये ।।६।।
पुरातन संस्कृत वेद काल की । उससे बनी पुराण काल की ।।
प्राकृत संत भजन में आई । वह थी आम जनों की जाई ।।७।।
नाम भजन साधू संतों ने । भाव भक्ति भर गाये मन से ।।
सभी जनों को सहज भाव से । बोध कराने सरल रूप से ।।८।।
कुछ वेदान्त रूप में गाये । कुछ बैराग भाव समझाये ।।
विनोद रूप में सखा भाव से । साधु संत कहिं भजन बनाये ।।९।।
रचे किसी ने भजन दु–अर्थी । बहु रूपी, स्वांगी, गारूडी ।।
सिपाही, शहनाई, गुंडाई । झांकी सब समाज जीवन की ।।१०।।
लीला वर्णन किया किसी ने । ग्वालिन, गोपाल, देव देवी के ।।
समाज सुधार का बीड़ा ले । गौरव पाया कहीं किसी ने ।।११।।

(दो.) जैसी हालत जब बने, भजन करें तेहि भांत ।
पर लोगों के सोच में, रही अधूरी बात ।।१२।।

बुरी भावना खतम हो, कर्तव्य शील हों लोग ।
समाज भी अच्छा बने, संत-भजन का योग ॥१३॥

(चौ.) विरहिन अरु परकीया गा कर । मुग्ध किया जन-मन बहला कर॥
बिगड़ों को ऐसे अपनाया । समाज को भी सजग बनाया ॥१४॥
नाना रीति नाच गायन कर । भाव भक्ति गीतों में भर कर ॥
जाग्रति की थी उसी राह से । संत महान ने निज वाणी से ॥१५॥
संत तुका, श्री नामदेव जी । शेख मुहंमद ज्ञानदेव जी ॥
गुरु नानक, चैतन्य, निताई । मीरा, मुक्ता, अक्क, जनाई ॥१६॥
रामानंद, सूर, श्री तुलसी । परमानंद, दादुजी, नरसी ॥
कबीर, ब्रह्मानंद, नाथ गण । भजनी संत हुए है अनगिन ॥१७॥
कितने हुए संत-मुनि-ग्यानी । भजन-गीतमय जिन की वाणी ॥
जन उद्धार हुआ कितनों का । सच्चे नाम भजन से उन का ॥१८॥
भजन भजन में वाणी तिनकी । उठे गगन मंडलहु चीरती ॥
सुजन संत ऐसे ही कितने । हुए अभी हैं, आगे होंगे ॥१९॥

समय ज्ञान की आवश्यकता

(दो.) भजन राह छोड़ों नहीं, सब संतों की टेक ।
'संगति उस में होय, पर, बात रखो मम एक ॥२०॥
हुए राम अरु कृष्ण भी, हुए अग्रणी संत ।
'आज करें क्या' बस यही, था उन सब का मंत्र ॥२१॥

(चौ.) जग की नित्य बदलती गति है । आज कहाँ कल क्या स्थिति है ॥
कौन बात किस के प्रति किस से । कहें कहाँ, कला यह सीखें ॥२२॥
श्मशान यात्रा हो मुरदे ही । तहाँ न तुक श्रृंगार के रस की ?
वैराग्य भावना जिन से जागे । ऐसे भजन होंय तहँ आगे ॥२३॥
विवाह में बुलवाया भजनी । गावे करुण मसान कहानी ॥
लोग कहेंगे 'इसे निकालो । क्या बकता है यहाँ ? हकालो' ॥२४॥
मंदिर माँही भजन कराया । नख सिख तिय सिंगार सुनाया ॥
देखेंगे हँस कर श्रोता जन । समझ सभी उस का पागलपन ॥२५॥
भजनी को ले गये रणांगण । कहे वीर से 'छोड़ो दुश्मन ॥

झगड़े झूठे हैं, धर्म दया।' कौन सुने अस बातें मिथ्या? ।।२६।।

(दो.) **यह सब जो जाने वही, भजन गा सके ठीक।**
भोले सब जन को वही, समझ दे सके नीक ।।२७।।
समाज रूढ़ि से है बंधा, कहाँ शुद्ध सिद्धान्त।
कहें समय को देख यह, समाज कार्य निर्भ्रांत ।।२८।।

(चौ.) समय देख उपदेश होय पर। सत्य तत्त्व को नहिं छोड़ें नर ।।
कहे सत्य ही रुचिर बना कर। समय पत्र इत्यादि समझ कर ।।२६।।
यही समझ कर संत जनों ने। ग्रंथ, छंद, पद, भजन बनाये ।।
उसी तरह अब आज चाहिये। नई नई वैसी रचनाएं ।।३०।।
सब पंथों में होय समन्वय। मेल जातियों सब का निश्चय ।।
ऐसे भजनों कीहि जरूरत। गाँव हमारे आज है गुरुतर ।।३१।।
राह बताई जो संतों ने। वर्णन उनका होवे फिर से ।।
वर्णनकारी पड़े भरम में। अनिष्ट समझो हुआ जगत में ।।३२।।

वर्तमान भजन प्रथा व विवेक की जरूरत

(दो.) **कुछ गाते निर्गुण भजन, पढ़ते अर्थ न जान।**
व्यर्थ दम्भ, मन में चढ़े, 'मैं ज्ञानी' अभिमान ।।३३।।
संत वचन कंठस्थ कर, दिखते संत महान।
किंतु निभाया उमर भर, पेट भरन का काम ।।३४।।

(चौ.) कोई ग्वालिन रँग में नचते। बनठन कोई रास रचाते ।।
गूढ़ अर्थ तज मजे उड़ाते। विषय वासना युत मदमाते ।।३५।।
लीला कृष्णहि देखें ऐसी।, उलटा भाव भरे जन माँही ।।
देव देवियों के जीवन का। बने तमाशा ठेठ सड़क का ।।३६।।
कोई राग रागिनी गाते। शब्द तोड़ कर अर्थ मिटाते ।।
तोड़ शब्द वे उन भजनों के। चाहे जैसा उन्हें बनाते ।।३७।।
कोई मूल से हट कर गाने। बीच बेसुरे भरते जाते ।।
चिड़ आये मन में वह सुन कर। सब का अर्थ-अनर्थ देख कर ।।३८।।
कुछ तो गाते अति सुंदर भी। मधुर अलाप ताल कौशल भी ।।
वहाँ न किन्तु अर्थ का अंकुर। भजन भाव जागे नहिं पल भर ।।३६।।

सोचत आयोजन पहले ही । चाहिये तम्बाकू गांजा भी ।।
बिन प्रसाद अरु चाय पान के । रंग जमे नहिं भजन करन के ।।४०।।

(दो.) कुछ कहते, मेरा भजन, अद्भुत समझे कौन ?
वरद हस्त गुरुदेव का, जेहि सिर समझे तौन ।।४१।।
संप्रदाय, भजनी कई, शेखी अपन बघार ।
लड़ते पाने शत्रु सम, बाजा, माल, तंबूर ।।४२।।

(चौ.) कोई खंजड़ी राग मिलाते । प्रतिस्पर्धा में नाम कमाते ।।
पर संतोष न मन मे तिल भर । पावत कोइ, भटक दुनिया भर ।।४३।।
कोई कहें, अन्य संतों के । भजन न गाओ मंडप अपने ।।
भजन हमारे लिए हमारे । संप्रदाय के हैं ये नारे ।।४४।।
मित्रो! अब तो ऐसा करना । छोड़ो पूरे मन से अपना ।।
होंय सद्वचन किसी संत के । होवे चर्चा प्रेम भाव से ।।४५।।
जिनका अर्थ समझ नहिं पाओ । निज बल पर अस भजन न गाओ ।।
व्यर्थ होयेगा वर्ना सब ही । असर भजन का होय न कोई ।।४६।।
होय भजन से ग्राम-जागरण । हृदय-जागरण, कार्य-जागरण ।।
सत्कर्मों में सभी लगावे । अस संदेश लोक में जावे ।।४७।।

(दो.) भजनी ही खुद आलसी, क्या जग को सिखलाय ?
होवे अपनी ही हँसी, कोई अस न कराय ।।४८।।
जो जो करे सो समझ ले, पग न सोच बिन डार ।
श्रेष्ठों का कहना यही, मोक्ष मिले सुविचार ।।।४९।।

(चौ.) बिना विचारे देव भक्ति में । होय फजीहत भेद खुलन में ।।
लोग कहें तब इस दंभी से । फैला लोभ जाल पूजा में ।।५०।।
किया रात भर भजन किसी ने । खटिया पकड़ी बीमारी से ।।
नाम-स्मरण कहाँ तब होता? 'अरे बाप' चिल्लाता रहता ।।५१।।
बिन अभ्यास उपास करे जो । पित्त-वात बस मोल लेय सो ।।
खाये वह फिर सात महीना । मुसंभी, दवा, शहद रोजाना ।।५२।।
ऐसा करे किस लिए कोई । जब संतुलन बिगड़ने से ही ।।
भोग भोगता रह जीवन भर । बदनामी, बीमारी कस कर ।।५३।।
मनुज करें उपायोग बुद्धि का । परामर्श ले अनुभवियों का ।।

सभी जगह 'अति' होवे वर्जित । हो अभ्यासहि से आत्मोन्नत ।।५४।।

सन्तों के भजनों का प्रभाव

(दो.) जिस से हानि समाज की, उसे सुधारन हेत ।।
वाणी संत की गर्जना, बिच डंकों की चोट ।।५५।।
अमित रूप उन के करो, लखि रूचि भेद अनंत ।
पर तजने दो नहिं किसे, श्रेष्ठ मूल सिद्धान्त ।।५६।।

(चौ.) नई रीति भी चले भजन में । जिस से आकर्षण हो जन में ।।
पर सिद्धान्त महान मूल जो । छूटें नहीं भूल से भी सो ।।५७।।
भजनों के बहुविध प्रकार है । भूत-भविष्यत् के विचार हैं ।।
सन्तन काव्य किन्तु अति उत्तम । उनकी अलग दीप्ति ही हर दम ।।५८।।
पर आगार संत-भजनों का । अपार संग्रह अमूल्य उन का ।।
उन में सार-असार देख कर । दें अनुसार पात्र भल चुन कर ।।५९।।
संत-भजन में भक्ति न केवल । हैं जीवन के दृष्टान्तहु कुल ।।
भली-बुरी भी बातें कह कर । समझाइश दी संतन हित कर ।।६०।।
प्रेम भजन मीराबाई का । लीला काव्यहि सूरदास का ।।
तुलसी जी का जीवन दर्शन । कबीर साहब का उद्‌बोधन ।।६१।।
भजन सभी वे प्रभु को प्यारे । जिन में स्वर मानव सेवा के ।।
यही जान कर समाज-जागृति । करें भजन शैली से संप्रति ।।६२।।

(दो.) राम मंत्र केहि ने दिया, जागृत किया समाज ।
दत्त मंत्र केहि से बढ़ा, जन सेवा का भाव ।।६३।।
कृष्ण रंग मीरा रँगी, तुच्छ राज सुख छोड़ ।
तस प्रभाव घर-घर हुआ, भक्ति-लगन बेजोड़ ।।६४।।

(चौ.) गूँज उठे चैतन्य-गीत जब । दुष्ट रूढ़ियाँ खतम हुई सब ।।
पावन हुई कृष्ण भजनों से । बंग भूमि तब सरस धुनों से ।।६५।।
नानक देव कबीर आदि ने । भजन किये फिर कर विदेश में ।।।
जगत् प्रभावित राम तीर्थ ने । किया विवेकानंद स्वामी ने ।।६६।।
महर्षि ऐसे बहुत हुए हैं-। मगर अधूरे काम पड़े है ।।
फैला नहीं देश भर में है । सच्चा धर्म लोक का जो है ।।६७।।
भारी कम आज है उन की । पिछड़ गये हैं मानव सब ही ।।
भरपाई करने को इस की । चाहि प्रचारक सेवाभावी ।।६८।।

भजन प्रचारक एवं भजन प्रणाली की विशेषताएँ

(दो.) वही प्रचारक श्रेष्ठ हैं, समझे समय की मांग ।
मार्ग बताये उचित जो, जगा समाज में हांक ।।६६।।
कहे 'हमारा कुछ नहीं, संत बताये मर्म ।
वही कहूँ विस्तार में, यही भजनिया धर्म ।।७०।।

(चौ.) भजनासन पर भजनी बैठे । लोगों की नजरों में आये ।।
सद्भावना से लोग देखते । उचित दिखे गंभीर भाव से ।।७१।।
रहनी उसकी सादी सात्विक । विनम्रता व्यवहार में झलकत ।।
भाषा शुद्ध प्रेममय वाणी । भजनी जन की सही निशानी ।।७२।।
ललाट पर सलवटें पडी हों । इधर उधर आंखें फिरती हों ।।
टेढ़ा मुँह, चंचल मुद्राएँ । भजनी कभी न ऐसा होये ।।७३।।
मन में आदर सदा भरा हो । भाविक करुणामय वृत्ती हो ।।
रोमांचित होवे उसका तन । भजनी जन का यह सच्चा धन ।।७४।।
होय सुकोमल रसाल वाणी । छुए शब्द मन को इक इक ही ।।
जाग्रत हों इस को सुन कर जन । लगें ध्यान में सुजनों के मन ।।७५।।
होवे भजन सरल अरु सात्विक । स्वर में ओज माधुरी सम्यक ।।
तालबद्ध निःशंक सुहाना । अर्थपूर्ण, निर्भय हो बाना ।।७६।।

(दो.) प्रचार पावन के लिए, संतन किया प्रयास ।
सीधे सच्चे रूप में, समझ सके जन बात ।।७७।।
भारत भावुक देश है, सहज भजन-विश्वास ।
'देव-धर्म' कहते यहाँ, नस-नस भरे उजास ।।७८।।

(चौ.) हिरण कशिपु जो चिढ़े नाम से । सुनता नारद-भजन प्रेम से ।।
गूढ़ शक्ति बस यही भजन में । विषधर नाग शांत हो क्षण में ।।७६।।
है इस भाँति महत्त्व भजन का । प्रभाव गौण रहे भाषण का ।।
सन्तों ने यह तत्त्व समझ कर । गाये भजन प्रेममय अनवर ।।८०।।
भाषण में समाज की बातें । धर्म, राष्ट्र अरु सुराज बातें ।।
लौकिक, वैज्ञानिक बातें भी । रूखी ही वे सबको लगती ।।८१।।
लोग समझते भजन-भावना । हो सोने में अर्थ सुहागा ।।

बदले दुनिया चमत्कार से। हो प्रभाव तैसाहि भजन से ।।८२।।
बजे खंजरी जहाँ भजन की। या मृदंग पर थापहि उस की ।।
जनता होय बावरी-पगली। उत्कंठित हो सुनने भगती ।।८३।।
चातक सम देखें नर नारी। शुरू होय कब पाली दुसरी ।।।
मुग्ध होय जब समाज ऐसा। समझो गाँव जग गया वैसा ।।८४।।

(दो.) **गाँव भजन ऐसे करो, जागें वृद्ध-जवान।**
स्त्री-लड़की सुजन सब, ग्राम कार्य लें ठान ।।
हरेक के मुख गीत हो, 'सुधार लें सब गाँव।
प्रभु का है आदेश यह, ग्रंथों का यहि भाव ।।८६।।

(चौ.) चरवाहे, किसान, बेपारी। लुहार, दर्जी, नौकर, नारी।
घर-घर सब कूटते-पीसते। गाते भजन खेलते-हँसते ।।८७।।
कहते-'प्यारे! सब जन आओ। एक-एक कर काम उठाओ ।।
गाँव सुधारेंगे हम सब मिल। जितना भी बन सके अपन बल ।।८८।।

भजन संस्था का पुनर्निर्माण करो!

स्फूर्ति यही भरने संतों ने। प्रथा भजन की डाली उन ने ।।
सेवा गुण अरु सुसंस्कार से। समाधान जन होय सहज से ।।८९।।
सेवा तो नौकरी बनी अब। भजनों से जिंदगी चले सब ।।
इस से मूल्य घटा है सब का। साधन बना धर्म रोटी का ।।९०।।
माँगे भीख बजा इकतारा। दर दर फिरे पेट का मारा ।।
लोप हुई उस के पीछे की। संत-तपस्या मानो कब की ।।९१।।
फिर से उसे दुरुस्त करें हम। सुसंस्कार से लोग भरें हम ।।
घर घर पौधे नये उगायें। सेवा वृत्ति जहाँ लहराये ।।९२।।

(दो.) **इक सेवक सेवा करे, पाते राह हजार।**
उतरे मानव जाति का, रिन यह हो निर्धार ।।९३।।
राम मंत्र ले भाव से, चेत चले हनुमंत।
सहर्ष आये राम के, कार्य सिद्ध कर अंत ।।९४।।

(चौ.) वैसा ही अब कार्य करे हम। सुधार भजन आदि साधन हम ।।
बंधु स्नेह इन्हीं से मन में। भर दें गाँव-गाँव जा जन में ।।९५।।

प्रेम भाव हो प्राणिमात्र में । उद्‌भव सेवा भाव उसी में ।।
बढ़े तभी गौरव चरित्र का । जन संस्कार पड़े भजनों का ।।९६।।
चले परंपरा भजनों की जब । सोत मिले सत्प्रवृत्ति का तब ।।
इसे छोड़ कोई नहिं दूजा । उपाया सात्विक जन शिक्षा का ।।९७।।
इस से बिनती सुनो ग्राम जन! वृद्ध-युवक-महिला सब सज्जन! ।।
गीत प्रेम मय गावें जन सब । प्रचार ऐसा करो अभी अब ।।९८।।
वाणी हरि गुण में रंगने दो । सुकर्म का चस्का लगने दो ।।
गुस्सा व्यसनों पर सब जन में । आने दो अब इस माध्यम से ।।९९।।
करलो जतन गाँव-संस्कृति का । भजनों द्वारा जन जागृति का ।।
जनता-विद्यापीठ सही यह । कहता तुकड्या, चले सुखावह ।।१००।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
इस तीसवें, अध्यायमें निजगाँव-हितका सोतही ।
है सद्भजनकी साधना, भवसिंधु में सुख-पोतही ।।१०१।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

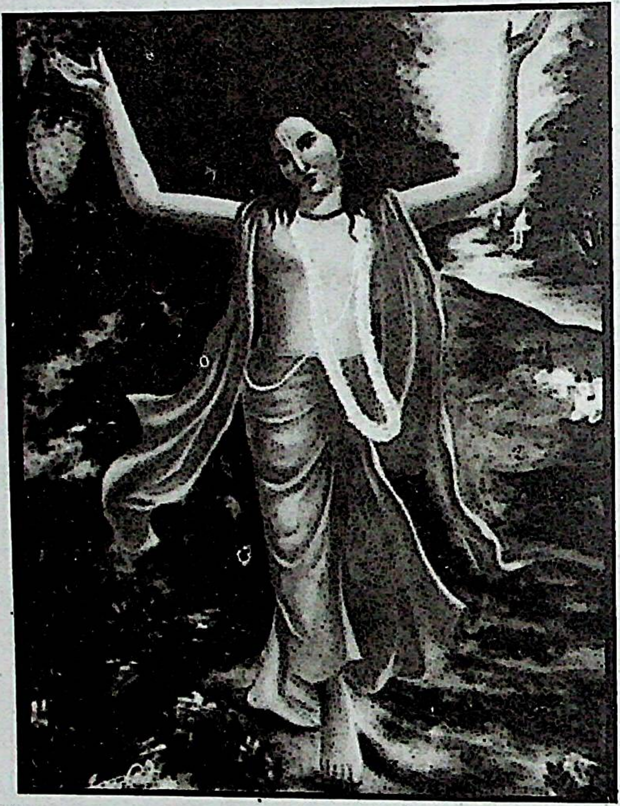

श्री संत चैतन्य महाप्रभू

इकतीसवाँ अध्याय

संत–चमत्कार

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

सन्त-कृपा या शिष्य-प्रयत्न ?

(तोटक) ईश्वर के भजन-प्रचार से तो । अपना उद्धार सहज ही हो ।।
पर लगें अगर जग-तारण में । शक्ति अपार चाहिए तन में ।।१।।
वह कार्य कर सके संत वही । जो देव बने तन मन से सही ।।
पर ऐरे-गैरे करे भजन । तब क्या उन से सकता कुछ बन? ।।२।।
प्रभु नाम लिखे पाषाण तिरे । पर लेखक थे वह शक्ति भरे ।।
डाले कोई कंकरहू जल में । अब तो वह ले डुबकी पल में ।।३।।
निर्जीव दीवाल चली बल से । पर्वत सोने का हुआ उससे ।।
विष भी शुभ अमृत में बदला । यह संत जनों की शक्ति कला ।।४।।
भैंसा अपने मुख बेद कहे । कागज़ जल में सूखेहि रहे ।।
जिन के इस भाँति प्रताप पढ़े । जग-तारक संत प्रसिद्ध बड़े ।।५।।
अपने भजनों-वचनों से वही । तारेंगे विश्व दयालु सही ।।
भजनों की हमारी टुन्न-टुनिया । बजने से भी हो सकता क्या? ।।६।।
पितु मातु सुसंत कृपालु बड़े । करते अपने सम दृष्टि पड़े ।।
करते हि कृपा फिर देर नहीं । समझो पतितों का तारण ही ।।७।।
उन का जब कान में मंत्र पड़ा । फिर पाप रहे न जरा भी खड़ा।।
जड़ जीव तभी सब उद्धरते । भजनी यों अन्य न कर सकते ।।८।।

(सोर.) संत-चमत्कृति सार, श्रोता का मन भाव यह ।
तभी तरे संसार, दूसरे साधन व्यर्थ तहँ ? ।।९।।
इसका सुनो जवाब, संत तारते शक्ति से ।
अब लौं बचता नहीं, अज्ञानी कोई मुक्ति से ।।१०।।

(चौ.) क्योंकि हो चुके संत अपरिमित । जिन की सत्ता थी ईश्वर जित ।।
उन संतों के सब जन अपने । क्यों न सदय हो तारे सब ने ? ।।११।।
'सब का हो कल्याण' हृदय से । संत चाहते ही हैं ऐसे ।।
पर जो भी कर्तव्य करेंगे । अधिकारी बन वही तरेंगे ।।१२।।

जग में बिन कर्तव्य किये ही। मुफ्त लाभ दे संत न कोई ।।
सिर्फ मंत्र लेने से उन का। मिले मोक्ष, यह भ्रम है जन का ।।१३।।
करते अपने तुल्य संत जन। परश करे लोहे को कांचन ।।
किन्तु न मिट्टी होगी सोना। संगति समझो मेरा कहना ।।१४।।
लोकोद्धरण कार्य सन्तों का। पर उस का है मर्म अनोखा।
शिष्य-धर्म है कौन हमारा? पहले वही समझ लो प्यारा ।।१५।।
संत कहें जो कुछ भी जिस से। करे उसे यदि सही भाव से ।।
हो उद्धार जगत में उस का। यह ही अनुभव भी है सब का ।।१६।।
नहीं करें उद्धार संत भी। राह बतायें लोगों को ही ।।
करना होगी साधक को ही। उसके कथन मुताबिक प्रगति ।।१७।।

(दो.) **चोर चहे सुत चतुर हों, विषयी चह शौकीन।**
वैसे साधू चाहते, हों जन सुजन प्रवीन ।।१८।।
निज प्रचार करते सभी, सोइ संत व्यवहार।
बुरा कौन पथ कौन शुभ? साधक करे विचार ।।१९।।

(चौ.) पिछले जन किस राह गये हैं?। किस प्रचार से सुखी भये हैं?
किस को जीवन में चल आगे। कीर्ति मिली कस उसे परख लें ।।२०।।
एक गया खेलते जुआ है। एक विषय में डूब मरा है ।।
हुआ एक तस्कर, अन्यायी। गांव-गुण्ड की पदवी पायी ।।२१।।
संगति संत करी इक जाकर। तरा वही सन्मारग पाकर ।।
प्रचार उस का प्रकाश बनकर। सब लोगों में फैला सुंदर ।।२२।।
ऐसी है संतो की संगति। हम भी समझें होगी शुभ गति ।।
पर कर्तव्य हि करने पर ही। उन्नति सन्मुख दीखन लगही ।।२३।।
कहते संत 'सत्य ही बोलें'। पर खुद झूठ नियम से बोलें ।।
अंत में नाम धरे संतों का। कौन न्याय है यह दुनिया का? ।।२४।।
कहते संत 'छोड़ दो दुर्गुण'। पाप करें हम ढेरों चुन-चुन ।।
गीत-छंद संतों के गाकर। 'हो उद्धार', कहें हम क्यों कर? ।।२५।।

(दो.) **संत-वचन पालन करे, दुर्गुण को दे छोड़।**
कृपा पात्र होगा वही, सन्तों का बेजोड़ ।।२६।।
कृपा स्वभावहि संत का, कृपा न अलग विधान।
लेन देन होना कहीं, बिना यत्न नहिं जान ।।२७।।

(चौ.) खास एक है बड़ी निशानी । प्रेम भरी सन्तों की वाणी ।
जिस से है बर बस मन खिंचता । खुदहि सुकर्मों में लग जाता ।।२८।।
संतों का जग देख आचरण । प्रसन्न होता दर्शक का मन ।।
हम भी कर्म करें वैसे ही । उमंग मन में आती खुद ही ।।२६।।
पर जिनके संस्कार बुरे हैं । इंद्रिय सुखमें बहुत रमे हैं ।।
सत्संग बोध होंना उन में । सहज नहीं अति दुर्धर जग में ।।३०।।
भले कार्य में लगन लगे जब । संत बोध होवे जल्दी तब ।।
दृढ़ संकल्पहि भाग्य उदय हो । नम्र-श्रेष्ठता का संगम हो ।।३१।।
दुख में मानव कुंठित मन हो । विराग भारी आकर्षण हो ।।
ऐसे में गुरु बोध उजाला । पलट भाग्य में होय निराला ।।३२।।
कोई चलता सोच समझ कर । 'भला सुकर्महि' यहि मान कर ।।
उस ने संत चरण ही पकड़े । ऐसे भाग्यवान भी तरते ।।३३।।

(दो.) **यों साधन जिसने किये, संत-वचन अपनाय ।**
उसका गौरव क्या कहें ? कहते दिन न अधाय ।।३४।।
शुद्ध संत-संकल्प जो, जाने, प्रगटे दीप ।
उन्नत वह शत शिष्य ही, जो निश्चय घर सीप ।।३५।।

(चौ.) बनी खेत की जमीन उत्तम । उस में बीज पड़ा फिर सक्षम ।।
लगे लहलहाने जब पौधे । सब परिवार प्रेम से डोले? ।।३६।।
वैसे ही साधक-जीवन में । प्रथम शुद्ध आचरण अरु मन में ।।
संत बोध का उस पर सिंचन । बढ़े भक्ति की फसल दिनों दिन ।।३७।।
ऐसा सिंचन हुआ उचित जब । अंकुर निकले, बढ़े, खिले सब ।।
संत कृपा का सूरज निकला । अनुभव का रसमय फल बढ़ता ।।३८।।

नमस्कार व चमत्कार-खंडन

किन्तु छोड़ यह सीधा मारग । व्यर्थ जोशियों के पड़ते पग ।।
'उस से ही सब होता पल में' । ऐसा लोग समझते मन में । ३६।।
पग पडने से सब बनता है । फिर क्यों काम करें? बिरथा है ।।
वहाँ मुफ्त में पेट चलेगा । जोशि कृपा से मोक्ष मिलेगा ।।४०।।
यह तो गलत धारणा जन की । रीति नहीं थी पाँव पड़न की ।।
भूत मात्र से नम्र रहें हम । यह सिद्धान्त मूल में उत्तम ।।४१।।

(दो.) सब के प्रति सब नम्र हों, करें अपन हित बात ।
कह दें छोटों से बड़े, तिन कर्तव्य का सार ।।४२।।
पग लगते जन लाख पर, वचन न माने कोय ।
स्वभाव भक्तों का अजब! क्या श्रेष्ठों से होय? ।।४३।।

(चौ.) अब तो प्रथा बंद यह कर दें । रुचि सुनने में खास बढ़ावें ।।
क़रे मनन फिर करें आचरण । है संत-श्रेष्ठ का स्पष्ट कथन ।।४४।।
इस से संत भाव बढ़ जावे । संत संग संतहि बन जावे ।।
न लो 'संत' का पर यह मतलब । भाग जाय संसार छोड़ सब ।।४५।।
गृहस्थहि हैं पर संत मूर्ति । व्यवहारिकहु आदर्श कीर्ति ।।
बानक बोल नहीं साधू क़ा । पर अधिकारी पर सद्गुरू का ।।४६।।
सच साधुता यही कहलाये । मिले साधना सत्संगति से ।।
नहीं देह कोई विचित्रता । सब कुछ सरल-सहज ही दिखता ।।४७।।
कहे 'ब्रह्मपद तुरत दिखाओ । रकाब में जब पाँव रखाओ' ।।
राजा तरा जयत्पाल भी । तत्व बोध पा ग्रंथों से ही ।।४८।।

(दो.) चमत्कार से संत नहिं, करें कभी उद्धार ।
निश्चय यह मन में रखो, बोधहि उन का सार ।।४९।।
चमत्कार की चाह में, हुए कई बरबाद ।
चमत्कार वर्णन कोई, करे न इस के बाद ।५०।।

(मनहरण) श्रोता करे प्रश्न, क्या न संत होते चमत्कारी ?
आँखों देखी बात हम, कहें क्यों न लोगन से ?।।५१।।
मैला नाबदान का जो फेंका इत्र-सा महका ।
मुट्ठी खोल एक ने निकाली चीनी मन से ।।५२।।
एक से कटोरी में से लाख लोगों को जिमाया ।
निकाली धाराएँ श्रोता गण के नयन से ।।
समूचे गाँव की घड़ियाँ थमा दी एक ने तो ।
आँखों देखा सभी झूठ मानें किस मान से ? ।।५३।।

(चौ.) जो भी देखा तुम ने सच था । पर अभास वह मिथ्या का था ।।
चमत्कार सन्तों का नाहीं । लक्षण रहा क़भी जग माहीं ।।५४।।
छुद्र खे हैं मठ द्वारों के । मान कोइ सामर्थ्य न उन से ।।
सुन्दर सेवा व्रत महत्त्व का । उस से ही छूटा है सब का ।।५५।।

अदृश्य होय उसी को लावे । किसी की जेब में उसे डाल दे ।।
तस निकाल गड्ढे में डाले । वही दिखे, अचरज फिर कैसे? ।।५६।।
पाने कीर्ति दान कुछ करते । धन काले बजार से पाते ।।
वैसे ही ये छिपे रूप से । लाते चीजें, अन्य जगह से ।।५७।।
किसी एक की जेब काटना । दूसरों को फिर दान बाँटना ।।
चमत्कार-कौशल यह वैसा । इस में होय संतपन कैसा? ।।५८।।
कोई चमत्कार की खातिर । गुरु की सेवा करे उम्र भर ।।
कौड़ी के साधन को पाने । अमूल्य जीवन व्यर्थ गँवा दे ।।५९।।
पैसा दे नौका से जाना । तप के बल पर जल पर चलना ?
अहंकार से होय भ्रष्ट फिर । कौन बड़प्पन इस से आखिर ? ।।६०।।

चमत्कार निष्ठा के दुष्परिणाम

(दो.) संत निकट जाते मगर, इच्छाएँ ले लोग ।
देत दान अरु दक्षिणा, अपन लोभ की खोज ।।६१।।
दंभी आते गांव में, देखि यही जन भाव ।
पीछे लगे समाज को, लूटें जोशी-राव ।।६२।।

(चौ.) किमियागिरि भरमाये जन को । करती भ्रष्ट ग्राम जीवन को ।
भोले भाले लोग फँस कर । डालें उन्हें कुटेवों में फिर ।।६३।।
देवे धन अरु खेती कोई । लौट के देखे फिर न सोई ।।
तब समझे पागलपन अपना । पीछे साधु स्वार्थ में लगना ।।६४।।
कोई चंदा करें गांव में । भक्ति उत्सव तहाँ मनाने ।।
नारी सुत को उस चक्कर में । बना भिखारी कुछ ही दिन में ।।६५।।
संच्चे श्रम की राह छोड़ते । कोई मुफ्त में लाभ चाहते ।।
ऊँची गप्पें चमत्कार की । उन्हें फँसाती जादूगर की ।।६६।।
चमत्कार में जो भूले जन । पिछे पछताते मन ही मन ।।
कहते भूला लगाय हम पर । रखी हमारी मति काटकर ।।६७।।

(दो.) सच्चा संत न जादुगर, चमत्कार करतार ।
ऐसा चलता आ रहा, पेट भरन व्यापार ।।६८।।
'चमत्कार को नमन' ही, जादूगिरी बढाय ।
चमत्कार बिन सत्य को, लोग समझ नहिं पाँय ।।६९।।

(चौ.) इसी भ्रान्ति से कहते बहु जन । 'आये संत गाँव घर आँगन ।।
पाप धुला पर नहीं हमारा' । संत प्रभाव झूठ है नारा ।।७०।।
कोई कहते 'पाये दर्शन । पर न हुआ है रोग निवारण' ।।
कोई कहते हैं 'संताने । नहीं हमें दी इन संतों ने ।।७१।।
कोई कहते 'मंत्र लिया है । पर नाहीं उद्धार हुआ है ।।
दुख से अब भी जलता रहता । रात दिन है चित्त हमारा ।।७२।।
कोई कहते 'दर्शन पाये । परन्तु गड़ा धन हाथ न आये' ।।
कोई कहते 'अभी नौकरी । क्यों न लगाते संत हमारी ? ।।७३।।
कोई कहते 'क्यो कन्या का । संत कृपहु नहिं जोग ब्याह का ?'
कोउ कहे-चरणामृत लीना । बुखार छुट्टी तहूँ मिली ना ?' ।।७४।।
कोउ कहे दर्शन कर देखा । आठ दिनो तक रहा उपासा ।
दया संत ने करी न फिर भी । खुली लाटरी नहीं एक भी' ।।७५।।
कोई कहते 'सत दरस से । रिहा हुए नहिं चोर जेल से ।।
चोरी करी, कहे क्या होता? दर्शन करे मुक्ति पा जाता' ।।७६।।
कोई कहते 'संत घर आये । क्यों न भाग्य पट फिर खुल जाये? ।।
हमें बिना प्रयास किये ही । मिले राज यदि कृपा सहाई' ।।७७।।

(दो.) **'सभी मिले निज काम से, दर्शन फिर क्यों संत ?**
कर्म हीन को आज तक, देते आये संत ।।७८।।
संत-दयानिधि तुम कहो, पगली हो संतान ।
ठीक करें तत्काल जब, उसकी कृपा महान' ।।७९।।

(चौ.) 'हम तो भले घोर हों पापी । वे संकल्प करें सुख रूपी ।।
बिना आभास दिये ही हम को । संत मिटा दें उन पापों को ।।८०।।
'संत मंत्र देते ही प्यारा । कर देवें उद्धार हमारा ।।
अधिकारों को नहिं पड़तालें । अपने बल से हमें सँभाले ।।८१।।
तभी उन्हें हम संत कहेंगे । वरना ढोंगी समझ सहेंगे ।।
यह जो हम कहते हैं मन से । गलत कहाँ है किस कारण से? ।।८२।।
लोगों की धारणा बनी यह । किन्तु बता दो कहाँ हुआ यह?
कौन संत ने कर यों माया । सब को सुखी समृद्ध बनाया? ।।८३।।

अंधश्रद्धा का निवारण

इस सच पर विचार नहिं करते । चमत्कार हित मरते रहते ।।

भेदभाव क्यां संत बरतते? जो औरों को शांति न देते ।।८४।।
देते गर संतान संत जन । तब क्यो जग में रहे बाँझ पन?
धन-वैभव दें संत दया कर । तब ये दिखें भिखारी क्यों कर ? ।।८५।।

(दो.) संत रोग देते मिटा, क्यों फिर मरे महंत ?
ऐसा कैसे हो सके? हो न किसी का अंत ? ।।८६।।
संत मंत्र के सुनत ही, खुलते मोक्ष किवाड़ ।
क्यों नहिं सब की मुक्ति की, आई जग में बाढ? ।।८७।।

(चौ.) गर सब तस संकल्पहि फलता । तो दुखिया नहिं कोई बचता ।।
संत आपके ही प्रति क्यों कर । जुदा भाव रख सकें खास कर? ।।८८।।
गर कह दे 'नसीब में नहिं था' । होय दैव की तब प्रधानता ।।
संत-चमत्कार की महत्ता । कहाँ रही तस अद्‌भुत सत्ता ? ।।८९।।
संत स्वयं ही कष्ट उठा कर । जीवन करते सब का सुख कर ।।
मिले उन्हें बहुमुखी सफलता । किन्तु नहीं यह चमत्कारिता ।।९०।।
सच्चे संत के शुद्ध हृदय से । निकले वाणी गहन् अनुभव से ।।
पर न कल्पना संतन की थी । कोई चमत्कार होने कीं ।।९१।।
चींटी बोझ देख हाथी का । सोचे कर्तब चमत्कार का ।।
पर वह सहज विकास शक्ति का । तैसाहि अचरज संत शक्ति का ।।९२।।
चमत्कार यदि उसे मान लें । जन कर्तव्य भाव ही भूले ।।
भजने लगे सकाम भाव सें । निष्क्रिय होंय अंध श्रद्धा से ।।९३।।
चमत्कार महत्व नहिं मानें । परंपरा सत्कार्य की खोजें ।।
धारा ज्ञानहु और कर्म की । देखें संतों के जीवन की ।।९४।।

(दो.) संत कर्म पथ-दर्श का, न है पुत्र, धन, दान ।
बीमारी को रोकना, यह तो वैद्य का काम ।।९५।।
संत वंद्य त्रय लोक में, अज्ञान रोग के वैद ।
जीवन विकास में अग्रणी, सत्य कर्म बुनियाद ।।९६।।

संतों के सही चमत्कार एवं मानव-कर्तव्य

(चौ.) यही एक है संत-चमत्कृति । किया विश्वमय जीव अल्प मति ।।
सब भूतों में देखा ईश्वर । है वही डोलता ठौर-ठौर ।।९७।।
उन का यही जानना करना । चमत्कार है नभ से ऊँचा ।।

कौन सुनेगा वहां तुनतुनी । छुद्र सिद्धि की बजने पर भी ।।९८।।
सेवा के अवतार संत हैं । नम्र सत्य व्यवहार सभी हैं ।।
जिन्हें देव भी कहें धन्य हैं । चमत्कार कोई न अन्य हैं? ।।९९।।
सरल प्रेममय हृदय संत का । यह ही चमत्कार है जग का ।।
कहे 'अन्य भी मैं हूँ' वह तो । अपूर्व कितना चमत्कार सो ।।१००।।
चमत्कार यह सब से बढ़कर । समझे संत 'विश्व अपना घर'।।
उस के लिए करे श्रम निसि दिन। सच्चे भाव से अति हर्षित मन ।।१०१।।
कमी दिखे पूरा कर डाले । बोधहि संतुलन सँभाले ।।
फिर भी छुए न अहम भाव मन। चमत्कारी हैं अस साधू जन ।।१०२।।

(दो.) मगर संत ही सब करें, जन-कर्तव्य न कोय ।
यह इक तरफा संत-गुण, गायन उचित न होय ।।१०३।।
ऐसा हो नहिं गाँव में, सत्य ज्ञान जन जान ।
सच्चे संत को परख लो, कर्महि सत्य प्रमाण ।।१०४।।

(चौ.) विचित्र नहीं व्यवहार संत के । चमत्कार गुण नहीं संत के ।।
इन्हें छोड़कर ग्राम जनों में । सत्य सार की बात बतायें ।।१०५।।
निज-उद्धार स्वयं करना है । संत-देव सहयोग मात्र हैं ।।
यही सँदेश सभी ग्रन्थों का । सब के मन अहसास हो उसका ।।१०६।।
इसमें ही कल्याण गाँव का । कमजोरी मन कोई रहे ना ।।
जानें निज कर्तव्य सभी जन । तुकड्या कहे, करो यह साधन ।।१०७।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
इकतीसवें, अध्याय में तज दी चमत्कारांधता ।
संतका सामर्थ्य अरु, कर्तव्य भक्तों का बता ।।१०८।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

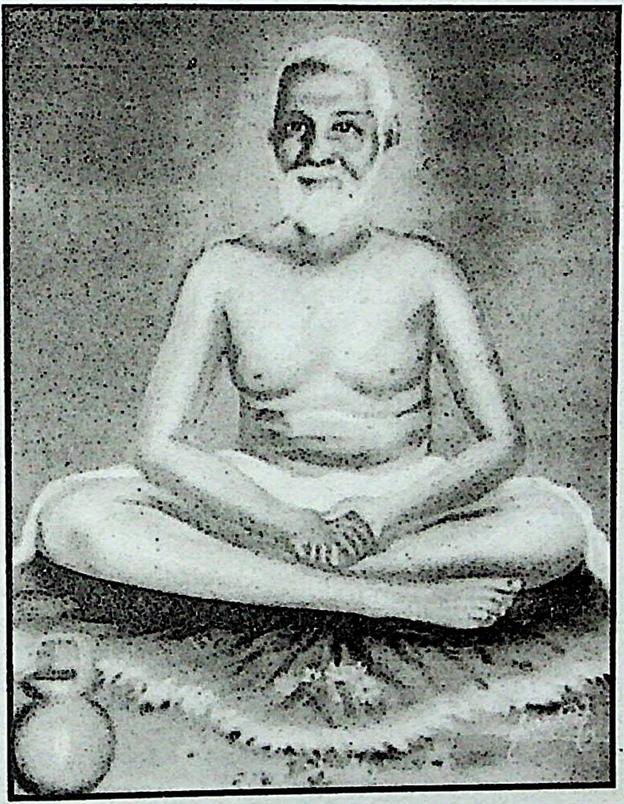

शान्तिमूर्ति श्री रमण महर्षि

बत्तीसवाँ अध्याय

सन्त-स्वरूप

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

साधुत्व-महिमा व सन्तकी पहिचान

(हरि.) श्रोता कहे सद् भाव से; नहिं हैं चमत्कृति संतपन ।
फिर संत की पहिचान क्या? किस भांति जानें भक्त जन?।।१।।
हैं साधु दिखते हर जगह, सच-झूठ किस विधि जानना ?
क्या रूप तात्विक संत का? यह दीजिए हम को सुना ।।२।।

(चौ.) 'श्रोता का यह सवाल सुन कर । सविनय सब को प्रथम नमन कर ।
कहता हूँ पहिचान संत की । ग्राम हितार्थहि शुचि महंत की ।।३।।
श्रोताओं में साधु नहीं गर । कालिख लगे कहूँ तो मुँह पर ।।
इसी से नमन किया पहले ही । श्रोता जन का गाँव में सब ही ।।४।।
साधू सभी जगह हैं होते । साधू बिन स्थिर क्या रहते ?
लोप साधुता का गर होवे । जो भी सभी विलय हो जावे ।।५।।
सती तथा साधू वृत्ति ही । यही महा संपदा गाँव की ।।
किस विधि साधुत्व बिना जग में । हो व्यवहार सहज जीवन में ? ।।६।।
खाने तैयार परस्पर सब । संभाले संत वृत्ति ही तब ।।
आघात सहन खुद, औरन को । शान्ति दे सके, है उन बिन को ।।७।।
दया, विवेक-क्षमा शांति का । केंद्र-स्थान साधु ही इनका ? ।।
ऐसा पुरुष होय आवश्यक । सब कार्यो में जन हित रक्षक ।।८।।

(दो.) संत बाहरी रूप से, कौन करे पहिचान? ।
संत परखना वृत्ति से, या सद्गुण को जान ।।९।।
वरना समझ न सकें हम, बहु पंथों के संत ।
बहु रंगों में हैं सजे, है को सच्चा संत ? ।।१०।।

(चौं) कोई भगवा वस्त्र पहनते । कोई पसंद काला रंग करते ।।
सफेद उजले वस्त्र बदन पर । कई पहनते हैं शुभ सुंदर ।।११।।
जटा जूट सिर कोई रखते । कोई माला तिलक लगाते ।।
कोई सिर्फ लँगोटी पहने । नरियाली कपडा कोइ बनाले ।।१२।।

कोई तन में भस्म रमाते । धूनी लगा कोइ जप करते ।।
कोउ करे पंचाग्नि-साधना । तरह-तरह की झेल यातना ।।१३।।
कोई चिथड़े तन पर डाले । तुम्बा-कम्बल कोउ सजाले ।।
अंजलि से ही जल पीने का । है व्रत स्थिर सदा किसी का ।।१४।।
कोइ रहते खड़े निरंतर । कोई पहरा देते दिन भर ।।
कोई जन में अनजानेही । गुप्त रूप से सदा बिचरही ।।१५।।
किस ने कठिन समाधि लगायी । गढ्ढे सिर तक देह दबाई ।।
आठ पहर के बाद निकालीं । उसकी कीर्ति दूर तक फैली ।।१६।।
कोई दीन सेवक हम कहता । अवतारी कोई तस कहता ।।
शंख फूँकते बन 'योगीश्वर' । खोटे खरे अमित साधू वर ।।१७।।

(दो.) विविध मतों के संत ये, उन के बहु विध पंथ ।
कौन चुनें उत्तम तहां ? करे भेख मति भ्रांत ।।१८।।
कर न सके बहिरंग से, कोउ संत-पहिचान ।
होवे सो सहवास से, या फिर कार्य प्रमाण ।।१९।।

(चौ.) कार्य कभी ढोंगी भी करता । अंदर का कुछ पता न चलता ।।
ज्ञान ध्यान सब बोले मुख से । पता चले न सहज से उससे ।।२०।।
इसमें कारण निज स्वभाव भी । भिन्न प्रकृति के भिन्न भाव भी ।।
किन्तु संत असंत का गौरव । न हो वेष बाहर से हित कर ।।२१।।
सत्कार्य, सदाचार, ज्ञान भी । देख उन्हें श्रद्धा गर उपजी ।।
दोष नही गलती ऐसे में । अगर हुई है सहज भाव में ।।२२।।
सदाचार, शुभ गुण निधान भी । अभेद वृत्ति, विशाल ज्ञान भी ।।
जब तक दिखे तभी तक गुरु है । जो माने, कभी तहाँ फँसा है ।।२३।।
मानवीय आदर्श बड़ा है । नहिं विषाद, नहिं हर्ष तहाँ है ।।
सरल विवेक, सत्काज तोषी । गुण संतो में लखो विशेषी ।।२४।।
भाव संकुचित मन से निकला । हृदय हुआ है विशाल जिसका ।।
जो आदर्शपूर्ण व्यवहारी । उस ने नम्र रहें नर नारी ।।२५।।

(दो.) संत देख, कर जोड़ लो, निरखो जाकर पास ।
रहे सजग ऐसे कभी, नहिं होवे उपहास ।।२६।।
नहीं लोभ आसक्ति हो, मन में मुक्ति का भाव ।
ऐसा वैसा साधु फिर, डारि न सके भुलाव ।।२७।।

(चौ.) शिष्य होय जो खुद ही उत्तम । मिले उसे गुरू भी उत्तम ।।
पर सात्त्विकता का ही आदर । करें सुनिश्चित, रहे न फिर डर ।।२८।।

संत-स्वभाव तथा सत्संग-प्रभाव

सत्वशील सो ही साधू सच । दिखे निठल्ला जो न कभी कुछ ।।
भला संत पहिचान यही है । सदा काम में लीन दिखत है ।।२९।।
समझो, है वह खड़ा कहीं भी । घूम रहा मन कोइ काम ही ।।
अगर कहीं बैठक दिख जावे । कैसे बैठें लोग, सुझावे ।।३०।।
जहाँ कहीं सभा में जाये । लैन में जूते सबहि लगावे ।।
जाय बिठाये ठीक सभी को तस सौंदर्य कलावर्धन को ।।३१।।
कभी जाय वह अगर भोज में । कमी न पड़ने दे वह उसमें ।।
त्रुटियाँ देख काम में लगता । प्रबंध खुद ही सँभाल लेता ।।३२।।
जहाँ जहाँ भी काम करे वह । स्वर्ग पुरी सम गाँव बने वह ।।
महा क्रांतिकारी है उसकी । सेवा ग्रामोध्दारक जन की ।।३३।।

(दो.) बोले वैसा ही चले, जन-संग्राहक प्रेम ।
अपन काम खुद ही करे, नहिं दूल्हा जस नेम ।।३४।।
बिना परिश्रम से गुजर, यह न संत पहिचान ।
खटत लोक-कल्याण हित, निष्कामी तस जान ।।३५।।

(चौ.) निज तन के प्रति अनासक्त है । हीन दीन का किंतु भक्त है ।।
निशि दिन सेवा में ही रत है । नम्र भाव से वही संत है ।।३६।।
वह तो समझे जन को ईश्वर । सेवा में क्या लुकाछिपी फिर ?
किंतु देखकर जन की क्षमता । भी उपदेश काम का देता ।।३७।।
बनें मूर्ख किस तरह सयानें । यही खोजती उस की नजरें ।।
बोधहु जड़-अज्ञान को देना । है यह काम संत का अपना ।।३८।।
सहज स्वभाव यही संतों का । भेदभाव नहिं देखत किस का ।।
बोध कराते सत्कर्मों का । सब जन को ही सदा सर्वदा ।।३९।।
होवे ओज संत वाणी में । सहज वचन भी भेदत मनमें ।।
उन के वचन सुनत ही प्राणी । विनम्र हो जाते अभिमानी ।।४०।।

(दो.) शब्द प्रेम मय संत के, वाक्य-बोध सुविशाल ।
लगन प्रबल कर्तव्य की, देख देश अरु काल ।।४१।।
महा प्रतापी संत-वच, सुनत होय अनुताप ।

दुष्ट वृत्ति सत्संग से, निरसे आपहि आप ।।४२।।

(चौ.) पड़ी कृपा मय संत-नजर ही । तीर्थाटन सब बैठे घर ही ।।
प्रसन्नता के पाठ संत जन । पग-पग पर देते है अनु दिन ।।४३।।
संत प्रेममय माँ से बढ कर । संत जनक सम वैभव हो कर ।।
राज्य चलाते हुए फकीरी । संत दिखाते खुद में पूरी ।।४४।।
बिन सत्ता भी राज चला ले । बिन धन वैभव में वे डोलें ।।
पत्नी-पुत्र बिना संसारी । व्यापे विश्व संत तनु धारी ।।४५।।
गंगा से भी संत सुमंगल । सूर्य चंद्र सम निर्मल शीतल ।।
संत उदर कल्पतरु से भी । मोक्ष दान देते निर्लोभी ।।४६।।
संत हृदय से अति ही कोमल । दया द्रवित हो उफनाता दिल ।।
जग मानव-कल्याण कसौटी । पास संत के निर्णय दृष्टि ।।४७।।
संत-हृदय यद्यपि दयालु है । कालहि पाय कराल काल है ।।
न्याय-नीति से अति निर्मल हैं । निर्भय वृत्ति सदैव सरल है ।।४८।।

(दो.) कर्म जगत्-कल्याण का, यही संत का धर्म ।
मानवता ही हर समय, संत-धर्म का मर्म ।।४९।।
जाति-विजाति न संत को, गोत्र विश्व-परिवार ।
जो जो मिलते होत वे, सब से प्रिय संसार ।।५०।।

(चौ.) कभी किसी को दुख नहिं कोई । सभी रहे संतुष्ट सदा ही ।।
राजा होवे, होय भिखारी । समान उनको जनता सारी ।।५१।।
संतहि तोष विश्व के सुख में । दुखी होय सो जन के दुख में ।।
सत्कर्मों में सदा उल्लसित । यही संत का स्वभाव निश्चित ।।५२।।
मूल सन्त का यह स्वभाव है । बढ़ाय सब में प्रेम भाव है ।।
गौरव सज्जन जन का भी वह । सहज रूप से करवाये वह ।।५३।।
कहीं नाराज़ सुजन से होवे । कहिं दुर्जन की पूजा करवे ।।
किंतु संत का ध्येय एक ही । नित समाजमें बढ़े भलाई ।।५४।।
दुर्जन से वह प्रेम करत है । पर दुर्जनत खतम करत है ।।
करे प्रयोग प्रेम के बल को । सुजन बना छोड़े वह खल को ।।५५।।
अर्पित कर अपने तन मन को । पूरा करे वह जन जीवन को ।।
चंदन के सम छीज-छीज कर । शांति-सौख्य दे वही संत वर ।।५६।।
अंध रूढ़ियों का खंडन । मानव धर्म मूल्य संस्थापन ।।

इस के लिए समय पड़ने पर । करे प्राण भी संत निछावर ।।५७।।
(दो.) अस सुंदर बहिरंग पर, अंतरंग अति श्रेष्ठ ।
ऐसों के सत्संग से, जीव होय उत्कृष्ट ।।५८।।
मिली संत-संगति जिसे, हों कुसमय का अंत ।
जीवन के कर्तव्य-फल, फूलन लगत अनन्त ।।५९।।
(चौ.) संत-संग जब मिले सहज ही । मिलें सद्बोधहु के फल तव ही ।।
प्रवृत्ति ही तब बने निवृत्ती । अंतरंग हो जाये वृत्ति ।।६०।।
अंतरंग बहिरँग हैं जो भी । सर्व अंग की उन्नति होती ।।
संतसंग ऐसा है प्यारा । सर्वोदय कर्ता उजियारा ।।६१।।
उजला है संतों का जीवन । भक्ति भाव वैराग्य पूर्ण मन ।।
आत्मन और अनात्मन का भी । ज्ञान विवेकी संतन का ही ।।६२।।
आत्म शक्ति अरु कर्म शक्ति भी । ज्ञान शक्ति अरु प्रेम शक्ति भी ।।
सात्विक कला, प्रमाण शक्ति भी । संतों में बसती विरक्ति भी ।।६३।।
संत शक्ति मानस के सागर । जो निर्धार होय तस अंतर ।।
निश्चय ही व्यवहार में उसका । हो सर्वांग सुखी जीवन का ।।६४।।

संतों का अवस्था भेद एवं लोकोद्धार मार्ग

(दो.) सर्व पूर्ण हर साधु नहिं, कमी तत्व अरु सार ।
अधिकार भेद रहते तहाँ, निज स्थिति अनुसार ।।६५।।
लोक 'जीव' अरु 'देव' में, 'परम' परात्पर कोटि ।
केंद्र एक ही बिन्दु पर, बाढ़े क्रम से दृष्टि ।।६६।।
(चौ.) जो दृष्टि लौकिक से सभी जन ।समझें सेव्य एक सम पूरण ।।
अकाम सेवा करे रात दिन । गाँयें लोग साधु अस का गुण ।।६७।।
पर नहिं सुख दुख, नहीं महंती । किस के प्रति न द्वेष आसक्ति ।।
मान अपमान लहे न मन में । तस संतोषहि भले काम में ।।६८।।
साधु संत यह 'जीव सृष्टि' का । साधू वैसहि 'ईश-सृष्टि' का ।।
देवी देव मान वह सब को । भक्ति भाव से लखि जन जन को ।।६९।।
देश, भेष, अरु धर्म पंथ नहिं । जाति पाँति अरु ऊँच नीच नहिं ।।
प्रभु-कुटुंब सारा जग माने । विश्व सहज व्यवहार बनाने ।।७०।।
पहिचान सभी की एक जगह से । नहिं गरीब नहिं अमीर दरसे ।।
राजा-प्रजा भेद नहिं माने । 'देव-कोटि' अस साधु सयाने ।।७१।।

जिस का अनुभव 'परासृष्टि' का । आत्मरूप है परमात्मा का ।।
भाषा भेद अपन-पर नाहीं । एकात्मकता भूतन मांहीं ।।७२।।
जो ब्रह्मांड अखिल में दिखता । ब्रह्म रूप ही उस में लखता ।।
मिथ्या भ्रम से दुख भोगता । नाना रीति निवारण करता ।।७३।।

(दो.) झूठ सपन बर्राय जो, उसे जगाना पुण्य ।
सदय संत वैसा हरें, भ्रमित लोक दुख दैन्य ।।७४।।
समता के पथ सब चलें, ऐक्य अमल में लाय ।
रमे ब्रह्म सुख में जगत्, राह संत सोई भाय ।।७५।।

(चौ.) 'परात्पर स्थिति विश्व की नाहीं । आत्मानंद की सब में झाही ।।
सहज ब्रह्म उस की रहनी । वेदोत्तम तस सहज बोलनी ।।७६।।
विभिन्न ऐसे हैं प्रकार ये । विविध संसार साधु संतों के ।।
उन्हें समझने और जानने । में सक्षम हम होवें कैसे ? ।।७७।।
संत चिन्ह है अगम्य सब को । संतहि जाने भले संत को ।
किन्तु जानकारी से अपनी । करो परख बनती हो जितनी ।।७८।।
संत-रूप जानें हम जितना । बढ़े संत गुण हम में उतना ।।
गंगा में नाला मिल जाये । गंगा रूप सोऊ हो जाये ।।७९।।
बहती गंगा नित लहराये । पर जल लेने जो भी जाये ।।
उस के पास पात्र जितना ही । पा सकता वह जल उतना ही ।।८०।।
यद्यपि गंगा है विशाल तर । घर ले जाना उस को दुष्तर?।।
करे प्रबंध पात्र का जैसा । शान्ति लाभ होवे तिन तैसा ।।८१।।

(दो.) तैसेहि संत हैं प्रेम मय, स्नेही और कृपालु ।
करुणा जीवों के प्रति, सदा संकल्प दयालु ।।८२।।
निज अनुभव से भ्रम मिटा, ग्रंथन सार बताय ।
मार्ग साफ करि संत जन, सुगम राह दिखलाय ।।८३।।

(चौ.) उन की शरण में होगा जाना । उन के वचन को मन में रखना ।।
सुनी बात का होय अर्थ तब । निश्चय से कर्तव्य करें जब ।।८४।।
फिर होता है जीवन उन्नत । यही जन उद्धार का सत्पथ ।।
मार्ग दिखाते रहें अनवरत । संत स्वयं सद्भाव से प्रेरित ।।८५।।
उन का बोध सुने जो मन से । जीव जड़हु उद्धार क्षेम से ।।
इसी मार्ग से सब सुख-वैभव । जनता पा सकती निज गौरव ।।८६।।

संत का कर्म-कौशल

सम रस होय संत जनता से । अनत भक्ति उन के प्रति भासे ।।
ऐसे संत मूर्ति भगवत की । चलती फिरती पूर्ण कला की ।।८७।।
मित्रो! जो जो किया प्रभू ने । वही हाथ में लिया संत ने ।।
देव-वाक्य ही किया प्रचारित । पूरे जग में होय निनादित ।।८८।।
कार्य आज अवतार पुरुष का । कौशल तत्सम संत जनों का ।।
सब से मधुर वचन के द्वारा । मोड़ देंय जन बल वे सारा ।।८९।।
भुला बड़ाई-गरिमा अपनी । बढ़ाय महिमा सत्य तत्व की ।।
विभव-प्रतिष्ठा निज को ले कर । कभी न चलते गलत राह पर ।।९०।।

(दो.) पुराने साधन ही लिये, जन जागृति के हेत ।
भली प्रथाओं को सभी, रूप समय सम देत ।।९१।।
पत्थर का उत्सव रहे, पर भर उस में तत्व ।
जन में प्रेरित सो करे, संत साधु का भाव ।।९२।।

(चौ.) पक्ष पंथ हों या संस्थाएँ । उन में जो जो उचित जनाये ।।
संत उन्हें समान भाव से । प्रोत्साहित करते निज कृति से ।।९३।।
जन जन जैसी चाल चलेंगे । बोली उनकी ही बोलेंगे ।।
पर अपना उद्‌देश्य बीच में । उनके रखते सूझ बूझ से ।।९४।।
सब को लगें वे अपन सरीखे । किसी रूप में नहीं पराये ।।
बाल वृद्ध सब को ही करते । आकर्षित वे सहज प्रेम से ।।९५।।
रहता सदा सभी से आगे । किसी को पर दूरी नहिं भासे ।।
कभी निराशा नाहीं छाये । उत्साहित सब बढ़ते जायें ।।९६।।
शिशुओं को सिखलाने खातिर । रखन पड़े पांडित्य ताक पर ।।
साधु संत ऐसे जन के हित । सहज भाव से आचरते नित ।।९६।।
संत होत अंधों के नैना । भर देते सर्वत्र चेतना ।।
संत विरोधों के भी अंदर । घुसते ऐक्य-सूत्र बन सुंदर ।।९८।।
'हर मानव की उन्नति करना । समाधान सब के मन भरना ।।
एक एक के पूरक सब ही । सत उपदेश संत है यही ही ।।९९।।

(दो.) उपदेश मेघ वर्षा सरिस, वहाँ नहीं गुरु-शिष्य ।
संत देखते आत्म वत, हर मानव हर दृश्य ।।१००।।
उपदेश होय अमृत सरिस, शांति मिले जब पाय ।

त्रिविधि ताप सब जीव के, मिटि सत्संगइ जाय ।।१०१।।

(चौ.) इससे कहते ग्रंथ सभी मिल । संत उधारेंगे अपना कुल।।
यही नहीं, वे गाँव गाँव में । झड़ी लगायें प्रेम साथ में ।।१०२।।
गाँव संत जिस में बसते हैं । पाप पुण्य से तहँ नसते हैं ।।
तरे प्रान्त का प्रान्त विशाला । मिले दुखों को देश निकाला ।।१०३।।
निज समान ही संत बनाते । संत रूप सत्संगी पाते ।।
संत बोध जब मिले यथोचित । क्षेम करे जीवन को उन्नत ।।१०४।।
संतो की महिमा यह सारी । पुरुषोत्तम को है अति प्यारी ।।
आती काम सभी जीवों के । मात पिता सम संत जनों के ।।१०५।।
क्रियाशील जो संत सही हो । चलन गाँव में उनका ही हो ।।
सद्गुण पूर्ण गाँव तब होवे तुकड्या कहे, सभी उद्धारे ।।१०६।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
बत्तीसवें, अध्याय में हैं संत गुरु के रूप ही ।
सत्संग महिमा, रीति भी ग्रामोद्धरणकारी सही ।।१०७।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

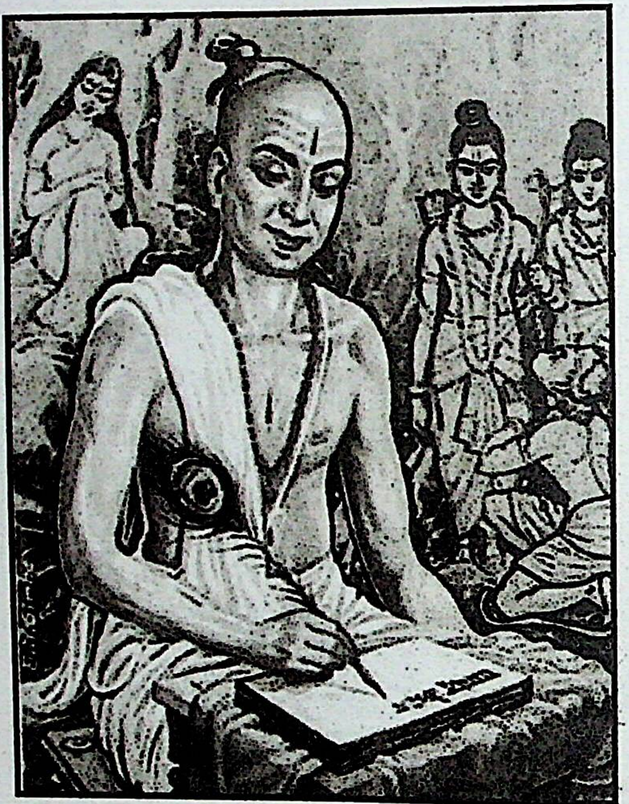

श्री संत गोस्वामी तुलसीदास जी

तैंतीसवाँ अध्याय

अवतार-कार्य

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

अवतार की परिभाषा और भेद

(हरि.) *श्रोता पूछे प्रश्न, संत-संगति से संतपन,*
हुआ यह निरूपण, जँचे नही मन को ।।१।।
संत देव-अवतार, हम गाँव के गँवार,
कैसे बनें वैसे हम ? सम्भव न क्षण को ।।२।।
मित्रो! सुनो समाधान, प्रभु से बना जहान,
'नर वही नारायण' संत देते ज्ञान को ।।३।।
जन्म ही है अवतार, अवतार सभी प्राणि मात्र,
होते अनंत भेद सत्कर्म से, न आन को ।।४।।

(दो.) कोई पाले निज उदर, कोई निज परिवार ।
कोई गाँव चिन्ता हरे, निज शक्ति अनुसार ।।५।।
राज्य-व्यापी चिन्ता जिसे, श्रम तप करे तदर्थ ।
सुगम राज जन के लिए, बतलावे निःस्वार्थ ।।६।।

(चौ.) ये हैं अवतारी 'साधारण' । इसके बाद 'विशेष' के लक्षण ।।
एक रूप होते स्वदेश से । करें विभूषित निज तन जैसे ।।७।।
'मेरा देश यही मेरा घर । देश दुखी? तन मेरा जर्जर ।।
सँवारने में उसे निरंतर । कष्ट उठाऊँगा मैं हँसकर ।।८।।
संकल्प करे मन में जो कोई । फिर व्यवहार करे तैसा ही ।।
नाना विपदाओंकि चुनौती । चमक उठे सत्कार्य, हो ख्याति ।।९।।
माने तस 'अवतार' सभी जन । चिंता करें निरंतर सज्जन ।।
दुष्टजनों के विरूद्ध जो ही । सक्रिय रहता हर पल सो ही ।।१०।।
है जग का उद्दिष्ट सत्य ही । उधर प्रवृत्त करे जग को ही ।।
जिसका भी इस भाँति कृत्य है । समझो वह 'अवतार' सत्य है ।।११।।
षड्गुण जिस मात्रा में धारे । अंश पूर्ण क्रम तेहि अनुसारे ।।
विरक्त, ज्ञानी, कर्म तपस्वी ।उदार, श्री संपन्न, यशस्वी ।।१२।।

अवतारों के हैं दो साधन । परिवर्तन हृदयहि और दमन ।।
इक में भाव भक्ति का बल है । सशस्त्र क्रान्ति दूसरे में है ।।१३।।
धर्म नीति सेवा पथ जाई । सोई 'संत अवतार' कहाई ।।
साम-दाम-दंड-भेद से जो । 'देव अवतार' करे, क्रांति सो ।।१४।।

(दो.) घोर काल में प्रकटते, नित न 'देव-अवतार'।
नीति बढ़ाने जगत में, सदा 'संत-अवतार' ।।१५।।
महिमा है अवतार की, आत्मन विश्व प्रसार ।
मानव की सीमा लिये, होवे प्रगट प्रचार ।।१६।।

(चौ.) हो अधिकारी जो जैसा भी । तस व्यवहार होइ तैसा ही ।।
मार्ग एक पर चलना उन का । आगे पीछे बल अनुभव का ।।१७।।
कोई भक्ति सिखाय सुधारे । मंत्र बता जनता को तारे ।।
कोई ज्ञान योग बतला दे । मानवताइ समर्थ बना दे ।।१८।।
राष्ट्र धर्म, निज धर्म सिखा कर । उन्नत करना मानव आखिर ।।
यही संत का है आभूषण । सबसे ऊँचा सब विधि पूरण ।।१९।।
वृथा कोई संकल्प न लेवे । वाणी फलीभूत जिन होवे ।।
ऐसा दिव्य दृष्टि पुरुषोत्तम । उसे 'संत-अवतार' कहें हम ।।२०।।
घर घर कोइ त्रस्त करे जन । लूटे गाँव कोइ बैरी बन ।
रचे उपद्रव कोइ देश भर । लहरत ध्वज पाखंड पंथ कर ।।२१।।
करे द्रोह वह धर्म, देश का । असर न होता, सदुपदेश का ।।
प्राणी सब को उस के द्वारा । होता है दुख कष्ट अपारा ।।२२।।
कछू करो सो सुधरत नाहीं । क्रूर वृत्ति की चलती आँधी ।।
धाक नाम की उसकी है तँह । थर्राते सज्जन निज मन मँह ।।२३।।
अनाचार की सीमा हो जब । काम 'देव-अवतार' आय तब ।।
अन्य यत्न से जब नहिं माने । खल के तन को विराम देने ।।२४।।
वे दुर्जन राक्षस अवतारी । जो जन को दुख देते भारी ।।
प्रकट 'देव अवतार' होता हैं । उन को महा दण्ड देवत हैं ।।२५।।

(दो.) जनम मरण के रहँट सा, चक्र चलत जस नित्य ।
'संत 'देव' आवत जगत, इसी तरह से नित्य ।।२६।।
देव वृत्ति अरु आसुरी, खेले घर नव रूप ।
प्रीति शक्ति से संतु प्रभु, दें जग शांति अनूप ।।२७।।

असुरों को वरदान तथा उनका अवसान

(हरि.) श्रोता करे सत्प्रश्न अब, गर दुष्ट ही राक्षस कहा ।
वरदान फिर देवादि का, किस भाँति वह पाता रहा ? ।।२८।।
क्या ज्ञात नहिं थे दुष्ट गुण? क्यों शक्ति का वर दे दिया?
समझे कला न पुराण की, बतलाइए अभिप्राय क्या? ।।२६।।

(चौ.) सुनलो इसका उत्तर इक ही । बड़ा भक्त था वह राक्षस भी ।।
उस की घोर तपस्या ही से । देव प्रसन्न हुए थे उससे ।।३०।।
गुण अरु कर्म से उसे मिला वर । उस के योग्य न बन पाया पर ।।
दुरुपयोग दारुण जग भर में । किय मनमाना वर का उस ने ।।३१।।
जब हाथों में आई सत्ता । भूल गया वह ईश महत्ता ।
चल बैठा उपभोग राह पर । रीति नीति की डगर छोड़ कर ।।३२।।
रखें संत उस की मर्जी जब । चढ़े और भी समाज पर तब ।।
रोष भरे पूरे जन मानस । उसे न परवाह अहंकार वश ।।३३।।
पाप घड़ा पूरा भरने को । देते संत बढ़ावा उस को ।।
हो निकाल जल्दी फिर जिससे । निकलें पर चीटी के जैसे ।।३४।।
साधु संत कितने समझाते । पर उस की मति बदल न पाते ।।
इसीलिए देवतार के । हाथ फैसले होते उस के ।।३५।।

(दो.) समझाते, करते विविध, यत्न देव-अवतार ।
शस्त्र उठाते आखरी, दुष्ट से निपटनहार ।।३६।।
विमुक्ति से उसकी जगत्, दुख से होत मुक्त ।
इससे अवतारी करे, प्रयत्न अंतिम युक्त ।।३७।।

विभिन्न अवतार-कल्पना

(चौ.) ऐसा जिस ने किया जैसे भी । दुःख निवारे जग के सब ही ।।
मान लिये वे सब अवतारी । रच पुराण उनके मनहारी ।।३८।।
कोई वैसा जो करते अब । देख कर्म गुण उनसे वे सब ।।
अतीत महा पुरुष अवतारी । उन्हें मानती जनता सारी ।।३६।।
तुलसी जी आसक्त शुरू में । हुए विरक्त सुभक्त बाद में ।।
राम चरित गा दुनिया तारी । इसीसे वाल्मीकी अवतारी ।।४०।।
माने भिन्न देव अवतारी । निजि निज भक्ति भाव अनुसारी ।।

जानेंगे वे आगे चल कर । अवतार कार्यों का विस्तार ।।४१।।

(दो.) खंडोबा माने कोइ, कोइ शक्ति अवतार ।
राम कृष्ण कहते कई, महा विष्णु अवतार ।।४२।।
गिने कोइ अवतार दस, गिने कोइ चौबीस ।
दसों सिक्ख गुरु कोइ ले, तीर्थंकर ले तीस ।।४३।।

(चौ.) कोइ बुद्ध अवतार पूजते । कोइ दत्त-अवतारहि भजते ।।
ईश-पुत्र है किस के मत में । ईसा सो अवतार जगत में ।।४४।।
कोइ कहे प्रेषित पैगंबर । कोइ कहे प्रभु अंश संत वर ।।
अनंत भेद अवतार मान जन । कौन कर सके उन का वर्णन ? ।।४५।।
इस का कारण सिर्फ एक है । कमोबेश कृतियाँ सब की है ।।
उन सब को लोगों ने माना । अलग अलग अवतार सुनामा ।।४६।।
ब्रह्मा विष्णु तथा शिव को ही । सत अवतार कहें तिन कोइ ।।
कहते कोइ देव, विश्वंभर । हुआ कभी अवतीर्ण न भू पर ।।४७।।
असल देव है आत्म शक्ति ही । अन्तहु कल्प देह धारी नहिं ।।
इतना ज्ञान अगर हो जाये । उन्नति मानव की हो जाये ।।४८।।
यद्यपि भिन्न भिन्न मत जन में । कम या अधिक सत्य सब ही में ।।
किस बिधि लायें संगति सब में । बिसर गई यह कला जगत में ।।४९।।

(दो.) महा पुरुष जो जो हुए, उन्हें कहा ‘अवतार’ ।
चरित भाय जिस का जिसे, माने तर दरबार ।।५०।।
‘पुराना सो सोना’ कथन, इस में भूल न कोइ ।
अनुभव सत्य का जिन किया, पाय देव पद सोइ ।।५१।।

अवतार अयोनि संभव या मानवीय ?

(चौ.) कहें देव अयोनि है संभव । है अवतार चमत्कारी सब ।।
जो यह कहते सो भावुक हैं । उनका कथन अलंकारिक है ।।५२।।
गर्भ, नरक वैकुंठ पुरी या । देव दृष्टि में तिन महत्त्व क्या ?
इनके मित भय भ्रांति मोह हो । ऐसा कोइ ‘देव’ कैसे हो ? ।।५३।।
प्रभु को है वैकुंठ गर्भ सम । आना जाना स्वाभाविक क्रम ।।
एकहि कौतुक सुख अरु दुख हैं । उसके लिए न कोइ भेद है ।।५४।।
यद्यपि योनि मार्ग से जन्मे । पर न क्लेश का अनुभव मन में ।।
इसीलिए उस को है माना । अयोनि ज्ञानी संभव होना ।।५५।।

वर्ना जन्म मरण सब के सम । सहन शक्ति से अधिकारी क्रम ।।
स्थान मान जैसा हो जिस का । वैसाहि हो पदनामहु उसका ।।५६।।
हैं अवतारी मानव ही सब । कर अधिकार-मान्य सो कर्तब ।।
जीवन्मुक्ति धारणा सब की । चाह सदा से यहि जन मन की ।।५७।।

(दो.) ले कर आते साथ में, अमित जनम-संस्कार ।
उद्धारन जड़ जीव को, पथ दिखाय अवतार ।।५८।।
मानव चित ही काम कर, मानव पथ चलि जाय ।
मानव-भूषण जब बने, वह 'अवतार' कहाय ।।५९।।

(चौ.) मानव सुख दें प्राणिमात्र को । ठीक चलायें सब कामों को ।।
'अस्मि एकम् अनन्म् भव' की । उमंग रहे सदा ही मन की ।।६०।।
यही समझ बरते जो कोई । कह 'अवतार' अंत में सोई ।।
सयत्न गूँथे जग का रिश्ता । एक सूत्र में वही 'फरिश्ता' ।।६१।।
अखिल विश्व इक सूत्र में बांधे । हर मानव को सुपथ सिखा दे ।।
वही श्रेष्ठ अवतार हो गये । आगे भी निश्चय ही होंगे ।।६२।।
उन्नति अवतारवाद इससे । प्रगति क्रमिक अधिकार उसीसे ।।
स्वयंपूर्ण विश्वात्म भाव मय । है सिद्ध हमें 'अवतार' मान्य ।।६३।।
सब का वही एक है करता । सोई एक अनेक में रमता ।।
विश्वात्मा की पूर्णता उसने । की है प्राप्त, न और किसी ने ।।६४।।
इतनी विशाल धारणा जिसकी । कार्य व्याप्ति हो ऐसी उस की ।।
सभी तरह के मत भेदों को । मिटा सके जो विश्व में सब को ।।६५।।
अन्त पूर्ण अवतार सत्य का । महा विकास केंद्र मानव का ।।
मानव धर्मी हम सब जो हैं । अंश उसीके या अंकुर हैं ।।६६।।

(दो.) श्रोता जन मन में रखें, मानव ही अवतार ।
मानव की ही पूर्णता, है कारज अवतार ।।६७।।
देव भक्ति देवत्व है, अवतारी कहलाय ।
अवतारों का आज तक, यूँहि बढ़ा समुदाय ।।६८।।

शांति-अवतार व क्रांति-अवतार

(चौ.) उन मे सिर्फ एक यह देखो । किस से मिलता सुख मानव को? ।।
कौन करे जन कार्य महत्तर ? जन-मानस को मुग्ध बना कर ।।६९।।
महा पुरुष उस ही को समझो । जन हित में ही लगा रहे जो ।।

दैवी शक्ति के सागर जिसके । नित अनन्त लहराये तन में ।।७०।।
अवतारी सामर्थ्यवान है । प्रखर आत्म बल से शोभित है ।।
बोले जैसा कारज तैसा । जग में सो अवतारी जैसा ।।७१।।
अवतार शांति ऐसे की ही । संत सुनाते जन को कीर्ति ।।
होते प्रकट देव-अवतारी । करने क्रांति देश में भारी ।।७२।।
'शांति' क्रांति के दो अवतारी । कार्य रीतियाँ उन की न्यारी ।।
एक करेगा सुबोध केवल । एक फैसला कर दे निज बल ।।७३।।
दोनों है आवश्यक तेहि से । बुध जन मान्य आयोजण ऐसे ।।
अवतारी हम भी उन जैसे । बन सकते हैं निज निश्चय से ।।७४।।
होय हालत ढुलमुल जिसकी । करे बात क्यों अवतारी की ।।
जग अवतार वही कहलाये । जो अवतार कार्य करवाये ।।७५।।
मानव धर्म का दीप जलाये । सज्जन राखे, दुष्कृति नाशे ।।
सेवामय ये कार्य करे जो । गुण अवतारहि सर्व मान्य सो ।।७६।।

सेवा ही कसौटी : आगे बढो !

(दो.) जो जग की सेवा करे, पदवी सो 'अवतार' ।
उस बिन 'अवतारी' कथन, निज श्रद्धा अनुसार ।।७७।।
नहिं सेवा सम मूल्य है, ज्ञान, ध्यान, वैराग्य ।
सेवा से ही सफलता, सब साधन में पाय ।।७८।।

(चौ.) देव देवियाँ आये जग में । जप-तप लागे सब ही करने ।।
पर पूर्णता नहीं मिल पाई । सेवा तिन कुछ कीन्ही नाहीं ।।७९।।
सेवा कार्य जहाँ भी होवे । अनन्त लोगों को हर्षावे ।।
मान लिया अवतार उन्हीं को । जन हित हेतु समर्पित जन को ।।८०।।
किया राम ने त्याग राज्य का । रावण संहार सुजन रक्षा ।
इसीलिए सब जन से जग के । माना अवतार बिना शंका के ।।८१।।
श्रीकृष्ण ने कंस को मारा । दुर्योधन को भी संहारा ।।
दीन जनों को सुखी बनाया । तब ही तो अवतार कहाया ।।८२।।
सेवा कार्य करे जो जो भी । जन अवतार कहे उसको ही ।।
करते याद कार्य लीलाएँ । प्रेम भाव से सभी कलायें ।।८३।।
कृर स्मरण करे सेवा जो । पांवे पद अवतारहि का सो ।।
पर सूखी सी सहानुभूति । नहीं कभी उद्धारक होती ।।८४।।
सेवा कार्य समर्पित जीवन । आत्म विभोर होंय तारे जन ।।

वे ही संत और अवतारी । जो कर्तव्य शील नर-नारी ।।८५।।
(दो.) सेवा की मुनि संत ने, संतोषित मन प्राण ।
उपासना व्यवहार से, दिखा मोक्ष सोपान ।।८६।।
सेवा की मुनि संत ने, लखा जीव को ब्रह्म ।
हम से भी सेवा वही, बने, यही सद्धर्म ।।८७।।
(चौ.) एक संत जन्म अति ऊँचा । भरा कीर्ति से देश समूचा ।।
पर क्यों यह व्यापक प्रभाव भी । जन सुधार में रहा न कुछ भी ।।८८।।
इस में कारण हमी लोग हैं । आँख मूँद संदेश सुनत हैं ।।
प्रणाम करने का ही कौतुक । भक्ति हमारी रहे यहीं तक ।।८९।।
जन करते हैं उन के उत्सव । गाते भाव भक्ति से गौरव ।।
सेवा भाव किन्तु उन जैसा । अपने में लाते न तनिक सा ।।९०।।
जन प्रभु का अवतार चाहते । भार-हरण ही बाट जोहते ।।
सोच परावलंब का ऐसा । घुस बैठा लोगों में कैसा! ।।९१।।
अरे! उसे अब सभी बिसारो । सन्त वचन तत्काल आचरो ।।
सुधार मानव को मानव ही । इससे बड़ा पुण्य नहिं कोई ।।९२।।
यह अवतार कार्य पावन तम । निर्भय हो कर क्यों न करें हम ?
जो चाहे सो ही कर डाले? निश्चय ही उस में जय पा लें ।।९३।।
रोग आदि से मरता कोई । कौन पूछता उसको भाई?
प्राण गवाँ दे सेवा करते । श्रद्धा से जन नाम सुमिरते ।।९४।।
कहत इसलिए बन सेवक तुम । मानव को माने अपने सम ।।
गुण अवतार में रमता जाये । कीर्ति भुवन में निश्चित पाये ।।९५।।
(दो.) रोओ मत घरबार को, बनो नहीं अनजान ।
फँसे रहो नहिं स्वार्थ में, निकालो सेवा काम ।।९६।।
जो स्वारथ अपना तजे, जग स्वारथ निज मान ।।
वही काम अवतार है, है यह सच्चा ज्ञान ।।९७।।
(चौ.) करो इसलिए उन्नति अपनी । करके सेवा अपन गाँव की ।।
क्रमिक गाँव से बढ़ते जाओ । विश्व की सेवा में खो जाओ ।।९८।।
अपनी समझ बढ़ाते जाओ । जितना संभव काम उठाओ ।।
इससे ही पदवी अवतारी । क्रम से होओगे अधिकारी ।।९९।।
सेवा में ही देव भक्ति है । भले काम में राष्ट्र शक्ति है ।।

आखिर मिले मुक्ति इस ही में । अवतार दीप्ति होगी तन में ।।१००।।
कोइ न समझे है अति दुष्कर । अवतार कार्य या निज सुधार ।
कर न सके ऐसा मुश्किल कुछ । ग्राम जनों ! नहिं है जग में सच ।।१०१।।
भय शंका सब हटे गाँव से । कहा इसलिए सुगम भाव से ।।
कहता तुकड्या सोचो समझो । मर्महि अवतार तत्व जानो ।।१०२।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
तैंतीसवें अध्याय में अवतार का सुगमार्थ है ।
अवतार कार्यो का सुपथ, जो मनुज के गमनार्थ है ।।१०३।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

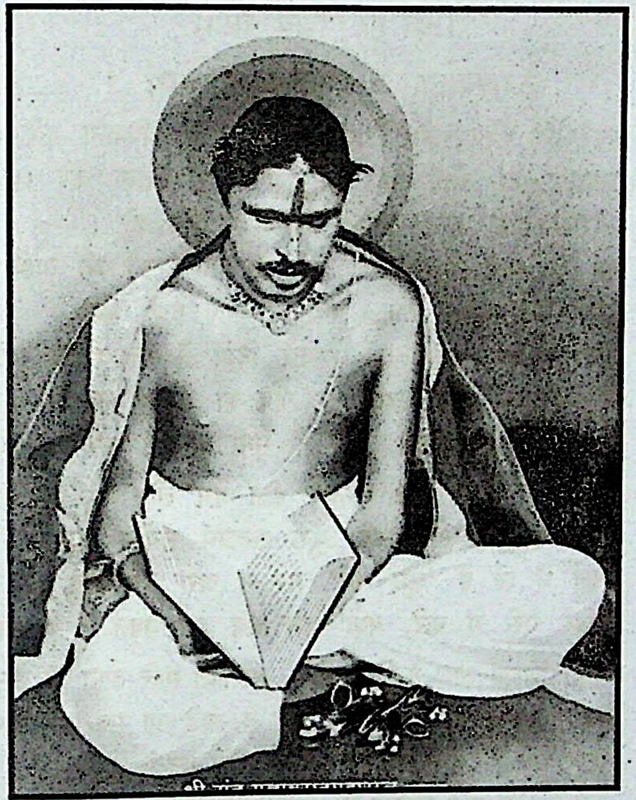

अ. ३४

बालान्धसन्त श्री गुलाबराव महाराज

चौंतीसवाँ अध्याय

प्रारब्धवाद

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

नैराश्यवाद व भाग्यावाद व्यर्थ !

(हरि.) हर जीव ईश्वर-अंश है, स्व विकास जो जितना करे ।
अवतार पद ऊँचा यहीं पर, प्राप्त वह उतना करे ।।१।।
करतेहि सेवा यत्न अति, देवावतारी जीव हो ।
कर ले स्वयं उद्धार निज, दे शांति जग को भी अहो! ।।२।।
दुर्बल निराशावाद तज, अवतार गुण साधो सही ।
अवतार तत्त्व इसीलिए, सहकर दिया है विशद ही ।।३।।
सत्कार्य जन करने लगें, तो गाँव हो ऐश्वर्य मय ।
इससे बढ़ाना चाहिए, सब में मनो धीरज, अभय ।।४।।

(दोह.) पर श्रोता बोले अजी! भाग्य हीन हम लोग ।
इससे हम से नहिं सधे, कुछ सत्कार्य सुयोग ।।५।।
दिल में तो हे 'कुछ करें', पर न जरा भी वक्त ।
कहिये ऐसे में करें, क्या' हम सब इस वक्त ? ।।६।।

(चौ.) मित्रो! जिसमें रुचिं हैं जिस को । उस हित मिले वक्त भी उस को ।।
मन में अगर तीव्र इच्छा है । कोई न आड़े आ सकता है ।।७।।
गरज होय तो जन्में युक्ति । होय चुनौती बढ़ती शक्ति ।।
यत्न करे से फल मिलता है । अभिरुचि हों तो पथ खुलता है ।।८।।

(सवै.) कहते श्रोता, सब यत्न करें, क्या सब राजा बन पावें ?
हम को तो लगे, बिन भाग जगे, बस हाथ नहीं कुछ आवे ।।९।।
मन में है रमा, यदि राज बड़ा, पर काम अड़ा प्रतिदिन का ।।
मन में उमंग, कर सो हुरदंग, बने पर क्या कुछ मन का? ।।१०।।
इच्छा सम बनता, तो क्या जनता, बनना चाहे भिखारी ?
इच्छा सब करते, दर दर फिरते, क्यों ऐसी लाचारी ? ।।११।।
किसी को चलते, मग में मिलते, मुफ्त धनों के हण्डे ।
है बदा ये उनका, की नहिं इच्छा, धन मिला जो छप्पर फाड़े ।।१२।।

कोई दरिद्र घर, जन्म पाय नर, बकरी भेड़ चराने ।
पर भाग्य अचानक, बन गये दत्तक, पहुँचा दिया राज घराने ।।१३।।
यह किस उपाय से, बने ? आपसे, यही पूछना चाहें ।
'प्रयत्न का फल, मिलता केवल', यह बात न यहाँ सुहाये ।।१४।।
हैं गाँव हमारे, सुजन बिचारे, चतुर प्रयत्नवान सदा हैं ।
अति कला निपुण हैं, कितने गुण हैं, पर न पेट भरता है ।।१५।।
अब कहो, करें क्या? कैसे सुधरें?, फल दें कैसी इच्छा ?
किस विधि करज, नित करें सुयोजित, अपना? है यह पृच्छा ।।१६।।

(दो.) मित्रो! कहना यह सभी, सुने लगा कर कान ।
इस से अपनी रीति से, उत्तर देउ सुजान ।।१७।।
भाग्यवाद प्रारब्ध का, करता प्रगति विरोध ।
जीवन में हर गाँव के, प्रमुख यही प्रतिरोध ।।१८।।

(चौ.) दूर हटा यह व्यर्थ निराशा । करना होगा यत्न हमेशा ।।
तब ही समझो! भाग्य हमारा । हुआ उदित, जाने जग सारा ।।१९।।
वर्ना भाग्य न देगा कोई । भोग मिलें नहि यत्न बिना ही ।।
प्रधान उसमें है प्रयत्न ही । पहले का हो या अब का ही ।।२०।।
होते कुछ संस्कार पूर्व के । कुछ प्रयत्न तो इसी जन्म के ।।
उन के मिलने से ही पल में । होते उदित भाग्य फल जन में ।।२१।।
बालांध संत गुलाब राव पर । वेद शास्त्र उनकी जबान पर ।।
थी पूर्व जन्म की संचित सिद्धी । नहिं प्रारब्ध मुफ्त निश्चित ही ।।२२।।
कुछ पूरब संस्कारों की गति । कुछ तो करनी, कुछ तो संगति ।।
कुछ संकल्प, व इच्छा शक्ति । इनसे उचित समय फल प्राप्ति ।।२३।।
अकस्मात फल देखे दर्शक । कहे 'खुला अब भाग्य अचानक' ।।
धन वैभव जो भी है पाता । 'भाग्यवान' जन उसे बताता ।।२४।।

भाग्यवान कौन तथा क्यों कर ?

(दो.) प्रश्न यहाँ होता खडा, भाग्यवान है कौन ?
इसका उत्तर एक ही सुनो तत्व का ज्ञान ।।२५।।
यदि कोई धनवान हो, भाग्यवान वह नाहिं ।
सुख संतोष में भाग्य है, आडम्बर में नाहिं ।।२६।।

(चौ.) भाग्यवंत हम उन्हें कहेंगे । जो प्रभु को हि समर्पित होंगे ।।
प्रभु की शरण अनन्य भाव से । लेते हों जो निज स्वभाव से ।।२७।।
वैसे सत्कार्यों में तत्पर । दुर्व्यवहारों को जो तज कर ।।
है जो मिलता सहज कर्म से ।। उस में रहते हैं वे सुख से ।।२८।।
सिर्फ़ मिले सुख अपने ही को । बिगड़े चाहे कुछ औरन को ।।
कभी न ऐसा दिल में चाहे । भाग्यवान वह ही कहलाये ।।२६।
'भाग्यवान' चोरी कर बनता । तिरस्कार कर हँसती जनता ।
कहती ऐसे भाग्यवंतों की । गति होगी क्या बात समय की ।।३०।।
पातक वह संकट ला देगा । भाग्यहु उलटी राह भगेगा ।।
पायेगा फिर सोई अपजस । हमें बताओ भाग्यवान् कस? ।।३१।।

(दो.) भाग्य जगे इक रात में, जिसे जुआ दे लाभ ।
उसी राह से अन्य दिन, दैन्य करे 'आदाब' ।।३२।।
यह तो चिन्ह है पाप का, नहीं नहीं यह भाग्य ।
पीछे गायें कीर्ति जन, वही नित्य है भाग्य ।।३३।।

(चौ.) भाग्यवंत नहिं धन से बनते । भाग्य न हम सत्ता को गिनते ।।
भाग्य लाभ सत्कार्यों से ही । जीवों को मिलता निश्चय ही ।।३४।।
धनिक बने सो भाग्यवंत नहिं । यह तो मेरा कहना है नहिं ।।
पर जो उत्तम कर्मवान है । अमीर सो ही भाग्यवान हैं ।।३५।।
लोक शोभिनी एक अमीरी । रक्त पिपासू एक अमीरी ।।
ऐसे में कैसे दे पदवी । कोई उसको भाग्यवंत की ।।३६।।
मिट्टी छूते सोना होवे । चलती के दिन 'भाग्य' कहावे ।।
अहंकार के व्यसन से सोई । सेवा छोड़ दुर्दशा होई ।।३७।।
कहूँ इसलिए प्रयत्न कर लो । अपने जीवन को सुधार लो ।।
बातें 'भाग्य हीन' होने की । छोड़ो अभी, न सुनो किसी की ।।३८।।
कर संकल्प स्व-भाग्य बनाना । दृढ़ निश्चय से बढ़ते जाना ।।
प्रयत्न पूरा करते जाओ । आलस से भी मुक्ति पाओ ।।३६।।
उच्च बिचार करे जन जितना । हो व्यवहारहु ऊँचा उतना ।।
प्रबल भाग्य इससे ही पावे । सभी योजना पूरी होवे ।।४०।।
करने से ही भाग्य फलेगा । करने से सुख स्वर्ग मिलेगा ।।
करने से ही सब कुछ होता । मानव है निज भाग्य विधाता ।।४१।।

(दो.) बैठत सोवे भाग्य हू, चले तो दौड़ लगाय ।
रूपान्तर हो यत्न से, अभगा भाग्य बनाय ।।४२।।
ऐसा ऋषि जन कह गये, संत सुकवि, अवतार ।
धर्म ग्रंथ प्रमाण महा, कहते लोग विचार ।।४३।।

(चौ.) खुला अचानक भाग्य है जिसका । फलित हुआ सुकर्म ही उसका ।।
अकस्मात इसलिए समय पर । पाया भूषण उसने सुंदर ।।४४।।
गर उसने वह किया न होता । तो कैसे उस को मिल पाता ?
ईश्वर भेदभाव हे करता । ऐसा कहना नहीं शोभता ।।४५।।
एकाएकी भाग्य जगाने। के चक्कर जो चले खोजने ।।
हाथहु में जो सोऊ खोये । बलि मनुष्यत्व की हो जाये ।।४६।।
तुम पूछोगे 'क्या करना फिर? यत्नशील हो जाओ तुम गर ।।
इच्छा शक्ति होय बल शाली । अपना भाग्य बनाने वाली ।।४७।।

(दो.) समय अगर प्रतिकूल हो, बढ़ना धीमा होय ।
पर सुकर्म जो जो किए, व्यर्थ कभी नहिं होंय ।।४८।।
उत्कट इच्छा से किया, वह यदि फला न आज ।
'भाग्य अचानक ही खिला', लगे फले जब काज ।।४६।।

स्वेच्छा प्रयत्न का विपरीत फल क्या देवेच्छा से ?

(हरि.) श्रोता हुए सशंक मन में, दे यत्न फल इच्छित सही ।
ऐसा कथन जो भी सुने, कहता 'अभी जँचता नहीं' ।।५०।।
'सब काम सधते यत्न से, यद्यपि किया निश्चय यही ।
होते उपाय अपाय की, अनुभूति फिर क्यों आ रही ? ।।५१।।
यत्न शील जीवन हित ही सब में, चाहता है कौन मरना ।
क्या किसी ने भी अतीत में, करी होगी मृत्यु साधना ? ।।५२।।
जिंदगी की चाह सब में, वैद्य-डाक्टर को बुलाते ।
उस पर भी उनकी क्या दशा? सब करने पर भी कुछ मरते ।।५३।।
बीमार बरसों ही रहे, क्या कष्ट बेचारा सहे ?
देखने वाला कोई नहीं, बेहाल आखिर क्या कहें ? ।।५४।।
इच्छा न की थी रोग की, फिर देव ने वह क्यों दिया ?
इसमें स्व हित के वास्ते, क्या यत्न, उसने नहिं किया ? ।।५५।।
है मौत की इच्छा किसे, बरसों न आती मौत पर ।

कहिए कहाँ तक मानवी, इच्छा यहाँ है मान्यवर ? ।।५६।।
हम कहें प्रभु सूत्र-चालक, तस हाथ डोरी देव की ।
कठपुतलियाँ मानव सभी, है यत्न इच्छा व्यर्थ की ।।५७।।

(चौ.) मित्र! प्रश्न तुम्हारे सुंदर । मुझे न वे लगते विचित्र पर ।।
है अज्ञान सहज यह जन में । जो दृढ़मूल बना है मन में ।।५८।।
सुख पाने को कष्ट उठाते । दुख में देव बीच में लाते ।।
मूल बिना खोजे से सब ही । बड़ सिद्धान्त बघारत रहहीं ।।५६।।
हमने पत्थर फेंका ऊपर । वह गिर पड़ा भूल से सर पर ।।
यहाँ गुरुत्वाकर्षण ने कब । किया ओर से अपनी करतब ? ।।६०।।
गन्ना मिर्च खेत में बोये । मधुर तिक्त फल उस में आये ।।
इस में जल का क्या प्रभाव है? जैसा बोया तैसा फल है ।।६१।।
देश भक्ति सब में ही होवे । पर वह सूत्र न स्वयं चलावे ।।
कर्म पवित्रहु अपवित्रहु भी । फलते हैं पर अपन आप ही ।।६२।।
ईश्वर ही गर सब कर जाता । तो किसलिये गरीब बनाता ?
अल्प आयु में भी फिर क्यों कर । आती मौत सभी जीवों पर ? ।।६३।।
ये तो हैं आधीन हमारे । जनम-मरण के सब ही फेरे ।।।
इस में शंका होने का भी । कारण नहिं है कहीं जरा भी ।।६४।।

(दो.) इच्छा करते हम स्वयं, इसीलिए यह जन्म ।
कौन किसे भेजत, जगत्, कारन कौन अनाम ? ।।६५।।
ऐसाहि कारण मरन का, हमरे उलटे काम ।
जब असह्य हो कष्ट तब, याद करें 'प्रभु' नाम ।।६६।।

(चौ.) चोरी करने चोर चला हो । पहले ठीक न सोच लिया हो ।।
गिरे बिपत में कहता तब है । 'कैसा प्रभुने किया गजब है?' ।।६७।।
कितनों ही के हृदय जलाये । धन को लूट के घर को लाये ।।
दुःख भोग करनी का आये । देव भाग्य का नाम धराये ।।६८।।
मनुज न मरना चाहे कोई । पर मरने जस करे बुराई ।।
आसक्ति वश कहे बाद में । 'महान संकट लाया प्रभु ने !' ।।६६।।
करे.आचरण मरनेलायक । छोड़ ज्ञान का सारहि सम्यक ।।
'नहीं मरें' लालसा भोग हित । कैसे होवे यह सोच उचित ? ।।७०।।

इच्छा, इच्छा शक्ति, कर्म भोग व क्रियमाण

कोई इच्छा नहिं जो कहता । सो इच्छा का मार्ग बनाता ।।
मन न समय पर वश में रहता । इसीलिए अभ्यास महत्ता ।।७१।।
जन्म न होता इच्छा से है । तहूँ गर्भ-धारण करना है ।।
अंतर की वांणी वैसे ही । मुखरित होय समय पाकर ही ।।७२।।

(दो.) लोह तपाया आग में, कहे 'शीघ्र हो शीत' ।
ऐसा कैसे हो सके, अकस्मात अनरीत ? ।।७३।।
जीव स्वतंत्रहि कर्म में, भोगत फल परतंत्र ।
किया उसी का फल मिले, इच्छा परिणती मात्र ।।७४।।

(चौ.) सब चाहते 'कभी न मरें हम'। सब को लगता 'राज करें हम' ।।
इच्छा बढ़े न कर्म मार्ग पर । बिन गलती अरु तेज चाल कर ।।७५।।
इसीलिए सब भोग भुगतने । पहले के कर्मों के जितने ।।
व्यसन लगा या हुआ तपेदिक । कैसे लम्बा जीवन संभव ।।७६।।
कहूँ इसलिए, जो कुछ होता । वह इच्छा की परिणति होता ।।
हों प्रयत्न अच्छे इच्छा सँग । सधें काम आगे फिर सँग सँग ।।७७।।
एक रूप इच्छा का चंचल । बार बार बदले सो दुर्बल ।।
एक रूप इच्छा का निश्चल । प्रकटे कर्म मार्ग से केवल ।।७८।।
प्रकटत इच्छा रूप न इच्छा । कर्म रूप ही दिखती इच्छा ।।
नकारने से भी क्या होगा ? काम नजर सीधा आयेगा ।।७९।।
राजा 'गरीब हूँ' गर कह देवे । लोग उसे पहिचानहि लेवें ।।
छिपने से छिप पाये कैसे । मेघ के पीछे सूरज जैसे ।।८०।।
इच्छा प्रेरित फल कर्मों का । रूप देखि कांपे मन किसका ।।
गर ऐन समय इच्छा बदले । फल मृत्यु-रूप टाले न टले ।।८१।।

(दो.) प्रमाण है कइ जनों के, दइ निज मृत्यु बताइ ।
दिन क्षण, बेला भी कही, फलित सोइ हो जाइ ।।८२।।
छूटी देहासक्ति जब, सम्मुख प्रकट भविष्य ।
औरों के भी जन कई, सोई विवरण देंय ।।८३।।

(चौ.) जो सुविवेकी जानकार नर । फल भोगने को रहते तत्पर ।।
शुरूसेहि सो गलत राह पर । बढ़न देत नहिं कदमों को पर ।।८४।।
कुमार्ग से अविवेकी चलते । फल को भोग तड़पते जलते ।।

अति सुख अथवा दुख से होती । पगलों जैसी मन की विकृति ।।८५।।
बढ़ती आसक्तों में विकृति । आत्मा देह बद्ध बौराती ।।
पहाड़ दुख का सहा न जाये । मर कर पिण्ड छुटे मन चाहे ।।८६।।
असहनीय पिछले कुकर्म जब । हुये, जान देने दौड़े तब ।।
'आये मौत सोइ है अच्छा' । मन कें उनके उमगे इच्छा ।।८७।।
तन परिवर्तन का स्थल है । सचमुच मरण स्वप्न केवल है ।।
परंतु किए पाप पुण्यों का । हिसाब खतम होवे न उनका ।।८८।।

(दो.) **फेंक पुराने वस्त्र को, पहने नया जो सोह ।**
वैसेइ मरना जीव का, स्वेच्छा बदलत देह ।।८९।।
इच्छा प्रकट न हो कभी, प्रकटें फल न तुरंत ।
स्थिति निर्णय करन में, होत सुजन भी भ्रान्त ।।९०।।

(चौ.) वसन लिया इच्छा से झीना । 'चले हजार साल' यह कहना ।।
ऐसी इच्छा होती मिश्रित । किन्तु किये का भोग सुनिश्चित ।।९१।।
मन आया बैठा घोड़े पर । चाबुक ले दौड़ाय उसे फिर ।।
तब घबड़ा कर कहें 'कृपाघन' ! रोको इस को अभी इसी क्षण ।।९२।।
जब हाथों से निकल गया शर । लौट न आता इच्छा से फिर ।।
इच्छा-कर्म पूर्व की धारा । का फल भुगते बिन नहिं चारा ।।९३।।
इच्छा सिर्फ न किसी काम की । हो संस्कारित नीव कर्म की ।।
नव इच्छाएं बढ़े इसी क्रम । फल सन्मुख अपनेहि कर्म सम ।।९४।।
मन, बुद्धि, चित्तहु, अहंकार । अंतःकरणहि है तस आधार ।।
दृढ़ इच्छा संस्कार तहाँ भी । करे नियंत्रित कर्म सदा ही ।।९५।।
जिनके हैं संस्कार बदलते । तिनके जीवन सुख में चलते ।।
वर्ना इच्छा है क्षण भंगुर । बने नहीं तत्काल लाभ कर ।।९६।।

(दो.) **अतीत इच्छा-कर्म के, संस्कारहि सब कोय ।**
पाप पुण्य मय रूप में, 'संचित' जग कहलाय ।।९७।।
उसमें से भोगार्थ जो, कहलाये 'प्रारब्ध' ।
नहीं सहज में वह टले, पड़े भुगतना 'लब्ध' ।।९८।।

(चौ.) भुगतत भोग करे काम नव । इच्छा, यत्न प्रचंड जो संभव ।।
वह 'क्रियमाण' जुड़े संचित में । मिले उसी का फल भविष्य में ।।९९।।
रहट-चक्र इस भाँति चला है । जिसको 'जीवन' नाम मिला है ।।

जनम मरण, सुख दुख की गति भी । खेलहि इच्छा यत्नों का ही ।।१००।।
यही समझ कर प्रयत्न कर लो । वृथा भाग्य का भ्रमहि मिटा दो ।।
यही संत-उपदेश जगत् को । सुधार लो क्रियमाण सुपथ को ।।१०१।।
है न क्रिया बिन मार्ग कहीं भी । मनुज कर्तव्य देव पद पाही ।।
कहता तुकड्या, बनो निश्चयी । प्रयत्नवादी मानव विजयी ।।१०२।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
चौतीसवें अध्याय में है भाग्य का सत्यार्थ ही ।
प्राबल्य इच्छा-यत्न का, प्रारब्ध का मतलब सही ।।१०३।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

◆

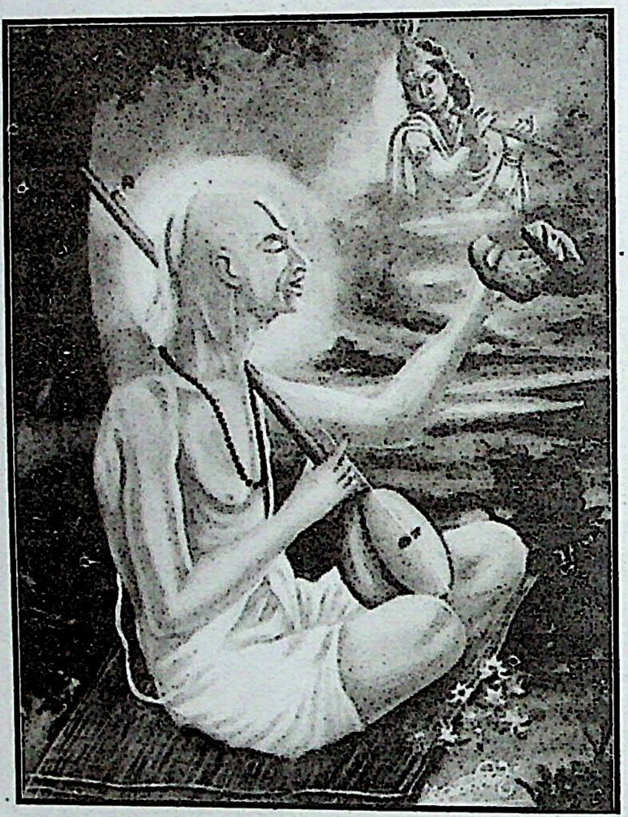

अ. ३५

भक्तप्रवर श्री सूरदास महाराज

पैंतीसवाँ अध्याय

प्रयत्न-प्रभाव

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

फलदाता कौन? इच्छा-कर्म या देव-दैव-ग्रहमान?

(हरि.) तात्पर्य गत अध्याय का, जीवन स्व इच्छा यत्न मय ।
हानि-लाभ या जनम-मरण, उसके बिना न किसी समय ।।१।।
हो आज की या पूर्व की, अच्छी बुरी निज कामना ।
दे निर्विवाद हमें वही, सुख शांति अथवा यातना ।।२।।
जो कुछ हुआ वह हो चुका, आगे सुधरना चाहिए ।
मिले इच्छा कर्तव्य से फल, सभी को यह मानिये ।।३।।
इस पर कहे श्रोता, मान्यता हैं यहां इच्छा-कर्म की ।
पर जो अचानक ही मरे, कहिए कहाँ इच्छा रही ? ।।४।।
कोई मरे अकस्मात ही, बीमार नहिं होकर जरा ।
बस दर्द सीने में उठा, अरु मृत्यु के मुख में गिरा ।।५।।
कोई कुए में गिर पड़ा, या शेर वन में खा गया ।
इन प्रसंगों का कभी, क्या पूर्व से इच्छा किया? ।।६।।
किस का हुआ वध मार्ग में, या ठेस लगते ही मरा ।
क्या किसी की थी सो इच्छा ? या कर्तव्य सोचें, जरा ।।७।।
अजि! देव की अरु दैव की, लीला सभी यह जानते ।
हम को लगाने कार्य में पर, आप कुछ भी हैं बताते ।।८।।

(चौ.) मित्रो! ऐसा भ्रम नहिं पालो । कहा सत्य ही, तत्व परख लो ।।
इच्छा-यत्न केहि बलबूते । देव काल कर्महु फल देते ।।९।।
मैंने तो पहलेहि कहा है । दिखता कार्य अचानक नहिं है ।।
फिर भी पहले कभी कार्य वह । किया होगा, है सुनिश्चित यह ।।१०।।
करते समय ध्यान नहिं रहता । पड़ प्रसंग तो अचरज करता ।।
किन्तु दैव को भार सौंपकर । पल्ला झाड़ बिचारा बनकर ।।११।।
यदि धन ही वह नहीं जोड़ता । क्यों चोरों के हाथों मरता ?
राह देख कर ही वह चलता । तो क्यों ठोकर खाकर गिरता? ।।१२।।

देह, जगह संगिनी का पहले । रखे ध्यान उत्तम तिन कर ले ।।
रहन सहन गर सादा होता । तो वह कैसे दुखिया होता ? ।।१३।।
अविवेकता, गर्व, मदहोशी । मानों चला मृत्यु पथ से ही ।।
निमित्त व्याघ्र आदि बन जायें । पर प्रयत्न निज का फ़ल पाये ।।१४।।

(दो) **अकस्मात जो हो घटित, सो शरीर के साथ ।**
लिया न होता जन्म ही, कहाँ विपद की बात? ।।१५।।
जन्म खेल इच्छाहि का, जग इच्छा का मेल ।
संघर्ष अटल है इसलि्ए, सुख-दुख निज कृत खेल ।।१६।।

(चौ.) 'दैव मारता, देव मारता । क़हो यहाँ क्यों बोलें भ्राता?
क्या हम किस का कुछ खाते हैं ? बता हमारा स्वारथ क्या है? ।।१७।।
दैव-देव की बात सही है । तो उन पर यह दोष सही है ।।
काम मगर है नहीं देव का । मानव को यह दुख देने का ।।१८।।
हम ही राह भूल हैं जाते । इच्छा, संगति के प्रभाव से ।।
एकाएक मिले फल जब ही । 'कैसे हुआ कहें सब तब ही! ।।१९।।
जिम्मेदार 'दैव' ठहराते । 'देव की माया' या बतलाते ।।
या प्रभाव फिर ग्रह तारों का । मान शुभाशुभ लें बिन शंका ।।२०।।
कोई कराते ग्रह की शांति । राकस साधें, पढ़ते पोथी ।।
किन्तु दुराग्रह जो दिल बैठा । नहीं हटाते भ्रम वह झूठा ।।२१।।
नक्षत्रों का असर सृष्टि पर । निमित्त मात्र किन्तु वह आखिर ।।
निज शुभ-अशुभ कर्म की थाती । योगायोग वही फल देती ।।२२।।
भले बुरे जो बीज लगाये । ऋतु माफिक सो सो उग आये ।।
वहाँ किया क्या स्वयं काल ने? सिर्फ मदद की उनको जमने ।।२३।।
लगे नरियल में न आक फल । जो बोओ उगता वह निज बल ।।
मदद देय जल केवल उसको । देव सहायक तैसेहि जनको ।।२४।।

(दो.) **स्वयं देव कुछ नहिं करे, दे जिसका उसकोहि ।**
योग बने फल प्राप्ति का, निमित्त मात्र सब होइ ।।२५।।
चले काल अपनी गति, प्रभु व्यापक सम रूप ।
सृष्टि नियम में स्वयं ही, फलते कर्म अनूप ।।२६।।

जीव की कर्म में स्वतंत्रता, संस्कार भिन्नता व फल विचार

(चौ.) कर्म कर सके, यह स्वतंत्रता । यही जीव की महान सत्ता ।
हम हैं अपने भाग्य विधाता । स्वदैव को जन स्वयं बनाता ।।२७।।
बुरा असर नहिं पड़े ग्रहों का । उपाय कर तस हेतु अनेका ।।
सिद्ध इसी से यह होता है । मानव चित कर्तव्य शील है ।।२८।।
बढ़ाय साधना मानस शक्ति । दुःख उबरि होये सुख शांति ।।
यह ईश्वरी कृपा है जिस से । कर्म कर सके जन निज श्रम से ।।२९।।
मित्रों! मत भूलो अब हम ही । हैं अपने कर्ता, हर्ता भी ।।
इस से बातें देव-दैव की । आप से हैं विस्तार में की ।।३०।।
एक बात की गाँठ बाँध लो । शुद्ध कर्म ही करते जाओ ।।
तब ही क्रम से शुभ गति पाकर । बढ़ते जाओगे सुख-पथ पर ।।३१।।

(दो.) निसर्ग योगायोग हो, भोग भाग्य का होई ।
बदल सकत शुभ यत्न से, प्रभाव उन सब कोइ ।।३२।।
जीव निपट परतंत्र गर, बदल न संभव होय ।
नाना शास्त्र उपाय क्यों, कहे बताओ मोय? ।।३३।।

(चौ.) 'सत्यं वद' धर्मं चर' जैसे । वेद वाक्य होते क्यों कैसे ?
परवश ही हो जीव सर्वथा । विधि निषेध फिर होंगे बिराथा ।।३४।।
भाग्य आदि की धारा में गिर । डूबेगा ही जीव बहुतकर ।।
कहाँ निकलने राह मिले फिर? हो नहिं जीव स्वतंत्र तनिक गर ।।३५।।
झूठा मत मानव परवशता । कर्म स्वातंत्र्यहि उसे सोहता ।।
उद्धार होय निज यत्नों से ही । शत्रु मित्र अपने हम खुद ही ।।३६।।
सोचो बुरा, बुरा ही होवे । जो कुछ साधो वह सध जावे ।।
हम महान बन जाय न क्यों कर? सद्गुण का आचरण सर्वदा कर ।।३७।।

(हरि.) श्रोता कहे इस पर सुनो, शंका मुझे है अभी भी ।
सुख को तरसते जन सभी, पर नहिं मिलन उनका कभी ।।३८।।
करते भला होता बुरा, सर ब्रह्म हत्या आ पड़े ।।
कूटे मजीरे जन्म भर, ताल फिर भी नहिं मिले ।।३९।।
कारण अब इसका है क्या? यत्न ही सो नहिं किया?
उलटे कई जन हैं सुखी, जिन पाप ही जग में किया ।।४०।।

उत्तर इसका बस एक है, दिखते सब जन भिन्न भिन्न ।
जिसका कारण, उनके प्रयत्न है, स्थिति वश सब भिन्न भिन्न ।।४१।।

(चौ.) लोगो के संस्कार भिन्न हैं । इसीलिए वे सब अमेल है ।।
कलावान है जन्म से कोई । ताल साध पाये नहिं कोई ।।४२।।
ये संस्कारहि भिन्न भांति कें । कुछ गायन या विद्वत्ता के ।।
कुछ साहस के, चित्रकला के । कितने ही चातुर्य कार्य के ।।४३।।
कुछ तो धन के, कई कीर्ति के । कुछ आध्यात्मिक और भक्ति के ।।
कुछ तो कार्य शक्ति के नाना । हैं संस्कार जगत जिन जाना ।।४४।।
जिसने जो भी यत्न बढ़ाया । संस्कार वही पल्ले आया ।।
इसीलिए सब कुछ सब ही जन । कर नहिं सके, यही तस कारन ।।४५।।
कोई संपदा अकूत पावे । लेकिन अकल तनिक नहिं होवे ।।
विद्वान प्रकांड होत है कोई । खाने तस का अभाव होई ।।४६।।
दिखता एक अतीव साहसी । किन्तु बुद्धि तस दिखे शून्य सी ।।
इसीलिए जीवन में वैसा । जन 'गुण्डा' या 'पगला' जैसा ।।४७।।

(दो.) एक शब्द से सृष्टि रच, इक से जगत् नसाय ।
एक वाद्य अद्भुत बजे, बच्चन देय रिझाय ।।४८।।
एक ध्यान में सिद्धी है, एक भक्ति रस खान ।
एक में बच्चों के लिए, विश्व ज्ञान निज ज्ञान ।।४६।।

(चौ.) इसका एकहि कारण, जिसने । कर्म किये जो भी इच्छा से ।।
वे सब है संस्कार उसी के ।पूर्ण हुए है अब पहले के ।।५०।।
संस्कारहु इच्छा कर्मों के । रूपांतरित होत जीवन में ।।
जिसने जो व्यवहार किया है । वही यत्न अब फल लाया है ।।५१।।
वही प्रयत्न-शील सच जन में । हो जिसकी सब इच्छाओं में ।।
चिन्तन गहरा और सर्वदा । कर्म करे हार्थे से तैसा ।।५२।।
जो मन में हो वही ध्यान में । ध्यानहि प्रकटै तस प्रवृत्ति में ।।
कर्तव्य और इच्छा वैसे ही । लसते जीवन रहे सदा ही ।।५३।।
इन सब का जब मेल बनेगा । तब प्रयत्न का सुयश खिलेगा ।।
वर्ना गड़बड सदा चलेगी । इक इक से संगति नहिं होगी ।।५४।।
संभव इसका क्रंम है इक ही । हो संकल्प प्रथम मन माहीं ।।

जब दृढ़ हो संकल्प तभी ही । रूप लेत सत्कार्य का सोही ।।५५।।
अवधि नहीं संकल्प में किसकी । जग में प्रकृति यही है उसकी ।।
रहते कुछ संस्कार पूर्व के । कुछ मिलते हैं मात पिता के ।।५६।।

(दो.) **यों संचय संस्कार का, जस जस बढ़ता जाय ।**
भलेबुरे तिन फलन की, गति भी बढ़ती जाय ।।५७।।
पूर्व यत्न उत्तम किए, हाथ मिला सो रत्न ।
दुराचरण से हो पतन, आगे दुष्फल यत्न ।।५८।।

(चौ.) भोग रहे पहले कि कमाई । भले कर्म की निधि न जमाई ।।
सच भोग के बाद अन्त में । भोग अवसि भोगना नर्क में ।।५९।।
पहले कभी किये पुण्य थे । इसीलिए सुख अभी मिले थे ।।
पर अब पाप किया तो आखिर । आ धमकेगा संकट ही फिर ।।६०।।
पुण्यवंत को आज कष्ट है । इसका कारण भी सीधा है ।।
इस संस्कार पुण्य निष्ठ है । पर दूसर फल दुःख रूप है ।।६१।।
सर्वांगीण विशुद्ध यत्न हों । संस्कार सभी के, उन्नत पथ हो ।।
यही नहीं होने पर मानव । करत विचित्र फलों का अनुभव ।।६२।।
तुका राम अरु एक नाथ भी । सम अधिकारी संत रूप ही ।।
एक विपद में, एक धनिक थे । भोग भिन्न संस्कारों के थे ।।६३।।
प्रातः जगने का फल न्यारा । भिन्न अध्ययन का फल सारा ।।
भली रहन का फल अद्भुत है । छिपाय से भी छिप न सकत है ।।६४।।
चित्त शुद्धि का फल ही दूजा । फल दे अलग दान जप पूजा ।।
पावन सुफल ज्ञान-साधन का । मेल नहीं है एक एक का ।।६५।।
भले कार्य का फल उत्तम है। पर दूजा इक बुरा कर्म है ।।
इसीलिए बुरे फल मिलते । इस के उस के आगे पीछे ।।६६।।

(दो.) **किया कर्म कल्याण जो, है तस फल अनिवार्य ।**
नहीं व्यर्थ सिद्धान्त यह, काल दुकालहु भाय ।।६७।।
कहे 'फल उपकार नहिं, फले पुण्य से पाप' ।
कस सोहे सुजनन कथन, उसे बतावें आप? ।।६८।।

(चौ.) उलटा ही फल अब जो दिखता । ढूँढें गर यह कैसे होता ?
मालुम होगा आसानी से । यत्न अनेक किये पहले से ।।६९।।
पुण्य हो उपकार का संचित । फले पूर्व पातक अनपेक्षित ।।

व्यवहार मिश्रित इस तरह जो । चलत सदा से, पहिचाने को ? ।।७०।।
कौन कर्म है अरु फल किसका । हो नहिं सकत तुरत हल इसका ।।
इससे मन में मचे गड़बड़ी । बढ़ती शंका जाय हर घड़ी ।।७१।।
फल कर्मो के अलग अलग है । मूल्य सिर्फ ज्ञानी जानत है ।।
यत्न और फल की यह गुत्थी । सहजहि सुलझ नहीं है सकती ।।७२।।
मधुर गान फल भोजन नहिं है । पर उस में सुख अधिक मिलत है ।।
किन्तु समझ यह कैसे आवे ? जब लौं गायन-रुचि नहिं होवे ।।७३।।
उपकारहि सेवा महान है । तस फल आतम समाधान है ।।
वहाँ दूसरे पुरस्कार की । चाह रखें क्यों सुजन पारखी ? ।।७४।।

प्रयत्न-विवेक व प्रारब्ध का गौणत्व

निज प्रयत्न ही और बढ़ाओ । जो करना सो करते जाओ ।
यत्न राह में थोड़ी सी भी । गलती आने दो नहि अपनी ।।७५।।

(दो.) चूके यत्न न एक पल, दूर दृष्टि जो होय ।
प्रयत्न सर्वांगीण हो, भोगें सब सुख सोय ।।७६।।
यों तो कुछ न प्रयत्न बिन, अवरिल चलत प्रयत्न ।
जीव जनों को देत हैं, दुख पर कई प्रयत्न ।।७७।।

(चौ.) कुछ प्रयत्न हैं कीर्ति बढ़ाते । कुछ प्रयत्न दुर्दशा कराते ।।
कुछ प्रयत्न गाहक प्राणों के । अपने और दूसरों भी के ।।७८।।
करे प्रयत्न उचित ही इससे । पूछ कर्म योगी सज्जन से ।।
लोभ-प्रतिष्ठा पर न मुग्ध जो । सही प्रयत्नशील होवें सों ।।७९।।
कुछ प्रयत्न तो उलटे चलते । मरणतुल्य उनके फल होते ।।
कुछ प्रयत्न होते प्रांजल भी । जिनसे मिले जन्म उत्तम ही ।।८०।।
मरनें में भी प्रयत्न कारण । यत्न प्रमाण जन्म का धारण ।।
विधान सुख अरु दुःख भोग का । है आधारहि जन प्रयत्न का ।।८१।।
कुछ प्रयत्न जन सेवा हित हैं । मिले कीर्ति फल उनसे शुभ हैं ।।।
प्रयत्न किसी का प्रचण्ड इत्तन । मुक्ति मिले पाये प्रभु दर्शन ।।८२।।
कुछ प्रयत्न 'संचित' में जाते । 'दैव' भोग उससे भी करते ।।
फल भोगेच्छा न हो जरा ही । चोटी के हैं प्रयत्न वे ही ।।८३।।
वे ही शुभ प्रारब्ध जात बन । दोउ मिलें, हो दिव्य देवपन ।।
आप आप में मिलते जब ही । आत्म तत्व साक्षात हो तब ही ।।८४।।

इससे मित्र! प्रयत्न शील बन । गाओ मत प्रारब्ध बड़प्पन ।।
दीप्तिमान कर्तव्य तेज से । होय जगत उत्साह–ओज से ।।८५।।

(दो.) देव अमुक कर दे धनिक, पुण्यवान को खाय ।
देव उधारे यत्न बिन, 'दैव-देव' जो गाय ।।८६।।
यों कहना अनजान का, फिर मुँह से न निकाल ।
निश्चय ही सुप्रयत्न से, मिलत सबहि सुख काल ।।८७।।

(चौ.) औरों के फल देख के जलते । स्वयं यत्न नहिं कुछ भी करते ।।
यह तो सोच हमारा भीषण । निश्चय यही अधोगति लक्षण ।।८८।।
'पूर्व पुण्य नहिं प्रबल हमारे' । कह कर हाथ शीश पर मारे ।।
या फिर कहे कि ऐसा हम से । हो न आचरण कभी कसम से ।।८९।।
जो नहिं है अब उसे कमाओ । जो है उसको अधिक बढ़ाओ ।।
सफल करेंगे निज इच्छाएं । यही आज निर्धार बनायें ।।९०।।
इस निश्चय वे वाल्या कोरी । बना पुण्य-आत्मा जग माहीं ।।
वीर बली योगी, ऋषि सारे । हैं मानव इतिहास सितारे ।।९१।।
पतित बिल्व मंगल सुभक्त फिर । सूरदास भी सूर कवीश्वर ।।
प्रयत्न से ही मिला भजन बल । निज समेत पावन भू-मंडल ।।९२।।

(दो.) सीख मिले सत्संग से, जन उस सेहि सुजान ।
भाग्य दमकता सूर्य सम, उद्यमि जदपि अजान ।।९३।।
हर उद्यम में फल लगे, गुर किसान से लेय ।
बीज यत्न से बोय इक, फल कटहल का होय ।।९४।।

प्रयत्न का प्रत्यक्ष में प्रभाव

(चौ.) बिना यत्नके बने रसोई । कौर गया मुख यत्न बिना ही ।।
ऐसा कौन भला कह सकता ? सब व्यवहार दैव से चलता ।।९५।।
दैव वाद समझाने को भी । सिद्ध करन को लगे यत्न ही ।।
विमान, दूरभाष इत्यादि । खोजें क्या प्रारब्ध दे गई ? ।।९६।।
यत्न छोड़ प्रारब्ध पकड़ते । वे जन दोउ ओर से मरते ।।
अधूरी बातें ये भी, सबसे । ऊँची दूर दृष्टि है क्रम से ।।९७।।
है तो प्रमुख यत्न ही केवल । है 'प्रारब्ध' यत्न का ही फल ।।
हुए फूल फल बिना वृक्ष के । यह दुनिया में कौन कह सके ? ।।९८।।

यत्न छोड़ प्रारब्ध पकड़ते । वे जन दोउ ओर से मरते ।।
उनसे यत्न न पूरा होता । दैव दूर जा कर छिप जाता ।।९९।।

(दो.) **पेड़ लगाया किसी ने, दिन-दिन सूखत जाय ।**
परवा कोई नहिं करे, इसका कौन उपाय? ।।१००।।
कोइ कहे गय बीत दिन, कोइ 'खा गये कीट' ।
कोइ कहे 'प्रारब्ध ही, लाई मौत घसीट ।।१०१।।

(चौ.) कोइ कहे 'यहँ पेड़ जमे ना । कोइ कहत 'चुकि जीव यातना' ।।
कोइ कहे 'मर्जी ईश्वर की । कौन बात है अपन हाथ की? ।।१०२।।
एक कहे 'यह ठीक सभी है । पर कर देखो यत्न समय है ।।
प्रयत्न से ही पता लगेगा । जीवित है तरु या कि मर गया? ।।१०३।।
खाद इसलिए उसमें डाला । सूझ बूझ से उसे संभाला ।।
पानी दे कर उसे जिलाया । मूल डाल हर अंग बचाया ।।१०४।।
धीरे धीरे लगा फूलने । लगी बहार फलों की आने ।।
प्रयत्न ही से सब संभव है । सम्मुख ही उसका प्रमाण है? ।।१०५।।
विविध भाँति से कलम बना कर । फूल उगाये बहुविध सुंदर ।।
रखे रहें यदि कर कपाल पर । हो सकता यह कैसे? क्यों कर ? ।।१०६।।
तरुवत् ही मानव का जीवन । प्रयत्न ही उन्नति का साधन ।।
असमय मृत्यु आदि दुर्घटना । सोच समझ से संभव टलना ।।१०७।।

(दो.) **मनुज श्रेष्ठ है सृष्टि में, ईश अंश अवतार ।**
बना सके प्रति सृष्टि भी, सजग यत्न दिव्यास्त्र ।।१०८।।
'प्रयत्न करो' इससे कहूँ, मर विचार में शक्ति ।
सिखो, सिखाओ यत्न सब, गाँव-गाँव हो व्याप्ति ।।१०९।।

(चौ.) जिस देश ने भी यह किया है । वह शिखर वैभव पा लिया है ।।
स्तर उनके जीवन का भी । इच्छा के अनुसार बढ़ा है ।।११०।।
हुए शिथिल जो प्रारब्ध वादी । पायें चेतना प्रयत्न वादी ।।
गये खोज करते ही आगे । दिग दिगंत की थाह लगाते ।।१११।।
भरी उड़ान चाँद-मंगल पर । ध्वज फहराय हिमालय ऊपर ।।
अग्नि अस्त्र, अणु अस्त्र महत्तम । खोजे हायड्रोजन जैसे बम ।।११२।।
सुनते लाखों मील दूर से । गायन-भाषण बिना तार से ।।
विश्व सभी काबू में ला कर । बना लिया है छोटा सा घर ।।११३।।

(दो.) सीमा नहीं प्रयत्न की, अभी जगह है शेष ।
यत्न शली की दौड नहिं, कभी होय निःशेष ।।११४।।
भक्त यत्न से प्रभु बना, योगी जीवन मुक्त ।
विषयबद्ध भी यत्न से, बनता भक्त विरक्त ।।११५।।

(चौ.) गाँव बने आदर्श यत्न से । स्वदेश होवे सुखी यत्न से ।।
प्रयत्न से ही विश्वशांति के । प्रयास होंगे सफल सभी के ।।११६।।
इसीलिए अब यत्न करें हम । प्रभु गौरव से विश्व भरें हम ।।
अहंकार नहिं दिल में आवे । इसीलिये प्रभु बीचं बिठावें ।।११७।।
होवे राज्य समृद्ध यत्न से । भू-मण्डल डोले प्रयत्न से ।।
कार्य-प्रयत्नों के प्रभाव से । प्रभु-दासत्व लसे गरिमा से ।।११८।।
प्रयत्न से नर उन्नत होता । गाँव कहाँ? चहुँ दिशा हिलाता ।।
अनुभव की यह बात जो कही । कहे तुकड्या, भूलो न कभी ।।११९।।

(हरि.) इति ग्रामगीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
पैंतीसवें अध्यायमें ग्रह-कर्म-ईश विधान भी ।
है यत्नवाद समर्थ सा, संमिश्र फल-विज्ञान भी ।।१२०।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

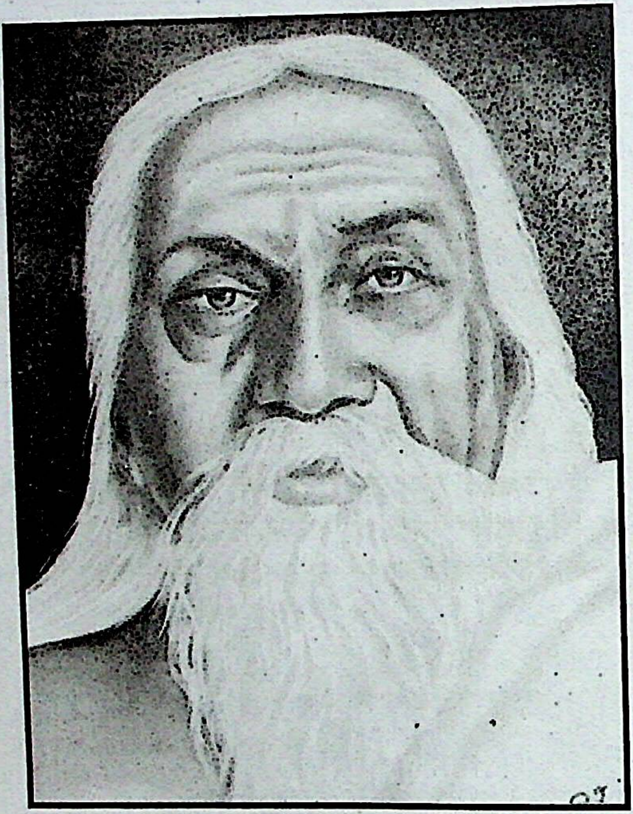

योगीराज श्री अरविंद बाबू

छत्तीसवाँ अध्याय

जीवन-कला

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

प्रकृति भेद के मूल में निसर्ग या कलाभ्यास

(दो.) ईश्वरांश सब जीव हैं, यत्न मान लो देव ।
संत, ग्रंथ, मानव सभी कहते यही सदैव ।।१।।
पर देखो संसार तो, प्रकृति-भेद का ठाठ ।
प्रकृति भिन्न हर व्यक्ति की, ठौर ठौर यह पाठ ।।२।।
नियति-रचित यह सब लगे, कहाँ यत्न की पैंठ ?
श्रोताओं के मन यही, गयी धारणा बैठ ।।३।।
(दो.) इसका फिर हम करें निरूपण । सुनलो एक एक श्रोता जन ।
प्रकृति दिखे हर जगह भिन्न ही । नियति स्वतंत्र न कोई कहुँ ही ।।४।।
प्रकृति पुरुष आधीन नित्य है । तत्संकेत सदा नाचति है ।।
आदि संकल्प 'बहुस्यामि' का । है आधार प्रकृति माया का ।।५।।
जो है परम पुरुष परमात्मा । है न शक्ति की उस की सीमा ।।
यह निश्चित है मानव उसकी । प्रतिमा ही इक अंश रूप की ।।६।।
सामर्थ्य जीव में है अनंत । अभ्यासहि प्रकटे रूप शांत ।।
इसीलिये ही आत्मशक्ति का । अंत असंभव, है वश किसका ? ।।७।।
करने से सब कुछ बनता है । हाथ चलाओ सब मिलता है ।।
पाते है अभ्यास करे ही । सत्ता जगत ब्रह्म योगी भी ।।८।।
(दो.) बढे सभी अभ्यास से, भिन्न मार्ग सब लोग ।
'श्रद्धा मय जन' कहत है, जस श्रद्धा तस योग ।।९।।
जस श्रद्धा संकल्प जस, पुण्य पाप जस कार्य ।
जीव आप वैसा बने, अभ्यासहि अनिवार्य ।।१०।।
(चौ.) प्रकृति भेद नैसर्गिक दिखते । है फल सबहि पूर्वाभ्यास के ।।
सभी मूल में जीव एक हैं । हुए कलाओं से बहुविध है ।।११।।
कला अभ्यास पूर्व जन्म का । या है यत्न इसी जीवन का ।।
सब जीवों में भांति भांति के । होते भेद वंश में उन के ।।१२।।

अपन कला अपनहि फलती है । इसी से भिन्न प्रकृति होती हैं ।।
निसर्ग का भी खेल नहीं है । कोइ देव की बात नहीं है ।।१३।।
धरती यह भगवान बनाई । जीव अनन्त हुए तस माँही ।।
गणित शास्त्र के सूत्रों से भी । उनकी गणना संभव नाहीं ।।१४।।
निसर्ग से जीवन सम पाया । उसे कला ने भिन्न बनाया ।।
एक एक से मिलें गुण कहीं । देखन को मिलते शायद ही ।।१५।।
वस्तु विश्व में एकहि व्याप्ति । प्रकृति गुणों से भिन्न भासती ।।
रचना, बोली हुई निराली । जीवों में बस कला से खाली ।।१६।।

(दो.) सभी जीव अवतार पर, हर इक में गुण और ।
एक नहीं अरु एक है, अस विशिष्ठ्य सब ठौर ।।१७।।
निज निज कला से जीव सब, खेलत जीवन खेल ।
स्वभाव कौशल एक का, दूसरे से नहिं मेल ।।१८।।

(चौ.) देखो जीवन लीला जग में । जीवन जीव की उस की छबि में ।
अंग अंग है अभिनव उन के । उन में गुणहू तरह तरह के ।।१९।।
नाना रंग कलाएँ नाना । उद्यम नाना स्वभाव नाना ।
वसन और आभूषण नाना । लिये भोग के सबका बाना ।।२०।।
नाना भांति निसर्ग सजा है । विविध जीव के बीच बँटा है ।।
होवें एकाकार प्रकृति से ।संभव है यह जीव कला से ।।२१।।

जीव की संकल्प कला एवं कार्यकला

जीव कलामय नख से शिख तक । मेल गुण-अवगुणहि का सम्यक ।।
इंद्रिय सभी वस्तुए भोगें । अपने अपने भाव भिन्न से ।।२२।।
जीव स्वयं संकल्प है करते । कल्पनाय गुण वस्तु निरखते ।।
तदाकार व्यवहार न होता । द्वेष राग है बीचहि आता ।।२३।।
ईश्वर-निर्मित एक सृष्टि है । पर दर्शक की दृष्टि भिन्न है ।।
सुख-दुख अपन भाव से भोगें । लोग अकेले या समूह में ।।२४।।
नारी रूप ईश रचि सत्ता । किसकी माता किसकी कांता ।।
निज निज भाव भिन्न सुख दुख ही । भोगे जीव, वस्तु पर इक ही ।।२५।।

(दो.) निसर्ग की इक सृष्टि पर, जीव सृष्टियाँ भिन्न ।
अनुभव सुख दुख कर यहाँ, सबके मन में भिन्न ।।२६।।

दृढ़ विकार रागादि के, भुक्त कर्म संस्कार ।
साथ लिये निज निज कला, नर जन्मते दुबार ।।२७।।

(चौ.) पूर्वाभ्यास, प्रयत्न, संकल्प । है लेत बाद में भिन्न रूप ।।
जीवों की अनगिनत कलाएँ । उनकी माला सृष्टि सजाये ।।२८।।
'बहुस्याम्' संकल्प देव का । रूप जीव गण हुए अनेका ।।
जीवों में आकर्षण इससे । है स्वाभाविक इक दूजे से ।।२६।।
है संकल्प एक का न्यारा । दूजे का है अलग पसारा ।।
किन्तु कार्य जो अधिक शक्ति युत । करते दूसरे का आकर्षित ।।३०।।
एक से एक कलावान नर । संमोहन डालें समाज पर ।।
अपने सुमधुर मंत्र सजाये । वाणी-वीणा मधुर बजाये ।।३१।।
कला, गान, वादन, चित्रण की । तंतु, शब्द, अभिनय, नर्तन की ।।
श्रृंगार कला भी साधी किसने । मोहित अन्य जनों को करने ।।३२।।
कला तरण में, कला रहन में । कला हास्य में, कला कथन में ।।
ओतप्रोत सब जीवन माँही । दरशाते सौंदर्य कला ही ।।३३।।

(दो.) किस का गर्जन व्याघ्र सा, किसका कोयल-बोल ।
रण कर्कशता किसी में, कलंक शोभित भाल ।।३४।।
किसे देख मन मुग्ध सा, किसे देख रोमांच ।
छाती फाटे धीर की, किसी का मुख लख रंच ।।३५।।

(चौ.) मुद्रा हो गंभीर किसी की । पड़ते दृष्टि विरक्ति उपजती ।।
किस की ओर नजर पड़त ही । विषय राह में वृत्ति बढ़ती ।।३६।।
किस को देखे चिढ़ बाढ़े अति । किस की तजते बने न संगति ।।
जीवन ही उस के चरणों में । अर्पित कर दें लगता जी में ।।३७।।
यह सब नहीं निसर्ग-चमत्कृति । है सामर्थ्य कलाओं की अति ।।
यत्न शील मानव ही होते । किन्तु देव हैं वे कहलाते ।।३८।।

कला के भेद एवं मानवीय जीवनकला

कंस कृष्ण के ही थे मामा । पर इक राक्षस इक परमात्मा ।।
मूल देख लो, वंश एक है । भेद कलाकृत ये अनेक है ।।३६।।
कला बनादे देव मनुज को । अवगुण जब न बचे देखन को ।।
कला से पूर्णत्व भी पाये । आत्म बोध जब अंग समाये ।।४०।।

(दो.) थू थू हो अवगुणन से, कला भरे देवत्व ।
इसी देह में तैस फल, जैसा यत्न-कृतित्व ।।४१।।
विश्वमित्र राजर्षि से, कर्म प्रणित ब्रह्मर्षि ।
रावण मरा स्वकर्म से, हो राक्षस द्विज वंशि ।।४२।।

(चौ.) रावण करे कला संपादित । प्रसन्न देव-देवता अद्‌भुत ।।
कला कुशलता से कर भक्ति । खूब बढ़ा ली अपनी शक्ति ।।४३।।
पर उस को वह पचा न पाया । उपभोगों से प्रेम बढ़ाया ।।
इससे फिर खुद ही वही कला । अहंकार से बनी अवकला ।।४४।।
कुंभकर्ण सुख पथ का राही । खाना-सोना कला बढ़ायी ।।
खेल क्रूरता बन सो उसका । नाश हुआ उसके सँग उस का ।।४५।।
सीखा कला बिभीषण ऐसी । रँगा राम नामहि सर्बस ही ।।
राम दौड़ते आये घर पर । दिया सत्य सुख बाहर-भीतर ।।४६।।
मिला राज वैभव लंका का । नामहु नहिं पर भोग प्रीति का ।।
तब ही उस सज्जन की कीर्ति । अमर आज तक रही गूँजती ।।४७।।

(दो.) भेद कला के तीन हैं, रज तम सत्व प्रधान ।
जिसे सँवारे चतुर जो, वह उस गुण को जान ।।४८।।
गर सात्विक जीवन कला, सब में भरे उछाह ।
प्रेम से सब को मुग्ध कर, सुगम कीर्ति की राह ।।४९।।

(चौ.) कलावान हर कोई होता । एक चतुर दूजे को खाता ।।
छोटों को है बड़ा निगलता । नियम यही जीवन में चलता ।।५०।।
पर यह नियम मानवी नाहीं । पशु पक्षनि शोभे सब काही ।।
अंडज, जारज, उद्भिज, स्वेदज । इनको ही यह पथ है जायज ।।५१।।
इसी राह पर मनुज चला है । जग में हाहाकार मचा है ।।
'लाठी उसकी भैंस कहावत । इस को जीवन कला कहो मत ।।५२।।
समुदायिक भावना बिना ही ! कौन बचे प्राणी जग माँही ?
'जिओ और जीने दो सबको' । जीवन कला सही यह सीखो ।।५३।।

(दो.) मानव का वैशिष्ट्य यह, जगमें सौख्य बढ़ाय ।
उस बिन मंदिर प्रगति का, मिट्टी में मिल जाय ।।५४।।
सब जीवों की यह कला, जीयें दूसर खाय ।
पर मानव की वह कला, ऊँचा निबल उठाय ।।५५।।

(चौ.) पशु पक्षी के नर्तन-गायन । सब में मानव हुए परायण ।।
पर उस की मानवता ही है । सदाहि सब से भिन्न रही है ।।५६।।
आदम मकड़ी तरह कातता । कोयल सम गाना भी गाता ।।
पानी में मछली सा तैरे । खग सम असमान उड़ान भरे ।।५७।।
मधु मक्खी सा करता संग्रह । किला बनाये चींटी सा वह ।।
गिरगिट के सम रंग बदलता । मयूर जैसा नर्तन करता ।।५८।।
करे वेशभूषा तितली सम । चिड़िया सम घर की रुचि उत्तम ।।
सब की कला साधता वह है । पर निज कला निराली ही है ।।५६।।
खर्चे व्यर्थ शान शौकत पर । नहीं करे अपनी रहनी पर ।।
अपने जैसा सब को समझे । समय पड़े पर हाथ न रोके ।।६०।।
स्वभाव मानव का अभिनव है । सँभाल कर सब को चलता है ।।
मर्यादा से करे आचरण । सद् धर्मन स्वीकारे बंधन ।।६१।।
विवेक बुद्धि से वह चलता है । गिरों को भी ऊँचा करता है ।।
औरों के हित साधन खातिर । देवे निज बलिदान समय पर ।।६२।।
सब को देवे अपना हिस्सा । उससे नहिं हो गाँव-दुर्दशा ।।
कुटुम्ब अपना गाँव समूचा । उसके दिल यह विचार ऊँचा ।।६३।।

(दो.) **मेरे किसीभि काम से, दुखिया कोइ न होइ ।।**
निसि दिन जेहि बर्ताव यह, सच्चा 'मानव' सोइ ।।६४।।
दूर दृष्टि हो मनुज में, समझे कारण-कार्य ।
विश्व व्यक्ति सम सुखी हो, नाना कष्ट उठाय ।।६५।।

(चौ.) ऐसा करने से जो चूकें । मानव उनको नहीं कह सकें ।।
मानव तन में जनम गहे हैं । पर वे पशु ही बने रहे हैं ।।६६।।
'जो कुछ भी है मेरे घर में । वैसा सुख हो सब के घर में' ।।
ऐसी चिन्ता नित्य करे जो । मानव धन्य जगत में हो सो ।।६७।।
वह तो अपनी कला-कुशलता । सबके जीवनमें भर चलता ।।
शोषण-पतन किसी का भी जो । करे कला से निज न कभी सो ।।६८।।
'कला कलाके लिए' न होती । कला भूषित जीवन को करती ।।
सजे स्वयं, औरोंको दिखावे । मधुर वचन मानव्य सिखावे ।।६६।।

कापट्य कला, सहजीवन कला एवं किल्ला

लोभहि देखि रसीली बोली । जिसने भी यह कला सीख ली ।।

सो समझो है दुःख दायिनी । जदपि दिखे सो प्रेम वाहिनी ।।७०।।
कोई विषय हेतु सज धज कर । घूमे मुँह पर क्रीम लगा कर ।।
पर कालिख उसके अंतर की । देख लेंत हैं सुजन पारखी ।।७१।।
कला चातुर्य किसि ने सीखा । जग अभिनय साहित्य से मोहा ।।
पर उसने निज स्वारथ के हित । मनुज ढ़केला पतन राजपथ ।।७२।।
कोइ नृत्य-गायन चमकाये। चित्रकला इत्यादि सजाये ।।
और कहे-'हमने मानव को । किया कला से उन्नत देखो'।।७३।।
पर देखो है इसका अनुभव । घिरा क्षुद्र भावों से मानव ।।
कारण स्वारथ पथ अपनाया । कला कोहि बाजार बनाया ।।७४।।

(दो.) **संग कला-कौशल्य के, सद्गुण दीपित भाय ।**
पर उसको जन भूल कर, बदरंगी हो जाँय ।।७५।।
कारण यह मतिमान हू, होंय प्रलोभन अंध ।
बने उपाय अपाय ही, भले चढ़ाओ रंग ।।७६।।

(चौ.) कला नहीं है वह कंगाली । वह श्रृंगार न, मौत कराली ।।
मधुर शब्द होता जहरीला । लगे धवल अंदर हो काला ।।७७।।
होवे प्रकट कलुष जो भीतर । पलपल उफने आये ऊपर ।।
क्या होगा मीठे बोलों से । कलारूप चांदी तारों से ।।७८।।
उसी दंभ की कला भुलाने । सीख लई जिस भी साधक ने ।।
अंतर मन के भले भाव वश । माने लोग उसे भल मानस ।।७९।।
है प्रत्येक कला तस निर्मल । विषहू औषधि रूप सुधा फल ।।
मानवता की शक्ति बढ़ाये । सोइ श्रेष्ठतम कला कहाये ।।८०।।
कला पूर्णता होवे उतनी । संगतता जीवन से जितनी ।।
चिन्ता सदा रहे मन माही । सबही की उन्नति जग माहीं ।।८१।।
पीछे भागें तभी कलाएँ । बात अगम्य समझ में आयें ।।
'जीवन कला' पाय वह सुमति । सर्वांगीण उद्धार करित्री ।।८२।।

(दो.) **बिगड़ी किसकी दे बना, झगड़ा कहीं मिटाय ।**
मार्ग बताये किसी को, भली रीति समझाय ।।८३।।
सही सिखाओ कला यह, जो तारे भव जीव ।
कलावंत की कीर्ति जग, व्यापित रहे सदैव ।।८४।।

(चौ.) क्या सीखें चौदह विद्याएँ.। कला चौसठों जो भरमाये ? ।।

जो औरों के कान न आये । बिरथा दंभी जनम गवाये ।।८५।।
कम से कम जरूरतें ले जिसकी । अधिकाधिक उपकारी वृत्ति ।।
जो समाज से समरस होये । 'कलावान' वह खरा कहाये ।।८६।।
'जीवन कला' यही अपनायी । उसकी मानवता खिल पायी ।।
सात्विक कलावान ऐसा जो । 'देव पुरुष' पदवी पावे सो ।।८७।।
जो सहयोग कला यह चूका । कठिन गाँव में जीना उसका ।।
बेचारे का घर ही पूरा । बिन सहकार बनेगा घूरा ।।८८।।
मुख्य कला इससे बतलाए । दुनिया में मानवता छाए ।।
मिल जुल कर ही सभी लोग हम । यह संसार बनाँय स्वर्ग सम ।।८६।।
बात ध्यान रख सब के सुख की । अपना काम करें जब सब ही ।।
सब के सुख में भासे निज सुख । झरना पर्वत से जस सन्मुख ।।६०।।
सकल कला में कला श्रेष्ठतम । सब में समरसता देखें हम ।।
जैसा भी जो दिख ऊपर से । आनन्दित हो मन उस ही से ।।६१।।

(दो.) **चलियमान मन हो नहीं, दिखता है सो रम्य ।**
कला बोध में आत्म बल, निर्णायक यहि साम्य ।।६२।।
आत्म बोध की पा कला, जग से समरस होइ ।।
पूर्ण कसौटी पर सही, उतर अंत में सोइ ।।६३।।

(चौ.) पूर्णताहि दुख दोष रहित है । कला मगर बिरलों में ही है ।।
देखे जन दुख दोष हटा कर । कलावंत वह ही महान तर ।।६४।।
जिस को भी है भान जगत का । उस पर है दायित्व जगत का ।।
समाज दुख स्व कला से हरना । है यह कार्य उसे ही करना ।।६५।।
सुनों, करो वे काम खुशी से । मानव मात्र सुखी हो जिनसे ।।
दिखे कमी, पुराओ खुशी से । सबके हो सहयोगी मन से ।।६६।।
सबके प्रति सहकार सभी का । यही मार्ग है श्रेष्ठ जगत का ।।
सुंदर स्वर्गीयता गाँव में । होवे निश्चित इसी कला से ।।६७।।
जीवन कलाहि मानवता की । सिखाय गाँवों में सब को ही ।।
फिर न किसी को कमी जरा भर । कमी पड़े गाँवों के भीतर ।।६८।।

(दो.) **योगी की जीवन कला, सत्रहवीं सम ब्रह्म ।**
मानव कुल को दे यही, सुख शाश्वत्व प्रवाह ।।६६।।
होगा गाँव सुभाग्यमय, स्वस्थ ज्ञान भंडार ।

जग जीवन सहयोग पर, कर गंभीर विचार ।।१००।।

(चौ.) हजार साधनों से अमोल है । सहकारिता एक निर्मल है ।।
करो यत्न नाना सब मिल कर । फैले अमर लता गाँवों पर ।।१०१।।
'सहयोग' से मानवी शक्ति । प्रगटेगी शुभ अपूर्व दीप्ति ।।
सब जीवों की सेवा जग में । लगे निसर्ग-नियति खुद करने ।।१०२।।
सब ही जीव अंश ईश्वर के । क्यों फिर रूप गाँव राक्षस के ?
सभी ओर सुख-तोष खिलेगा । यदि सहकार्य यत्न फैलेगा ।।१०३।।
सीखे 'मानव-कला' इसी से । आत्म विकास साध अपने से ।।
खत्म करो यह गान पुराना । दैववाद का, देर करो ना ।।१०४।।
अनुभव से कहता हूँ तुम को । सधेगा निश्चित कहना मानो ।।
कर लो, कर लो अब आत्मोन्नति । तुकड्या कहे, यही मुक्ति गति ।।१०५।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
छत्तीसवें अध्याय में बहु भाँति की जन-मन-कला ।
सहयोग ही साहित्य है, मानव्य ही जीवन कला ।।१०६।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

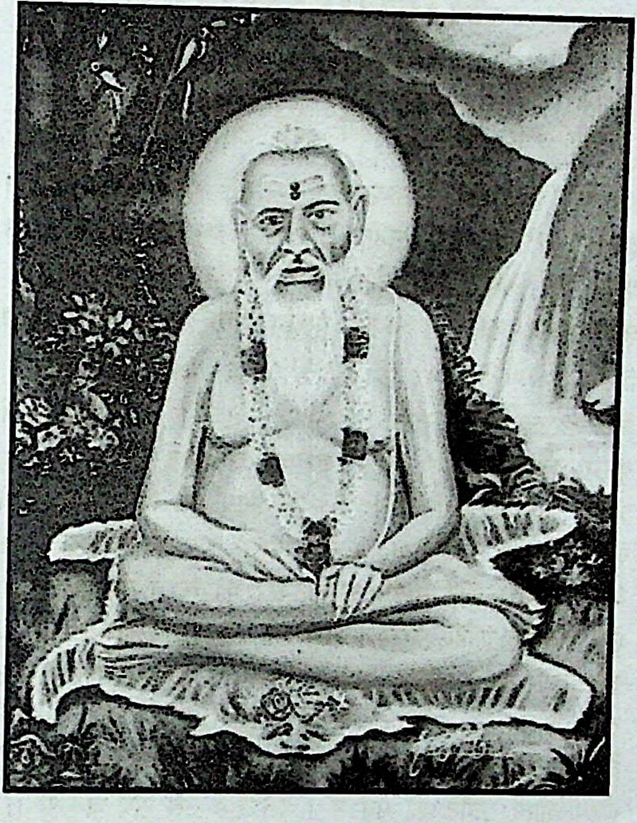

परमहंस श्री आडकोजी महाराज

सैंतीसवाँ अध्याय

आत्मानुभव

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

जीवात्मा का सामर्थ्य एवं साधना-रहस्य

(हरि.) 'अनुभव' यही शुभ शब्द सुन, श्रोता करे पृच्छा भला ।
आत्मानुभव का पथ सही, बतलाइए हम को खुला ।।१।।
क्या यत्न साधे आप ने? जीवन बिताया किस तरह ?
आत्मानुभव का मर्म क्या? पूर्णत्व पाया किस तरह ? ।।२।।

(चौ.) मित्रो! सुनो भाव अंतर का । है हर जीव अंश ईश्वर का ।।
निज कर्तव्य कर्म में उसके । जो पद चाहे सोइ मिल सके ।।३।।
करनी करे विवेक पूर्ण गर । नारायण हो जाता है नर ।।
प्रारब्ध अरु परिस्थिति सब ही । देते मार्ग उसे निश्चय ही ।।४।।
जो नर करना चाहे उन्नति । बन निसर्ग प्रिय पुस्तक उस की ।।
बन जाती हर वृत्ति साधना । जानकार की सहज योजना ।।५।।
शुभ संस्कार चाहिए पहले । बढ़ने के निर्धारहु अगले ।।
संत, ग्रंथ क्या ? दुनिया सारी । होती उस की सहायकारी ।।६।।
डूबत दुनिया उसे जगा दे । संकट स्फूर्ति नई मन भर दे ।।
देखे आघातों में वर ही । समझे साधक सो जग माही ।।७।।
तड़प आत्म उन्नति की मन में । देते राह उसे सब जग में ।।
अपने में ही हो बल पहले । खुलने लगती फिर सब गैलें ।।८।।
सत्संकल्प का होवे निश्चय । कर दे जीवन को वह गतिमय ।।
निर्भय हो जो चलता जाये । निज मुकाम मंजिल मिल जाये ।।९।।
अपने तन प्रकाश भर जाये । पत्थर हीरा सो बन जाये ।।
खदान से फिर उसे खोज कर । लाय यत्न से सब जन ऊपर ।।१०।।

(दो.) कस्तूरी मृग नभि की, राजा मस्तक पाय ।
उपज कींच में स्वगुण से, प्रभु-सिर कमल सजाय ।।११।।
'अनुभव' तो बस है यही, प्रयत्न में देवत्व ।
संत ग्रंथ का सत्य यह, श्रोता समझें तत्त्व ।।१२।।

(चौ.) पूछ रहे तुम मेरा जीवन । करूँ इसलिए थोडा वर्णन ।।
'जन में मिल हम स्वयं जनार्दन' । यही मर्म अनुभव का पूरन ।।१३।।
इसका ही अनुभव पाने को । लेनें पडते कष्ट अनेकों ।।
साधक का अपना अनुभव भी । आखिर करता पुष्टि इसी की ।।१४।।
देवत्व ज्योति है दीप्तिमान । आवरण किंतु होवें मलीन ।।
प्रयत्न उसे साफ करने का । कहलाता है साधन उसका ।।१५।।
साधन सभी निमित्त मात्र हैं । रूप एक ही सभी जगह है ।।
पवित्र कृति अनुभव दे उस का । मानो सूत्र यही उन्नति का ।।१६।।
इस उन्नति पथ पर जो बढ़ता । विवेक से भीतर जग जाता ।।
उसने निज को पार उतारा । बना जगत् का तारनहारा ।।१७।।
इसी यत्न की सुन कर महिमा । की मैंने भी एक साधना ।।
करूँ मैं वर्णन उसी कला का । थोड़ा, पर अनुभव जीवन का ।।१८।।

निजी जीवन तथा प्राप्त अनुभव

(दो.) छोटे से इक गाँव में, पिछड़ा वर्ग समाज ।
भूख जहाँ सामान्य थी, जन्म लिया अस राज ।।१६।।
घर को वर दारिद्र का, भक्ति पर न सँवार ।
अस लोरिन संस्कार बिच, शोषण कष्ट अपार ।।२०।।

(चौ.) असीम थी जिज्ञासा मन में । प्रकट होय अनगढ़ रूपों में ।।
अल्हड़पन से ताप सहन कर । घूमा सब जिज्ञासा लेकर ।।२१।।
सुनता रहता कभी कीर्तन । मन में था उस समय आर्तपन ।।
ध्रुव-प्रहलाद के आख्यान भी । सुनता रहता मन मोहित ही ।।२२।।
सन्तों की चर्चा सुनता था । पुराण कथाएँ भी गुनता था ।
धीरें धीरे जागी मन में । विराग भावना सोइ क्रम में ।।२३।।
हुई परिस्थिति भी कुछ कारण । वन एकान्त ध्यान का साधन ।।
वर्णन करूँ अगर मैं उसका । नहीं पुरेगा समय बरस का ।।२४।।
कहूँ महत्त्व ही अनुभव अपने । कुछ साधक जो आये सुनने ।।
माया ब्रह्म विचार यहाँ पर । लिये सभी के है सो सुख कर ।।२५।।
कुछ संगति से प्राप्त हुआ फल । मिला आत्म चिंतन का भी बल ।।
उमंग उठी देव दर्शन की । दृढ़ हो गयी भावना मन की ।।२६।।

(दो.) स्फुरी कल्पना तब यही, क्यों ध्रुव ही तपलीन ?
करें तपस्या क्यों न हम, वैसी ही शालीन ? ।।२७।।
लगता 'कैसे क्या करें' आँख मूँद प्रभु ध्यान ?
निज मन के संतोष हित, किस से पायें ज्ञान ? ।।२८।।

(चौ.) फिर चुपके ही वन में जाता । घने तरु तले ध्यान लगाता ।।
मंदिर में भी मूर्ति पूजकर । कभी बैठता वहीं बराबर ।।२९।।
कभी रेत की मूर्ति बनाता । सुमन पत्र वन पूजा करता ।।
करता भजन रहूँ दिन राती । करि एकाग्र चित्त प्रभु प्रीति ।।३०।।
ऐसे बढ़ा प्रेम का निश्चय । मानस में संकल्प समुच्चय ।।
अभ्यास ध्यान मुद्रा का दुष्कर । किया शुरू एकांत में जाकर ।।३१।।
समाधान पर हुआ न उससे । उचट जाय मन बीच बीच से ।।
कीर्तन करता था ऐसे में । पूरी तन्मयता से मन में ।।३२।।
समझाता अपने ही मनको । समाधान पाना अपने को ।।
गाने गाता और नाचता । बातें भी एकान्त में करता ।।३३।।

(दो.) भोग बीच प्रारब्ध के, विषय वृत्ति ले खींच ।
देह-धारणा के कभी, कुफलहु मिलते बीच ।।३४।।
इससे निकला छोड़ घर, लिये बावला भेष-वेष ।
बिसरि देह की सुधि कभी, प्रभु-दर्शन की टेक ।।३५।।

(चौ.) घूमा वन में, घोर विपिन में । गिरिं जन गण में, धनिक भवन में ।।
जीवन के अनुभव बहु आये । मन में सद्भावना जगाये ।।३६।।
साधन किया कई योगों का । कुछ वाचन अध्यात्म विषय का ।।
खास तौर से विश्व-निरीक्षण । किया सदैव मनन अरु मंथन ।।३७।।
भजन सप्ताह, यज्ञ याग याग भी । महा प्रसंग, महोत्सव व्रत भी ।।
प्रयोग, साधना, कार्य भी नाना । किये अनन्त न जिन की गणना ।।३८।।
कितना जाने किया पर्यटन । वन में भ्रमण तथा तीर्थाटन ।।
प्रदेश सब ही घूम-घूम कर । देख लिये मैंने जीवन भर ।।३९।।
मस्जिद, गिरजा घर, देवालय । संस्थाएँ, आश्रम, ग्रंथालय ।।
बीहड़ गुफा, कंदराएँ भी । हो निर्भय देखी घुस कर भी ।।४०।।
बड़ों-बड़ों से मुलाकात की । रसमें देखी भाँति भाँति की ।।
देश-भेष अरु खान-पान की । रुचियाँ देखीं सब काहू कीं ।।४१।।

(दो.) **देखे आश्रम साधु जन, गोस्वामी, संन्यस्त ।**
बैरागी वैष्णव सहित, मिला सुजान समस्त ।।४२।।
छकड़ा, ताँगा, अश्व, गज, हौदे चढ़ा बिराज ।
साइकिल, मोटर से बढ़ा, चला विमान, जहाज ।।४३।।

(चौ.) गहरे सागर, अति विशाल थल । सह्य विंध्य सतपुड़ा हिमाचल ।।
जो अति ऊँचे नभ को छूलें । देख लिये तरु लतिका झूलें ।।४४।।
दृश्य अमित देखे निसर्ग के । मानव चमत्कार वैभव के ।।
सुख के साधन ज्ञान के साधन । देखा जग में सभी आकलन ।।४५।।
देखा पूरा सब कुछ इतना । शांत हुआ पर मेरा मन ना ।।
आखिर अपने ही अंतर में । पड़ा खोजना निज अनुभव में ।।४६।।

अंतर्मुखता, अद्वैतानुभव व जीवन्मुक्त का प्रारब्धवाद

रही बहिर्मुख दृष्टि जब तक । समाधान मन का नहिं तब तक ।।
अनात्मता जानो इस को ही । होती सब को दुखदायी ही ।।४७।।
विश्व कौन? मैं कौन? जान लें । मौलिक उनका ऐक्य समझ लें ।
ऐसे ज्ञाता की वृत्ति ही । अंतर्मुखी होय पूरन ही ।।४८।।
तत्त्व प्रकट चैतन्य एक ही । हिम खंड भाँति सागर माँही ।।
सजी विविधता एक उसी पर । सार यही अनुभव का आखिर ।।४९।।

(दो.) **सब का कारण मैं स्वयं, सर्वत्र व्याप्त निज आत्म ।**
भास होत मुझ को दिखा, सब में एक अनाम ।।५०।।
शौक देखने का मिटा, अन्तर हुआ प्रशान्त ।
जो जो दिखता है यहां, अपनहि रूप अनन्त ।।५१।।

(चौ.) सब ही तो हैं यहाँ हमारे । समझें किसकों अपन-बिराने ?
हुई खुशी इतनी विशाल सो । नहीं समाये मनघट में जो ।।५२।।
चींटी हो या हो ऐरावत । रेणु अणू या सुमेरु पर्वत ।।
संकल्प सभी मेरे मन के । मानहु मूर्त हुए सब ही वे ।।५३।।
कितनी आत्मा की व्यापकता ? नाप जोख कुछ वहाँ न चलता ।।
उसमें तो ब्रह्मांड अनगिनत । विश्व रूप सहजहि संचालित ।।५४।।
माया, ईश्वर, ब्रह्मा, सृष्टि । आत्मन् उदर समाय समष्टि ।।
किन्तु न पेट-पीठ है जिसका । वही तत्व हूँ मैं अचिन्त्य का ।।५५।।
ब्रह्म सृष्टि में बड़ा सभी से । पर भ्रम होय कथन में ऐसे ।।

खोज में न वह मिले अलग से । ब्रह्मपना भासत अपने में ।।५६।।

(दो.) लगा गाँव पहले बड़ा, फिर मंदिर फिर तीर्थ ।
रूप निसर्गहि बाद में, सबसे बड़ा समर्थ ।।५७।।
अनुभव हुआ जो मूल का, बडा दिखा नहिं कोय ।
तत्वहि आत्म विलास के, आया अनुभव सोय ।।५८।।

(चौ.) बड़ा पंच तत्त्वों से भी वह । पर छोटा है अणु से भी वह ।।
दूरी द्रष्टा-दृश्य मिटाकर । अनुभव किया एकमय होकर ।।५९।।
पूरा हुआ वहीं पर साधन । जब सब दिखने लगा एक पन ।।
फिर सुख दुख अरु जनम-मरण भी । एक समान लगें वे सब ही ।।६०।।
अमीर और भिखारी ये दो । हैं संकुचित भाव कारण दो ।।
हो विकास तो भिन्न रहें नहिं । दोउ समान समुन्नत होई ।।६१।।
नहीं भेद हैं जाति-पंथ के । अपन-पराये हर्ष खेद के ।।
सभी ठौर सम रूपों में ही । प्रकट होय सच्चिदानंद ही ।।६२।।
खेल हुआ जनम अरु मरना । सुख दुख सब शीतल सा झरना ।।
संकट भी जब राह में आता । प्रवाह प्रेमहि आया लगता ।।६३।।
अब विषाद का नाम रहा नहिं । अब विचार व्यापा आठो दिसि ।।
निसर्ग में जो सरल स्वभाविक । वही राह मेरे मन माफिक ।।६४।।
भाग्यवाद सच्चा है यह ही । आसक्ति जिसमें मिट जाई ।।
इच्छा-विषय बिना अविकारी । है आनंद सर्व हितकारी ।।६५।।
नहिं श्रृंगार न सुंदरता का । नहिं आकर्षण काव्य कला का ।।
जो जैसा है, बस उस का ही । सुख-आनंद भरे मन माँहि ।।६६।।

स्वरूपानुभव का साधना क्रम

(दो.) यह सब किस कारण हुआ ? करी साधना कौन ?
भाव द्वैत का कस मिटा, मन मांही था जौन? ।।६७।।
बन गवाह देखा जभी, हुआ साफ तब भान ।।
विचार अंतरंगीहि से, मिले मर्म का ज्ञान ।।६८।।

(चौ.) बुद्धि को अपनी मुक्त कर दिया । दिखा जो जस, तस विचार किया ।।
जोड़ा कार्य संबंध उन में । आत्म-भाव जग देह भाव में ।।६९।।
मैं हूँ तैसे ही सारे जन । क्यों मानूँ, फिर कोइ भिन्नपन?
जब ऐसा अहसास हो गया । साफ ज्ञान का मार्ग हो गया ।।७०।।

मन में मंत्र स्वयं ही पाया ।। वरद हस्त जानू न किसी का ।।
पर सद्भाव प्रणाम करूँ मैं । आडकुजी गुरु पद् सुमिरूँ मैं ।।७१।।
रस्म नहीं दीक्षा की कोई । राह स्वयं श्रद्धा से पाई ।।
अहंकार मन में नहिं उपजे । पूजहुँ सद् गुरु राजा तेहि ते ।।७२।।
पर मन में यह बात साफ है । गुरु शिष्यता स्वयं इक भ्रम है ।।
अगम्य है वह वस्तु एक ही । व्यापे दोनों एक रूप ही ।।७३।।
यह जानने जरूरी संगति । संगति से भावना कि जाग्रति ।।
भाव जगे जो अंतरंग में । आत्मरूप दिख जाय मूल में ।।७४।।

(दो.) फिर पिछला देखासुना, बना सहज पासंग ।
स्वाभाविकता तन बसी, स्वानुभूति के रंग ।।७५।।
स्वरूप यानी अखण्डता, सहज आत्मगति शान्त ।
जहाँ नहीं कृति-विकृतिभी, स्वरूप वह निभ्रान्त ।।७६।।

(चौ.) प्रेम अखंडित, सत्य अबाधित । पूर्णानन्द, ज्ञान संपूरित ।।
स्वरूप के ये लक्षण निश्चय । सरस, एक रस अभिन्न, अक्षय ।।७७।।
सत्य ज्ञान नहिं जाना पहले । स्थान-पुण्य मन भटकत रहिले ।।
देखा नहिं जब तक स्वरूप सत । मोहित चकित रहा जग देखत ।।७८।।
बाढ़ी जस जस सो अनुभूति । प्रसरित व्यापक आतम शक्ति ।।
पर्वत माल सामने ऐसी । लगती ढेरी गोबर-जैसी ।।७९।।
राजा लगे घरेलू नौकर । हुकुम सिखावन हरदम खुलकर ।।
मन अनुभूत बढ़ी जब ऐसी । दुनिया यार लंगुटिया जैसी ।।८०।।
निज आनंद का होय खजाना । दुखियों का दुख हर, सुख देना ।।
कोइ नींद में भी बर्राये । दया भाव उस पर भी आये ।।८१।।
परायापन का भाव गया मिट । गई वासना भी मन की मिट ।।
सुख दुख जो औरों के सब ही । अपने से हो गये सहज ही ।।८२।।

(दो.) पूजन-मंदिर छिप गये, दिखते चेतन देह ।
देवकृपामय सर्वहित, इससे निस्संदेह ।।८३।।
जिधर जिधर दिखती कमी, चित भागे तेहि ओर ।
सेवा करे उमंग में, समझि एक, नहिं और ।।८४।।

दिव्य दृष्टि एवं उसका फल

(दो.) अंतर आत्मा पहिचानी जब । विश्व दिखा अपने में ही सब ।।

मानों अर्जुन के समान ही । दिव्य प्रकाश हुआ मन माही ।।८५।।
उदर अनंत हस्त अनंत ही । व्याप्ये सभी दिशाओं में ही ।।
विराट रूप महा बलशाली । निज तन दिखा न तिलहू खाली ।।८६।।
दिव्य दृष्टि है यह सच में ही । खुली आंख उस विचार से ही ।।
अनुभव का ही एक मार्ग है । संत जनों ने बतलाया है ।।८७।।
टुकड़े नहीं आकाश के होते । घट बीच पर सो अलग भासते ।।
अल्पज्ञ जीव भी यह वैसे ही । अनुभव पाय अलग रहना ही ।।८८।।
नहीं जीव का बचे जीवव्यपन । दास्य, दुःख, दारिद्रय एक छन ।।
शिखर पूर्ण आनंद का ऊँचा । निश्चय प्राप्त होय सो सच्चा ।।८९।।

(दो.) **बने खेल प्रारब्ध तब, प्रयत्न लीला रूप ।**
अनुभव जग का आत्म मय, हो अब एक स्वरूप ।।९०।।
जीव हरे निज दुःख त्यों, सुंखी करे सब देश ।
उपकार सबहि का भाव मन, अन्य रहे नहिं शेष ।।९१।।

(चौ.) रही न उसमें जरा कामना । कर्म निष्काम ही तस बाना ।।
फिर वह किस को होगा बाधक ? 'सर्व भूत हित' का आराधक ।।९२।।
वह जो करे वही प्रभु-पूजन । वह बोले सोई वेद-वचन ।।
उसके शब्दहि से जनता का । आंदोलन सद्भावी उठता ।।९३।।
सत्ता के बिन उस की सत्ता । क्रांति से सेवा बड़ी महत्ता ।।
लोग इशारा उसका पाते । धन सत्कर्यों में हि लगाते ।।९४।।
उसके संदेशों के बल से । गाँव सुकाल प्रेम का होवे ।।
प्रेम भाव व्यापे जन जन में । सुख का वैभव गाँव गाँव में ।।९५।।
पाये उसका ज्ञान अज्ञ हूँ । देय सिखावन ज्ञानिन सोहू ।।
औरत बच्चे तस प्रभाव से । जूझ सकें कालहुकि चाल से ।।९६।।

(दो.) **यह बल आत्म विकास का, निज प्रयत्न फल होय ।**
स्वयं देव बन विश्व में, भरे देवपन सोय ।।९७।।
मित्र! यही अभ्यास कर, मार्ग बोध मन साथ ।
फिर इस तन में ही दिखे, श्री हरि व्याप्त अगाध ।।९८।।

(चौ.) पाते ही अनुभव का अंजन । जनता होगी सभी जनार्दन ।।
ऐसा एक अकेला जन भी । उन्नत करे गाँव को सब ही ।।९९।।
नहीं प्रलोभन में वह फँसता । राग द्वेष से भ्रमित न होता ।।

उसी के सहवास से जन को । अमृत मिले ग्राम जीवन को ।।१००।।
ऐसा सेवक नीव ज़गत् की । ग्राम रत्न निधि सच्ची वह ही ।।
इसीलिये अभ्यास करें सब । रूप अध्यात्म सक्रिय का अब ।।१०१।।
मानव बनता देव यत्न से । बने स्वर्ग सम गाँव यत्न से ।।
वैभव अभेद भक्ति सन्त का । होवे रूप ग्राम सेवा का ।।१०२।।
लोग बनें सब ऐसे सज्जन । तभी उदय होगा जग नूतन ।।
जाये तब जग वैभव से भर । तुकड्या कहे गाँव से लेकर ।।१०३।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
सैंतीसवें अध्याय में हैं स्वानुभव अध्यात्म का ।
संकेत जीवन का जरा, सामर्थ्य-सुख भी आत्म का ।।१०४।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

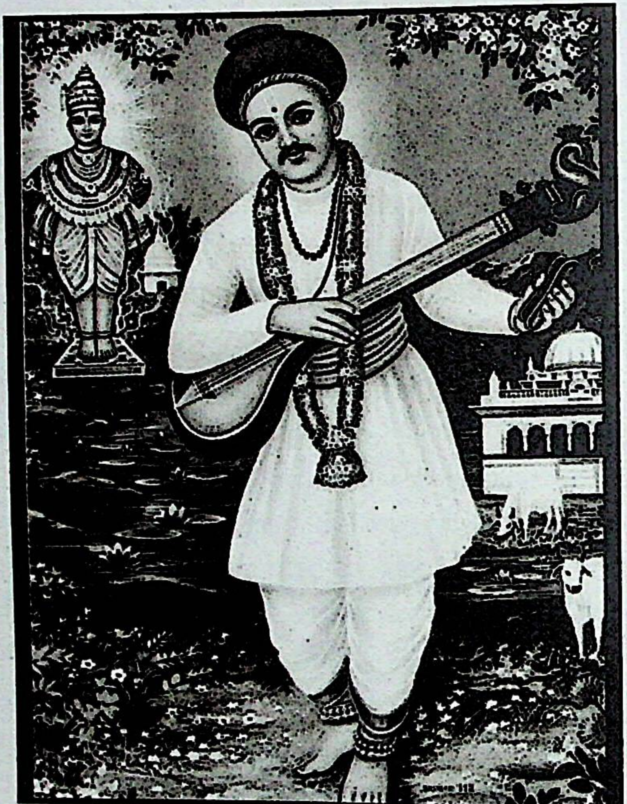

श्री संत नामदेव महाराज

अड़तीसवाँ अध्याय

ग्राम–परिवार

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

साक्षात्कारी संतो का सच्चा हृद्गत

(हरि.) श्रोता रमे अध्यात्ममें, कहते–यही तो चाहिए ।
सब साधु सन्तों ने कहा, सब को, यही बतलाइए ।।१।।
यह 'आत्म बोध' सुधन्य है ! सुनतेहि ब्रह्मानंद हो ।
क्यों 'गाँव सेवा कह रहे ? झंझट सभी यह बंद हो ।।२।।

(दो.) श्रोता की इस धारणा, का उत्तर बस एक ।
सभी सुजन एकाग्र मन, सुनहिं बात सविवेक ।।३।।
अपने मन की बात मैं, कहता हूँ जो सत्य ।
'ग्राम गीता' का भी वही, समझ सार ही नित्य ।।४।।

(चौ.) मेरा ही न विचार अनोखा । सार समस्त संत-ग्रंथों का ।।
महा पुरुष बेचैन जिस लिए । वही मर्म कहता हूँ सुनिये ।।५।।
उन के ग्रंथों को पढ़ते नित । आत्म बोध सुनते हो अविरत ।।
तिन मन की पर सही भावना । ठीक ठीक किसने नहिं जाना ।।६।।
जग में हुआ जिसे निज अनुभव । जिस ने समझा सो मूल तत्व ।।
उन सबका है भाव एक ही । होंय सुखी सब विश्व लोक ही ।।७।।
सब संसार रहे यह सुख से । मंगल वचन सभी के मुख से ।।
बुरी नजर भी खल–दुर्जन की । बनी रहे तहँ हमेश नीकी ।।८।।
होय मित्रता सभी जनों में । दिखे न कोई कमी किसी में ।।
जो जो इच्छा करते हैं जन । न्याय मार्ग से वह हो पूरन ।।९।।
न हो कहीं भी बैर–द्वेष ही । हाहाकार न कहु मन माँही ।।
अत्याचार दंभ, मत्सर भी । अनाचार का रह न नाम भी ।।१०।।
समाप्त भेद भाव जग के हों । 'वाद' परस्पर पोषक सब हों ।।
लहर आनंद दसो दिशा में । रहें खेलती सदा जगत में ।।११।।

(दो.) यही तडप थी रात दिन, उनके दिल में एक ।
जहाँ कहीं जग में हुए, महापुरुष जो नेक ।।१२।।

आत्म ज्ञान जो दिया तिन, वह था जगत् सुखाय ।
सब सब को ही मान लें, निज सम ही यह सत्य ।।१३।।

(चौ.) संतों ने प्रभु भजन बताया । मन शुद्धता हेतु वह गाया ।।
ईश्वर के बालक हैं सब सम । समझ उसे जीवन चलाँय हम ।।१४।।
त्याग विराग कहा संतों ने । वे भी जग को भोग्य न मानें ।।
और करें निष्काम भावसे । सेवा, भाग्य खिल निज उससे ।।१५।।
पर उपकार, दया भूतों पर । दान धर्म, व्रत यज्ञ आदि कर ।।
दुखियों को लावें हम ऊपर । ज्यादा हो सो उन को देकर ।।१६।।
समाज में समता है लाना । इसीलिए है तत्व साधना ।।
तीर्थादिक से समुदायिकता । सीखें, है यह सन्त मान्यता ।।१७।।
इक दूजे मुँह कौर खिलावे । भात समान भाव से खावे ।।
सोना बाँटत, करते मिलनी । स्नेह भाव की रस्में कितनी ।।१८।।
भाव एक ही है इन सब में । हो न संकीर्णता मानव में ।।
मिलें भाव सामूहिक से सब । विश्व सुखी हो सब का कर्तब ।।१६।।
रहे एकता से मिल जुल सब । सभी सहायक सब के जब तब ।।
'सर्व भूत हित रत' हो जाना । यह गीता आदर्श पुराना ।।२०।।
यही घोषणा वेद-काल से । रहे मनुज कुल समान सुख से ।।
यह उद्देश्य सभी धर्मों का । सम समान हित सब जीवों का ।।२१।।

समाज की भूल और उस का नतीजा

(दो.) **हजम किया पर यह सभी, पिछड़ा रहा मनुष्य ।**
उच्च ज्ञान का संत-वच, बना मजाक निकृष्ट ।।२२।।
एक-एक के वचन ले, करत वितंडावाद ।
जीवन में कर लें अमल, नहीं किसी को याद ।।२३।।

(चौ.) ब्रह्मज्ञान दिया संतो ने । मानव का मन विशाल बनने ।।
रहें सभी मिल जुल समान ही । कर सहयोग परस्पर सब ही ।।२४।।
पर वह रहा सिर्फ मुख में ही । बढ़ते गये स्वार्थ-शेखी ही ।।
मरे पड़ोसी अपने दुख में । किसे न चिंता आज देश में ।।२५।।
तत्त्वज्ञान चर्चा करने को । जीवन चैन से है रहने को ।।
यों लोगों ने भेद बढ़ाया । सामंजस्य न उन में लाया ।।२६।।
ऋषि-संतों का हेतु इसी से । ग्रसित हो गया राहु-केतु से ।।

राम गये जहँ बाँध सेतु ही । पत्थर पड़े तहाँ तैसे ही ।।२७।।
इने सुनाओ संत कथाएँ । दधीचि अस्थि दे स्वयं सिधाए ।।
ऋषि-मुनि जन सेवा के ही हित । रहत रात दिन कष्ट उठावत ।।२८।।
दामाजी भंडार लुटाये । जन समेत प्रभु राज अघाये ।।
धुनिया बने संत दादू जी । सेवा बिन कामना न दूजी ।।२६।।
नाम देव भूखे कूकर के । पीछे दौड़े घी ले करके ।।
कपडे सींकर जन सेवा की । हुए देव संतुष्ट, दुआ की ।।३०।।
श्री साँवता फसल उपजाते । चोखा गाँव साफ कर जाते ।।
जन सेवा का महत्त्व भाई! सब सन्तों ने कहा सदा ही ।।३१।।
बुनहिं कबीर हायकरधा ले । जाति-धर्म के भेद बिसराले ।।
यह सब जनता को बतलायें । फिर भी चेत उसे नहिं आये ।।३२।।
सुनकर लोग कहें साधुन की । राह, नहीं है यह ग्रहस्थ की ।।
पापी हम ये संत-कथाएं । सुनते जिस से पुण्य कमाएं ।।३३।।

(दो.) हम जन्में सब के लिए, सब मिल रहना नीक ।
आपस में पूरक बनें, जन भूले यह सीख ।।३४।।
हुआ ग्राम कुग्राम यों, आपस में नहिं प्रेम ।
सब के निज निज स्वार्थ ही, बढ़े तोड़कर नेम ।।३५।।

(चौ.) किसी के घर में लड्डू बनते । किसी के बच्चे भूखे सोते ।।
गाँव-गाँव हम उसे देखते । पर उन्नति वे उसे मनाते ।।३६।।
एक शौक से महल उठाता । दूजा कुछ खपरैल छवाता ।।
पर तीजे को नही झोपड़ी । घास फूंस की भी मिल पाती ।।३७।।
नहीं एक को कुछ भी अवसर । एक उड़ावे पैसा खुल कर ।।
भोगे वैभव एक बैठ कर । दुखी दूसरा श्रम कठोर कर ।।३८।।
एक दूसरे से नित जलते । बिन कारण नुक्सानहु करते ।।
अथवा अपना भाग्य कोसते । या प्रभु दया की भीख मांगते ।।३६।।
कैसे होगा मिलाप इनका ? कब संकल्प फले संतों का ?
कैसे होगा सुखी हमारा । विश्व रूप जन मानस सारा ।।४०।।
संत अनेक मिटें यहि खातिर । मिटा नहीं जग का दुख आखिर ।।
सदुपदेश उनके जन-जीवन । उतर न पाये यह ही कारण ।।४१।।

सही उपाय-ग्राम परिवार योजना

(दो.) है उपाय वह खोजना, रहे जगत् सुख शांति ।
महा पुरुष संतुष्ट हों, सोचें हम उस भांति ।।४२।।
उठा यही संकल्प तो, करने लगा विचार ।
निर्मल पथ लें हाथ में, योज 'ग्राम-परिवार' ।।४३।।

(चौ.) कुछ को तो उपदेश सुधारे । हो समाज रचना पर आड़े ।।
जिससे अमल न हो जीवन में । संतों की वाणी सब जन में ।।४४।।
बदलो इस हित समाज रचना । संत मार्ग से कर नव रचना ।।
ब्रह्म ज्ञान आचरण में लायें । समता जन जीवन में छाये ।।४५।।
देव एक, पर होय अनंता । ले कर विविधि रूप से नटता ।।
देखे तत्वहि दिखे एक ही । वैसा हो यह मनुज लोक ही ।।४६।।
सुख दुख इक का हो सब का ही । कर उपयोग सभी का इक भी ।।
घटक-विश्व अरु विश्व रूप में । पूर्ण समन्वय रहे दृष्टि में ।।४७।।
'विश्व समूचा है मेरा घर'। यों कह गये संत ज्ञानेश्वर ।।
इसका सुंदर एक नमूना । गाँव बना लें अपना अपना ।।४८।।
करें गाँव आदर्श व्यवस्था । एहि हित कही ग्राम की गीता ।।
गावों से फिर आगे बढ़कर । व्यापे विश्व बने सब सुंदर ।।४९।।
जहाँ गाँव का धर्म न जाने । विश्व धर्म गुण क्या पहिचाने ?
इसही कारण समुचित माध्यम । सुगम गाँव का बता रहे हम ।।५०।।

(दो.) मानव घटक है गाँव का, गाँव से बनता देश ।
देश घटक है विश्व का, यही यथार्थ अविशेष ।।५१।।
जन का सर्बस गाँव है, अस्तित उस बिन नाहिं ।
रहे गाँव सर्वांग युत, माने वैभव ताहि! ।।५२।।

(चौ.) एक गाँव में महल बनावे । सब घर अन्य टूट गिर जावें ।।
बढ़े इसी में कीर्ति हमारी । समझ ऐस पागलपन भारी ।।५३।।
सच्चा स्वार्थ लाभ वह करता । निज व्यवहार समाज उद्धरता ।।
जिसके दिल में भेद शेष ना । सब का सुख जो माने अपना ।।५४।।
नाम कछू अरु काम कछू की । वर्ना कथा सदा से चलती ।।
नाम अमीर गरीब मिटाते । आगे चलें यही हम करते ।।५५।।
केवल अपना स्वार्थ रहे दिल । औरों की पर्वाह न की तिल ।।

अस गृहस्थ पा सकता नाहीं । शांति मन की इस जग माँहीं ।।५६।।
जिसने दूरदृष्टि है पायी । यही बात वह रखे सदा ही ।।
ईश्वर ने यह दुनिया सारी । सब जीवों के लिए बनाई ।।५७।।
यही सही विकास की वाणी । जो जाने सो सच्चा ज्ञानी ।।
इसका अभ्यास करें सब जन । आगे से नित ही निर्मल मन ।।५८।।
यह अभ्यास रहे नहिं शाब्दिक । तात्त्विक अथवा केवल बौद्धिक ।।
ग्राम जनो! तजि निजपरता ही । रचो सामुदायिक जीवन ही ।।५६।।
तभी संत उद्देश्य सधेगा ।। ईश्वरीय संकल्प फलेगा ।।
व्यवहार में इससे सब गाँवों को । होगा प्राप्त ब्रह्म रस देखो ।।६०।।

(दो.) **तब श्रोता पूछे सुनी, सामूहिकता आज ।**
किंतु न उसके रूप का, लगा हमें अंदाज ।।६१।।
एक सूत्र मित्रो सुनो, परमार्थिक व्यवहार ।
जहां होय वैकुण्ठ पुर, सहज गाँव सुख सार ।।६२।।

(चौ.) शक्ति, बुद्धि, सत्ता, अरु धन भी । जिस के पास है जो जैसा भी ।।
वह उससे निज स्वार्थ साधता । रात दिना सो गाँव लूटता ।।६३।।
अपना अपना सभी देखते । सब मनमाना लाभ चाहते ।।
अन्य मरे या कष्ट उठायें । तिन चिन्ता नहिं काहु सताये ।।६४।।
संकीर्ण सोच बाधक, जिससे । खातिर सुख अपने कुटुम्ब के ।।
शोषण करके तरह तरह से । भिक्षुक सम औरन को कर दें ।।६५।।
त्यागें इसे, सामुदायिक हों । गाँव परिवार सभी एक हो ।।
सभी श्रम करें, खायें सब जन । दृष्य दिखे ऐसा ही सब दिन ।।६६।।
जो भी गाँव में शक्ति बुद्धि । वह सब होय गाँव की ही निधि ।।
रोग दुःख शरीर अरु मन के । नष्ट होय तहँ सो सबही के ।।६७।।
शास्त्र ज्ञान से श्रमिक अछूता । शास्त्र विज्ञ को श्रम नहिं आता ।।
उत्पादन ऐसी हालत में । बढ़े किस तरह गाँव गाँव में ? ।।६८।।
जब जन मिल कष्ट करेंगी । बंजर भूमि सोना उगलेगी ।।
मार्ग खुलेंगे गतिमानों से । नये नये अनुसंधानो से ।।६९।।
जब सामूहिक प्रयत्न होंगे । कण-कण में सामर्थ्य खिलेंगे ।।
न हो जहाँ पर जल चुल्लू भर । वहाँ बहेगी सरिता झर झर ।।७०।।

(दो.) **निर्मल जल सरवर भरे, पग-पग वापी-बाग ।**

कृषि-उपयोगी सब बनें, दरिया धार, तड़ाग ।।७१।।
सरित्-शक्ति कितनी बड़ी, व्यर्थ सिंधु में जाय ।
ऐसी प्रभु-इच्छा नहीं, सभी काम में आय ।।७२।।

(चौ.) मानव शक्ति बुद्धि वैसे ही । व्यर्थ स्वार्थ में खर्च होय नहिं ।।
रिद्धि सिद्धि को हर प्रयत्न से । रखो बना कर गाँव-गाँव में ।।७३।।
अपना गाँव यही अपना घर । तस सब काम सभी पर निर्भर ।।
सभी जगह सब के कामों में । हाथ बँटावें सब जन मन से ।।७४।।
बुद्धि कर्म अरु देह परिश्रम । कला काम, कौशल या उद्यम ।।
जिसका जो भी काम होय सो । करे समर्पित वह समाज को ।।७५।।
कोई दे सेवा व्यवसायी । कोई सभी संपदा अपनी ।।
कोई देवे वेतन अपना । योगदान सब ग्राम योजना ।।७६।।
आवें बेलदार अरु बढ़ई । चर्मकार कुम्हार अरु नाई ।।
दर्जी, लुहार, बुनकर, शिक्षक । दाई जो सबही की सेवक ।।७७।।
खेती अच्छी जोतनवाले । कृषि योजना जमानेवाले ।।
वैद्य जुलाहे बुनते हैं जो । गाढ़ा, साड़ी शतरंजी सो ।।७८।।
अन्य सभी जो बसे गाँव में । योगदान विशेष हो इस में ।।
शक्ति-युक्ति जो है उन सब में । हों संगठित ग्राम सेवा में ।।७९।।

(दो.) **धन दें धनिक स्वगाँव को, जमींदार भूदान ।**
श्रम शक्ति मजदूर दें, सबसे सोइ महान ।।८०।।
बुद्धि मंत निज बुद्धि दें, कला कला विद लोग ।
सेवा डाक्टर वैद्य कर, होय न आलस रोग ।।८१।।

(चौ.) हर कोई नुकसान उठावे । जगह ग्राम के मित दे देवें ।।
दुरुस्त करें गरीबों के घर । मिल जुल गाँवहि के खर्चे पर ।।८२।।
देव भूमि, परत या खण्डहर । सभी गरीबों मेंहि बाँटकर ।।
करे व्यवस्था उत्तम सारी । सब के जीवन की हितकारी ।।८३।।
नित्यहि समय दान सब ही कर । घर अरु राह सजावें सुंदर ।।
गाँव बना दें नंदनवन ही । सामूहिक श्रम से सब जन ही ।।८४।।

परिश्रम में ही भक्ति एवं ग्राम शान्ति

गाँव रहे नहिं भूखा कोई । सबहि मिले उद्योग सदा ही ।।
जिससे प्रथा रहे नहिं बाकी । भीख गाँव में अब माँगन की ।।८५।।

होय पुजारी अथवा पण्डित । जो भी काम करेगा समुचित ।।
वही बसे इस गाँव हमारे । कहो सर्व सम्मति से प्यारे ! ।।८६।।
बराबरी से काम करें सब । निज निज हुनर मुताबिक ही सब ।।
बिन मेहनत के कोई न खायें । ऐसा ही हम नियम बनायें ।।८७।।
मेहनत करत बुढ़ापा आये । बदल काम तब उसे दिलायें ।।
बीमार अगर पड़ जाये कोई । पालन उसका सब मिलि करई ।।८८।।

(दो.) **साधु, भक्त, विद्वान भी, बिन मेहनत नहिं खाय ।**
बल्कि बने आदर्श ही, सबके आगे जाय ।।८९।।
मुखसे श्री गोविंद भज, करें हाथ से काम ।
प्रेम रखें प्रभुसे सदा, घट घट देखें राम ।।९०।।

(चौ.) अपना काम करें सब जन ही । हो ईमानदारी पूरी ही ।।
लेन-देन जो भी सब से हो । व्यवहार साफ सुथरा पूरा हो ।।९१।।
गोरोबा जब गढ़े गगरियाँ । 'हरि हरि' भजन चले सब बिरियाँ ।।
बेईमानी गगरी में सो । कर न सके, समाने प्रलय हो ।।९२।।
हुई महा-सन्तिन जनाबाई । उपलों की भूली न बिनाई ।।
भक्ति चोखा की वैसी ही । गाँव के ढोर उठाते नित ही ।।९३।।
एक नाथ भक्तोत्तम देखो । दिया ज्ञान तिन आम जनों को ।।
श्राद्धहु ब्राह्मण नहीं खिलाकर । न्योत गरीबों को भोजन पर ।।९४।।
कर हिसाब पाई बिन चूके । जगे रात भर विना स्वार्थ के ।।
प्यासा गधा पिला गंगा जल । पद्मनाथ प्रभु हो पुलकित मन ।।९५।।
इन सब की ही भक्ति सही है । स्वयं प्रभू यह बात कही है ।।
देख साँवता की फुलवारी । नाचे प्रभु निज सुरति विसारी ।।९६।।

(दो.) **यही सही चलता रहे, करें ग्राम का काम ।**
रखें भक्ति रस हृदय में, हो पवित्र निष्काम ।।९७।।
सबके ही उद्यमों में, तालमेल करि लेय ।।
और नियत स्थान में, प्रयोग चलने देंय ।।९८।।

(चौ.) अपन काम के नियत समय में । काम करें पूरी मेहनत से ।
इधर उधर की बातें ले कर । चिंता न करें न है यह हितकर ।।९९।।
जो हो धंधा अपना अपना । उसमें ही तन्मय हो खपना ।।
पर वह बंधन नियम समय पर । तोडें, अरु जायें सब निज घर ।।१००।।

नियति समय काम कर डालें । नियमित समय खेल भी खेलें ।।
नियमित समय प्रार्थना मिलकर । करें सभी व्यवस्थित होकर ।।१०१।।
वास्तव में जीवन सामूहिक । यही प्रार्थना महान सम्यक ।।
करें गाँव के लिए सभी श्रम । सेवा भाव पूर्ण से बेदम ।।१०२।।
क्या है कमी गाँव में अपने ? इसके लिए रहें चौकन्ने ।।
नहीं दिखे उस को ले आयें । गाँव-फुलवारी को सजायें ।।१०३।।
जो गाँव-जीवन में जरूरी । होय भीख की नहिं मजबूरी ।।
सही परिश्रम करके सब जन । सुगढ़ बना दें पूरा जीवन ।।१०४।।

(दो.) कोइ-बनाए-जूतियाँ, वस्त्र सिंये छबिदार ।
कोइ लोह-चीजें बना, रखे वस्तु-भण्डार ।।१०५।।
कोइ कपड़ा ही बुने, कोई डोर, निवार ।
लकड़ काम कोई करे, हो समृद्ध भण्डार ।।१०६।।

(चौ.) खेत किसान महीनों खटते । उपज गाँव-भण्डारहि लाते ।।
ऋतु अनुसार दाल चावल हों । गेहूँ चना मटर या फल हों ।।१०७।।
सब से पहले धान्य लगायें । जे भी लगे गाँव में, घर में ।।
और किसी से मांगे नाहीं । सीधा भिक्षा, उत्तम यह ही ।।१०८।।
अपन गाँव में पैदा जो भी । उसका उपयोग करें सब ही ।।
बचे गाँव से, घर से कुछ जो । बिके पड़ोसी गाँवों में सो ।।१०९।।
सभी गाँव की इक दुकान हों । हिस्सा जिसमें सब का सम हो ।।
उसमें होय मुनाफा जो भी । हक उस पर होवे सबका ही ।।११०।।
सबही धन हो गाँव में सबका । उद्यम भी तहँ होय सभी का ।।
पूरा गाँव भवन एकहि है । वही भवन सब ही का घर है ।।१११।।
इसीलिए सब ही मिलजुलकर । बाटें काम समर्थ्य देखकर ।।
कमी पड़े तो अधिक मँगा लें । अधिक हो 'भण्डार' में डालें ।।११२।।
काला मुँह पैसे का होवे । गाँव में सभी चीज मिल जावे ।।
मिले नहीं जो उसे बना लें । ऐसी रहन गाँव में कर ले ।।११३।।
गाँव हमारे का हो सब धन । ग्रामवासियों का सुख-साधन ।।
मिल कर हम सब संकल्पित हो । स्वर्ग बनायें अपन गाँव को ।।११४।।

(दो.) तिस पर भी यदि कम पडे, देश-पिता से माँग ।
स्वयं पूर्ण हो गाँव जब, सहाय फिर नहिं लाग ।।११५।।

होय गाँव में अधिक तो, खुशी से दें पर गाँव ।
विचलित रंचहु होय नहिं, कबहूँ मन सदभाव ।।११६।।

(चौ.) प्रथम रहे निज गाँव हरष से । होय परायापन न किसी से ।।
गाँव में अपने सभी काम सम । पूरे कर लें भली भांति हम ।।११७।।
इसी दृष्टि को लेकर सुंदर । व्याप्ति बढ़ायें आगे जग भर ।।
पूरे विश्व में अलख जगाने । मानव मात्र की सेवा करने ।।११८।।
जिस जिस पथ में संभव यह है । वही धर्म, सत् ज्ञान वही है ।।
कहता तुकड्या, जिससे सब जन । समाधान पाते हों पूरण ।।११९।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
अडतीसवें अध्याय में हैं सामुहिक जीवन-कथन ।
सब गाँव ही परिवार हो, जिससे बनें सुख पूर्ण जन ।।१२०।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

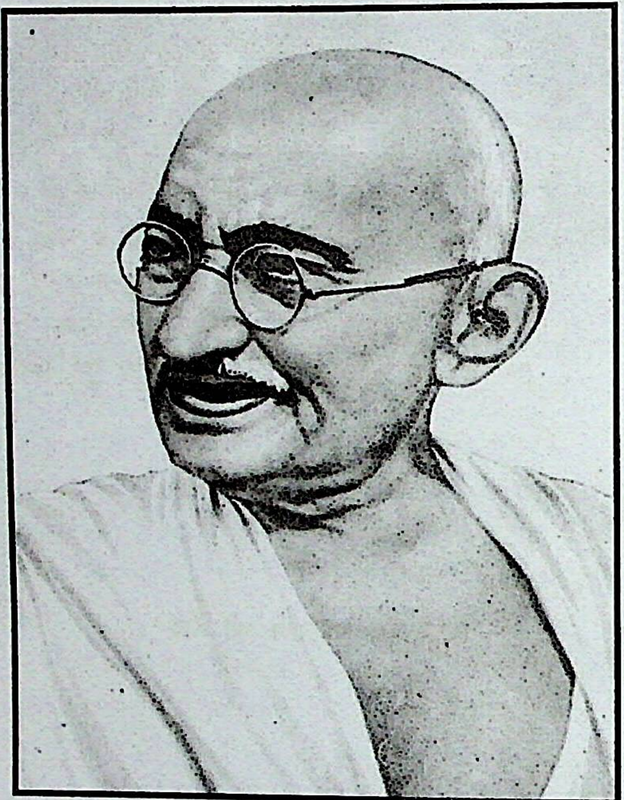

राष्ट्रपिता श्री महात्मा गाँधी

उन्चालीसवाँ अध्याय

भू वैकुंठ

।।श्री गुरुदेवाय नमः।।

आदर्श को जीवन में उतारो !

(चौ.) सभी जनों का हित अरु सुख है । स्वर्गहु उससे नहिं महान है ?
विना द्वेष-मत्सर के सब जन । निवास करते जहाँ बंधु बन ।।१।।
नहिं गरीब नहिं धनाढ्य कोई । नहीं रोग नहिं दरिद्रता ही ।।
ऊँच-नीच सब काम सभी जन । करते हैं नित प्रेम भाव मन ।।२।।
पक्ष नहीं है पंथ नहीं है । जाति भेद विरोध नहीं है ।।
रहे एक ही कुटुम्ब जैसा । गाँव आपने हँसी-खुशी से ।।३।।
हो ऐसा ही जहाँ उपक्रम । कहते है वैकुण्ठ उसे हम ।।
भावना जहाँ अन्य न मन की । जन में कहीं परायेपन की ।।४।।

(दो.) पढ़त स्वर्ग-वैकुंठ सुख, मन मोहित हो जाय ।
उस में वर्णित गुणन को, क्यों न अपन अपनाय ।।५।।
सुनें सत्य युग की कथा, प्रथा न छोड़े हीन ।
समाज की इससे व्यथा, कैसे होगी क्षीण ? ।।६।।

(चौ.) प्रेमानंद वैकुण्ठ प्यारा । समतावाद सतयुगी न्यारा ।।
लाएँ अपन गाँव जीवन में । यह कर्तव्य ठान लें मन में ।।७।।
हो अवतार जगत् में प्रभु का । मनो भाव क्यों ऐसा सब का ?
दुख, अन्याय, बुराई जन में । मिट जाये, चाहत यह मन में ।।८।।
यदि यह ही हम सब को भावे । क्यों न स्वयं हम ही बढ़ जावे?
स्वयं न कुछ कर, देव-नाम से । चिल्लाते जो गये काम से ।।९।।
कहते हम सब सखा प्रभू के । देव न्याय में सम हक सब के ।।
भेदभाव क्यों व्यवहारों में । रखते हैं हम अपन गाँव में ।।१०।।
न्याय देव को जग में लायें । चीत्कार दुख का मिट जाये ।।
यह कर्तव्य टाल दे जोई । 'भक्त' कहावे कैसे सोई ? ।।११।।

समाज जीवन का सामुदायिक प्रबंध

(दो.) एक को हो सो सबन को, सत जीवन का राज़ ।

सब के सुख दुख में रहे, समरस भाव समाज ।।१२।।
ज्यादा कम गुण में भले, पर न जाति-धन माँहि ।
जीवन का अधिकार सम, सब का रहे सदाहि ।।१३।।

(चौ.) काम करें जन सभी शक्ति भर । अप-अपनी योग्यता समझ कर ।।
होय जरूरत पूरी सबकी । सुख समान पायें तहँ सब ही ।।१४।।
बने योजना ऐसी सब की । फिकिर रहे न पूरे बरस की ।।
अन्न-वस्त्र रुजगार सुनिश्चित । सब मिलजुल कर करें नियोजित ।।१५।।
पूर्ण वर्ष का 'बजट' बनाये । जरूरतें सबकी सब आयें ।।
अन्न,वस्त्र,आभूषण, रंजन । सबके लिए मकान, सुशिक्षण ।।१६।।
अलग लाभ अरु अलग चोचले । अलग हि वैभव, अलग महत्ता ।।
अलग लाभ अरु आशाइस भी । गुंजाइश है नहिं इन सब की ।।१७।।
सम ही वस्त्र समान आभूषण । समान आदर तथा प्रसाधन ।।
सम भोजन, हक़दारी एकहि । काम सभी के लिए भेद नहिं ।।१८।।
सबके सब त्योहार सरीखे । महमानी सम तौरतरीके ।।
अलग व्यवस्था खान पान की । किसीभि हालत नहीं किसी की ।।१९।।
दिन त्यौहार कोइ मर जाये । उस दिन गाँव न मीठा खाये ।।
नियत करें आगे दिन दूजा । उस दिन सभी करें फिर पूजा ।।२०।।

(दो.) **जागें सब ही समय पर, कर उमंग से काम ।**
ध्यान सफाई प्रार्थना, सामूहिक हर काम ।।२१।।
रहन खाद्य कपड़े नियम, शिक्षा सबहि समान ।
अवसर आगे का मिले, छात्र योग्यता जान ।।२२।।

(चौ.) सबके लिये एक विद्यालय । रहन सभी की रहे एकमय ।।
हार्दिक प्यार साथ सब ही के । सभी तरह हो, भेद न देखें ।।२३।।
व्यवस्था हो समान स्वास्थ्य की ।उन्नति समान नारी नर की ।।
जबाबदारी एक व्यक्ति की । सो हो जाय गाँव पूरे की ।।२४।।
जैसे कुछ मेहमान पधारे । समझो वे है गाँव के सारे ।।
बँटने नहिं दें तिन अपनों में । बना रहे आदर्श गाँव में ।।२५।।
रहे आतिथ्य की मर्यादा । हो न जाय सोई इक धंधा ।।
समय व संख्या महमानों की । करे सुनिश्चित सभा गाँव की ।।२६।।
पत्राचार करें सब सम्यक । ज़ब नहिं मिलना हो आवश्यक ।।

केवल महमानी की धुन में । दिन न गमायें व्यर्थ भ्रमण में ।।२७।।
उत्सव विवाहादि वैसे ही । हाथ बटाये सभी गाँव ही ।
दौड़ा दौड़ी न हो बीच में । काम सुचालित होवे क्रम में ।।२८।।

(दो.) जितने वधु-वर गाँव के, हों सामूहिक ब्याह ।
इस पद्धति में नहिं रहे, तिथि मुहूर्त की चाह ।।२९।।
दस पचास ही ब्याह हों, या हों सौ उस वर्ष ।
एक समय एकहि जगह, भरसक करें सहर्ष ।।३०।।

(चौ.) स्थल-विवाह इक होय गाँव में । रहें बिछावन बर्तन उस में ।।
सब चीजें, जल प्रकाश साधन । सब के लिए जुटा लें सब जन ।।३१।।
जगह पवित्र, विशाल, मनोहर । प्रसन्न मानस रहे जहाँ पर ।।
स्थान ब्याह तक रहने खातिर । पसंद कर लें एक सभी वर ।।३२।।
समय प्रशान्त, प्रसन्न सुजन हैं । वही मुहूरत सुख पूरण है ।।
प्रसंन्न ही जल-वायु देखकर । मंगल कार्य करें सब मिलकर ।।३३।।
मित्र गाँव के सभी जमा हों । सभी तरह सहकार्य लगे हों ।।
बिठा सभी वधु कर एकत्रित । कर विवाह संपन्न यथोचित ।।३४।।
चमक दमक में विवाहादि की । नहीं उड़ाय ग्राम धन कोई ।।
उसके बदले सब ही मिल कर । ग्राम योजना चलाए सुन्दर ।।३५।।
सब अपना सर्वस्वहि दे के । बनें आदर्श रहें गाँव के ।।
अलग छिटक कर कोइ न जाये । योग्य व्यवस्था गाँव बनाये ।।३६।।

(दो.) घर परिवार तो हों मगर, संतति नियमन साध ।
होय न इच्छा पुत्र की, दो संतान के बाद ।।३७।।
बच्चा जब बढ़ने लगे, गाय दूध पी पाय ।
मातृ दूध से तब उसे, लेय जरूर छुड़ाय ।।३८।।

(चौ.) बाल निकेतन गाँव बनायें । प्रेममयी बूढ़ी महिलायें ।।
कर न सकें जो काम कष्टमय । पर जिन की आदतें निरामय ।।३९।।
संतति अरु संपत्ति हमारी । गाँव की निश्चित है वह सारी ।।
इनकी सम्यक उचित वृद्धि से । उन्नति करे गाँव सत्पथ से ।।४०।।

सहयोग व संस्कृति-रक्षा की जिम्मेदारी

गाँव हमारे सुख दुख जो भी । जानें आपस में हर कोई ।।

सुन कर कोइ पुकार मदद की । जाये दौड़ देर नहिं पल की ।।४१।।
जिस को पड़े जरूरत जो भी । बेशक उसे कहे खुलकर ही ।।
सुनकर करें न आनाकानी । कह अड़चन की अपन कहानी ।।४२।।
महत्व काम का सोइ समझ कर । तुरंत दौड़े पुकार सुन कर ।।
इसी भाँति वह काम हमारे । आयेगा, यह हृदय विचारें ।।४३।।
जैसे हम जिस के प्रति बरतें । वैसे ही फल पल्ले पड़ते ।।
इसी भाँति है रूप अनोखा । मानवीय सब सहकार्यों का ।।४४।।
इसीलिये संकट में दौड़ो । सबके सब ही कष्ट बाँट लो ।।
उससे मानेंगे सब बेशक । 'कुटुम्ब मेरा है जग व्यापक ।।४५।।

(दो.) जन्में जग में जीव जन, देने यों सहयोग ।
जगा देंय हैं अज्ञ जो, सेवा भावी लोग ।।४६।।
कौन बिना रोजगार है ? किसको लगी कुटेव ?
चौकस रहे सदैव ही, विपति मिटाने गाँव ।।४७।।

(चौ.) किसके कौन विवाद बढ़ाता ? किसको कौन छेड़ने जाता ?
करे प्रताड़ित कौन स्वार्थ हित । नजर रखें हम सब पर निश्चित ।।४८।।
व्यसनी गाँव कौन हो बैठा? । कौन जुआरियों में जा बैठा ?
चिंताकुल हैं कौन ? किसलिए ? । जाँच यही निज कार्य समझिए ।।४९।।
कई औरतों को दुख देते । माता पिता को भी तड़पाते ।।
कोई लड़की नहीं पठाते । कोई उसे भगा ले जाते ।।५०।।
समाज के ये दोष हटाने । हम सब जिम्मेदार सयाने ।।
जब हम सब हैं गाँव निवासी । रहे न चिन्ता हम को कैसी? ।।५१।।
हम जो करते वह न हमारा । जिम्मेदार गाँव है सारा ।।
यही समझ कर हाँ-ना जो भी । कर सो जिम्मेदारी से ही ।।५२।।

(दो.) पियें गाँव में मद्य हम, बने 'शराबी लोग' ।
नाम 'पियक्कड गाँव ही', ऐसा चले कुयोग ।।५३।।
सभी शराब गर बनें, चले कौन बिधि काज?
व्यसन-बीज आने न दो, सीमा में भी आज ।।५४।।

(चौ.) कोइ गाँव में करे 'तमाशा' । रंजन में विषमय संदेशा ।
नचते दर दर बच्चे वैसे । तज मर्यादा भाँडों जैसे ।।५५।।
नृत्य कला के भले नाम पर । विषय वासना फैले घर घर ।।

'उन्नति' ऐसी भटके भूले । गाँव हमारा कभी न छू ले ।।५६।।
कला नहीं यह बला, विडम्बन । पैसे लूटन का ही साधन ।।
नाटक, गायन, कलापथक भी । ऐसे होने दें न कभी भी ।।५७।।
जिस रंजन में होवे जन हित । रहें उसी से हम सब सहमत ।।
पंथ बुराई का कोई भी । नहिं बढ़ने दो गाँव किसी भी ।।५८।।
भले कार्य के हेतु निकालें । कलापथक, भजनादि चला लें ।।
खेलकूद, व्यायाम, रामधुन । भाँति भाँति का शुभ मनरंजन ।।५६।।
न हो कुटिलता, नही गंदगी । रास-भँडौआ भरी जिंदगी ।।
पूछे बिना गाँव में आने । नेता गण लागें भय खाने ।।६०।।
आयोजन गर होवे कोई । बिन पूछे मुखिया से जोई ।।
घुस आये बाहर से कोई । ऐस गाँव में कभी न होई ।।६१।।

(दो.) **ग्राम-बुद्धि स्तर बढ़े, होवें साफ उसूल ।**
ग्रामोन्नति पर होय सो, भाषण सदा अमोल ।।६२।।
'हम आपस में भिन्न हैं', न हो स्वप्न में भाव ।
ज्ञान पाठ करते रहें, तदर्थ अपने गाँव ।।६३।।

(चौ.) अपने गाँव 'प्रार्थना मंदिर' । जिसमें सब धर्मों का आदर ।।
हुए महा पुरुषहु जग में जो । देवतुल्य मानें हम उन को ।।६४।।
मंदिर में हो उनकी जयन्ति । उत्सवहु तथा संत-पुण्य तिथि ।।
जागृत रहे सदा चिन्तन से । सामुदायिक चेतना जन में ।।६५।।
संतों-देवों के जन्मोत्सव । स्मरण दिवस इत्यादि महोत्सव ।।
जिन सत्कृतियों की इच्छा हो । वही गांव में आयोजित हों ।।६६।।
पर सबकी हो उनमें निष्ठा । सभी गाँव हो वहाँ इकट्ठा ।।
उत्सव सभी जगह करवायें । रूप सभी सामुदायिक होवें ।।६७।।
होय गाँव का उत्सव सब का । हो आदर्श चलन सुख उस का ।।
सब निज मन की बात बतायें । पक्ष विपक्ष भाव नहिं आये ।।६८।।
वर्ना बढ़े सांप्रदायिकता । जातीयता व्यक्ति-गट-परता ।।
होंय गाँव के टुकड़े इसमें । लगे समय न उन्हें बिखरने ।।६६।।
इसीलिए कुछ भी न भेद हों । सब के मन उत्साह भरा हो ।।
एंक कुटुंब तुल्य ही सारा । बने प्रेममय गाँव हमारा ।।७०।।
प्रेम हमारा अमूल्य संपत । अपना श्रम ही महान दौलत ।।
शुभ सहयोगहि सच्ची इज्जत । समझा दो सब को यह निश्चित ।।७१।।

(दो.) आयोजन ऐसे करें, घर घर हो सुख शांति ।
सुकीर्ति होवे गाँव की, देय सबहि स्फूर्ति ।।७२।।
पिछड़ जाय कोई अगर, उसे संभालें अन्य ।
यों करते ही गाँव फिर, होय गुणी सम्पन्न । ।।७३।।

मतभदे एवं विधायक विरोध का निराकरण

(चौ.) नहीं गाँव में झगड़ा टंटा । कोइ न बोले टेढ़ा-उल्टा ।।
स्वभाव सात्विक हो सबका ही । सीधा सरल और विनम्र भी ।।७४।।
गत मतभेद कहीं हो जावे । उसे गाँव में ही निपटावें ।।
गाँव अपन बिन उबार नाहीं । कोर्ट-कचहरी कामहि नाँही ।।७५।।
सबही झगड़े मिटें गाँव में । खोटे काम न हों चुनाव में ।
छल-फरेब का नाम नहीं हो । ऐसे सुंदर गाँव सभी हों ।।७६।।
सगर्व ऐसा बता सकें जन । वही गाँव का सच्चा भूषण ।।
सज्जन हैं सब लोग गाँव में । बंधे मोह से सब आपस में ।।७७।।
गरचे दिखे ऊधमी कोई । उसे बोध दे सिखा भलाई ।।
तिस पर भी नहिं ठीक चले जो । है समाज के बाहर समझो ।।७८।।
कर उत्पात गाँव में जो भी । होय 'गाँव का दुश्मन' सो ही ।।
उसे सुधारें सभी तरह के । शांति यत्न का प्रयोग करके ।।७९।।
सब मिलकर फ़िर तय कर लेवे । उसके बाद करें क्या क्या वे ?
बचे उपाय न तो निर्णय कर । भेजें उसे गाँव से बाहर ।।८०।।

(दो.) दें न मगर सामान कुछ, या उसका धन धान्य ।
आँख बचा भग जाय खुद, देस कोई अनजान ।।८१।।
जब लौं यह दृढ़ता न हो, बने तमाशा गाँव ?
हों आदर्श न कुछ जहाँ, नहिं स्थिरता भाव ।।८२।।

ग्राम-पंचायत, उसका महत्त्व एवं कर्तव्य

(हरि.) श्रोता करें पर प्रश्न यह,? नाना विवाद हैं गाँव में ।।
सुलझाएंगे कैसे सब नित, सब कोई त्रुटि भारी जमाव में ? ।।८३।।
हैं निजी कारोबार सबके, काम दुसरे कब बरें ?
कहिए न जीवन गाँव का, स्थिर बनाने क्या करें ।।८४।।

(चौ.) एक हि समाधान है इसका । करें निर्माण एक समिति का ।।

चयन करें सब प्रतिनिधि अपने । कार्य-वाहक समिति के बनने ।।८५।।
जो अपना सर्वस ही देवें । घटक समिति के वे ही होवें ।।
तन मन धन सब कुछ ही आपन । सेवा ग्राम करें सो अर्पण ।।८६।।
सदस्य बने इस तरह जो जन् । उनमें से चुन लेयँ पाँच जन ।।
विशुद्ध मन से उन में खोजो । न्याय-निष्ठ, ईमानदार जो ।।८७।।
सबका ही धन माल एक्कर । गिन लें गाँव-घटक नारी नर ।।
फिर मिल ढालें एक सरीखा । पूरे गाँव में जीवन सबका ।।८८।।
पूरा काम सभी को देना । उत्पादन का प्रबंध करना ।।
यों व्यवहार व्याप सब काही । करें नियोजन निदेश पंच ही ।।८६।।
अपना काम आप सब कर लें । क्रय-विक्रय सब पंच सँभालें ।।
उद्यम में सामान जरूरी । करें पंच उन सबकी पूर्ति ।।६०।।
गाँव के हित में मार्ग बनायें । ग्राम के हित व्यापार बढायें ।।
बने भले संबंध नगर से । सुखी गाँव होवें फिर जिससे ।।६१।।
जाय गाँव से जो भी मालधन । श्रम-शक्ति चीजें या साधन ।।
पहले करें निरीक्षण उनका । ग्राम हिताय पंचगण पूरा ।।६२।।

(दो.) **पंचों पर सब योजना, कुछ न गैर के हाथ ।**
निश्चिंत रहें बाकी सभी, होय प्रगति दिन रात ।।६३।।
शामिल हों इसमें जोई, निज चिन्ता से मुक्त ।
भगवत् प्रेमी होय सो, कर्महु से अनासक्त ! ।।६४।।

(चौ.) पंच हि सच्चे दूत ईश के । सबकी चिन्ता निश्चित करते ।।
इस बारे में किसी तरह की । दुविधा पालें नाहीं मन की ।।६५।।
सदा रहे उनको यह चिन्ता । सुखसे रहे गाँव की जनता ।।
पंचों का निर्णय आवाहन । मानत आदेश उसे जन मन ।।६६।।
स्थान ग्राम जनों का ऊँचा । पर पंचों के आगे छोटा ।।
रहें सदा सेवा में तत्पर । प्राण प्रतिज्ञा पर न्योछावर ।।६७।।
पंच कथन सो वेद वचन है । ग्राम धर्म का यही मर्म है ।।
वर आदर्श गाँव का इस में । होवे मुखर हमारे मत में ।।६८।।
कुटुम हमारा गाँव एक है । पंच उसी के मूल स्तंभ हैं ।।
बात न्याय की सबसे ऊपर । सो विकास का कलश शिखर पर ।।।६६।।
था न किसी का जन में शासन । सतयुग में था न्याय आचरण ।।

पंचायत रूपान्तर उसका । सार रूप यह लोकतंत्र का ।।१००।।

जन तंत्र-सफलता के लिए जन-कर्तव्य

(दो.) पंचायत का काल इक, वह भी देउँ बताय ।
पंच चुनें जब हीन तब, जीवन धोखा खाय ।।१०१।।
पंचायत सेवा रहित, करे गाँव हैरान ।
जन इच्छा सर्वोच्च जहँ, लोकतंत्र सोइ मान ।।१०२।।

(चौ.) लोकतंत्र में लोगों का हित । हाथों हाथ करे जनता नित ।।
'मालिक सब' यह सत्य जान लें । अपन सहज दायित्व मान लें ।।१०३।।
लोकतंत्र तो वही सही हैं । कामचोर कोइ न कहीं है ।।
सेवा तत्पर सब उत्साही । मूल चेतना सब की न्यायी ।।१०४।।
सत्ताधारी लोकतंत्र का । मालिक नाहीं, सिर्फ प्रशासक ।।
जन सेवा का कारोबारी । सोही उसकी जवाबदारी ।।१०५।।
निज-निज कार्य सभी हैं तत्पर । कोइ उन में खास निपुण पर ।।
वही गाँव में सबसे फबता । पंच होय या चाहे नेता ।।१०६।।
हममें से ही पंच निकलता । आचार शील, धुर कारज कर्ता ।।
करना हो संडास-सफाई । उसे नयापन लगे न कोई ।।१०७।।
काम व्यवस्थित हो जो करता । निष्ठा से जो नियम बरतता ।।
ऐसे गुण वाला ही कोई । सही गाँव अधिकारी होई ।।१०८।।
यहाँ मूल्य है उचित गुणों का । स्वारथ त्याग तथा साहस का ।।
वही गाँव के अगुआ होंगे । देव गाँव को जो मानेंगे ।।१०९।।
जिसने देव स्वगाँव बनाया । सेवा कार्य मंत्र नित गाया ।।
रहे बोलबाला उसका ही । अपन गाँव सब कारज माँही ।।११०।।

(दो.) सात्विक होवे पंच सो, गाँव जिसे भगवान ।
सेवा ही पूजा महा, जिसे भक्ति नहीं आन ।।१११।।
उसे दूसरा धर्म नहिं, कर्म दूसरा नाहिं ।
सेवा नित ही गाँव की, एक काम जग माहिं ।।११२।।

(चौ.) अपना सर्वस हम पर वारा । इसीलिए वह पिता हमारा ।।
वहाँ जाति या धर्म, पंथ-मत । इनकी नहीं जरा भी कीमत ।।११३।।
पंच चुनें हम ऐसे को ही । जस पहिचान विचारहि होई ।।
गुटबंदी को किसी रूप में । कहीं तमाशा नहिं होने दें ।।११४।।

सब के हित का कार्य उठायें । झलक अहम की कभी नहिं आये ।।
करें जनों का सर्वाधिक हित । उसे मान लें अगुआ निश्चित ।।११५।।

(चौ.) अपना सर्वस हम पर वारा । इसीलिए वह पिता हमारा ।।
वहाँ जाति या धर्म, पंथ-मत । इनकी नहीं जरा भी कीमत ।।११३।।
पंच चुनें हम ऐसे कोही । जसं पहिचान विचारहि होई ।।
गुटबंदी को किसी रूप में । कहीं तमाशा नहिं होने दें ।।११४।।
सब के हित का कार्य उठायें । झलक अहम की कभी नहिं आये ।।
करे जनों का सर्वाधिक हित । उसे मन लें अगुआ निश्चित ।।११५।।

पंचो का दायित्व व राम राज्य-विस्तार

पंच समिति सुजनों की होये । सर्व काल जो गाँव चलाये ।।
अपना ही परिवार गाँव सब । जो यों समझ करे निज कर्तब ।।११६।।
दूसरों को लेकर चलते हैं । आपस में दिल भी जुड़ते हैं ।।
दिखती अगर कमी कोई है । माने 'कमी स्वयं हम ही हैं' ।।११७।।
अपने निज-कुटुम्ब के कारण । बिगड़ न जाये गाँव प्रबंधन ।।
ऐसी दृष्टि होय सब ही में । गाँव स्वराज कार्यकर्ता में ।।११८।।
होवे न अन्याय से पीड़ा । चींटी को भी जाय न छेड़ा ।।
सावधानता इस बारे में । रखें प्रमुख जन सदैव मन में ।।११९।।
सार्वजनिक चीजें घर लाना । अपनो को सुविधा दिलवाना ।।
इनें त्याग कर सही मार्ग से । सेवा करवें तत्परता से ।।१२०।।

(दों.) छोड़े आग्रह अपन सब, बहुतन का मत मान ।।
यथा संभव हो एक मत, चलें गाँव के काम ।।१२१।।
'पाँच पंच परमेश' हैं, पर सत्तामद नहिं ।
काम नियम अनुसार करि, सुख बाटें जन मांहि ।।१२२।।

(चौ.) सबही बसं के लिए कष्ट लें ।सब के हित को निज हित माने ।।
बड़े लोग यह कार्य स्वयं कर । राह दिखायें जन को सुस्थिर ।।१२३।।
इस मेंही है सही वडप्पन । स्वयं-पूर्ण हो गँवई जीवन ।।
यही एक है सही निशानी । सच्चा ग्राम राज्य सुखधानी ।।१२४।।
ग्राम राज्य ही राम राज्य है । असल स्वावलंबन स्वराज्य है ।।
कहे महात्मा विश्व पूज्य वह । विकास उसका ही सुंदर यह ।।१२५।।
गाँव हमारा राज हमारा । बंट न सके मौका यह सबका ।।

यह आदर्श जहाँ भी होंगे । रिश्ते गहरे उन के होंगे ।।१२६।।
अन्य गाँव नहिं शत्रु हमारे । होंगे पर संबंध काम के!
फिर भी रिश्ते मधुर बनाने । सहकार करेंगे पंच सयाने ।।१२७।।

(दो.) निष्ठामय है समिति जहँ, भू-वैकुंठ सो गाँव ।
अपने आप पवित्र हो, हो तस भूमि प्रभाव ।।१२८।।
गाँव बनें आदर्श जब, श्रेष्ठ होय सो राज्य ।
निज प्रभाव से राज्य सो, मुकुट देश का होय ।।१२९।।

(चौ.) ऐसे प्रगति देश जो करई । घटक शान्तिमय विश्व का होई ।।
स्वारथ से जो बंढ़े अन्यथा ।विश्व विघातक होय सर्वथा ।।१३०।।
इसीलिए बस एक लक्ष्य हो । भू-वैकुंठ समस्त विश्व हो ।।
करें समर्पित घर-कुटुम्ब हित । समुदायिक जीवन के ही मित ।।१३१।।
सुना पढ़ो अरु जल्दी कर लो । बात मनन कर मन में रख लो ।।
इस आदर्श योजना भीतर । कूट पडो निज सर्वस देकर ।।१३२।।
श्रोताओ! क्या बात समझ ली? देरी फिर है कौन बात की ?
तन,मन,धन सब करो निछावर । आज इसी पल गाँव राज पर ।।१३३।।
फलेगी इच्छा महान जनकी । होय सार्थक ज्ञान भक्ति भी ।।
कहता तुकड्या, भ्रांति मिटेगी । अंतर्बाह्य अंशाति मिटेगी ।।१३४।।

(हरि.) इति ग्रामगीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
अध्याय उन्चालीसवाँ दे सीख भू-वैकुंठ की ।
आदर्श ग्राम-सुराज्य का, है नीव यह जनतंत्र की ।।१३५।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

श्रीमत् स्वामी विवेकानंद

चालीसवाँ अध्याय

ग्रंथाध्ययन

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

संत ग्रंथ व ग्रामगीता का सामंजस्य एवं उद्देश्य

(हरि.) श्रोता कहे सानंद यह आदर्श जीवन सुन लिया ।
पर अन्य ग्रंथों की कथाए, दें आत्म ज्ञान् कहानियाँ ।।१।।
हर गाँव चलते ग्रंथ वे, पर आपकी पोथी अलग ।
बतलाइए, उद्धार हित हम कौन सी चुन लें सुभग ? ।।२।।
बैकुंठ लाने गाँव में, क्या ग्रंथ अन्य न काम दें ? ।
संस्कार अच्छे गाँव के बन जायँ, यह कैसे सधे? ।।३।।
सुजनों! सुनो उत्तर भला, नहि 'ग्रामगीता' है अलग ।
कोई विरोध है नहीं, सद्ग्रन्थ अन्यों से सुभग ।।४।।

(चौ.) उपनिषद् आदि गौएँ सब ही । बना दी दुह कर गीता नयी ।
तैसे संत-ग्रंथ सब ही से । प्रस्तुत सार 'ग्रामगीता' में ।।५।।
भूत मात्र में भगवत् दर्शन । अनुभव पाये संत श्रेष्ठ जन ।।
उसी तत्त्व का नव निर्देशन । यही 'ग्रामगीता' का भूषण ।।६।।
विश्व रूप गीता का दर्शन । 'विराट् पुरुष' वेद में वर्णन ।।
'विश्वात्मक देव' संतगण का । सक्रिय तत्व यहाँ है उनका ।।७।।
अनेक ग्रंथों के शुभ वर्णन । अनेक तीर्थो के शुचि दर्शन ।।
कथा कीर्तन बीच अनेकन । उदाहरण का एक प्रयोजन ।।८।।
जन भूले सहयोगी बनना । हुआ स्वार्थमय दूषित जीना ।।
करते अपने हित की खातिर । निन्दा और जनों की खुल कर ।।९।।
किस बिधि खतम होय से सब ही । खोज, और उनके उपाय भी ।।
अपने अनुभव के आधार पर । कहे महापुरुषों ने सुखकर ।।१०।।

(दो.) राह संत-पग की चलें, बोलें उनके बोल ।
तब निश्चय ही सर्वथा, जीवन सफल अमोल ।।११।।
पढें ग्रंथ भी इसलिए, जाग्रत हों सब लोग ।
भरें गाँव संस्कार से, बढ़े सुपथ सहयोग ।।१२।।

(चौ.) मानवता की सीख जगाने । कथा कीर्तन करे गांव में ।।
पुराण पोथी का वाचन भी । सीखें, करें गाँव में सब ही ।।१३।।
कथा और दृष्टान्त अनंता । मानव उन्नति हित जो करता ।।
उसी ही हेतु 'ग्राम गीता' का । हमने गाया गीत अनोखा ।।१४।।
न हो व्यर्थ कोई आडम्बर । अपना जीवन करना सुंदर ।।
सुख के अंकुर उगें गाँव में । मानव का कर्तव्य इसी में ।।१५।।
मानव हो निरोगी सात्विक । व्यसनों की व्याधि का नाशक ।।
दुखव्यवहार न उस का । होवे कबहूँ किसी तरह का ।।१६।।
यही सीखना है पोथी से । कीर्तन, भजन, तीर्थ, संगति से ।।
इसीलिए सब तरह के साधन । आयोजित कर गये संत जन ।।१७।।
साधन सबका समाज रचना । प्रेरक जिस की राष्ट्र भावना ।।
मानव सेव लक्ष्य साध कर । लोग चलें सब भले मार्ग पर ।।१८।।
तत्वज्ञान, जनहिं सब जन ही । समझि रूप व्यवहार बाहरी ।।
तेहि हित साधन करइ गाँव में । ग्रंथ उपांग अध्ययन तिन में ।।१९।।

(दो.) ग्रंथ छंदमय ही रहें, देय सोच यह छोड ।
सहज समझ उत्तम वही, गद्य, पद्य का जोड़ ।।२०।।
कई ग्रंथ इतिहास के, कुछ तात्त्विक चरितादि ।
पढ़ें अभंग पुराण भी, सम्यक नियमित आनि ।।२१।।

अंधश्रद्ध पोथियाँ, भ्रामक पण्डित

(चौ.) चमत्कार भर डालें अद्भुत । पूजा व्रत रूपी जँह पर्वत ।।
सार न जीवन की बातों का । ऐसा ग्रंथ न किसी काम का? ।।२२।।
पुण्य कमाने पाठ कराना । चमत्कार सुनि गद् गद् होना ।।
गिरवी बुद्धि को अपनी रख दे । आगे से ऐसा नहिं होवे ।।२३।।
रूपक रूप सत्य ग्रंथों में । भ्रमित होय जनता रूपक में ।।
उलटा उसका अर्थ लगाये । सहसा विश्वास न जम पाये ।।२४।।
उदाहरण पग पग ऐसे हैं । पढ़ते ग्रंथ बिगडते मन हैं ।।
सही अर्थ जब समझ न पाते । भ्रमित होय विश्वास नसाते ।।२५।।
ग्रंथ सुना 'हरि विजय' कहीं पर । नारद चले नारदी बनकर ।।
साठ पुत्र फिर उसने जन में । एक रात के अंतराल में ।।२६।।
ग्रंथ सुना 'पांडव प्रताप' भी । बड़े बड़ों के कहे पाप भी ।।
तरह तरह के व्यभिचारों के । ढेर लगे जो जाइ न देखे ।।२७।।

(दो.) कोई उपजा कान से, मुखमें से भी कोइ ।
सुना ग्रंथ में कोइ तो, घट में पैदा होइ ।।२८।।
कोइ उपजा सीप से, कोई जंटा मँझार ।
शिवलिंग पर पेशाब से, किसी का हो उद्धार ।।२९।।

(चौ.) छोड़ प्रसाद गया कहिं कोई । जल में डूब नाव उससे ही ।।
भूल मान प्रसाद पाने पर । ज्यों की त्यों वह आवे ऊपर ।।३०।।
कोई दौड़े धरनि उठा कर । किसीकि लघु शंका सागर भर ।।
गहरी नींद में सोये कोई । गदहा चरे नाक में सोई ।।३१।।
ऐसे चमत्कार ग्रंथों के । कान गला कर सब ही सुनते ।।
तिल भर भी विश्वास न आये । अब इस में क्या करें, बतायें ? ।।३२।।
ऊपर से अजीब ये दिखते । ज्ञानी अर्थहु सही जानते ।।
उनकी भी पर अजीब हालत । अंगुली ऊपर स्वर्ग नचावत ।।३३।।
कहते-मित्रो! यही सही है । शंका इसमें करना नहिं है ।।
वर्ना होगा भीषण पातक । सब भुगतेंगे नरक भयानक' ।।३४।।
मानव को आदर्श बनाने । के हित यह निष्कर्ष निकाले ।।
चमत्कार का संग्रह सोई । 'ग्रंथ राज' तेहि कारण होई ।।३५।।
सुन ले श्रद्धा से जो कोई । स्वर्ग-मुक्ति तत्कालहि होई ।।
यों बतला कर नर-नारी को । पंगु बनाया सब समाज को ।।३६।।

(दो.) कर विचार, शंका जगी, भंग शान्ति मन होय ।
समझाये कोई नहीं, रूपक तत्त्वाहि सत्य ।।३७।।
कहे पुराणिक "चुप सुनो" संशयात्मा का नाश!
मान उसे लो नमन कर, तभी कटे जग पाश' ।।३८।।

संतो के विवेक ग्रंथ व पठन की दृष्टि

(चौ.) संत जनों ने हालत देखी । रचना तर्क पूर्ण ग्रंथों की ।।
बहुजन के संशय सबही तिन । मिटा दिये अच्छे से गिन गिन ।।३९।।
श्रद्धावान को प्राप्त सुपथ हो । ज्ञान सभी ही उन्हें सुगम हो ।।
उपकार महंतन संतन जो । किया, न जाय चुकाया ऋण सो ।।४०।।
सार निकाल संस्कृत ग्रन्थन कर । भाषा ग्रन्थों को समृद्ध कर ।।
किया प्रशस्त तिन आमजनों का । उद्धार मार्ग आत्मोन्नति का ।।४१।।
पुरातनहि संस्कृत ऋषि-बोली । उससे भाषा अनेक निकलीं ।।
उनमें सुगम मराठी हिंदी । संत कवीशों ने की वृद्धि ।।४२।।

मुकुंदराज, नाथ, ज्ञानेश्वर । नामदेव, हंसादि, चक्रधर ।।
ऐसों ने ही ज्ञान सुगमतर । किया मराठी ग्रंथ बनाकर ।।४३।।
दासोपंत, राम दासादि । मुक्तेश्वर, मोरोपंतादि ।।
महाराष्ट्र के ग्रंथ-विधाता । गाते गीत, छंद अरु गाथा ।।४४।।
महासंत कवि परम्परा है । चरित ग्रंथ कोषादि भरा है ।।
समाज को मोड़ने सुपथ पर । लिखे ग्रंथ बहुतों ने सुंदर ।।४५।।
स्वामी विवेकानंद आदि ने । नये पुराने भ्रमों को हरने ।।
जलाये दीप ज्ञान ग्रंथों के । माध्यम से बहु भाषाओं के ।।४६।।

(दो.) **तत्व बोध जिन में सहज, ग्रंथ सोइ चुनि लेय ।**
कर्म काण्ड में नहिं बहे, तजे शुष्क पाण्डित्य ।।४७।।
अपन योग्यता समझ कर, समाज कर भी ज्ञान ।
ग्रंथ पढ़ो, आदर्श का, दें सरल रूप में ज्ञान ।।४८।।

(चौ.) तारतम्य हो ग्रंथ-पठन में । कौन ग्रंथ से क्या लें मन में ?
क्या है तजना, क्या आचरना। उन्नत करने जीवन अपना? ।।४९।।
सिर्फ ज्ञान की डींग हाँकने । अगर पढ़ लिये ग्रंथ किसी ने ।।
आत्मघात ही होवे आखिर । शांति नहीं मिल सकती तिल भर ।।५०।।
यदि ऊँचे अध्यात्म ग्रंथ हों । उनके लिये समर्थ बुद्धि हो ।।
और समझ कर्तव्य पंथ की । अर्जुन के सम एक लक्ष्य की ।।५१।।

पागलपन और संगतता विवेक

वर्ना ग्रंथ हजारों पढ़कर । मर्म समझ ही नहिं आवे गर ।।-
तब तो पढ़ना व्यर्थ गया वह । पागल सा ही काज भया वह ।।५२।।
पागल बातें बहुत बनाता । उनका अर्थ समझ नहिं पाता ।।
इसीलिये 'पगला' कहलाया । शब्द ज्ञान यों ही जग छाया ।।५३।।
जो भी बोले अपने मुख से । उस में संगति हो विवेक से ।।
मन से फिर वैसा ही बरते । 'मानव' सचमुच उसी को कहते ।।५४।।
जो बातों की झड़ी लगाता । नहीं एक पर भी टिक पाता ।।
कहते हम पागल उसको ही । चाहे पंडित हो कितना भी ।।५५।।
जन में घुसा यही पागल पन । तहस-नहस कर दिया धर्म धन ।।
हुशियार, भावमय दिखता है नर । खोजो तो लगा पागल पर ।।५६।।

(दो.) **कहे सुजन इक मिला जो, "सुनलो मेरी बात?**

ग्यान ग्रंथ बाहर बरस, पढ़ आया दिनरात ।।५७।।
ब्रह्मसूत्र, उपनिषद भी, गीता भागवत आदि ।
पढ़े, मगर नहिं ब्रह्म की, देखी ज्योति अनादि ।।५८।।
पारायण कितने करूँ, पाने ब्रह्मानंद ?
बता सकेंगे मर्म क्या, विशद रूप सानंद ?" ।।५९।।

(चौ.) मजाक किया मैंने भी उससे । कहा, ब्रह्म पाओगे कैसे ?
उसके खातिर छोड़ो पढ़ना । होगा ग्रंथोंकोहि कूटना ।।६०।।
बनाय उनका महीन चूरन । सुबह दूध में ले लो कुछ दिन ।।
दूध नहीं हो तो भी नुस्खा । चल सकता है बासे जल का ।।६१।।
भले आदमी ने घर जाकर । फाड़े ग्रंथ तुरंत सरासर ।।
कूटा खलड़ चूर्ण करने को । मोटी अकलहि उसकी देखो ।।६२।।
भिनसारे आ लगा पूछने । 'यह पीना पड़ता दिन कितने ? ।।
बता सकेंगे प्रमाण कितना ? कैसे किधर घोल कर पीना? ।।६३।।
मैनें कहा, बाह री बुद्धि ! हद अंधानुकरण की कर दी ।।
दौड़ोगे यों ही सोचे बिन । अनुभव फिर आयेगा किस दिन? ।।६४।।
अरे! तुझे यह समझ न आया? । ग्रंथ फाड़कर चूर्ण बनाया ।।
इससे कैसे ज्ञान की आभा । अनुभव में आयेगी बाबा? ।।६५।।

(मनहरण) वह बोले-"हमें क्या है? कोई कहे वैसा करें ,
किये रोज परायण, नियम ही बनायी है ।।६६।।
ब्रह्मसूत्र उपनिषद आदि पढ़े पर समझे नहीं
इसलिये बारबार पढ़ता रहा, टीका ग्रंथ खाली है ।।६७।।
अब पढ़ें कहाँ तक ? सोचा, आप ही से पूछूँ,
शंका लिये हिये आया? सुसंगति पा ली है ।।६८।।
आप बोले 'चूर्ण करो' किया घर जा के वही,
लेने आया आगे की सलाह जैसी भी उचित ।।६९।।

(दो.) बताएँ मुँह किस ओर हो?, तैसा करूँ अनन्त ।"
'वाह रे जन अंधानुचर! वाह रे श्रद्धावंत !! ।।७०।।
बाबा! मैंने भूल की, तुझ से किया विनोद ।
परखन तेरी बुद्धि को, छेड़ा उलट बोध ।।७१।।
ग्रंथराज पढ़ पढ़ मिला, कितना संगत ज्ञान ।
इस का तेरे कार्य से, हुआ मुझे अनुमान ।।७२।।

(चौ.) अंधानुसरण, रूढ़िबद्ध मति । ब्रह्म ज्ञान में उस की नहिं गति ।।
होय शुद्धता, अंतर्मुखता । तब उस मार्ग विलम्ब न लगता ।।७३।।
कहूँ इसलिये एक बात ही । ग्रंथ पढ़ें चरित्र सम्यक् ही ।।
जिस में होय कला जीवन की । उद्‌बोधक नित रहन-सहन की ।।७४।।
कब सोना है? कब उठाना है? कैसे स्नान-ध्यान करना है?
कौन जरूरी कर्म-आचरण ? बनने पुण्य-श्लोक महाजन ।।७५।।
कौन धारणा से हो उद्यम ? किससे कब उपदेश सुनें हम ?
तय फिर करें विचार शक्ति से । कितना लें? क्या छोडें ? कैसे ? ।।७६।।
यह अध्ययन शुरू में कर ले । तभी कर्तव्य में तत्पर होवे ।।
धीरे-धीरे अनुभव से ही । आगे राह ज्ञान भी होई ।।७७।।
ऐसे क्रम से ग्रंथ पढ़ोगे । तभी ज्ञान संपन्न बनोगे ।।
वर्ना पारायण करने से । क्या होगा रट-रट मरने से ? ।।७८।।

शास्त्र प्रतीति एवं गुरु प्रतीति

(दो.) अनुभव गुरु अरु शास्त्र के, निज अनुभव आधार ।
अनुभव से निश्चित यही, कहता सह अधिकार ।।७१।।
शास्त्र पठन जस संत कह, मानहु सो सद् ग्रंथ ।
पठन होय अधिकार से, तब जीवन फलवंत ।।७२।।

(चौ.) ग्रंथो का भण्डार बड़ा है । ज्ञानी अनेक मतहु नाना हैं।।
ऐसे में सोचें, उन में से । चुन लें किसे, समझ कर, कैसे? ।।८१।।
स्तर अनेक के ग्रन्थ अनेका । हर स्तर में, मतहु अनेका ।।
अपनी देख योग्यता उसमें । मार्ग कौन सा चुनना सच में ? ।।८२।।
यह चुनाव भी अपने ऊपर । समझ लेंय गर अपना स्तर ।।
इसे समझने का विवेक भी । है दर्शाया ग्रंथों में ही ।।८३।।
पढ़ा मूर्ख, या मूर्ख विवेकी । शुद्ध बद्ध, मुमुक्ष, साधक भी ।।
पात्रता भेद किये ग्रंथों में । उन्नति मार्ग दिखाये तिन में ।।८४।।
जकड़ा कौन रोग ने, किस को? वही जान ले, पहले उस को ।।
सोच समझ कर सबसे पहले । उसी रोग का इलाज कर लें ।।८५।।
पर जो स्वयं जान नहिं पावे । उसको मदद दूसरे देवें ।।
उस के लिए संत-सज्जन की । सलाह लेवें सिद्ध पुरुष की ।।८६।।
ग्रंथों में तो विषय सभी हैं । उपाय भी हैं, अपाय भी हैं ।।
ज्ञान अवस्था भेद न होवे । बाधक साधन ही बन जावे ।।८७।।

सोच न पाये जो अपने से । सो सत्संगति रहे भरोसे ।।
कुछ तो अपन मति के ही बल । पाते हैं आत्मानुभूति फल ।।८८।।

(दो.) **कुछ आये संस्कार ले, यहाँ रंगे कुछ सीख ।**
किसे संत-अनुभूति का, बोध न कुछ भी ठीक ।।८९।।
इससे पढ़ लें ग्रंथ वे, अर्थ समझ, चित लाग ।
अनुभवियों से जान लें, आगे के सो मार्ग।।९०।।

(चौ.) ग्रंथ महा भंडार भरा है । चुने जौहर रत्न खरा है ।।
सार तत्त्व देते साधक को । संत सुजन कर स्वयं परख को ।।९१।।
सार मूल में संत की वाणी । मार्ग दिखा जन तारे ज्ञानी ।।
ग्रंथ संत की शब्द-मूर्ति है । दिव्य ज्ञान की खान बनी है ।।९२।।
पर जब उस का अर्थ लगाते । भ्रम में सामान्य लोग पड़ते ।।
गर संदर्भ न जाने कोई । काल-भेद से अनर्थ होई ।।९३।।
देश काल अनुसार इसलिये । संदर्भ, अंतर-कथन होये ।।
प्रस्तुति सम्यक ग्रंथ-कथन की । जिम्मेदारी है संतन की ।।९४।।
साधु संत सागर अनुभव के । द्रष्टा भी हैं वे भविष्य के ।।
उद्धार जीव का कैसे होगा ? । उसके मित करना क्या होगा ? ।।९५।।
साधन देना किसे कौन से ? । सन्त जानते हैं स्वभाव से ।।
इसीलिए बतलाया हमने । गुरू कृपा से लाभ उठाने ।।९६।।

ग्रंथानुक्रम, आत्मसाक्षात्कार व ग्रंथाध्ययन की अनावश्यकता

(दो.) **कौन ग्रंथ किसके लिए? संत कह गये नीक ।**
सदाचार, नित नेम ही, पढ़लो पहले ठीक ।।९७।।
नियत समय सोवें, जगें, करलें सब निज काम ।।
किसे न देना जगत में, दुख निज स्वास्थ नाम ।।९८।।

(चौ.) स्वकर्म को पूरा जो कर सके । सेवा में दौड़े औरों के ।।
बढ़ता वही कार्य केवल पर । नाम, ख्याति अरु समृद्धि पाकर ।।९९।।
हों ऐसे विचार जिस में भी । पहले पढ़ ले पोथी वह ही ।।
सार तत्व में ध्यान लगा कर । बढ़ते जाओ उन्नति-पथ पर ।।१००।।
जो पूरा व्यवहार समझ ले । ज्ञान साधना सक्रिय कर ले ।।
समझे सोई पढ़ कर ग्रंथन । कौन ब्रह्म अरु कौन आत्मन? ।।१०१।।
पंचीकरण समझ ले पूरा । आत्म-अनात्म, ब्रह्म का ब्योरा ।।
जान लेय तो नहीं होय मन । भ्रम मिथ्या या आशा कारन ।।१०२।।

श्रवण, मनन अरु ध्यान तभी ही । सच्चा बढ़त जाय मन माहीं ।।
दर्शन के संकेतहु उस में । होंय तही फिर अपने मन में ।।१०३।।
साक्षात्कार ब्रह्म की ज्योति । होय आत्मानंद की प्राप्ति ।।
सब ही कर्म आत्ममय होवें । ब्रह्मरूप फिर स्वयमहि होवें ।।१०४।।
दृष्टि अंतर्मुखी हो गई । विषयी लिप्सा खत्म हो गई ।।
सहज समाधि की स्थिति उसकी । दिव्य हिलोरें सुख अखंड की ? ।।१०५।।
देव भक्त अलग वहाँ ना । सहज यही अनुभव से जाना ।।
संसारी भी तहाँ पहुँच कर । होत स्वयं की विश्वाकार ।।१०६।।

(दो.) ग्रंथ वाक्य से मन बना, अनुभव दे गुरु-बोध ।
मगन आत्मरूचि से हुई, तदाकार अविरोध ।।१०७।।
समाधान जो करे सो, ग्रंथ-ज्ञान तस बात ।
स्वयं होइ तो फिर वहां, ग्रन्थ पाठ केहि हेत ।।१०८।।

(चौ.) नहीं जनम का जहाँ हर्ष है । मरने का भी नहीं दुःख है ।।
स्थितप्रज्ञता रमे जीवन में । सोई कैवल्य रूप जग में ।।१०९।।
पाने सही पूर्ण सुख का धन । करें निरंतर ग्रंथ अध्ययन ।।
जीवन की पूर्णता अंत में । मिले उसी के मनन अमल में ।।११०।।
निज अनुभव ऐसा पाने को । यही मार्ग है हर साधक को ।।
पहले शुरू करें से सब ही । अवलोकन सद्ग्रंथों का ही ।।१११।।
पूर्व संस्कार उभर जाय गर । नहीं जरूर ये बातें फिर ?
राह आत्म अनुभव पर आगे । चल कर समाधान खुद पा ले ।।११२।।

आत्म-अनुभव-दिव्य-दृष्टि की नीव व्यवहार-उन्नति

आत्म अनुभूति दिव्य दृष्टि सो । व्यष्टि, समष्टि परमेष्टि जो ।।
अनुभव होवे अपन आप ही । अमित रूप पर एक भाव ही ।।११३।।
हो देवता, संत या मानव । पापी, पुण्यशील या दानव ।।
मूल रूप एकहि सब ही का । अनुभव हो चैतन्य विश्व का ।।११४।।
ऐसा अनुभव जिसने पाया । वह ही काम जगत् के आया ।।
हो व्यवहार उसी का व्यापक । सब के मित जो बने समर्थक ।।११५।।
इसीलिए पूरी जनता को । हों सद्ग्रंथ उचित पढ़ने को ।।
उनसे सबको मार्ग मिलेगा । विश्वरूप-दर्शन करने का ।।११६।।

(दो.) पर व्यवहार में योग्य न, करे बात अध्यात्म ।
ग्रंथ पठन एकांग गर, उलट पलटा काम ।।११७।।
सदाचरण पीछे रखा, प्रथम लिया वेदान्त ।
नाली पानी छत पर, चढ़ा रहे वे भ्रान्त ।।११८।।

(चौ.) 'ब्रह्म सर्व' की बात करे जो । पर मनमाने कर्म करे सो ।।
ऐसे शब्द ज्ञान से फैले । अधिक बड़ा भ्रम नास्तिकहू से ।।११९।।
दु:ख अग्नि में गाँव जलत है । घोष 'सच्चिदानंद जगत' है ।।
लोग कहेंगे स्वांग कर रहे । बहुरुपिये वे तरह तरह के ।।१२०।।
इसीलिए हो गाँव शुद्ध तहँ । सत्य, आनंद, प्रेम, ज्ञान जहँ ।।
सब को मिले साथ सहमति से । ग्रंथ गाँव में रख लें ऐसे ।।१२१।।
जीवन की हो सके उन्नति । ज्ञान और वैज्ञानिक प्रगति ।।
ऐसी ही हो ग्रंथ संपदा । गाँव-गाँव में सजग सर्वदा ।।१२२।।
सभी जान ले अपना कर्त्तब । कैसे होगा सब ही का शुभ?
सभी का विश्व में तन-मन-धन । कैसे फूले फले ? सुनें जन ।।१२३।।
एक मूल के रहवासी हम । जग-रचना है यह इक नाट्यम ।।
निज-निज अभिनय का रँग भर दें। नाटक सफल सही हम कर दें ।।१२४।।
जो स्वरूप यह समझ बरतता । जगत्-खेल में वही जीतता ।।
तुकड्या कहे, बताने यह ही । कही 'ग्रामगीता' यह भाई ! ।।१२५।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्रमत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
चालीसवें अध्याय में ग्रंथाध्ययन की दृष्टि है ।
गुरु-शास्त्र-आत्म प्रतीति भी, विश्वार्थ अमृत वृष्टि है ।।१२६।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

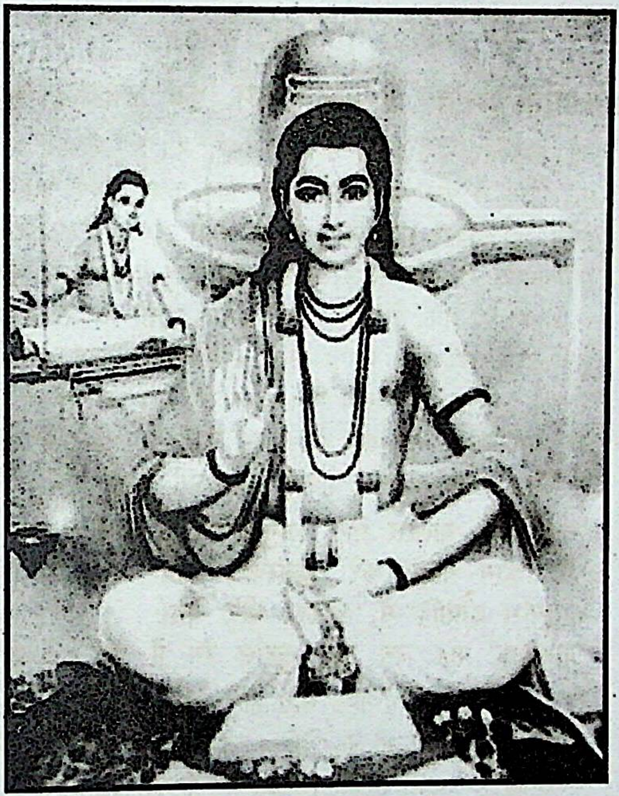

श्री गुरु ज्ञानेश्वर महाराज

इकतालीसवाँ अध्याय

ग्रंथ–महिमा

।।श्री गुरु देवाय नमः।।

ग्रामगीता–प्रभाव, ग्रंथपठन–मर्म एवं आचार–महत्त्व

(चौ.) व्यापक ईश्वर सभी विश्व में । है इससे जग ही देव हमें ।।
मूल घटक है गाँव विश्व का । तेहि हित कथन 'ग्राम–गीता' का ।।१।।
इसमें जयजयकार ग्राम का । ग्रामहि मैका सब तीर्थों का ।।
ग्राम विश्व की नीव मनोहर । ग्राम नाश तो प्रलय जगत् कर ।।२।।
सेवा सब की एक रीति से । वही हमारा पूजन मन से ।।३।।
सेवा वचन रूप गीता यह । करती सुसंस्कार को दृढ़ वह ।।
जिससे प्रभु का राज्य गाँव में । बना रहे नित जन–सुभाव में ।।४।।
हरे 'ग्राम गीता' दुख सब ही । ग्राम गीता मृत्यु पर हँस ही ।।
सहकारी भावना बढ़ावे । पुष्पित मानव धर्म बनावे ।।५।।

(दो.) **'मंडल' या चालीस दिन, अनुष्ठान कहुँ भिन्न ।**
गाँव 'ग्राम गीता' करे, सुसंस्कार–संपन्न ।।६।।
चातुर्मास इत्यादि में, मंदिर, चौरे बैठ।
'ग्रामगीता' सब जन पढ़े, हुलसि रंग में पैंठ ।।७।।

(चौ.) ऐसी रखें भावना पर ना । अर्थ हीन पारायण करना ।।
समझ न आये फिर भी बहु बिधि । जायेगी बढ़ उनकि पुण्य निधि ।।८।।
मैं समझूँ यह भ्रांति हमारी । पढ़ो अंधता तज कर सारी ।।
ग्रंथ पठन जब करके देखो । अर्थ ज्ञान ही पहले सीखो ।।९।।
पहला लक्षण यह महत्त्व का । हो ज्ञान पढ़ने की कला का ।।
पढ़त ग्रन्थ जो समुझत जावे । उत्तम बोध तत्व का पावे ।।१०।।
मित्र मंडली अगर बिराजे । बात हमारी वे भी समझें ।।
वर्ना पाठन–पठन जो किया । कोउ न समझे तो मतलब क्या? ।।११।
'क्या पढ़ता हूँ' ज्ञान इसी का । जहाँ न हो वाचक को पूरा ।।
श्रोता खिसकेंगे चुपके से । लाभ कौन ऐसे पाठों से ।।१२।।

(दो.) **वाचक रुक जाये कहाँ ? कहाँ पढ़े दे जोर?**
कहाँ भरे गंभीर रंग ? इसका जाने तौर ।।१३।।

यह सब जाने बिन करें, यदि पारायण लाख ।
ध्यान न अर्थ प्रवाह का, वह पढ़ना क्या खाक? ।।१४।।

(चौ.) पढ़त-पढ़त हो बोधहु मन में । उठे स्फुरण भाव अँग-अँग में ।।
अंतर संकल्प उठे उसके । सुकर्म करने का दृढ़ता से ।।१५।।
पहले अस वाचन हि सिखावे । तब ही ग्रंथ-पठन करवावे ।।
वाचक खुद अधिकारी बनकर । निज को चले परखता भीतर ।।१६।।
पाठक हो आचारशील जब । प्रभाव श्रोता पर होगा तब ।।
वर्ना होगा मजाक उसका । बिन आचार प्रचार न बस का ।।१७।।
मुख से करे ग्रंथ का वाचन । घर में उलटा करे आचरण ।।
फिर जनता भी हँसी उड़ा कर । नकल उतारे उस की बाहर ।।१८।।
मुख से कहता सत्य बोलना । नहीं सत्य आचरण ठिकाना ।।
खुद को 'सत्यवान' कहलावे । ग्राम जनों को क्यो वह भावे ? ।।१६।।
धन पर साँप बना बैठा हूँ । 'दानवीर' का गौरव चाहूँ ।।
कैसे माने गाँव में कोई ? । हमें बताओ तुम ही भाई! ।।२०।।
नहीं अतिथि को देगी पानी । कहे 'कहो दानी बड़ रानी' ।।
उसकी बात किसे क्यों भावे । डंका कितना क्यों नं पिटावे ।।२१।।
पान तँबाकू आये खाकर । प्रवचन, कीर्तन शाला में गर ।।
छोडो व्यसनन भाषण देंगे । क्यों नहिं श्रोता, छात्र हँसेंगे ? ।।२२।।

(दो.) **पंडित बैठा जीमने, 'शांतिपाठ' कियगान ।**
देर परसने में हुई, तिय को मारन लाग ।।२३।।
'धन्य शांति यह!' तिय कहे, मंत्र का श्रुति फल धन्य!'
दिव्य वचन मुख में मगर, क्रूराचार जघन्य! ।।२४।।

(चौ.) ऐसा न हो कहीं अब आगे । पाठक, वक्ता, शिक्षक चाहे ।।
है सब ही पर जिम्मेदारी । आत्म शुद्धि की पहले भारी ।।२५।।
सदाचार उपदेशक, वाचक । तब ही भाव फलेगा सात्विक ।।
होगा सही हृदय-परिवर्तन । श्रोताओं का सहज उसी क्षण ।।२६।।
वक्ता हो यदि सीधा, सात्विक । तब ही श्रोता बनते भावुक ।।
उन दोनों के भाव देख कर । करें प्रशंसा जनता खुल कर ।।२७।।
एकहि बात बड़ों को करना । जैसा कहना वैसा रहना ।।
तब ही होगा प्रभाव उनका । शुभ कल्याण ग्राम जीवनका ।।२८।।

पारायण प्रयोजन एवं उसका विपर्यास

(मनहरण) *श्रोता कहे, आप देते अर्थ, आचार को मोल,*
'पारायण है फलदायी' कई ग्रंथ बोलते ।।२९।।
कोई बोले 'पारायण करो मिले पुत्र-धन,
ग्रंथ पारायण द्वार भाग्य के भी खोलते' ।।३०।।
कोई बोले 'मंत्र जपो हजारें संकल्प कर,
पढे बिना ज्ञान मिले राह इसी से चलते' ।।३१।।
कोई बोले 'भागवत ब्रह्मसूत्र अनुष्ठान,
सिर्फ सुनो, आवे मोक्ष घर को टटोलते' ।।३२।।

(दो.) **कोउ कहे जहँ ग्रंथ घर, तहाँ न आवे काल' ।**
मेल होय कैसे यहाँ ? है कैसा जंजाल ? ।।३३।।

(चौ.) सुन लो सुजनो! उत्तर इसका । आकर्षण भर है फल श्रुति का ।।
ग्रंथों का हो प्रसार घर घर । दिये प्रलोभन इस से सुंदर ।।३४।।
एक सहज अच्छाई इस में । लोग सहेजें ग्रंथ घरों में ।।
लाभ उठावे तस कोई भी । थोड़ा-बहुत समय-असमय भी ! ।।३५।।
'एक वचन भी कान पड़े गर । वह होता है महा पुण्यकर' ।।
यह जो कहते गये श्रेष्ठ जन । भरने मन में ग्रंथाकर्षण ।।३६।।
गाया पारायण का महत्व है । उसमें भी बस यही तत्त्व है ।।
जो संस्कार आज पड़ जायें । आगे कभी अमल में आयें ।।३७।।
अप अरु अनुष्ठान बतलाया । शुद्ध करे जीवन की माया ।।
क्रम से उतने दिन तो भी मन । करेगा निश्चित शुद्ध आचरण ।।३८।।
इसमें मैं यह सब मानूँ पर । जापक एकांगी जीवन भर ।।
लाभ इसीसे बहुतेरों के । हाथ न आते कुछ भी करके ।।३९।।

(दो.) **'जल दिखलाओ अश्व को', आज्ञा पालन होय ।**
पानि पिलाना नहिं हुआ, होवे जन में सोय ।।४०।।
महा ग्रंथ बहु विध पढ़े, चले न वैसे रंच ।
फिर किस मुँह से माँग लें, फल उन का अपरंच ? ।।४१।।

अवास्तव ग्रंथों के विपरीत फलों का कारण

(चौ.) अवास्तविक कुछ ग्रंथ स्वयं ही । जिसे छिपाना संभव नहीं ।
फल उन का नहिं मिले हाथ में । तहस-नहस हो श्रद्धा उन में ।।४२।।

अमित फल श्रुति कही ग्रंथ में । पर नहिं अनुभव जरा अंत में ।।
राम कहानी ऐसी भाई! हमें हजारों ने बतलायी ।।४३।।
ग्रंथों में है फल-श्रुति सुख की । पढ़ते पोथी सकाम उनकी ।।
आलसी भोले उन से खिंचते । दान आदि से संकट पड़ते ।।४४।।
कोउ किसे बतलावे साधन । 'स्वर्ण दान से करो समापन' ।।
ऐसे व्रत हैं घर-घर होते । नारी नर हैं भ्रान्ति में पड़ते ।।४५।।
विविध व्रतों की कहानियाँ सुन । कहते 'करो दान-उद्यापन ।।
वर्ना होगी प्राप्त अधोगति' । धाक बताते जनता के प्रति ।।४६।।
कुछ तो उदर निमित्त सदा ही । जहाँ तहाँ बाँचत हैं पोथी!
आखिर कहें 'ग्रंथ सोने का । अर्पण कर, प्रसाद लो प्रभु का' ।।४७।।

(दो.) जन भी लोभी बावरे, कुछ भी कह दे कोय ।।
करने व्रत सब दौड़ते, पागल से मति खोय ।।४८।
फल न मिले, चिढ़ कर कहें, 'क्या चाटूँ ये ग्रंथ ?
रोजाना कितना पढ़ें ?, फिर भी पुत्र न होत! ।।४६।।

(चौ.) स्वास्थ्य नियम दम्पति नहिं पाले । मन्नत नाना भांति मनाले ।।
इससे क्या हो सकता बाबा? फल अनरीति न लगता बाबा! ।।५०।।
प्रदक्षिणा गूलर की कर लो । पर आचार जरा न सुधरलो ।।
करते जाओ गरिष्ठ भोजन । क्यों न जलद हो रोग आगमन? ।।५१।।
कलकत्ता की चढ़े रेल पर । कहें 'प्रभो! ले चल पंढरपुर' ।।
वे सिर पैर प्रार्थना ऐसी । बोले सफुलित होगी कैसी? ।।५२।।
करी गाँव में किसी ने चोरी । कहत 'दसा साढ़े साती की' ।।
'शनि-महात्म्य' पोथी पढ़वाए । परंतु चोरी नहिं छुडवाए ।।५३।।
पडा अंत में हाथ पुलिस के । खड़े हुए हैं गवाह उस के ।।
अब वह पूछे अपने गुरु से । 'साधन कह दो छूटूँ जिस से' ।।५४।।
लालची लोभी गुरू मिल गया । "शनी देव की पढ़ो किताबिया ।।
श्रद्धा से 'हनुमान चालिसा' । 'शिवलीलामृत' गा ले वैसा ।।५५।।
पढ ले 'देवी पुराण' पावन । कथा कर दे 'सत्य नरायण' ।।
स्वर्णदान हम को भी देना । रिहा तुरत फिर निश्चित होना" ।।५६।।
उसने किया सभी उस भांति । विधि पूर्वक पढ़ ली हर पोथी ।।
ब्राह्मण-जोशी धन लुटवाया । दण्ड न कोई अंतर आया ।।५७।।

(दो.) पड़ा जेल में तब कहे', पाजी गुरु शैतान !
फजीहत की मेरी सोई, लूटा सब धन-मान ।।५८।।
ग्रंथ नियम विधि से पढ़े, पर न टल सकी जेल ।
ग्रंथ झोंक दो भाड़ में, देव धर्म सब खेल' ।।५९।।

(चौ.) बिचारा सो चोरी नहिं त्यागे । किन्तु साधना गुरु से माँगे ।।
लाख ग्रंथ गुरु क्या कर लेंगे? गर साधक ही होंय लफंगे ।।६०।।
करें जनम भर अस साधन जो । रहे मूर्ख के मूर्ख मनूज सो ।।
पतन होय उपदेशक का भी । फीके पड़े साधन उसके भी ।।६१।।
क्यों कर ऐसा करना भाई! खोज सत्य आचरो सदा ही ।।
हम डूबें औरों को डुबा दें । ऐसा स्वार्थ नहीं चलने दें ।।६२।।
तर्क पूर्ण उपदेशक बोलें । चलें सत्य पर करने वाले ।।
तब ही फल अनुभव का मिलता । दुनिया में ऐसा ही होता ।।६३।।

ग्राम गीता की साक्षात् फलश्रुति : उसकी सजग साधना

(दो.) रची 'ग्राम गीता' यही, दृष्टिकोण ले नीक ।
करे कामना पूर्ति यह, किस बिधि सुन लो ठीक ।।६४।।
शब्द बाण है प्रखर यह, पाठक-मन ले भेद ।
छेनी मूरत के गढ़े तैसेइ वाचन बोध ।।६५।।

(चौ.) 'ग्रामगीता' न पारायण को । पढ़ते राह दिखावे जन को ।।
देती बदल समूचा जीवन । सही अर्थ उस का समझे मन ।।६६।।
'ग्रामगीता' नहिं पुष्पहार को । ग्रामोद्धार दृष्टि दे सब को ।।
संजीवनी जनहि जीवन में । यही 'ग्रामगीता' इस युग में ।।६७।।
केई दुख से झुलस गया है । संसार ताप से तप्त हुआ है ।।
संकट में सहाय जो होवे । धीरज उन्हें 'ग्रामगीता' दे ।।६८।।
त्रास करे अन्यायी कोई । गीता राह पर लाये सोई ।।
सबही का देवत्व जगाये । जिनसे विश्व दिव्य बन जाये ।।६९।।
इस से शुभ संस्कार बनेंगे । चरित्र बलयुत मानव होंगे ।।
यहाँ वताये जो भी उद्यम । वे कर पा लें सौख्य शांति हम ।।७०।।

(दो.) अल्प बुद्धि का विलय हो, पढ़ते होगा ज्ञान ।
जीवन उज्ज्वल हो मिले, सही धर्म की शान ।।७१।।
प्रेम एक से सर्व मय, ले कर ग्रंथ विचार ।
सर्व भूत करूणा खिले, यह ही फल श्रुति सार ।।७२।।

(चौ.) अज्ञान द्वेष बुद्धि जनित सब । पढ़त 'ग्रामगीता' भागे अब ।।
सत्कार्यो की उमंग मन में । सक्रिय होती अनुष्ठान में ।।७३।।
करे 'ग्रामगीता' पढ़ चिंतन । आत्मज्ञान का उसे मिले धन ।।
आचरण करे उस पर जो कोई । संत दृष्टि पावे तब सोई ।।७४।।
ग्रंथ 'ग्रामगीता' पढ़ता हो । वैसी कृति करने बढ़ता हो ।।
उसे गाँव में कहीं न कोई । शत्रु दिखेगा बचा हुआ ही ।।७५।।
बढ़े सामुदायिकता वृत्ति । सभी गाँव उस की सम्पत्ति ।।
यों आदर्श मनुज की मूर्ति । गढ़े 'ग्राम-गीता' की स्फूर्ति ।।७६।।
जो उद्योग 'ग्रामगीता' में । चित्त लगाए जो भी उस में ।।
हो भरपूर सहज उस का घर । धन धान्यहु से सुखद निरंतर ।।७७।।
जो आरोग्य पाठ ही पढ़ता । झाडू हाथ उठाये बढता ।।
उस के रोग भोग का निर्णय । हुआ उसी क्षण समझो निश्चय ।।७८।।
कार्य उठाया गीता प्रिय जब ।हुआ फल श्रुति शुभारंभ तब ।।
सुनते ग्रंथ चरित्र सुधरता । अर्थ जो ध्यान में उसका रखत ।।७९।।

(दो.) 'गीता' पढ़ एकान्त में, अर्थ-मनन कर खास ।
जीवन क्या, घरबार में, तब आनंद-प्रकाश ।।८०।।
स्फूर्ति कीर्ति से गाँव में, चमके घर आदर्श ।
फिर बरतेंगे ग्राम जन, सब उस भाँति सहर्ष ।।८१।।

सामुदायिक फल प्राप्ति का प्रत्यक्षानुभव

(चौ.) कितना भारी लाभ हुआ यह! सब पाये जनु स्वर्ग सुखावह ।।
पढ़ी 'ग्रामगीता' पथ पाया । अपन गाँव आदर्श बनाया ।।८२।।
'ग्रामगीता' फल नहीं एक को । एक समेत गाँव पूरे को ।।
पढ़े ग्राम गीता तस बरते । ग्राम निवासी वे उद्धरते ।।८३।।
पढ़े उचित जो इक-इक साधन । वैसा ही यदि करे आचरण ।।
उसका कितना लाभ मिलेगा । इसे न कोइ बता सकेगा ।।८४।।
गीता में संस्कार की रचना । उपासना की तत्व योजना ।
ग्राम सुधार, ग्राम की रक्षा । आदर्श होय ग्राम की रचना ।।८५।।
विविध कलाओं की शुभ उन्नति । कृषि सुधार, निष्ठा श्रम के प्रति ।।
होवे ज्ञान सुविद्या महिमा । विकास पावे जीवन सुषमा ।।८६।।
सामूहिक प्रार्थना की प्रथा । राम धुन संतोत्सव की व्यवस्था ।।

एक लक्ष्य मित साधन संपद । उपयोगें, मिले शांति निरापद ।।८७।।
गाँव में गौ गोरू की सेवा । 'गीता' पढ़ कर देंय बढ़ावा ।।
दही दूध की कमी कभी भी। पड़ सकती नहिं निश्चित यह भी ।।८८।।

(दो.) **विवाहदि संस्कार सब, होंगे सुखद अपार ।**
सुधार पिछड़ों का करे, अपन राष्ट्र उद्धार ।।८६।।
आदर्शहि तिय सुत बनें, पढ़ घरमें यह ग्रंथ ।
उसी का वाचन आचरण, करे गाँव वैकुंठ ।।६०।।

(चौ.) गाँव भिखारी, बेकारी ना । सत्ता बंधन भी किस पर ना ।।
सभी समझदारी सीखेंगे । जहाँ 'ग्रामगीता' पढ लेंगे ।।६१।।
पूर्ण स्वास्थ्य होंगे सब ही जन । झगड़ा गाँव में रहे रंच न ।।
हथकंडे, अन्याय, व्यसन सब । होंगे द्वेष आदि भी गायब ।।६२।।
होय गाँव में सही संगठन । शक्ति मिलेगी सब ही के मन ।।
रचना 'विश्व कुटुम्ब' भाव की । जीवन निधि सो बने गांव की ।६३।
स्वर्गतुल्य सब गाँव बनेंगे । स्त्री पुरुष सुखी सब होंगे ।।
हर घर में परमार्थ भावना ।से होवे आनंद जीवना ।।६४।।
जो जो इच्छा दिल में आवे । ग्राम देवता सभी पुरावे ।।
श्रोताओ! वक्ताओ ! इन में । जरा नहीं शक मेरे मन में ।।६५।।
अधंश्रद्धान यहाँ जरा कुछ । अनुभव मिले सामने में सच ।।
यहाँ निकलते शब्द सहज जो । वे प्रभु को प्रिय निश्चय समझो ।।६६।।

ग्राम गीता : ईश्वरीय आवाज व संत कृपा दान

(दो.) **नहिं पंडित, नहिं लक्ष्य है, दिखलाना पांडित्य ।**
प्रकट हुई प्रभु प्रेरणा, ग्रंथ रूप से सत्य ।।६७।।
मेरी बालक वृत्ति में, स्फुरित हुए गुरु देव ।
भीमा तट गूँजी गिरा, की लिपि बद्ध तथैव ।।६८।।

(चौ.) ज्यों जड़ जीव वेद भी बोले । पंगु हिमाचल लाँघे डोले ।।
त्यों मैं मानूँ यह प्रभु माया । दास से गीता कथन कराया ।।६६।।
इससे फिर फिर करूँ प्रार्थना । यह मेरी आवाज सत्य ना ।।
इस तन का यह शंख बजा कर । निकालता भगवंत सही स्वर ।।१००।।
सक्रिय रूप भगवद् गीता का । स्वयं आप ही प्रकटा है यह ।।

अर्जुन सम हो महा प्रतापी । सब ग्रामीण, देख जग व्यापी ।।१०१।
गीता-बोध दिया अर्जुन को । 'ग्रामगीता' सब ही ग्रामों को ।।
पिछड़ा रहे गाँव नहिं कोई । एहि कारण प्रभु ने यह गायी ।।१०२।।
मै तो बालक सा ही निर्भर । लिये संत-आशीष सीस पर ।।
तभी ढीठ वाणी यह निकली । गूँज उठी सो देह-बाँसुरी ।।१०३।।
श्री ज्ञानेश नाथ गुरु माई । जिनकी कृपा दृष्टि की छाँही ।।
परम्परा से सफल हुई है । बनी 'ग्रामगीता' वह ही है ।।१०४।।
चित्र, सुनाम 'ग्रामगीता' में । उन सब संतों के वर थामें ।।
श्रद्धा से मान लूँ यही सत् । फले 'ग्रामगीता' सुर तरु वत् ।।१०५।।
मेरा हृदय 'ग्रामगीता' ही । सद्गुरु नाथ असे जिस माँही ।।
प्रकाशमय यह बोध उन्हीं का । कर दे दीप्त गाँव को नीका ।।१०६।।

ग्राम गीता, पंडित जन व पाठकों का कर्त्तव्य

(दो.) शब्द रचना है गाँवली, यह मैं जानूँ आप ।
दोष सभी मेरे यहाँ, गुण सब बड़ों के नाम ।।१०७।।
गंगा जल है रेत में, मधुर, पापहर, साफ ।
उचित जान त्यों लें उसे, श्रोता, पाठक आप ।।१०८।।

(चौ.) पिछड़े ही हैं गाँव हमारे । भाषा कठिन गर वहाँ उचारे ।।
लोग कहें 'कुछ समझ न आये । पंडित जी ! कुछ अर्थ बताए' ।।१०९।।
घर घर पंडित कहाँ पड़े हैं? जो हैं वे भी तो बिगड़े हैं ।।
हैं सब लगे पेट पालन में । नौकर बन कर धनिक घरों में ।।११०।।
जो भी कोई भले बचे हैं । रूढ़ि के भ्रम में कई फंसे हैं ।।
बोलेंगे यह 'ग्रंथ का उपक्रम । वेद के बाहर अधर्म, विभ्रम' ।।१११।।
विद्वत-रत्न सही हैं कुछ तो । सब ही पंथ-पांतियों में सो ।।
दिल से मैं मानता, उन्हें यह । प्रमाण होगा ग्रंथ निराग्रह ।।११२।।
पंडित उसको ही मानें हम । जो हों सात्विक सहज संत सम ।।
तिन मुख शब्द सहज स्वीकारें । जो निश्चय ही गाँव सुधारें ।।११३।।
कहीं न ढूँढों पंडित कोई । वाचक चुन लो स्व गाँव में ही ।
सदाचार, ईमानी, सात्विक । सुबुद्ध, प्रेमी, कार्य विधायक ।।११४।।
जो भी ग्रंथ प्रेम से पढ़ता । हल से खेत जोतने बढ़ता ।।
वक्त पड़े सेवा हर कोई । करता ग्राम जनों की भाई! ।।११५।।

ऐसा हो गर किसी जाति का। किसी देश का, धर्म-पंथ का ।।
ग्रामोन्नति की जिसे लगन हो। हमें मान्य वह जो सज्जन हो ।।११६।।

(दो.) मेरा कहना यह नहीं, गीता पंडित नहिं पढ़े ।
अड़े न पर उसके बिना, वाद फिजूल का न बढ़े ।।११७।।
कथाकार, पंडित विबुध, पढ़ें, अवश्य सुजान ।
जिम्मेदार समाज के, दें सबको सच ज्ञान ।।११८।।

(चौ.) अध्यापक गाँव में बिचारी। पढ़े 'ग्रामगीता' वे पूरी ।।
सब को ठीक तौर समझावें। छोटे बड़े इकट्ठे आवें ।।११९।।
वृद्ध युवा बालक भी श्रोता। हरेक बाला, युवती, माता ।।
पिछड़ों को भी खास बुलावें। क्रम से उन्नति पथ पर लावे ।।१२०।।
जो नारी नर होवें साक्षर। उन्हें प्रार्थना विनम्र सादर ।।
पढ़ो 'ग्रामगीता' समझाओ। निरक्षरों को अर्थ बताओ ।।१२१।।
जो न पढ़े यह ग्रंथ समझ कर। 'पिछड़ा रहे गाँव' चाहत गर ।।
वह तो बढ़े अधोगति पथ से ।। पाप न टले कभी दुर्मति से ।।१२२।।
बिगाड़ करना यही पाप है। कुमार्ग धरना बड़ा पाप है ।।
गरीब लोगों के बने शोषक। बड़े बने रहना ही पातक ।।१२३।।
ऐसा कभी न हो पाठक से। जो लें ज्ञान 'ग्राम गीता' से ।।
वैसा चलें, चलावें आगे। जलते बाधक दोष अभागे ।।१२४।।

(दो.) ग्राम गीता का बाँचना, पैसा दे न कराय ।
दान दक्षिणा मिले सब, ग्राम के लाभ लगाय ।।१२५।।
ग्रंथ 'ग्रामगीता' सुघड, सुधरे गाँव-चरित्र ।
प्रचार घर घर सब करो, बन कर स्वयं पवित्र ।।१२६।।

(चौ.) जो हों मेरे सखा सनेही। प्रसार करें जन माँही ।।
घर घर कर दें प्रचार निर्मल। पठन 'ग्रामगीता' का मंगल ।।१२७।।
प्रतियोगिता 'ग्रामगीता' नित। याद सूत्र सब को हों समुचित ।।
दे प्रमाण गलती बिन चूके। अपने ही सब लोग समझ के ।।१२८।।

ग्रंथ-गौरव तथा अमोघ फल

होय 'ग्रामगीता' जिस के घर। खोल अचानक देखे भीतर ।।
पढ़े उसे जो पड़े सामने। निदेश ग्राम देव का जाने ।।१२९।।

पर इसका अपमान नहीं हो । बिचार पूर्ण तर्क संगत हो ।।
समझ न आवे उसे समझ लें । जानकार से प्रश्न बुझा लें ।।१३०।।
सदुपदेश का लाभ मिला है । समझो शुभ दिन आज खिला है ।।
जान 'ग्रामगीता' वचनों को । बरतो वैसे साधु गुणों को ।।१३१।।

(दो.) **प्रथम सुनो गीता-वचन, दृढ़ मन आचरणाय ।**
कार्य करे संकल्प से, स्वर्ग गाँव हो जाय ।।१३२।।
पहले श्रद्धा से पढ़े समझे तस मन्तव्य ।
चलत फिरत जो भी करे, होवे ग्राम हिताय ।।१३३।।

(चौ.) समाधान मेरा इतना ही । होय सुधड़ गाँव जीवन भी ।।
पाखंड पूरा मतलबियों का । पिघल जाय सब, रहे न तिनका ।।१३४।।
वाद भेद सब मिट जायेंगे । रिश्ते शुद्ध प्रेंम के होंगे ।।
सभी जनों को सभी रूप में । हो आनंदानुभूति मन में ।।१३५।।
असुरत्व और पशुत्व जलेगा । देवत्व हि मानव में उभरेगा ।।
रूढ़ि रहित होगा सबका मन । शुद्ध तत्व संचारित जीवन ।।१३६।।
देगा साथ निसर्ग समय पर । फल फूलों से वन जावें भर ।।
जलमय होंगे नदी, सरोवर । पर अपनी सीमा के भीतर ।।१३७।।
स्वास्थ्य बनेगा सब का भूषण । अज्ञान, गरीबी, कमी शेष न ।।
हीन दीन कोई न रहेंगे । खल-दुर्जन भी कहीं न होगे ।।१३८।।

(दो.) **समाज-रचना समानता, सब को देवे शांति ।**
नई प्रेरणा प्रगति की, ला दे जग शुभ क्रांति ।।१३९।।
शोषण या शासनहु के, बंधन सब गलि जायँ ।
नहीं शत्रु का आक्रमण, स्वयंपूर्ण हो गाँव ।।१४०।।

(चौ.) दास बनेंगे त्रिविध ताप भी । मिटे बैर, उद्वेग, पाप भी ।।
स्वर्ग रूप यों गाँव बनेगा । तब ही विश्व शांतिमय होगा ।।१४१।।
इच्छा यह ही देव गणों की । यही संत ऋषियों के मन की ।।
ऐसे गाँव में जो बस पायें । क्यों कर वन में जाना चाहें ? ।।१४२।।
उलटे छोडें स्वयं संत जन । आत्म स्थिति, भावमय कानन ।।
इन गाँवों में आकर देना । जीवन मुक्ति सुवैभव अपना ।।१४३।।
संत-बोध से सुधर्म नीति । सत्संगति से सेवा भक्ति ।।
सत्-प्रभाव से शांति-शक्ति भी । बनी रहे तहँ सर्व काल ही ।।१४४।।

यही 'ग्रामगीता' के फल की । संकल्प पूर्ति कर संत विभूति ।।
यही वरद सज्जन हो वाणी । बोल गया मान में जग दानी ।।१४५।।
खड़ा सदा वह विश्व ईंट पर । है सद्गुरु विट्ठल सर्वेश्वर ।।
विस्तार हुआ है उसी कृपा का । तुकड्या कहे, ग्रामगीता का ।।१४६।।

(हरि.) इति ग्राम गीता ग्रंथ की एकेक खिलती है कली ।
परतीत गुरू की, शास्त्र मत, आत्मानुभव-संमत भली ।।
लेते रहें नित लाभ सब, ग्रामीण पढ़ इस ग्रंथको ।
करके समर्पित है किया यह विश्वरूप अनंतको ।।१४७।।

।। सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।।

नया संदर्भ

डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा

पूरी ग्राम गीता पढ़ने के बाद अग आपसे कोई एक सवाल पूछ दे कि 'भाई जी, आपने जिस ग्राम की गीता का पारायण किया है उसमें यह गाँव क्या है हमें समझा दीजिये ?" तो आप अगर अपना आपा खो बैठें तो कोई अचरज की बात नहीं होगी । कहेंगे, कोई खफ्ती है वर्ना ग्राम यानी गाँव, यही हमारे गाँव को कौन नहीं जानता है? शहर बाजार और सरकार में भी कहा जाता है कि भारत गाँवों में वसता है । देश में सब मिलाकर लगभग ७ लाख गाँव है । किसी गाँव में कोई अजनबी पहुँच जाय तो उससे पहला सवाल यही होता है कि 'कहाँ के रहवइया हो?' घर में भी बहुओं के नाम नहीं लिये जाते हैं। 'गोगेपुर वाली' या 'सपहा वाली' संबोधन जिन्दगीभर चलता रहता है । महाराष्ट्र में तो कई लोगों के उपनाम उनके गाँव से ही चलते है जैसे नारलीकर या लपालीकर । ऐसे में 'गाँव क्या है?' जैसे सवाल की बात बेतुकी है ।

१. गाँव समाज

ग्राम गीता में उसी ग्राम या गाँव की बात कही गई है जिसे हम सब जानते है । यह हमारा चिरपरिचित गाँव सिर्फ एक भौगोलिक इकाई नहीं है । उसके सीमाने के साथ जनजन की आस्था और समाज की संरक्षक दैवी शक्ति, ग्राम देवता की कल्पना वास्तविक से भी अधिक वास्तविक है । यही नहीं, गाँव उस बस्ती में रहने वाले सभी लोगों के बीच सामाजिक और आर्थिक रिश्तों का ताना बाना भी है । उसमें अनेक जातियाँ भी हो सकती है । जातियों में अन्दर और सभी जातियों के बीच भी आपसी सामाजिक और आर्थिक रिश्ते होते हैं । परंतु जाति, धर्म, व्यवसाय इत्यादिपर आधारित इन संबंधों से ऊपर समूचे गाँव समाज के रिश्तों की अपनी एक अलग पहिचान है । यह पहिचान **'गाँव की बेटी'** के स्नेहमय आत्मीय संबंध में सहज ही दिखाई देती है । इस तरह जिस गाँव समाज की परिभाषा न हो सके, जिस गाँव से उसके निवासियों की पहिचान हो, उसे स्वयंभू कहना ही युक्तिसंगत और उचित भी होगा ।

नैसर्गिक अधिकार

किसी भी सामाजिक व्यवस्था का सबसे महत्त्वपूर्ण स्वाभाविक गुण यही होता है कि उसमें समाज के लोग अपनी व्यवस्था स्वयं चलाते हैं । गाँव समाज अपनी व्यवस्था अपनी परंपराके अनुसार चलाता है । यह परम्परा भी समाज को विरासत में मिलती है। समय के अनुसार उसमें बदलाव होना स्वाभाविक है । इस बदलाव के बारे में कोई भी फैसला बहुत करके समाज का अपना होता है। **परम्परा एक बहती नदी के समान है जो नित नया रूप लेती हुई आगे चलती जाती है ।** वही उसकी जीवन्तता की निशानी है। इस सहज बहावके रुक जाने पर परंपरा रूढ़ि बन कर पोखर के बंद पानी की तरह गंदली हो सकती है। इस तरह अपनी परंपरा के अनुसार अपनी व्यवस्था करना समाज का स्वाभाविक गुण है।

उसे समाज का नैसर्गिक अधिकार भीं कहा जा सकता है क्योंकि उसके बिना समाज, समाज नहीं रह जायेगा । परम्पराहीन समजा की अस्मिता की बात अर्थहीन हो जाती है ।

मानव समाज के इतिहास पर अगर हम नजर डालें तो शुरुआती दौर में लम्बे समय तक छोटे छोटे मानव समूह आखेट करते हुए या पशु पालकों के रूप में विचरते हुए अपनी जिंदगी चलाते रहे हैं । एक जगह के संसाधन कम हुए तो आगे बढ़ गये । हमारे देश में आज भी आखेट या पशुपालन करनेवाली अनेक जनजातियाँ है जैसी अंदमान के जारवा, झारखण्ड के बिरहोर या कश्मीर के गुज्जर और बकरवाल । स्थायी खेती के लिये एक जगह पर बसने के बाद उन समाजों की पहिचान उनके उस रहवास या खास इलाके से जुड़ती गई जो उनकी जिन्दगी का आधार है । क्षेत्र विशेष के संसाधनों पर उनके उपयोग के लिए एकाधिकार की भावना घर में चूहों से लेकर जंगल के राजा शेर तक में स्वाभाविक है । संसाधनों के उपयोग का यह विशेषाधिकार समाज की जिन्दगी का आधार है । इसलिये संसाधनों पर समाज के अधिकार को समाज की स्वाभाविक स्थिति और नैसर्गिक अधिकार कहा जाना ही उचित है ।

पुरातन काल से ही समाज की मान्यताओं के आधार पर संसाधनों पर व्यक्तित्व अधिकार की सीमाएँ रही है । हमारे देश में प्राकृतिक संसाधन किसी व्यक्ति की संपदा न होकर आज की पीढ़ी के पास धरोहर के रूप में गये हैं । हर पीढ़ी का यह कर्तव्य है कि उस धरोहर को अगली पीढ़ी के लिये और भी अच्छी हालत में छोड़कर जाय । उनके संरक्षण की मान्यता धरती से जुड़े समाजों की जीवन शैली में ही घुली मिली है । तरह तरह के तीज त्यौहार उसी जन-चेतना की सहज अभिव्यक्ति हैं । इसलिए संसाधनों का उपयोग जीवन चलाने भर के लिये ही उचित है । उससे अधिक की ललक को सदा से हतोत्साहित किया जाता रहा है । **साँई उतना दीजिये, जामें कुटुम समाय । मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ।** इसलिये संसाधनों के उपयोग का अधिकार परिवार की जरूरत और उसके श्रम से जुड़ा रहा है । उसके उपयोग के सभी मामलों में पूरे समाज की आपसी सहमति की परम्परा रही है। इस बावत पूरी भारतीय चिन्तना **'धरती माता'** के सूत्र पद में समाहित है। माता किसी की संपत्ति नहीं हो सकती है । धरती मात के रूप में गाँव के संसाधन समाज की साझी धरोहर हैं ।

न है हमारी सम्पति अपनी । न है हमारी सन्तति अपनी ।।
कहें न अपनी कार्य शक्ति को । हक न भोग का सिर्फ व्यक्ति को ।।(१/११०)

इस तरह दो बुनियादी मान्यतायें मानव समाज के अस्तित्व का अभिन्न अंग है : एक अपनी परंपरा के अनुसार अपनी व्यवस्था करना, दों अपने रहवास में स्थित संसाधनों पर समाज का नैसर्गिक अधिकार । इस अधिकार को किसी भी ओर से चुनौती नहीं दी जा सकती है । इन्हीं पुरातन मान्यताओं के आधार पर ग्राम गीता में भू-वैकुण्ठ के रूप में आदर्श गाँव समाज की स्थापना और उसके संचालन की व्यवस्था का वर्णन है ।

ग्रामगीता की बुनियादी मान्यतायें

ग्राम गीता में इस व्यवस्था की कुछ अन्य बुनियादी मान्यतायें भी साफ तौर से उभरी है । ये मान्यतायें संक्षेप में नीचे दियें अनुसार है -

१. **पूरक भूमिकाए :** गाँव की जिन्दगी पूरे समाज की इकाजाई जिन्दगी है । उसमें

लोगों की भूमिकायें अलग अलग होना स्वाभाविक है। परन्तु समाज की व्यवस्था में वे एक दूसरे की पूरक है। इस अनुभूति के बिना समाज की टूटन अनिवार्य है-

आपस में पूरक बने, सब निज कार्य संभाल।
झेला जाता सहज तब, जग का बोझ विशाल ।। (४/१०३)

२. समानता : भारतीय परम्परा के अनुसार प्रणिमात्र में ईश्वर का अंश विद्यमान है। **आद्यन्त में तू एक ही, दिखता अनेकाभास पर (१/१)** कृष्ण स्वयं समता की साक्षात मूर्ति हैं। ऐसे में समानता ही नहीं, निपट समानता हमारी सामाजिक व्यवस्था की बुनियादी मान्यता है। यह अलग बात है कि अपने स्वार्थ के लिये इस मान्यता को असामाजिक तत्त्वों द्वारा तोड़ा मरोड़ा जाता रहा है -

यह 'समाज रचना की खामी। मानव निर्मित भेद अन्यायी। (१७/७)

यही नही, जब समाज के सभी सदस्यों की गतिविधियाँ एक दूसरे की पूरक हैं तो बड़े छोटे का भाव कैसा? इसीलिये

'मानव है पूरक मानव का। छोटे -बडे का मत झूठे का ।। (४/१०७)

३. संसाधन और श्रम मूल तत्त्व : समाज की आर्थिक व्यवस्था के दो मूल आधार हैं पहला प्रकृति के उपहार रूप संसाधन और दूसरा इंसान की अपनी मेहनत। संसाधनों के बारे में धरती माता वाली मान्यता ही स्वाभाविक और न्यायपूर्ण है।

ग्राम गीता में बिना किसी लाग लपेट यह मान्यता स्थापित है। इसी तरह इन्सान की मेहनत के बारे में भी स्थिति पूरी तरह साफ है। **बिन श्रम उपज होय कहाँ से ? (४/६४)** श्रम ही जीवन का आधार है। ऐसे में **'हो सबकी श्रम के प्रति निष्ठा। देवें उसको सभी प्रतिष्ठा।'** का सूत्र ही अच्छे जीवन का आधार हो सकता है।

४. अन्याय की जड़ पैसा : समाज की आर्थिक संरचना में अन्याय की जड़ पैसा है। शुरू में पैसे का चलन अपसी लेनदेन की सुविधा के लिये हुआ था। अर्थ-व्यवस्था के जटिल होते जाने से खास तौर से गाँव के बाहर की व्यवस्था पर निर्भरता बढ़ने से वस्तुओं के रूप में लेनदेन की बजाय रुपये-पैसे से खरीद-फरोख्त शुरू हुई। यहाँ तक तो पैसे की भूमिका ठीकठाक बनी रही। परंतु जब बिचौलियों ने पैसे का उपयोग स्वतंत्र ताकत के रूप में करना शुरू कर दिया तो वहीं से उसमें विकृति आना शुरू हुई। **नतीज़ा यह है आज दुनिया में पैसा ही जीवन की हर बात का पैमाना हो गया है। धरती माता, इन्सान की मेहनत, यहाँ तक कि उसकी अस्मत और इज्जत भी में बाजार में बिक्री की वस्तु हो गई है।**

५. समान हकदारी :- इंसान की मेहनत ही हर तरह के उत्पादन का आधार है। उनकी पूरक भूमिका के चलते उनके पारिश्रमिक या हकदारियों में भेदभाव का कोई औचित्य नहीं। धनिक के पास धन सभी की बराबर की हकदारी में से चोरी का माल है, और पाप है-

नपी मजुरी श्रमिक को, हड़पे बाकी आप।
उसे जताये न्याय हक, सचमुच है जो पाप। (१७/२१)

इस तरह ग्राम गीता में एक ओर 'वर्ण धर्म के नाम पर, बनी जनम सम्पति (१७/१२) का खंडन है। दूसरी ओर मेहनतकशों के शोषण से जीने वाले 'धनिक 'चोर' निश्चय ही असामाजिक खुद गर्जी' (१७/२६) की भर्त्स्ना है ।

आदर्श व्यवस्था का नैतिक आधार

इस अन्यायी व्यवस्था पर अंकुश लगाने के दो ही रास्ते है :

'धर्म मार्ग सेवा का भाव हो । या अंकुश कानून का ही हो । (१७/३४)

इस पर भी अगर सुधार न हो तो-

गर नहिं मानें कोई इनसे । रोष भरे लोगों में उससे ।।
आवाहन हो रक्त क्रांति का । वातावरण अराजकता का ।। (१७/३५)

ग्रामगीता आदर्श व्यवस्था के लिए व्याकुल आत्माओं की चिरन्तन खोज में एक कड़ी है। महर्षि ऐसे बहुत हुए हैं । मगर अधूरे काम पड़े है ।। (३०/६७) इन महापुरुषों में भी दो रूप हुए हैं –

'शांति 'क्रांति' के दो अवतारी । कार्य रीतियाँ उन की न्यारी ।।(३३/७३)

ग्रामगीता शांति रूप को व्यवहार रूप देने का प्रयास है । ऐसे में सबसे पहले आज की व्यवस्था से उन तत्त्वों को निकाल फेंकना होगा जो समाज को तोड़ने वाले है। जब समाज ही नहीं रहेगा तो न गाँव बचेगा और न ग्रामगीता का अमृत संदेश । दुर्भाग्य से आज वही धर्म, जो सुन्दर और आनन्दमय मानव जीवन के आधार के रूप में स्थापित हुआ था, मानव मानव के बीच विग्रह का कारण बना हुआ है । जब सत्य ही धर्म है तो उसमें किसी तरह का भेद कैसा ?

नाम हमारा जब 'मानव' है । 'मानव धर्म' स्वधर्म अर्थ है ।।
सही बात यह रख लो मन में । कही यहाँ जो सरल शब्द में ।।(२६/२८)
मानवता का सार तत्व यह । सर्व धर्म समभाव समन्वय ।।(२६/३२)

अनेक धर्मों के होते हुए भी सही दृष्टि होने पर समभाव स्वाभाविक है :

पिता हमारे हमें वंद्य है । पर औरों के नहीं निंद्य है ।।
आदि सूत्र है यही धर्म का । सर्व धर्म समभाव-रूप का ।।(२६/१०५)

इस चिरन्तन सत्य का अहसास हर इंसान को हर पल होता रहे, वह उसके जीवन के हर व्यवहार में हमेशा झलकता रहे इसी में सब का कल्याण है। इसीलिये सामूहिक प्रार्थना आदर्श गाँव के जीवन का अभिन्न अंग है :

रहे गाँव में प्रार्थना जागृत । तभी ग्राम संस्कृति भी जीवित ।।
ज्योति सामुदायिकता की फिर । प्रकाशवान हो यहाँ निरंतर ।।(२७/६६)
एक प्रार्थना विश्व की, एक विश्व की शान ।
सभी विश्व में एकता, आवे क्यों न महान? ।।(२८/६४)

विकास का रूप : मानवीय संभावनाओं का विस्तार

आदर्श जीवन के आध्यात्मिक आधार के लिये गाँव में सुंदर वातावरण जरूरी है । समाज की व्यवस्था टूटने से आज गाँव गंदगी के आगार बन गये है । गाँव में लोग हर तरह के व्यसनों में फँसे हुए है । खुदगर्जी के आलम में किसी को अपने अलावा किसी की चिन्ता

नहीं है। शहरों की नकल में आज हर कोई खास तौर से युवा हर तरह की चटकीली वस्तुओं की जुगाड़ में लगा है।उन पर किसी का नियंत्रण नहीं है। इस स्थिति से निपटने के लिए पूरी जिम्मेदारी गाँव समाज की है।

इसमें पहला काम विकास के बारे में सही दृष्टि होना है। उपभोग जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता है। उपभोग अच्छे जीवन का साधन है। जीवन भोजन करने के लिये नहीं है, भोजन जीवन चलाने के लिये है। जीवन के उद्देश्य की खोज ही सभ्यता और संस्कृति का सार तत्त्व है। इसीलिए मानव की अपनी संभावनाओं का विस्तार ही सच्चा विकास है। परंतु मानवीय संभावनाओं के विकास में एकल उपलब्धियों का महत्त्व नही है। समाज में सभी लोगों की अपनी अपनी संभावनाओं का पूरा विकास ही अच्छे समाज की बुनियाद हो सकता है। एक पहलवान से गाँव की ताकत या एक ताजमहल से देश के सौंदर्य को नही आँका जा सकता है। गाँव का हर नागरिक स्वस्थ हो, हर मकान सुन्दर सुरुचिपूर्ण हो। उसी में सभी के लिये सच्चा आनंद है।

इस उद्देश्य को पाने के लिये श्रम-निष्ठा और समता अनिवार्य है। जीवन धारण के लिये जो जरूरी है वह सबसे के लिये सुलभ हो। उससे अधिक की ललक न हो। ऐसी ललक पर समाज का अंकुश हो। पैसे के बल पर सुख खोजने वालों को राष्ट्र संत की सलाह है :

'यही बुद्धिमानी है उसकी। आस तजे भाड़े के सुख की। (१३/२२)

जीवन की असली संभावनाए उस के सौंदर्य रूप ललित कलाओं में प्रस्फुटित होती हैं -

'कला' है यह भूषण मानव का। भुला न जाय लक्ष्य 'जीवन' का ॥
सुख संतोष उपज मन मांही। तेहि बिन कला कला जग नाहीं ॥(१३/१९)

और वैसे भी तो कहा है 'साहित्य, संगीत कला विहीनः साक्षात पशुः पुच्छ विशाण हीनः'। साहित्य, संगीत, कला के बिना मनुष्य बिना सींग और पूँछवाला जानवर है। यही कलायें जन जीवन की अमूल्य विरासत रही है। उन्हें जीवन के सहज कार्य व्यवहार के साथ अर्जित किया जा सकता है। कबीर उसके आदर्श हैं।

सबकी गठली लाल हैं, कोइ नहीं कंगाल।
गठरी खोले जानिये, ना खोले अनजान ॥

गाँव के दैन्य का कारण

गाँव के दैन्य के लिए अन्य कारणों के अलावा एक बात साफ है -

कच्चा मट्टी मोल दे, पका चौगुना भाव।
पैदा कर भूखा मरे, सुखी हो कैसे गाँव ॥ (१३/६)

और गाँव गाँव की जिन्दगी से ही राज्य और राष्ट्र के जीवन की गुणवत्ता तय होती है। भाड़े का सुख खोजनेवालों की खुले शब्दों में भर्तस्ना कर स्वावलंबी गाँव और राष्ट्र की आधारशिला रखने का आवाहन है -

शान न होय उधारी वाली। दुसरन के बल ऐंठ न खाली।
नहिं गद्दार कोउ होवै अस। बस्तु विदेसी भरे ठसाठस ॥ (१३/४८)

मेहनत और समय का उपयोग ही विकास की कुंजी है -

सब का जितना समय, बुद्धिबल । श्रम सामर्थ्य होत है फादिल ।।
आ जाये गर वही काम में । सुखी ग्राम हो निश्चय मन में । (१३/११६)

आगे की राह

आगे की राह एक ही है, और वह है जन-जागृति-

जन जागृति जब तक न हो, ग्राम दैन्य नहिं जाय ।
दृष्टि मिले जन को, कुजन, धाक जमा नहि पाय ।।(१०/४१)

इसी जन-जागृति से सभी घबराते है । जन जागृति हो जाने पर कोई बदमाश भला बदमाशी कर कैसे सकेगा? इसीलिये सब स्वार्थ वर्गो का एक ही काम हैं कि लोगों को धोखे में रखो और **फूट डालो साधो हित अपना' (१०/१७)**

यहीं पर सही नेतृत्व की भूमिका निर्णायक हो जाती है-

सच्चा सेवक जभी मिलेगा । तभी सुखी हो गाँव खिलेगा ।।(६/१२२)

यही सच्चे सेवक नव निर्माण की नीव के पत्थर होगे । बुनियादी बदलाव के लिये सेवक-नेता अपने अहम को मिटाते हुए लोगों को निर्माण का आवाहन करे-

मिट्टी भरी टोकरी ले ले । सिर पर अपने, फिर कुछ बोले ।।

इस तरह काम में आगे परंतु ख्याति, मान, धन आदि सभी मामलों में जानबूझकर पीछे रहने वाला व्यक्तिही सही नेतृत्व देनेवाला सच्चा सेवक है ।

बड़ा बना दे और को, माने इसमें हर्ष ।
आगे युग का है वही, सेवक, कहूँ सहर्ष ।।(६/१०७)

व्यवस्था का रूप

लोकतंत्र में कानून की व्यवसी जरूरी है । परंतु उसकी सीमाएं हैं । इसलिए **'भंग करे कानून का होवे दण्ड तुरंत'** (८/२०) की बात ठीक है । परंतु **'सिर्फ दण्डमय जो श्रद्धा बिन । नियम बद्ध नहिं रखता हर दिन'** (८/२३) की समस्या खड़ी हो जाती है । इसलिए **'संविधान, ध्वज, विधि पर श्रद्धा** (८/१४) को होना जरूरी है। लोकतंत्र में ऐसी श्रद्धा से कोई विरोधाभास नहीं है । परंतु उसमें अपनेपन की भावना जरूरी है । यह हमने बनाया, हम उसे अपनी इच्छा के अनुसार बदल सकते हैं -

लोकतंत्र का समय अभी है। जनता में ही शक्ति सभी है ।।
जनता के निश्चय की ताकत । झुका सके साम्राज्य का मस्तक ।।(११/१४)

इसलिए बुनियादी सवाल सही जनप्रतिनिधित्व और आम लोगों के अपने अधिकार और दायित्व के अहसास का है । अगर आम जन में **मेरे मत पर ही टिका, गाँव-राष्ट्र-भवितव्य** (१०/६५) का अहसास नहीं है तो वोट की उसी दुधारी तलवार से उलटवार हो सकता है। **'दुर्जन बन जाते बलवत्तर । अपने मत का अमृत पाकर ।।** (१०/६७) लोकतंत्र में इस तहर के एहतियातों का होना जरूरी और उपयोगी भी है । परंतु इस के बावजूद राज्य की व्यवस्था की सीमायें हैं । हर समस्या के समाधान के लिये या दुष्टों को ठीक करने के लिये भी उसकी ओर निहारना हितकर नहीं हो सकता है -

गाँव अपन बिन उबार नहीं । कोर्ट-कचहरी काम की नांहीं ।।(३८/७५)

ग्राम गीता में गाँव की पूरी व्यवस्था को स्वयं संभालने का आवाहन है । उत्पात करने वाले को पहले सिखावन दे, शांति यत्नों से उसे सुधरने का मौका दें । परंतु **'निरुपाय हों तो निर्णयकर । भेजें उसे गाँव के बाहर ।।'** (३६/८०)

व्यवस्था का संचालन आम सहमति से हो । उस जिम्मेदारी को पंचगण सहज भाव से निभायें । उसमें अधिकार की बू कमी न आने दें कि मैं पंच हूँ, मुखिया हूँ, विशेष हूँ । **'पांच पंच परमेश' हैं, पर सत्तामद नाहिं ।।** (३६/१२२)
ऐसे ही **'ग्राम राज्य ही राम राज्य'** (२६/१२५) रूप वाले गाँवों के बीच आपस में मधुर संबंध होंगे । इसी व्यवस्था से राष्ट्र की नीव भी मजबूत होगी :

गाँव बनें आदर्श जब, श्रेष्ठ होय सो राज्य ।
निज प्रभाव से राज्य सो, मुकुट देश का होय ।।(३६/१२६)

इस तरह आदर्श जीवन के लिये गाँव की अपनी व्यवस्था ही स्थायी समाधान हो सकती है । ऐसे में फिर देर कैसी और क्यों ? आइये, चलें आगे बढ़े !

२. यक्ष प्रश्न ?

हर तरह की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आशंकाओं और समस्याओं के पूरे पूरे समाधान से लैस जब हम धरती पर स्वर्ग, भू वैकुण्ठ के द्वार पर पहुँचते हैं तो पैर सहसा ठिठक जाते हैं, मानों कोई भारी अपशकुन सामने हो । लगता है भू-वैकुण्ठ का द्वारपाल व्यंग्यात्मरूप से मुस्कुरा रहा हो ' आप आगये, स्वागत है ! मगर इस किले का दरवाजा आपके लिये न खोलने की मेरी मजबुरी है । मै नियम और कानून से बंधा हुआ हूँ। आप मेरे तीन सवालों का जवाब दे दें तो यह दरवाजा आपके लिये खोल दिया जायेगा, अन्यथा.....'
'कौन से हैं वे सवाल, क्या आप हमें बताने की कृपा करेंगे ?

थोड़ा सा रुकने के बाद उसने फिर कहा: 'मैने अपने मनोगत भाव से आप की पूरी योजना जान ली है । उसी के बारे में मेरे सवाल है अर्थात् क्या आप बतायेंगे कि-

(१) आप किस 'गाँव' की बात कर रहे हैं ?

(२) आप जिस 'परंपरा' के अनुसार अपनी व्यवस्था करने की योजना बनाये बैठे है, यह परंपरा क्या है ?

(३) अंत में, आपने संसाधनों के उपयोग के बारे में भी जिस 'नैसर्गिक अधिकार' की बात सोची है, ये नैसर्गिक अधिकार क्या हैं ?

मै अपनी स्थिति को और भी साफ कर दूँ । हमारा नियम है कि हम हर व्यक्ति से उसी के अपने देश के नियम-कानून के अनुसार व्यवहार करते हैं । इसलिये आपके मामले में हम भारतीय संविधान और उसके तहत बने कानूनों का ही अक्षरशः पालन करेंगे । हमारे सवालों के जवाब उन्हीं के संदर्भ में देने की कृपा करें ।'

'हम तो समझते थे कि आप कोई यक्ष प्रशन करने वाले थे । परंतु यह क्या?..गाँव. .... हमारा गाँव, उसे तो सभी कोई जानता है! आइये, चलिये, देख लीजिये । रही परम्परा

की बात वह तो हमारे जीवन का अंग है, वह भी कहने की बात न हो कर जीने की बात है। अन्त में, माँ के लिये बेटा क्या कहे? धरती माता हमारी है, हम इतना जानते हैं बस।

दरबान ने बड़ी शालीनता से हमारी बात का जवाब देते हुए कहा कि 'आपके गाँव की बात आप जाने, आपकी मां का वात्सल्य आप को मुबारक हो, आपके ग्राम देवता हमारे लिये भी पूज्य हैं, मगर यहाँ हर बात संविधान और कानून क़ी रूह से होती है। हमारे लिये तो जो इस संविधान और कानून में लिखा है, वही सत्य है और वही सब कुछ है। उसके अलावा हम किसी बात को न जान सकते हैं और न मान सकते हैं। अगर आप उसे हमारी आँखों के सामने रूबरू भी पेश कर दें तो कोई अंतर नहीं पड़ेगा! संविधान और कानून अपनी जगह अटल है।

यह सच कि वह सच?

दरबान की बात सुनकर ऐसा लगा कि मानों हम एक नई दुनिया में पहुँच गये हों। राजा जनक की तरह भिखारी के रूप में सपने की जिन्दगी का खयाल करके 'यह सच कि वह सच' की दुविधा में फँस गये। हमारे गाँव की सबकी जानी पहिचानी अपनी परंपरावाली दुनिया सच है या संविधान और कानून की दुनिया जिसे हमने अभी तक न कहीं देखा और न कभी सुना ही है ?

हमारे पाठकों को यह जान कर अचरज होगा कि हमारे गाँव समाज के लिये हमारे संविधान और कानून में कोई जगह नहीं है। और तो और, हम जिस गाँव को अपने गाँव के रूप में पहिचानते हैं उस गाँव के लिये भी हमारे संविधान में कोई जगह नहीं है। इस विसंगति को समझने के लिये दो जाने माने उदाहरणों पर नज़र डालनी होगी।

यह तो सभी जानते हैं कि नशापानी हर तरह की बुराई की जड़ है। एक गाँव की पंच परमेश्वारी पंचायत ग्रामगीता में जताये आदर्श के अनुसार यह तय करती है कि हमारे गाँव में नशापानी खतम होना चाहिये। एकाएक नशा पानी बंद करना कठिन होगा। इसलिये पंचायत ने उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए एक-एक कदम कर आगे बढ़ने का फैसला किया। पहले कदम के रूप में यह तय हुआ कि कोई भी व्यक्ति नशापानी करके घर के बाहर नहीं निकलेगा, अंटशंट नहीं बकेगा। अगर ऐसा किया गया तो पंचायत दंड देगी।

नई हवा के नये लड़कों को उनकी वह बात दकियानूसी लगी। एक लड़के ने दूसरे ही दिन दारू पीकर नशे की हालत में गली में झगड़ा शुरू कर दिया। गाँव की पंचायत के सामने पेश किये जाने पर उसने जुर्म भी कबूल कर लिया। उस पर ५०० रुपये का जुर्माना हुआ। उसने जुर्माना सरपंच को पटा दिया। सबको लगा चलो अच्छी शुरुआत हुई, पढ़े लिखे ने भी पंचायत का अनुशासन मान लिया।

मगर देखते क्या हैं कि तीसरे ही दिन थानेदार साहब गाँव में आ धमके। सीधे सरपंच के घर जाकर पूछने लगे ' क्या तुमने फलाने लड़के से ५०० रुपये वसूल किये थे? ' सरपंच जी हक्के बक्के रह गये। गाँव के और लोग भी आगये। सबने थानेदार साहब को समझाया कि बात पंचायत में हुई थी। अनुशासन न माननेवालों के लिये दंड का विधान हमारी परंपरा में युगों से चला आ रहा है। आपको जोर-जबरदस्ती वाली गलत सूचना मिली है। मगर उनकी

बातों का थानेदार साहब पर कोई असर नहीं हुआ। उन्होंने सीधे से कह दिया 'देखिये सरपंच जी, थाने में आपके ही लड़के ने प्राथमिकी दर्ज कराई है। आपने जोर जबरदस्ती करके ५०० रुपये वसूल किये हैं। हमारे कानून में न तो आप लोगों की परंपरा की बात लिखी है और न आपकी इस पंचायत का ही वुजूद है जिसके अधिकार से आप लोगों को दण्ड देने की बात कर रहे हैं। ऐसे में आपने उस लड़के से जोर जबरदस्ती पैसा वसूल करने का जुर्म किया है। वह दण्डनीय अपराध है। इसलिये आपके ख़िलाफ मुकदमा दायर करने की हमारी मज़बूरी है।'

बहुत करने सुनने पर थानेदार साहब १००० रुपये लेकर उस प्राथमिकी को रफा दफा करने के लिये राजी हो गये। दूसरे दिन वह मनचला लड़का गाँव में यारदोस्तों के साथ डींगे मारता घूमता रहा 'बहुत समझाया बुढ़ऊ को, जमाना बदल गया है, दकियानूसी बातें छोड़ दो। और कर ले अब मेरे ऊपर कोई जुर्माना !'

इस वाकये में थानेदार साहब अपनी जगह सही हैं और गाँव समाज अपनी जगह सही है। थानेदार साहब संविधान और कानून के दायरे में काम करते हैं। उन्हें गाँव समाज और उसकी परंपराओं के बारे में जानकारी है। परंतु उनसे उनका कोई मतलब नहीं है क्योंकि वे कानून में नहीं है। गाँव के लोग अपने गाँव का चलन जानते हैं। उन्हें कानून की दुनिया के बारे में मालूमात नहीं हैं। दोनों अलग-अलग दुनिया हैं। गाँववालों के लिये पुलिस-कचहरी में जाना एक दुःस्वप्न जैसा होता है, विदेह के भिखारी होने के सपने जैसा। गाँव मे वापिस पहुँचकर ही आम गाँववाले को लगता है कि वह इन्सान है, उसकी अपनी इज्जत आबरू भी है, उसकी एक पहिचान है।

गाँव समाज को तोड़ने की साजिशें

अब सवाल यह है कि ऐसा हुआ कैसे कि हमारे देश के कानून में गाँव समाज, उसकी परंपरा और उसके नैसर्गिक अधिकारों के लिये कोई जगह नहीं है ? बात लम्बी है मगर थोड़े में इतना कहना काफी है कि हमारे देश में गाँव के स्तर पर गणराज्य जैसी व्यवस्था अनादिकाल से चली आ रही थी। गाँव अपनी व्यवस्था करने के लिये पूरी तरह सक्षम थे। गाँव के संसाधनों पर समाज का पूरा अधिकार था। राजाओं के उदय के बाद भी उन्हें गाँव की व्यवस्था में दखल देने का अधिकार नहीं था। शास्त्रों के अनुसार राजकाज की जिम्मेदारी निभाने के लिये, जिसमें बाहरी हमलों के रक्षा प्रमुख थी, उन्हें गाँव की उपज का छठा हिस्सा लेने का अधिकार था। परंतु इसी तरह का अधिकार तो गाँव के दूसरे कामगारों, जैसे कुम्हार, लुहार, बढ़ई या नाई का भी था। आदिवासी इलाकों में तो राजाओं का वुजूद भी नहीं था। गाँव की व्यवस्था पूरी तरह आत्म-निर्भर और स्वयं-चालित थी। गाँव के स्तर पर जो मामले नहीं निपट सकते थे उनके लिये कई गाँवों की सभाएँ होती थीं।

अंग्रेजों के आने के बाद इस व्यवस्था में बुनियादी बदलाव आया। हमारे देश के राजा, महाराजा या बादशाह भी अंग्रेजों की कूटनीति का मुकाबला नहीं कर पाये। सो अंग्रेजों का राज हो गया। उस राज के खिलाफ पहली बड़ी लड़ाई १८५७ में हुई। उसमें फिर बहुत करके कूटनीति के सहारे अंग्रेजों की जीत हुई। मगर उनके मन में एक सदमा बैठ गया। 'ऐसा

कैसे हुआ कि हमें कानोंकान खबर तक नहीं हुई और हम एक दम चारों ओर से घिर गये? अगर कुछ राजाओं ने हमारा साथ न दिया होता तो हमारा तो सफाया ही हो जाता ।' बड़ी जांच पड़ताल के बाद उन्हें हमारे देश के गाँव की व्यवस्था की असलियत का बोध हुआ । उनको सलाह मिली कि जबतक भारत में गाँव समाज है, अंग्रेजी राज के खिलाफ इस तरह के विद्रोह हमेशा हमेशा होते रहेंगे । इसलिए भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के बने रहने के लिये यहाँ के गाँव समाज को तोड़ना जरूरी होगा ।

किसी व्यवस्था को खतम करने का सबसे सरल उपाय है उस व्यवस्था को नकार देना, उसके सब कामकाज छीन कर उसे नाकारा बना देना । उसके बाद वह व्यवस्था अपने आप तिल तिल कर छीजती जायेगी । इसी नीति के तहत अंग्रेजों ने जो भी कानून बनाये उनमें गाँव समाज और उसकी परंपरा के लिये कोई जगह नहीं रखी गई । गाँव के आपसी विवादों को निपटाने के लिये पुलिस और अदालतें, जमीन के लिये पटवारी तहसील, वन के लिये दफेदार और मादक पदार्थों के लिये आवकारी दरोगा वगैरह वगैरह बनाये गये ।

कानून में समाज के वुजूद को नकारने का सबसे घात नतीज़ा यह हुआ कि कानूनी तौर पर संसाधनों पर समाज का परंपरागत अधिकार जाता रहा । बात साफ है जिसका वुजूद ही नहीं उसका अधिकार कैसा? अंग्रेजों ने हमारी परंपरा को नकारते हुए हमारे यहाँ अपने देश की व्यवस्था लागू कर दी । उसी के तहत हमारे देश के संसाधनों पर समाज की जगह राज्य का अधिकार हो गया । इस तरह कलम में एक झटके में गाँव की पूरी जमीन सरकारी हो गई ऐसे में किसान सरकार की दया भिक्षा का मोहताज हो गया । उसकी हालत गिरती गयी । फिर जिसका अपनी आजीविका के साधनों पर कोई अधिकार न हो, उसका कैसा मान और कैसी मर्यादा? वैसे भी जब देश की गुलाम हो जाय तो नागरिकों के लिये कोई अधिकार बच नहीं रहता है । इसी के प्रतिवाद स्वरूप आजादी की लड़ाई में खास तौर से गांधीजी के नेतृत्व में गाँव गणराज्य जैसी ग्राम स्वराज की व्यवस्था कायम करना एक अहम मुद्दा बना ।

आजादी के बाद का धोखा

आजादी के बाद हमारे देश में गाँव समजा के साथ सबसे बड़ा धोखा यह हुआ कि अंग्रेजों के जमाने के गुलामी के कानूनों की वही व्यवस्था जैसी की तैसी बनी रही । विनोबा जी ने कहा था-शुरू में देश आजाद था, गाँव भी आजाद थे । दूसरे दौर में देश गुलाम हो गया परंतु गाँव आजाद बने रहे । अंग्रेजों के आने के बाद देश की नई गुलामी के साथ गाँव भी गुलाम हो गये । अंग्रेजों के जाने के बाद देश तो आजाद हो गया मगर गाँव गुलाम बने रहे । संविधान बनाते समय गाँव के स्तर पर इस असंगत व्यवस्था का मुद्दा उठा था । कुछ शुरूआती शंकाओं के बाद संविधान सभा ने आम सहमति से यह संकल्प भी लिया कि गाँव के स्तर पर हर गाँव के लिये गाँव गणराज्य जैसी व्यवस्था हो । अनुच्छेद ४० के अनुसार ।

४०. ग्राम पंचायतों का संगठन : राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिये आवश्यक हों ।

इस अनुच्छेद का बहस में सभासदों ने बार-बार यह जानना चाहा था कि क्या इसके तहत गांधीजी के द्वारा बताई ग्राम स्वराज जेसी आदर्श व्यवस्था गाँव में कायम पायेगी ? क्या इस प्रावधान में यह साफ है कि सभी गाँव आत्मनिर्भर होगें ? किसी भी संविधान में इतनी जगह तो होती नहीं है कि उसमें एक एक बात का खुलासा किया जाय। इसीलिए संविधान की भाषा सांकेतिक होती हैं। एक एक शब्द गागर में सागर जैसा होता है। बहरहाल सभासदों को पूरा यकीन दिलाया गया कि इस प्रावधान का दायरा जीवन व्यापी है। गाँव की पूरी व्यवस्था गाँव समाज के आधीन होगी। इस प्रावधान की इस उदार व्याख्या के बारे में किसी को संदेह नहीं था। सभी ने अनुच्छेद ४० का खुले मन से स्वागत किया।

दो बुनियादी भूलें

मगर सबसे बड़े अफसोस की बात यह हुई कि उन पवित्र संकल्पों के बावजूद पहले तो इस प्रावधान में ही और बाद में उसकी व्याख्या और व्यवहार में भी आम लोगों के साथ भारी धोखा हुआ। इस धोखे की जड़ में पहले तो संविधान सभा की अपनी ही एक गलती थी। उस समय शायद यह सोच कर कि जो कहा है सो ठीक है, ईमानदारी से काम होगा, तकनीकी बातों पर गौर नहीं किया गया। पहली बात तो यह है कि गाँव की परंपरागत पंचायतें अंग्रेजी कानून के बावजूद किसी न किसी रूप में काम करती रही थी। इसलिये संविधान में नये सिरे से उनके संगठन की बात करना ठीक नहीं था। उचित यह होता कि गाँव की उन पंचायतों के वुजूद को स्वीकारते हुए, जिसे सभी सभासद निजी अनुभव से जानते थे, संविधान में उनके लिये जगह बनाई जाती। दूसरी भारी भूल लोकतंत्र की बुनियादी मान्यता को लेकर हुई। लोकतंत्र में लोगों की अपनी खुली सभा के अलावा बाकी सभी प्रतिनिधी संस्थायें है। जाहिर है कि लोगो अपनी सभा का पदमान प्रतिनिधी संस्थाओं से ऊँचा है। प्रतिनिधि संस्थाओं में संसद और विधान सभायें भी शामील हैं। जब लोगों की अपनी सभा यानी परंपरागत पंचायत, जिसे अब ग्राम सभा का नाम दिया गया है, संसद से भी ऊँची है, ऐसे में पंचायतों को शक्तियां प्रदान करने की बात लोकतंत्र की गरिमा के अनुरूप नहीं थी। लोकतंत्र में विकेंद्रीकरण का सोच ही विरोधाभासी है। लोगों की सक्षमता को स्वीकारना ही सच्चा लोक तंत्र है।

यह तो हुई बुनियादी भूलें। मगर उन भूलों के बावजूद आगे चलकर राज्यों में और मैदानी स्तर पर भी अनुच्छेद ४० की भावना के अनुरूप जिस नेक नियती से काम होना चाहिये था, वह भी नहीं हुआ। इसमें सबसे बडा धोखा तो उसमें प्रयुक्त कानुनी शब्दों के मतलब को ही लेकर हुआ। वैसे कानून की दुनिया में ऐसे धोखे तो गाँव के सीधे सादे लोगों को कदम-कदम पर झेलने पड़ते हैं। इसलिये उसे अजूबा नहीं माना जा सकता है। फिर भी उसे समझना जरूरी है। पंचायतों के बारे में इस प्रावधान को व्यवहार रूप देने में विश्वासघात दो पदों के मंतव्य को लेकर हुआ। ये पद है 'पंचायत' और 'स्वायत्त शासन'।

पंचायत : अर्थ का अनर्थ

गाँव की पंचायतों के बारे में सभी जानते हैं कि उनमें गाँव के सभी लोग हिस्सा लेते हैं। जब कभी पंचायत भरती है तो उसमें पंच भी बनाये जाते हैं। परंतु उन पंचों की पूरी

पंचायत से अलहदा कोई भूमिका नहीं होती है । पंचायत की पूरी कार्रवाई खुले में होती है। संविधान सभा के सभासदो के मनमें 'गाँव के स्तर पर पंचायत' का आशय इसी पंचायत से था । परंतु जब उसको व्यवहार रूप देने के लिये राज्यों ने कानून बनाये तो सभी राज्यों में उस असली पंचायत को भुला दिया गया । उसकी बजाय चुने हुए प्रतिनिधियों वाली एक नई तरह की पंचायत की व्यवस्था की गई । प्रतिनिधियों वाली इस पंचायत में आम लोगों की हिस्सेदारी नहीं है । इसीलिए लोगों के बीच इस पंचायत का नाम ही 'सरकारी पंचायत' पड़ गया है ।

'स्वायत्त शासन': बुनियादी मान्यताए अनदेखी

दूसरा विश्वासघात 'स्वायत्त शासन की इकाई' के मतलब को लेकर हुआ । पंचायत कानूनों में आज तक ग्रामपंचायतों को विकास भर के कुछ काम दिये जाते रहे हैं । पूरी पंचायत व्यवस्था ही विकास के लिये सरकार से आने वाले पैसे के बटवारे में उलझी रहती है । पूरे देश में किसी भी स्तर पर कोई बात करो तो वही सड़क, बिजली, अनुदान का तस्करा होता रहता है, मानों वही जिन्दगी हैं । आम आदमी भी जानता है कि पंचायत क्या, पंच-सरपंच-मुखिया को अपने खाने पीने का हिसाब है। इसलिए उसे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं है ।

पैसों के लिए इस मारामारी से अलग हट कर स्वायत्तशासन की व्यवस्था क्या होती है, इस पर राजकाज करने वालों ने कभी अपनी ओर से तो कोई विचारहीं नहीं किया । मगर उसके बारे में जब भी किसी ने कोई गंभीरता से प्रस्ताव किये भी तो उनको हिकारत के साथ नामंजूर कर दिया गया । पंचायंतों के इन बुनियादी मुद्दों के बारे में आम आदमी आज तक बेखबर है । सच तो यह है कि उसको जानबूझकर बेखबर रखा गया है । हमारे हुक्मरानों को डर है कि कहीं से बातें आम आदमी तक पहुँच गई तो उनकी साजिश का पर्दाफाश हो जायेगा । फिर स्वायत्तता की असली बात पर अमल करने से मुकरना आसान नहीं होगा ।

संविधान सभा की भावना के अनुसार, और वैसे भी ईमानदारी से, स्वायत्त शासन का एक ही अर्थ हो सकता है कि जो कुछ भी गाँव के स्तर पर लोग स्वयं कर सकते हैं उसे करने का उनका अधिकार हो । 'अधिकार हो' ऐसा कहने में भी हमारी गुलामी की मानसिकता झलकती है । मानव समाज के लंबे इतिहास में राज्य की व्यवस्था तो कल की बात है। इसलिये समाज की बुनियादी जिम्मेदारियाँ उसका नैसर्गिक अधिकार है । पंचायतों को स्वायत्तशासन की इकाई के रूप में स्थापित करने के लिये अनुच्छेद ४० के संकल्प में यही आशा थी कि पंचायतो के कार्यक्षेत्र को तय करते समय इन सभी बातों को पंचायत के कानूनों में शामिल किया जायेगा।

पिरामिड बनाम सागर की लहरें

स्वायत्त शासनवाली मान्यता के आधार पर राज्य के रूप के बारे में गांधीजी का सोच बिलकुल साफ था । आम तौर से राज्य की व्यवस्था में पद-क्रम होता है यानी उसमें एक क्रम में ऊँचे नीचे स्थान होते हैं । यह परत दर परत वाली व्यवथा पिरामिडीय होती है । इसमे आम लोग सबसे नीचे के आधार तल में होते हैं । उनके ऊपर संख्या में उससे कम परंतु खास, और फिर उनमें भी खास, खास में खास में खास... वर्गो का सिलसिला रहता है। अंत में सबसे

ऊपर मुट्ठी भर लोग होते हैं या सिर्फ एक राजा या तानाशाह भी हो सकता है। ऐसे पद-क्रम वाली व्यवस्था सच्चे लोकतंत्र की व्यवस्था नहीं हो सकती है।

इसकी बजाय व्यवस्था का एक दूसरा रूप भी हो सकता है जो पानी में बननेवाली गोलाकार लहरियों की तरह हो। इस व्यवस्था में छोटे बड़े गोलाकारों के बीच ऊपर-नीचे का रिश्ता नहीं होता है। वे गोलाकार लहरियाँ एक दूसरे की समर्थक होती हैं। गोलाकार लहरियों वाले इस उसूल के मुताबिक बनी राज्य की व्यवस्था नैसर्गिक होती है। उसमें जो काम गाँव में किया जा सकता है वह गाँव में ही किया जायेगा। जो गाँव में नहीं संभव है वह गाँव समूह की जिम्मेदारी होगी। इसी तरह जो गाँव समूह में न हो पाये वह जनपद (ब्लाक) की जिम्मेदारी होगी। जनपद में न हो पाये वह जिले की जिम्मेदारी होगी। जो जिले में न हो पाये वह राज्य करे। जो राज्य में नहीं हो पाये वही केंद्र की जिम्मेदारी हो। इसी को अकेंद्रित व्यवस्था कहा जाता है। इसमें प्रत्येक गाँव समाज पूरी व्यवस्था के केंद्र में है। सही विकेंद्रीकरण का पर्याय है।

लोकतंत्र की भावना के अनुरूप अकेंद्रीकृत व्यवस्था कायम करने के लिये सबसे पहले तो यही जरूरी होता कि अंग्रेजों की बनाई उस साम्राज्यवादी व्यवस्था को पूरी तरह से उधेड़ा जाता जिसमें सब अधिकार केंद्र में स्थित हैं और वही से खैरात के रूप में अन्य स्तरों को दिये जाते हैं। उसके बाद नई व्यवस्था ऊपर बताये उसूलों के अनुसार बनाई जाती।व्यवस्था में इस बुनियादी बदलाव के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट इंसान की अंदरूनी सोच है। होता यह है कि जो भी कुर्सी पर बैठ जाता है उसका नजरिया ही बदल जाता है। इसी डर से भरत ने राज सिंहासन पर बैठने का दुस्साह नहीं किया। सभा में बैठे लोगों में से जब कोई व्यक्ति उठकर मंच पर पहुँच जाता है तो उसके लिये पूरी दुनिया उलटी हो जाती है। लोगों को सामने दिखनेवाला सूरज मंच वाले खास आदमी के लिये पीछे हो जाता है। लोग पूरब की तरफ मुखातिब हैं तो मंच पर विराजमान ख़ास आदमी पश्चिम की ओर।

आजादी के बाद राजनीति में भी यही होता रहा। जिस किसी ने भी लोगों के बीच से ऊपर उठकर कुर्सी संभाली उसके लिये दुनिया ही बदल गई। वहाँ बैठने के बाद सब को वही साम्राज्यवादी व्यवस्था रास आ गई। यही नहीं, वहाँ की उलटी रीतियाँ और गलत बातें मन को न कचोटें, इसके लिये हुक्मरानों ने मनगढ़न्त कहानियाँ भी रचा लीं। मन को समझाने के लिये या वैसे भी आज आम तौर पर कह दिया जाता है कि भला सरकार के बिना काम कैसे चलेगा? गाँव के लोग नासमझ है, बिना पढ़ेलिखे हैं वे ये सब काम कैसे चला पायेंगे? ये सभी बेसिर पैर की उल्टी बातें हैं। परंतु उन पर सवाल भी कौन करता? आम लोग ऐसी बहसों से बेखबर है। ये सब उल्टी-सीधी बातें ऊपर के लोगों में, आम लोगों की पहुँच से बहुत दूर और उनकी नजर के बाहर, गिटिर पिटिर में होती रहीं। वर्ना अगर कहीं लोगों के बीच खुले में उन पर बहस हो जाती तो उनका मुकम्मिल जवाब जरूर जरूर मिल जाता। यही नहीं उन्हें प्रश्नों के सामने हथियार डालना पड़ते।

३. स्वावलंबन : आदर्श और असलियत

स्वायत्तता का दूसरा अनिवार्य पहलू स्वावलंबन है। उन के बिना स्वायत्तता की बात बेमानी है। अंग्रेजों ने भारत में अपना राज कायम करने के बाद पहला काम हमारे देश के, खास तौर से गाँवों के स्वावलंबन को तोड़ने कर किया था। उन्होंने गाँव के घरेलू उद्योग-धंधों को चौपट कर दिया। उनकी बजाय बाजार में मशीनों के बने सामान की बाढ़ आ गई। गाँव के दस्तकार बेरोजगार होकर भूमिहीन मजदूर होते गये। धरती पर बोझ बढ़ता गया। इंसान की जगह मशीन लेती गई। मशीन को काम इंसान नाकाम। गाँधी ने इसी मशिनी सभ्यता को शैतानी सभ्यता कहा था।

संविधान बनानेवालों की सबसे बड़ी चिन्ता गाँव के इसी हादसे के बारे में थी। उनका सपना था कि हमारे गाँव फिर से आत्मनिर्भर हो जाएगे। गाँव के सभी लोग आत्म सम्मान की जिन्दगी जी सकेंगे। इसी सपने को साकार करने के लिए संविधान में दिशा निर्देशक सिद्धान्त जोड़े गये। उनके अनुसार ऊपर वर्णित स्वायत्त व्यवस्था के साथ साथ अनुच्छेद ३६ के तहत संसाधनों का उपयोग आम जनता की भलाई के लिये होना था। आर्थिक व्यवस्था में केंद्रीकरण को रोकना था। उसके लिये अनुच्छेद ४३ में घरेलू और गाँव के उद्योगों के संरक्षण की जिम्मेदारी राज्य को खास तौर से सौपी गई।

गाँव और किसान का निरीह शोषण

गावों की आज की दुर्दशा को समझने के लिये चर्चा अंग्रेजी राज से ही शुरू करनी होगी। अंग्रेजी राज में किसानों के भारी शोषण के बात पुरानी हो जाने से आम तौर से गाँव लोग भी उसे भूल ही गये हैं। फिर भी दो बातें अहम है। अंग्रेजों का पहला और सबसे घातक वार तो यही था कि उन्होंने हमारी परम्परा के अनुसार राजा के मिलने वाले छठे हिस्से की बजाय जमीन पर नकद लागान लगा दिया। यह लगान इतना भारी था कि उसे पटाने के लिये कुल फसल का बारह चौदह आने हिस्सा तक बिक जाता था। घर के लिये चौअन्नी दुअन्नी भी नहीं बचाता था। लागान न अदा करने पर जेल और जमीन की नीलामी आम बात थी। ऐसी हालत में किसान साहूकारी कर्जे में फसता गया। उम्मीद यह थी आजादी के बाद इन सब बातों पर ध्यान दिया जायगा। किसान का शोषण खतम होगा। साहूकारी का फंदा कटेगा। गाँव के उद्योग धंधे फिर से फलें-फूलेगे। इस तरह स्वावलंबी होकर गाँव का जीवन सुखी और आनन्दमय होगा।

कर्ज का फंदा

परंतु व्यवहार में स्वावलंबन के मामले में गाँव और किसान के साथ अवर्णनीय धोखा हुआ। सवसे पहले कर्ज के मामले को ही ले लें। अग्रेजों के जमाने में किसानों की निरीह और खुली लूट से खेती चौपट होती गई। अकाल और भुखमरी आम बातें होती गईं। किसान की जिन्दगी कर्जमय हो गई। **किसान कर्ज में पैदा होता है, कर्ज में जिन्दगी बसर करता है और कर्ज में मरता है**। इसी हालत से निपटने के लिये अंग्रेजों ने दिखावे के लिये ही सही, खेती किसानी में मदद के लिये सन् १८८३-८४ में तकावी के दो कानून बनाये।

उन कानूनों की दो खास बातें हैं। पहली यह कि उनमें खेती की तरक्की के लिये कर्ज की अदायगी की मियाद ३५ साल तक की मानी गई है। दूसरे, उनके तहत नियमों के मुताबिक किसानों के कर्ज पर चक्रवृद्धि ब्याज की मुमानियत है। उन पर साधारण ब्याज ही लगाया जा सकता है।

इसके अलावा सरकार ने साहूकारों पर भी कानूनी अंकुश लगाया। इसकेबांबत सबसे कड़े कानून तो १६३७ के आसपास बने जब प्रांतीय असेम्बलियों में पहिली बार चुने हुए लोग आये। बिहार के साहूकारी कानून में चक्रवृद्धि ब्याज लेना और मूल से अधिक ब्याज दोनों को ही दण्डनीय अपराध घोषित किया गया। यही नहीं, वसुली में किसी तरह की अभद्रता नहीं हो सकती है। तकाबी और साहूकारीवाले ये सभी कानून आज भी लागू हैं। मगर आम लोग उनमें बेखबर हैं।

आजादी के बाद कर्ज के मामले में सरकार किसान को सीधे मदद करने से हाथ खींचती गई। उसकी जिम्मेदारी सहकारी समितियों को दे दी। व्यावसायिक बैंकों को गाँव जाने के लिये मजबूर किया गया। कहने के लिये यह सब किसानों की भलाई के लिये हुआ। उनकी अपनी सहकारी संस्थायें बन जाने से लेनदेन लोगों का आपसी मामला हो गया। परंतु इसमें भी पैसा तो बाहर से ही आना था। ऐसे में किसानों के साथ असली धोखा कर्ज की शर्तो को लेकर हुआ। ऊपर बताये कानूनों के लागू रहे आने के बावजूद, उनके प्रावधानो के खिलाफ खेती-किसानी पर चक्रवृद्धि ब्याज थोप दिया। चक्रवृद्धि के चक्कर में बारे में आम लोगों को अहसास तक नहीं है कि उनके साथ अन्याय हो रहा है। शहर बाजार के होशियार लोगों को, जो उसके पेंच को समझते हैं, किसान की लुटाई से कोई मतलब नहीं।

कर्ज के इस चक्कर की सीधी बात यह है कि सरल ब्याज में कर्ज पटाने पर पहले मूल कटता है। ब्याज की किश्तें आखिरी होती हैं। चक्रवृद्धि ब्याज में कर्ज पटाने पर पहले ब्याज पटता है, बाद को मूल। इस के चक्कर में एक बार फँस जाने पर किसान का गला खेत बिकने पर भी नहीं छूट पाता है। झारखण्ड के पलामू जिले के सीताराम खरवार ने सहकारी बैंक से ११,००० रुपये का कर्ज लिया था। उन्होंने कुल १३,६०० रुपये अदा किये। १०,००० रुपये की माफी भी हुई। इस पर भी उन ५४,००० रुपये बकाया निकले। कर्ज न पटाने के लिये जेल काटनें में उनकी मौत ही हो गई। उनकी लाश लावारिस जताकर फेंक दी गई। दो हट्टे कट्टे लड़कों ने हर किसी से गुहार की। पर कोई सुनवाई नहीं हुई। पुरा बकाया अब उन को देना। कहाँ से चुकायेंगे वे? गाँव के साहूकार से तो निपटा जा सकता था। पूरी तरह से संवेदनाहीन इस सरकारी साहूकार से कैसे निपटें? पूरे देश में किसानों द्वारा आत्महत्या की यही कहानी है। किसानों के साथ इस घोर अन्याय और धोखे पर देश में सभी चुप्पी साधे बैठें हैं। बात साफ है उस लूट में सभी की हिस्सेदारी है।

विश्वासघात : विकास के नाम पर

एक ओर कर्ज के मामले में यह धोखा धड़ी होती रही, उधर किसानों को तरक्की के नाम सब्ज बाग दिखाकर उसे नये जाल में फँसाने की सिमकोट होती रही। आजादी आते-आते हमारे गावों के उद्योग धंधे तो चौपट हो ही चुके थे। परंतु खेत-किसानी बहुत करके

स्वावलंबी थी। गो-वंश परंपरागत खेती में बराबर का सहयोगी था । खेत के लिये गोबर की खाद, जोतने के लिये बैल, ढुलाई के लिये बैल-गाड़ी, सभी में उसी का सहारा था। इसीलिए गऊ माता कहलाई । आजादी के बाद बात तो आत्मनिर्भरता की होती रही । ग्रह-शांति के बतौर किसानों की मदद के कुछ छुट पुट काम भी होते रहे । परंतु तरक्की के नाम पर उसके गले में ऐसा फंदा डाला गया जिसे वह आज तक समझ नहीं पाया है ।

हुआ यह कि एक लम्बी साजिश के बतौर खेती किसानी में इन्सान की मेहनत और गाँव के अपने साधनों की बुनियाद पर तरक्की की बात को दकियानूसी कह कर दर किनार दिया । विकास के लिये 'विना मेहनत सब कुछ चमाचम' का माहौल बन गया । सो देसी खाद की बजाय रासायनिक खाद, हल बैल की बजाय ट्रैक्टर तरक्की की निशानी बनते गये । लोगों को लुभाने के लिये शुरू में मुफ्त की चाय की तरह भारी रियायतें दी गई । जिन्दगी में कोई भी नया चलन अकेले नहीं आता है । हर व्यवस्था का अपना ताना-बपाना होता है । सो नई खेती में रासायनिक खाद के बाद, कीटकनाशक दवायें, संकर बीज और अब तो बांझ बीज की लाइन लग गई । उधर ट्रेक्टर के बाद उड़ावनी की मशीनें और हार्वेस्टरों की घुसपैठ होती गई । किसान के पास इन के लिये पैसा तो था नहीं, फिर भी घुसपैठ की साजिश के तहत उसके लिये विना अंजाम बताये कर्ज का इंतजाम हो गया । बड़े किसानों को लगा उनकी तरक्की हो रही है । छोटे किसान उनकी तरक्की को ललचाई नजर से देखते रहे । अंतमें, वे अपनी बदहाली के पीछे की साजिश न समझकर 'प्रभु इच्छा बलवान' मानकर अपना करम ठोक कर बैठ गये ।

षडयंत्रकारियों ने अब जब ये देखा कि किसान पूरी तरह उनके चंगुल में फँस चुका है, कई इलाकों में तो हल चलाने वाले और बैल तक नहीं बचे हैं तो उन लोगों ने ऊँचे उसूलों के नाम पर गाँव और किसान पर आखिरी हमला बोल दिया । कहा यह जा रहा है कि तरक्की के लिये मुकाबला जरूरी है,। इसलिये किसानों को दुनिया के खुले बाजार में मुकावला करना चाहिये । उधर यह भी कहा जा रहा है कि आजादी के बाद आधी सदी बीतने पर भी इन नाकारा किसानों को सरकार से अनुदान और छूट देते रहने की कैसे उम्मीद की जा सकती है? ऐसे में वात सीधी है। खुले बाजार के मुकाबले में जो खड़ा रहा सके वह खेती करे; नहीं तो वह उसकी जमीन, जो कर सकता है, उसे सौंप कर कुछ और धंधा देखले ।

किसान की खातमें का ऐलान

किसानों के खातमें की ये वातें अब सिर्फ अटकलें नहीं रही हैं । वे राष्ट्रीय कृषिनीति के रूप में खुले में घोषित की जा चुकी है । इस नीति में पुरानी साजिशों को नये रूप में पेश करते हुए कहा गया है कि खेती किंसानी की तरक्की के लिये भी असली चीज पूँजी हैं। पूँजी किसान के पास है नहीं । पूँजी के मामले में आज सरकार भी लाचार है। इसलिये जिसके पास पूँजी हो वह खेती करे । पूँजी तो आज धन्ना सेठों और बड़ी बड़ी कम्पनियों के पास है। दुनिया में ऐसी ऐसी कम्पनियाँ के पास हैं। दुनिया में ऐसी ऐसी कम्पनियाँ हैं जिनके मुकाबले में पूरी भारत सरकार तक पासंग में नहीं चढ़ेगी । सो बड़े बड़े फार्म बनाने की बात शुरू हो गई है। खेती भी अब उद्योग की तरह चलेगी । एक नालिक होगा हजार मजदूर होंगे । उसके लिये

कानूनों को बदल कर मुकम्मिल व्यवस्था की जा रही है। मगर खेती से बेदखल होनेवाले करोड़ों किसानों का क्या होगा, इसके बारे में कहीं कोई जिक्र तक नहीं है? उस भयावह स्थिति का अहसास तक नही हैं।

इस तरह गाँव की आत्मनिर्भरता पर आधारित गाँव की नई जिन्दगी का आजादी के समय पर सपना चकना चूर हो चला है। तरक्की के चक्कर में किसान कर्ज में बुरी तरह उलझ गया है। उसकी हालत सहकारी संस्थाओं और बैंकों के बंधुआ मजदूर जैसी हो गई है। अमरीका के मुकाबिले में, जहाँ दस हजार एकड़ वाला छोटा किसान कहलाता है, खुले बाजार में हमारे देश का बड़े से बड़ा किसान भी नहीं खड़ा हो सकता है। उधर धरती माता न रहकर बाजार में विक्री की वस्तु हो गई। उसकी खरीद-फरोख्त में आड़े आनेवाले नियम कानून बदले जा रहे हैं। इसलिये आज नहीं तो कल, जमीन पैसे वालों के पास चली जायेगी।

मेहनत की हकदारीः धोखा की धोखा

गाँव के साथ धोखाधड़ी की बात मेहनत की हकदारी के सवाल के विना पूरी तरह समझ में नहीं आयेगी। अंग्रेजोंने तो गाँव और किसान का निरीह शोषण किया ही था, परंतु उनका वह कारनामा लोगों के सामने था। लोग जानते थे उनका शोषण हो रहा है। मगर आजादी के बाद हमारे अपने हुक्मरानों ने ऐसा जाल रचा जिसका कोई जवाव नहीं है। किसान आज तक भारी धोखे में है। चक्रवृद्धि व्याज की बात हम कर चुके है। परंतु दुनिया में हर तरह के उत्पादन के दो ही आधार हैं - निसर्ग के संसाधन और इंसान की मेहनत। संसाधनों की बात भी हम कर चुके हैं। उसके बाद इन्सान की मेहनत का मूल्य या उसकी हकदारी सबसे बुनियादी है। इस बुनियादी सवाल को स्वयं गांधीजीने हिन्द स्वराज में उठाया था। उन्होंने कहा था कि खेत मजदूर की मेहनत का मूल्य वकील के मेहनताने से क्यों कम होना चाहिये ? इसी बात को राष्ट्रसंत ने भी कहा। परंतु उसके बारे में बाकी सब खामोश हैं।

खेती किसानी की मेहनत की हकदारी के खिलाफ व्यूह-रचना आजादी के तुरंत वाद ही हो गई थी। देश के विकास में पूँजी को केंद्रीय और बड़े उद्योगों को उसमें अगुआ मान लिया गया। इसलिये सबसे अहम सवाल यह उठा कि उनके लिये पूँजी कहाँ से जुटाई जाय? पूँजी कागज का नोट तो होती नहीं है जो जितना चाहे छाप लो। पूँजी का एक ही स्त्रोत है उत्पादना। इसलिये पूँजी मेहनत करनेवाले उत्पादन से ही बचत के रूप में या किसी और जुगत से ही जुटाई जा सकती है। कृषिप्रधान देश भारत के औद्योगिक विकाससहित सभी कामों के लिये पूँजी खेती किसानी से ही मिल सकती थी। ऐसे में अगर किसानों से सीधी वसुली करके पूँजी जमा की जाती तो भारी बावेला बच सकता था।

रुपये-पैसे की चालबाजी में माहिर लोगों ने यह जोखीम उठाने की बजाय एक नायाब तरकीब निकाली। उन लोगों ने जहाँ तक हो सका, खेती किसानी में लगे लोगों की मेहनत के मूल्य को नहीं बढ़ने दिया। दूसरी ओर बाकी सब लोगों, खास तौर से उद्योग, संगठित क्षेत्र और हर तरह की सेवाओं में लगे लोगो के हर तरह के काम का मूल्य जानबूझकर अनाप-शनाप्र बढ़ने दिया। दिखावे के लिये कहने को देश में ये ही लोग बचत करते है, वेही टैक्स देते हैं।

इस तरह उन्हीं के त्याग से पूँजी इकट्ठा होती है। वेही इस देश के विकास की गाड़ी को बैलों की तहर ढ़ो रहें हैं। मगर सच्चाई कुछ और ही है। ऊपर बताई साजिश के तहत पहले किसानों लूटो। फिर लूट के माल से दो कौड़ी फेंक कर दानवीर की पदवी पावो। आज इन्हीं धोखेबाजों ने किसान को दाने दाने के लिये मोहताज कर दिया है। किसान की मेहनत के मोल की जड़ ही न खोद दी जाती तो और उसको पूरी हकदारी मिलती तो किसान खुद ही इन नाकारा लोगों से कई गुना बचत कर लेता।

लूट की असलियतः रियायतों का सफेद झूठ

इस कुचक्र का आज नतीजा यह है कि अगर खेती-किसानी का सही हिसाब लगाया जाय तो जिस किसान को अपनी मेहनत के लिये २०-२५ रूपये रोज भी पड़ जाय तो वह खुशनसीब होगा। दूसरी ओर सरकार के चपरासी को भी दिन का १००-१५० रुपये, गाँव के गुरुजी के २५०-३०० रुपये, कलेक्टर के १०००-१२०० रुपये और वकील-डाक्टर के कहने ही क्या, लाख-डेढ़ लाख रुपये रोज भी पीट लें तो कोई अचरज नहीं। किसी छोटे से मजरे में रहनेवाले सब लोगों की कुल आमदनी गुरूजी की तनखाह से कम ही होगी।

आजादी के समय से आज तक देश की कुल आबादी में खेती-किसानी से गुजर करने वालों के अनुपात में खास अंतर नहीं आया है। लगभग सत्तर फीसदी लोग खेती-किसानी और उससे जुड़े कामकाज पर आजादी के समय आश्रित थे और आज भी है। उस समय कुल राष्ट्रीय आय में इन सत्तर फीसदी लोगों का हिस्सा रुपये में ६३ पैसे था। आज २००२ में उनका हिस्सा २४ पैसे रह गया है। अगर किसानी पर अभी हाल के झटके का हिसाब और हो जाय तो यह हिस्सा २० पैसे से ज्यादा नहीं होगा। जानबूझकर बढ़ाई गई इसी गैरबराबरी के चलते एक ओर मुट्ठीभर लोगों के यहाँ आशाइशों के अंबार लगे हुए हैं। दूसरी ओर दिनभर खेत में खटने वाले किसान-मजदूर के लिये दो जून रोटी के भी लाले हैं। सबसे तौहीनी की बात तो यह है कि हमारे देश में खेती किसानी को, जो दुनिया में सबसे बड़ा हुनर है, अकुशल काम का दर्जा दिया गया है।

यह बढ़ती गैर-बराबरी 'मासूम गैर-बरावरी' नहीं है। वह ज़हर में बुझा हुआ तीर है। उसका गाँव समाज को भेदने और तोड़ने के लिये बड़ी होशियारी से उपयोग किया जाता रहा है। अगर मेहनत के मूल्य में ईमानदारी बरती गई होती तो दूसरे नये-नये हुनरवालों के लिये उचित व्यवस्था करने के बाद भी कुल राष्ट्रीय आय में खेती-किसानी का हिस्सा ५० पैसे से कम नहीं होता। आज कुल राष्ट्रीय आय २० लाख करोड़ रुपये सलाना है। उसमें इस न्यूनतम ५० पैसे की बजाय किसानी का हिस्सा २०-२५ पैसे है। यानी खेती-किसानी करने वालों से मोटा मोटी ५ लाख करोड़ रुपये सालाना की लूट हो रही है। इस लूट का तो कहीं कोई हिसाब ही नहीं है। इसके बदले नाकारा मगरूर लोग यह कहते रहते है कि किसान का क्या वह तो सरकारी दामाद है। वह तो ल ल जानता है - यह रियायत, यह अनुदान! उसने द तो मानों कहीं पढ़ा ही नहीं है, न कोई खर्च न कोई टैक्स।

शर्मनाक नियति!

यहीं पर हमारे देश में किसान के साथ सबसे बड़ा झूठ और फरेब बरता जा रहा

है । देश की तरक्की में पेट काट कर किये गये उसके योगदान को मनाने की बजाय उसे अहसानों से लाद दिया गया है। उसकी हालत भिखारी जैसी बन गई है । सही जानकारी न होने से उसे भी लग रहा है कि सरकार उस पर भारी इनायत कर रही है। भगवान के सिवाय किसी के सामने हाथ न फैलाने वाला स्वाभिमानी किसान आज दर दर का भिखारी बन गया है । सबको खिलानेवाला किसान दीन हीन का बाना बनाये एक पर एक अर्जी लिये किसी अफसर या नेता की तलाश में घूमता रहता है। हाथ में भीख का कटोरा लिये डोलने वाले का कहाँ का मान, कहाँ का सम्मान ?

यहीं नहीं, गाँव की असलियत इससे भी कहीं ज्यादा गलीज हो गई है । भीख के टुकड़ों की आहट मिलते ही गाँव में लोंग कुत्तों की तरह भौंभियाने लगते है । उन टुकड़ों को पाने के लिये हर तरह के हथकंडे जायज है। पंचायतों की गरिमामय व्यवस्था भी उसी स्वार्थ की पूर्ति का आखाड़ा बन गई है। चुनाव आते ही लगता है मानो इलाके में भूचाल आ गया हो। चुनाव के 'महायुद्ध' में सब कुछ जायज है । अपना घर भरो दुनिया में क्या हो रहा है, उसको चिन्ता मत करो । यही आज का स्थापित अपत्-धर्म है।

आम तौर पर धारणा यह है कि ऊपर बताई सब बातें अपने आप हो रहीं है । 'क्या करें कलजुग है', कह कर अपनी जिम्मेदारी से हाथ झाड़ लिये जाते हैं । ऐसा सोच परले दर्जे का निकम्मापन और बकवास है। हमें पहले तो यही समझना होगा कि यह सब हो नहीं रहा है, कराया जा रहा है । इसके पीछे एक विश्व-व्यापी व्यूह रचना है । उसका एक ही उद्देश्य है कि दुनिया में हर तर के इंसानी रिश्ते खतम हो जाय । पूरी दुनिया पर मुट्ठी पर पूँजीपालियों का बजरिये बाजार एक छत्र राज हो जाय ।

बाजार और पैसे के वर्चस्व के चलते दुनिया में मानव समाज जिन्दा नहीं रह सकता है। इन्सान के लिये उसका परिवार और गाँव समाज ही इंसानी रिश्तों वाली मात्र दो संस्थायें हैं । पश्चिमी देशों में इसी के चलते समाज टूट चुका है । परिवार टूट रहा है। विवाह की व्यवस्था भी समाप्त प्राय है । विवाह की बात दकियानूसी है । ऐसे में आदमी और औरत पति-पत्नी न होकर सहवासी या मित्र होते जा रहे हैं । बूढों के लिये तो वृद्धाश्रम बन ही गये है। मातृत्व का बोझ भी अब महिला को स्वीकार नहीं है । यह नया आदर्श बड़े फख के साथ पेश किया जाता है ।

हमारे देश में भी गाँव समाज तो लगभग टूट ही चुका है। धरती जिस दिन बाजार की वस्तु बन गई उस दिन गाँव समाज की बुनियाद ही खतम हो जायेगी । उसके बाद परिवार भी टूट रहा है। हमला अब स्त्री पुरुष के संबंध पर है जिससे विवाह भी टूट जाय । अभी राष्ट्रीय भावना और धर्म पैसे की ताकत के रास्ते में भारी अवरोध हैं । इसलिये उन दोनों पर भी बाजारवाद का सीधा हमला है।

पश्चिमी देशो का अपना सौदा साफ है। उन लोगों ने इन्सानी रिश्तों को दुनिया की लूट से बने अशाइशों के ढ़ेर में दफना दिया है। मगर हमारे देश में शोषण उत्पीड़न की त्रासदी झेलनेवाले आम आदमी से उसके परिवार की ऊष्मा भी छिन जाय तो क्या वचेगा ? दुनिया भर में टूटती किसानों की हालत में किसानों की एक ही एक नियति हुई है। एक ओर उसके

नाकारा बेटों के लिये दारू की दूकानें खुल जाती है। वहाँ वे अपने गम को हाला में डूबों कर, बिना किसी दूसरे को दोष दिये, अपनी तकदीर को कोसते हुए तिल तिल कर मिटते जाते हैं। नई व्यवस्था में सिर्फ उसकी बेटी ही काम की 'चीज' रह जाती है । इस जिस्म-फरोशी का घिनौना कर्म किसी के मन को न कचोटे, इसलिये में देह-व्यापार को नई तर्ज 'यौन कर्म' और उन काले कारनामों को पर्यटन उद्योग के नाम से महिमा मंडित कर दिया जाता है ।

गाँव समाज का बिखराव और इसी तरह का उसका दयनीय अंत अब हमारे देश में भी हमारे सामने है। उसे बहुत दिनों तक आखें नही चुराई जा सकती है । आज नहीं तो कल, आपकी बेटी नहीं तो नातिन यह कहेगी दादाजी मैं आज होटल इंटरनेशल जा रही हूँ-दस हजार मिलेंगे....छोड़िये भी पुरानी बातें, दादा डियर,टा टा!

इस तरह इस समय मानवीय सभ्यता अपने इतिहास के सबसे भयंकर संकट से गुजर रही है । इसका मुकाबला करने की संभावना अब सिर्फ गाँव समाज के मैदान में ही बच रही है । गाँव ही वह कुरुक्षेत्र है जिसमें इंसानियत का महायुद्ध होगा-होगा नहीं, शुरू हो गया हैं। ग्रामगीता उसी महायुद्ध का शंखनाद है ।

४. परंपरा की गरिमायम पुनरस्थापना की ओर

इंसानियत और बाजार के बीच इस महायुद्ध में सबसे निर्णायक पहला मोर्चा तो खुद गाँव समाज के अंदर ही होना है। धर्म और जाति के भेदभाव ने समाज की चूलों को पहले सेही हिला दिया था । परन्तु अब तो आधुनिकता और विकास की चकमदमक से लैस बाजार की ताकतों ने समाज की बुनियादी मान्यताओं, परस्पर व्यवहार और जिन्दगी की सभी गतिविधियों पर सीधा हमला बोल दिया है। उधर लोकतंत्र के नाम पर वोट की राजनीति और लूट में शामिल होने की दीक्षा देने वाली शिक्षा दोनों ही समाज भंजक है। इस चौतरफे हमले का निदान् गाँव समाज को खुद ही ढूंढ़ना होगा । ग्राम गीता में उसीका आदर्श प्रस्तुत है।

परन्तु आज के इस मुकाबिले में गाँव समाज के दायरे के बाहर और आज उसकी खिलाफत में खड़े राज्य की भूमिका को नजर अदांज करना घातक होगा । आखिर राज्य देश के आम लोगों के संकल्प का मूर्त रूप है । ऐसे में बुनियादी सवाल यही है कि क्या राज्य की व्यवस्था को आम आदमी और समाज के खिलाफ बाजार के साथ गठजोड़ करने के लिये छूट दी जा कसती है? राज्य की समाज-विरोधी भूमिका को बदलाना होगा । इसके लिये सबसे पहला और निर्णायक कदम तो यही हो सकती है कि राज्य की औपचारिक व्यवस्था से गुलामी के दौर की गाँव-समाजविरोधी विरासत को खारिज किया जाय। उसमें गाँव समाज और उसकी परंपरा के लिये उसकी गरिमा के अनुरूप स्थान बनाया जाय । हमें खुशी है कि इस दिशा में कुछ महत्त्वपूर्ण कदम लिये जा चुके है जिनपर हम आगे विचार करेंगे ।

संविधान में तेहत्तरवाँ संशोधन

अनुच्छेद ४० के तहत पंचायत राज की व्यवस्था कुछ अपवादों को छोड़कर सभी राज्यों में असंतोषजनक रही है। किसी किसी राज्य में तो पंचायतों के एक बार चुनाव होने के बाद फिर चुनाव का नामही नहीं लिया गया । पंचायतें भ्रष्टाचार का गढ़ बन गई । इस स्थिति से निकलने के लिये सन् १९९३ में संविधान में तेहत्तरवा संशोधन हुआ । इस

संशोधन के तहत संविधान में पंचायतों के लिये एक अलग से अध्याय जोड़ा गया । इसमें समय पर चुनाव, पंचायतों की कार्य पद्धति, वित्तीय व्यवस्था इत्यादी के लिये विस्तृत प्रावधान किये गये। परंतु इसमें सवसे महत्वपूर्ण और आशाजनक बात यह हुई कि संविधान में 'ग्राम सभा' को प्रतिष्ठित किया गया । ग्राम सभा गाँव में रहने वाले सभी मतदाता शामिल है। इस तरह ग्राम सभा गाँव के सभी लोगों की खुली सभा है।

इस नई व्यवस्था के बारे में हर तरह के क्रांतिकारी ऐलानों के बावजूद एक अपशकुनी बात हुई । ग्राम सभा के बारे में अति विशिष्ट प्रावधान में भी ग्राम सभा को कोई अधिकार नहीं दिये गये । उसके अनुसार-

२४३- क. ग्राम सभा, ग्राम स्तर पर ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का पालन कर सकेगी, जो किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा उपबंधित किए जाएं ।

इस तरह ग्राम सभा के अधिकारों की बात राज्यों के विधान मंडलों पर छोड़ दी गई। जब विभिन्न राज्यों ने पंचायती राज कानून बनाये तो उन में भी ग्राम सभा की गरिमा का ध्यान नहीं रखा गया । सभी राज्यों के अधिनियमों में ग्राम सभा को केवल विचार करने वाली सभा माना गया । ग्राम सभा के सुझावों पर अमल करने का अधिकार ग्राम पंचायत को दिया गया । यही नहीं सभी अधिनियमों में हर स्तर की पंचायत को विहित अधिकारी के आदेश का पालन करने की बाध्यता है । इस तरह उन के हर कामकाज में विहित अधिकारी के माध्यम से राज्य का रोब-दाब कायम है।

इन प्रावधानों को करते समय जनप्रतिनिधियों ने इतना भी ध्यान नहीं रखा कि पहले तो ग्राम सभा और पंचायत का रिश्ता पिता और बेटे जैसा है। ऐसे में बाप की बात पर बेटा कैसे विचार कर सकता है? दूसरे, लोगों के सामने किसी भी स्तर के सरकारी अधिकारी की हैसियत सेवक की ही होती है । इसलिये विहित अधिकारी का हुकुम यानी नौकर का हुकुम हुआ। इस तरह सार रूप में नई पंचायत व्यवस्था में **'पिता की बात पर विचार नौकर की आज्ञा का पालनं'** का सूत्र उभरता है। ऐसी उलटी रीति स्वायत्तशासी व्यवस्था के लिये कहाँ तक उचित मानी जा सकती है? यही नहीं, इस संशोधन के बाद भी पंचायतों के कामकाज वहुत करके सरकार की दया-भिक्षा पर चलने वाले विकास के काम और उनके लिये पैसे की जुगाड़ तक ही सीमित बने रहे है।

पंचायती राज की स्थापना के पूरे दौर में सबसे चिन्तनीय बात यही रही कि गाँव के स्तर पर लोगों की खुली सभा से सभी को एतराज रहा । उसे किसी भी रूप में अधिकार देने वाली बात न सोची गई और न कही गई । सच पूछा जाय तो लोगों की अपनी संस्था ग्राम सभा को यह 'अधिकार देने' वाली बात बुनियादी तौर से लोकतंत्र की भावना के खिलाफ है। गाँव समाज स्वयंभू है। उसके अधिकार नैसर्गिक है। दुर्भाग्य से सामान्य इलाकों में समाज की अस्मिता का यह अहसास भी, खास तौर से आजादी के बाद की विकास की थकापेल में, तेजी से छीजता गया है ।

आदिवासी इलाकों में क्रांतिकारी बदलाव

आदिवासी इलाकों में स्थिति बहुत कुछ अलग है। पहली बात तो यही है कि इन

इलाकों में राज की औपचारिक व्यवस्था अंग्रेजों के जमाने में भी पूरी तरह जम नहीं पाई थी। इसलिये वहाँ समाज की जीवन्त व्यवस्था बनी रही । आजादी के बाद संविधान और कानूनों की एक जैसी व्यवस्था सब जगह लागू हो जाने से आदिवासियों की परंपरागत व्यवस्था अमान्य हो गई। इसी कारण आजादी के तुरंत बाद से ही संसाधनों पर अधिकार को लेकर राज्य और लोगों के बीच टकरारव की स्थिति बन गई। इस टकराव को खतम करने की सरकारी कोशिशें तो चलती रहीं परंतु स्वायत्तशासी व्यवस्था के बारे में संतोषजनक कार्रवाई न होने से वे सब नाकाम ही साबित हुई । ऐसे में बस्तंर के कुछ इलाकों में गाँव समाज की ओर से **'हमारे गाँव में हमारे राज'** के रूप में नैसर्गिक अधिकारों की इकतरफा घोषणा हुई ।

गाँव के स्तर पर स्वायत्त व्यवस्था की यह घोषणा संविधान की भावना से संगत है। इस सीधी सच्ची बात को लोकतंत्र में नकारना संभव नहीं है। इसलिये घोषणा के इकतरफा होने के बावजूद राज्य से संवाद भी चलता रहा । अंत में, लोक संकल्प की सच्चाई, संगठन की ताकत और हुक्मरानों में भी आंख की शरम के चलते संसद ने आदिवासी इलकों के लिये 'पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम' पारित किया । यह नई व्यवस्था २४.१२.१९९६ से लागू हुई । ग्राम सभा सर्वशक्तिसंपन्न है –

(घ) प्रत्येक ग्राम सभा, जनसाधारण की परंपराओं और रूढ़ियों, उनकी सांस्कृति पहचान, समुदायिक संपदाओं और विवाद निपटान के रूढ़िक ढंग का संरक्षण और परिरक्षण करने में सक्षम होगी ।

इस की भावना ग्रामगीता में गाँव गणराज्य की कल्पना से पुरी तरह संगत है।

पंचायत और ग्रामसभाओं के बारे में इस प्रावधान की चेतना सामान्य इलाकों की व्यवस्था से बिलकुल अलग है । जैसा पहले कहा जा चुका है अनुच्छेद ४० और अन्य प्रावधानों में पंचायतों को और ग्रामसभा को भी अधिकार देने की बात कही गई है। परंतु नये प्रावधान में इस मान्यता से हटकर ग्रामसभा को सक्षम माना गया है। इसी तरह सामान्य कानून में संसाधनों पर अधिकार और विवाद निपटाने की बात नहीं है। आदिवासी कानून में ये दोनों ही ग्राम सभा के अधिकार क्षेत्र में हे। यही नहीं, ग्राम सभा अपनी व्यवस्था गाँव समाज की परंपराओं क़े अनुरूप करने के लिये सक्षम है। इस कानून के लागू हो जानें के बाद शराबवाले नामले में थानेदार साहब यह नहीं कह सकते हैं कि उन्हें गाँव की परंपरा नहीं मालूम । इसके बदले गाँव के कामकाज में अंगर कोई अधिकारी हस्तक्षेप करे तो उससे कहा जा सकता है कि 'यह हमारी परंपरा है, हम आपका कानून नहीं जानते।'

परंपरा के बारे में सबसे बड़ा आक्षेप कुछ गलत रूढ़ियों को लेकर होता रहा है। परंतु व्यवस्था जिस समाज के वुजूद के ही स्वीकार नहीं करती है, उसके बारे में इस प्रकार की शिकायत बेमानी है, दुराग्रहपूर्ण है। राष्ट्रसंत तुकडोजी की ग्रामगीता रूढ़ीग्रस्त परंपरा के गलित अंशो के परित्याग और समता, न्याय और भाईचारे के तत्वों को सुदृढ़ करने की जीवन्त प्रयास है । हमारे देश में ऐसे प्रयासों की एक लम्बी श्रृंखला है। सबसे खेद की बात है कि राजनीति तंत्र ने अपने स्वार्थ में आम लोगों के सामने व्यवस्था की बुनियादी बातें इस मगरूरियत के कारण कभी रखी ही नहीं कि वे नासमझ है। आम लोगों को नासमझ कहने वाले लोकतंत्र के सबसे

बड़े दुश्मन के हैं । मानवीय मूल्य और संविधान की बुनियादी मान्यताएं गाँव समाज की आम जिन्दगी में व्यवहार में आये इसके लिये ग्राम गीता से बढ़कर शायद ही कोई दूसरा प्रयास हुआ हो ।

आदिवासी इलाकों में ग्राम सभा की सर्वशक्ति संपन्नता का दायरा जीवन व्यापी है। विवाद निपटाने और संसाधनों की व्यवस्था के साथ साथ ग्राम सभा मादक पदार्थों के नियंत्रण और नशाबंदी लागू करने तक के लिये सक्षम है। कर्ज के लेनदेन और गाँव के बाजार पर उसक नियंत्रण है। शिक्षा और स्वास्थ्य सेवायें भी उसकी देखरेख में चलना है । विकास के सभी कामों के बारे में तीन महत्वपूर्ण प्रावधान है – पहला, कोई भी कार्यक्रम ग्राम सभा की सहमति केबिना शुरू ही नहीं किया जा सकता है। दूसरा, हितार्थियों का चयन और चुनाव ग्राम सभा करेगी। तीसरा जो सबसे महत्त्वपूर्ण है सभी कार्यक्रमों पर होने वाले खर्च का प्रमाण पत्र ग्राम सभा देगी । **ये प्रावधान तो अब मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड और ओडिशा के सामान्य क्षेत्रों में भी लागू है। इन प्रावधानों के रहते यदि ग्राम सभा में एक सदस्य भी सजग और हिम्मतवाला है तो गाँव के स्तर पर भ्रष्टाचार रह नहीं सकता है। इसके बावजूद हम क्या कर सकते हैं, कह कर कोई गाल बजावे वह निकम्मा है।**

संसाधनों पर ग्राम सभा के नैसर्गिक अधिकार के लिये कानून में स्थान हो जाने से राज्य के उस पर एकाधिकार की समाप्ति हो जाती है। नये कानून की व्यवस्था में भू-अर्जन के कानून के तहत यदि राज्य भी किसी काम के लिये जमीन लेना चाहे तो उसे ग्राम सभा से पहले सलाह करना होगी । ग्राम सभा से सलाह का अर्थ उसकी सहमति के अलावा कुछ नहीं हो सकता है। बात साफ है। **लोकतंत्र के पद क्रम में सबसे ऊँची ग्राम सभा से सलाह पिता से सलाह जैसी है। सभ्य समाज में पिता की सलाह शिरोधार्य करना ही बेटे का पुनीत कर्तव्य है।**

मेरा गाँव ?

इस तरह कम से कम आदिवासी इलाकों के कानून में गाँव के स्तर हर तरह का काम काज ग्राम सभा के अधिकार क्षेत्र में आ गया है। ग्राम सभाओं को, किसी जामवन्त के कहने से, अपनी असीम क्षमता का अहसास भी होत जा रहा है। परंतु शुरू में जो हमारे गाँव वाली बात निकली थी उसका तो कहीं खुलासा हुआ ही नहीं । क्या सचमुच हम कानून के इस 'ग्राम' को गाँव समाज का रूप मान सकते हैं? यहीं पर हम अपने देश की कानूनी व्यवस्था के सबसे संवेदनशील बिन्दू पर आ जाते हैं। देश के हर कानून में यहाँ तक कि संविधान में भी यह लिखा है कि ग्राम को राज्यपाल अधिसूचना जारी करके तय करेंगे –

२४३ (छ) 'ग्राम' से राज्यपाल द्वारा इस भाग के प्रयोजनों के लिये लोक अधिसूचना द्वारा ग्राम के रूप में विनिर्दिष्ट ग्राम अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत इस प्रकार विनिर्दिष्ट ग्रामों का समूह भी है।

मतलब यह है कि जिसे हम अपना गाँव मानते हैं वह राज्यपाल की अधिसूचना मे 'ग्राम' के रूप में माना भी जा सकता है और नहीं भी । अगर कहीं छोटे छोटे गाँव है तो राज्य पाल दो चार गावों को मिलाकर एक ग्राम अधिसूचित कर सकता है। अगर गाँव बहुत बड़ा है

या वैसे भी, उसको दो भागों में विभाजित सकता है। वे दो अलग 'ग्राम' माने जा सकते हैं। यह भी हो सकता है कि राजकाज की सुविधा के लिये उसका एक हिस्सा पड़ोस के एक गाँव में जोड़ दिया जाय और दूसरा दूसरे गाँव में ।

ऐसे में एक बड़ा सवाल उठ सकता है। मानलो मैं रानपुर का रहने वाला हूँ । उसके दो हिस्से हुए । एक गोठ में शामिल हो गया, दूसरा भवानीपूर में । इसका मतलब यह हुआ कि सरकार की नज़र में मेरे अपने गाँव रानपुर का वुजूद ही मिट गया । मगर उससे रानपुर की जो परंपरागत पंचायत है उस पर तो कोई असर नहीं पड़ेगा । उसमें लोगों का मिलना जुलना, तीज त्योहार, विवादों का निपटारा तो वैसे ही चलता रहेगा । हाँ, जब सरकारी ग्राम सभायें भरेंगी तो रानपुर की ग्राम सभा नहीं होगी । उसके आधे लोग चाहेंगे तो गोठ वाली ग्राम सभा में शरीक होंगे और आधे लोग भवानीपूर वाली में । ठीक है, सरकार का हुकुम है इसलिये यह सब भी चल ही रहा है। मगर यहाँ पर बुनियादी सवाल यह कि सरकार को यह हक कहाँ से मिल गया कि वह हमारे गाँव के वुजूद को ही मिटा दे? हमारा गाँव और गाँव समाज स्वयंभू हैं वे थे, हैं, और आगे भी रहेंगे ।

ऊपर बताई हालत में भू वैकुंठ के दरबान का सवाल जायज है। अगर आप अपने को रानपुर वाला कहते हैं तो वह अपना रजिस्टर देखेगा और कहेगा यह 'ग्राम' तो हैही नहीं। मगर आप कहेंगे 'नही, यह कैसे हो सकता है? हमारे देशकी इसी कानूनी उलझन ने पंचायती राज की जड़ हीनहीं जमने दी। राज्य की व्यवस्था गाँव समाज या गाँव जो है, उसकी बुनियाद पर नहीं बनाई गई । उसकी बजाय सरकारी सुविधा को देखते हुए ग्राम को अधिसूचित करने का प्रावधान किया गया ।ऐसे सरकारी ग्रामों की ही ग्राम सभाए बनी। ये ग्राम सभाए गाँव समाज का पर्याय नहीं हैं । वे कई गाँवों के लोगों की भीड़ मात्र हैं । इसीलिए आज तक ये भीड़भाड़ वाली ग्राम सभाए गाँव की जिन्दगी में कोई कारगर भूमिका नहीं निभा पाई । लोगों की गाँव समाज वाली पंपरागत पंचायतें अपना काम अलग करती रही हैं, सरकारी ग्राम सभाए अलग। गाँव के लोग जानते है कि इन सरकारी ग्राम सभाओ में विकास के कुछ काम, अनुदान वगैरह के अलावा रखा ही क्या है? इसीलिये उन की उनमें कोई दिलचस्पी नहीं रही ।

नई पहल जरूरी

आदिवासी इलाकों के कानून क्रांतिकारी परिर्वतन इसी बुनियादी मुद्दे को लेकर हुआ है। वहाँ राज्यपाल को ग्राम अधिसूचित करने का अधिकार नहीं है। उस कानून के अनुसार ग्राम ऐसी बस्ती या बस्तियों का समूह है जहाँ लोन समाज के रूप में अपनी व्यवस्था परंपरा से चलाते आ रहे है। आदिवासी इलाकों की कानूनी व्यवस्था में अब गाँव समाज और ग्राम सभा एक रूप है । इस तरह ग्राम सभा की सक्षमता गाँव समाज की सक्षमता का ही कानूनी रूप रहै जिसके लिये संविधान में स्थान है।

ग्रामगीता में वर्णित व्यवस्था राज़ से मिलने वाले अधिकार की कायल नहीं है। लोक जाग्रति ही भू-वैकुण्ठ के निर्माण के लिये ऊर्जा का स्त्रोत है। हमारे देश की औपचारिक व्यवस्था में गाँव समाज को नकार कर समाज की इस अमोघ ऊर्जा को ही नकार दिया

गया । यही नहीं, स्वयंभू समाज सरकारी मान्यताओं का कायल नही है। ऐसे में जब समाज अपने सहज रूप मे आगे बढ़ता है तो उसे थानेदार-तहसीलदार के रूप मे राज की व्यवस्था की बड़ी दीवार सामने खड़ी मिलती है। उनके बीच के टकराव से समाज और देश दोनों का ही अहित होता है। मुट्ठी भर स्वार्थी तत्व उस विग्रह का लाभ उठाते है। समाज अपने सहज व्यवहार में ही सबसे अधिक प्रभावी भूमिका निभा सकता है। यह मानवीय चेतना आदिवासी इलाकों में अपने को व्यवस्था की गुंजलक से मुक्त करने में सफल हुई है। देश के नव निर्माण के लिये पूरे देश में ही गाँव समाज को कानून की उस गुंजलक से मुक्त कराना होगा जहाँ उसकी आत्मा छटपटा रही है।

शेष प्रश्न

मगर यही से देश की व्यवस्था में उस बुनियादी बदलाव की शुरुआत होगी जो हमारे देश के ऊँचे वर्ग के लोग खास तौर से शहरों के लोग सहज स्वीकार नहीं कर पायेंगे । खुले आसमान के नीचे गाँव समाज की खुली सभाओ में झूठ और फरेब नहीं चल सकेगा। उस खुली सभा में आज तक ८ x ८ के बंद कमरों में होनेवाली मिसकौट का पर्दाफाश होगा। गाँव की सभाओं में इतनी भारी भरकम सहकारी व्यवस्था की जरूरत पर भी सवालिया निशान लगेंगे । मेहनत की हकदारी के सवाल भी मुखर होंगे । गाँव में बसनेवाले भारत में किसानी को किस न्याय से अकुशल काम का दर्जा दिया गया है? बात इस पर भी होगी कि किसानी की मेहनत का मोल बड़े बड़े उद्योगों के कुशल कारिगर से कम क्यों होना चाहिए ? यदि समता में हमारी निष्ठा है तो बडे से बडे और छोटे से छोटे के बीच तीन गुने से अधिक का अंतर किसी तरह जायज नहीं माना जा सकता है।

सच तो यह कि खेती-किसानी एक धंधा नही है। वह समग्र जीवन पद्धति है। ग्रामगीता में उसीका विषद वर्णन है। इस जीवन की बुनियाद इंसानियत है। श्रम-निष्ठा इंसानियत की आत्मा है। मगर दूसरी ओर औद्योगिक व्यवस्था के केंद्र में पैसा है। घोर व्यक्तिवाद उसकी मूल चेतना है। इसीलिये उसका रक्तरंजित इतिहास है। शोषण, दमन, उत्पीड़न उसकी बुनियाद है। इंसानियत उसके निशाने पर है। मगर उपभोगवाद की चकाचौंध में हमारा शासक वर्ग बौरा गया है। उद्योग कों केंद्रीय बनाने की मुहिम चल रही है। हम घोर व्यक्तिवाद के जाल में फँसते जा रहे है। पैसे की होड़ में हम अपनी परंपरा के उस विवेकपूर्ण चेतावनी को भी भुला दिये है। जिससे लक्ष्मी का वाहन उल्लू मना गया हैं । 'उल्लू' सत्य के तीव्र प्रकाश को नहीं झेल सकता है। उसे तो कुकर्मो की अंधेरी दुनिया ही रास आती है। अगर हमारे देश में भी खेती उद्योग का रूप ले लेती है तो धीरे धी इन्सान उद्योग की बड़ी दुनिया में मशीन का एक अदना पुर्जा मात्र बनकर रह जायेगा ।ऐसे में इंसानियत का खातमा सुनिश्चित है।

दुनिया में आज इंसानी रिस्तों का सबसे समृद्ध रूप कहीं है तो भारत में ही है। राष्ट्रसंत की आत्मा उसी के क्षरण से उद्वेलित थी । इसलिये आज हमारे गाँव समाज के ऊपर पूरी दुनिया के मंच से लोप होती जा रही मानवीयता को बचाने की ऐतिहासिक जिम्मेदारी है। ग्रामगीता उसके लिये वेद और स्मृति सब कुछ है। इसके

लिये पैसे और बाजार के दायरे को सीनित करना होगा । रुपया विनियम का माध्यम भर रहेगा । वह निश्चलेष्ट वस्तु लेन-देन बढ़ कैसे सकती है? ब्याज की धारणा कोही खारिज करना होगा । उसकी भावना के अनुरूप पूँजी के बजाय श्रम की प्रधानता को स्वीकार करना होगा। हमें अपनी धरती माता को बाजार के जाल से निकालना होगा । नई व्यवस्था में राज्य गाँव में मुखरित होनेवाले जनादेश का पालन करनेवाला सेवक होगा । इसी राह से अंचल, देश और दुनया में मानवीय गरिमा पुनस्थापना हो सकेगी ।

हाँक क्रांति की !

हमारे हुक्मरान इन सवालों से बचने के लिये ग्राम सभा के रूप में गाँव समाज की अमोघ ताकत को नही उबरने देंगे नगर..........

मगर....जो आदिवासी इलाकों में हुआ वह दूसरे इलाकों में क्यों नही हो सकता? हाँ यह जरूर है कि सामान्य इलाकों में समाजविरोधी ताकतों की भरमार है। धर्म, जाति, शिक्षा, विकास, व्यक्तिवाद सब कोई समाज को तिलतिल तोड़ रहे है। ग्रामगीता में इन विरोधी ताकतों के शमन का मंत्र है । बस जरूरत अपने बल पर भरोसे की है। हमें कबीर की तर्ज पर आगे बढ़ाना होगा–

करु बहिंया वल आपने, छाड़ि बिरानी आस ।
जाके आंगन नदिया बहे, सो कस मरे पियास ।।

हमारा विश्वास है कि आदिवासी इलाकों में उठी लहर को देशव्यापी होने से अब कोई नहीं रोक सकता है। हमें खुशी है कि इस बारे में हाल में महत्त्वपूर्ण पहल हुई है। मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ राज्यों में लोकतंत्र की भावना के अनुरूप ग्राम पंचायत को पूरी तरह से ग्राम सभा के प्रति उत्तरदायी बनाने की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। यह लहर ओड़िशा और झारखण्ड में भी पहुँच चुकी है। महाराष्ट्र में भी सहमति होती नजर आ रही है। हरियाणा, उत्तर प्रदेश और बिहार में भी आम लोगों के स्तर पर गंभीर चिन्तन शुरू हो गया है।

इस जन चेतना के उभार के विरोध की साजिश में लगे लोगों को चाहिये कि वे राष्ट्र संत की सलाह शिरोधार्य करें, समय की धारा को पहिचाने और उसके साथ चलकर गाँव गाँव में गणराज्य और देश में गांधी और राष्ट्रसंत के सपनों के रामराज्य को स्थापना के संकल्प को मूर्त रूप देने में सहभागी हों–

उठो, उठो, उठो श्रीमंतो । अधिकारियों और पंडितो !
साधुओं और सुशिक्षित जन भी । आयी है अब हांक क्रांति की ।।(१७/११४)

* * * * * *

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

राष्ट्रवंदना

तन-मन-धन से सदा सुखी हो,
भारत देश हमारा।
सभी धर्म अरु पंथ पक्ष को,
दिलसे रहे पियारा॥
विजयी हो, विजयी हो, विजयी हो,
भारत देश हमारा॥ टे॥
निर्भय हो यह देशकी माता,
मंगल कीर्ती कराने।
सत्य-शील, अरु निर्मल मनसे,
वीरोंको उपजाने॥
सद्गुणी हो यह देशकी जनता,
जीवन सुख सजवाने।
रंक-राव-पंडित-भिकारी,
सबको सुख दिलवाने॥
विजयी हो, विजयी हो, विजयी हो,
भारत देश हमारा॥१॥
स्पृश्यास्पृष्य हटे यह सारा,
देश कलंक मिटाने।
सबके मन कर्तव्य-शील हो,
धन उद्योग बढाने॥
सबका हो विश्वास प्रभुपर
अपनी शक्ती बढाने
ब्रम्हश्चर्य अध्यात्म दैविगुण,
घर-घर में प्रगटाने॥
सारा भारत रहे सिपाही,
शत्रु को दहशाने।
तुकड्यादास कहे स्फूर्ति हो
सबको भक्ति कराने॥
विजयी हो, विजयी हो, विजयी हो,
भारत देश हमारा॥२॥

राष्ट्रसंत श्री तुकडोजी महाराज

॥ जयगुरू ॥

CC0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

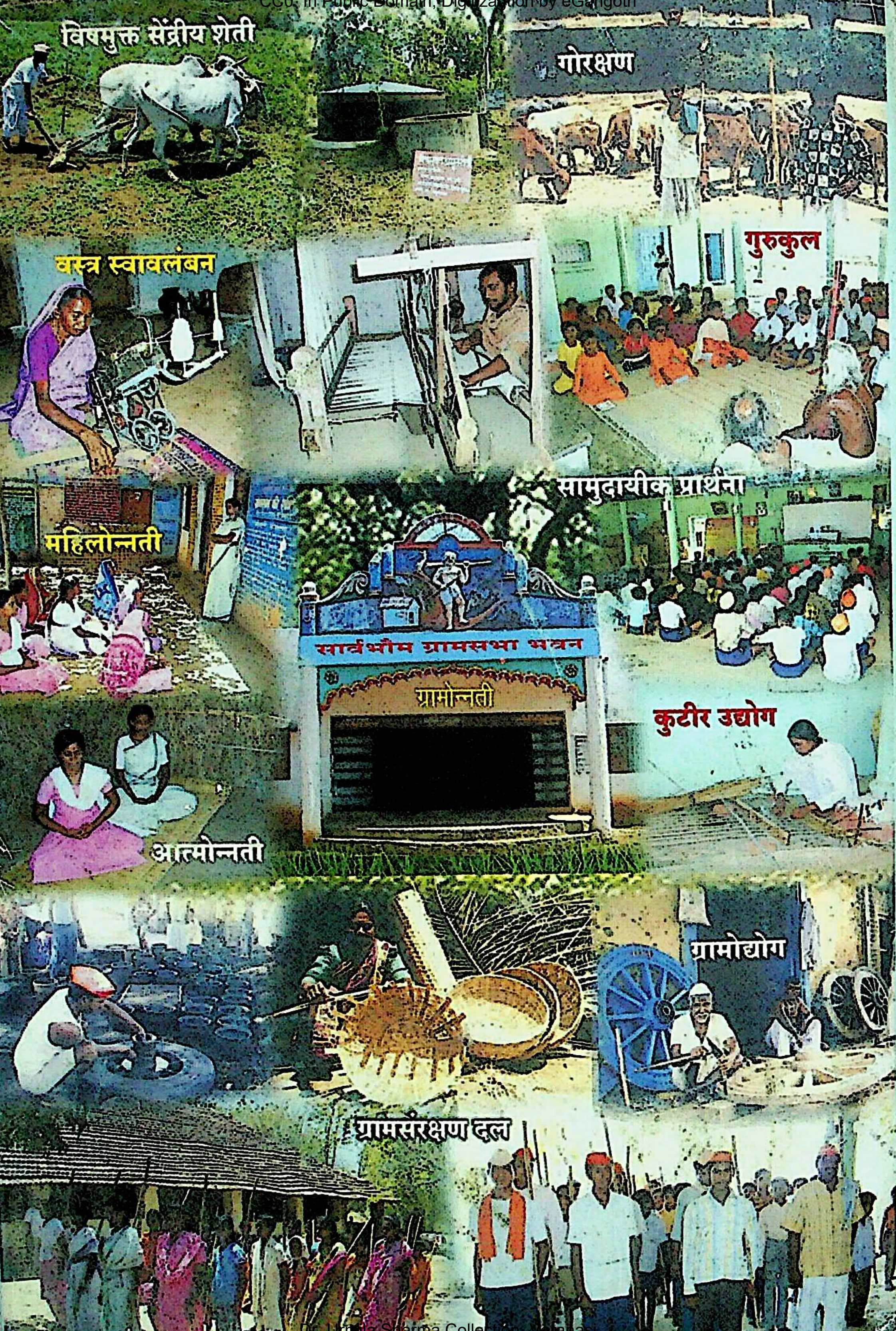
विषमुक्त सेंद्रीय शेती
गोरक्षण
वस्त्र स्वावलंबन
गुरुकुल
सामुदायीक प्रार्थना
महिलोन्नती
सार्वभौम ग्रामसभा भवन
ग्रामोन्नती
कुटीर उद्योग
आत्मोन्नती
ग्रामोद्योग
ग्रामसंरक्षण दल